डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा की साहित्य-साधना

सम्पादक

डॉ. सुनील कुमार

त्रिवेणी कला संगम, जयपुर

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा की साहित्य-साधना

©लेखकों की ओर से त्रिवेणी कला संगम, जयपुर द्वारा सुरक्षित

मूल्य
700 रू.

संस्करण
2014

ISBN 978-81-929570-0-5

प्रकाशक
त्रिवेणी कला संगम
बी-177, नित्यानन्द नगर
क्वीन्स रोड, जयपुर-302021

लेजर टाइपसैटिंग
त्रिवेणी कला संगम,जयपुर

आवरण
मैजेस्टिक टैक्नोसॉफ्ट प्रा. लि., जयपुर

मुद्रक
शीतल प्रिन्टर्स, जयपुर

सम्पर्क सूत्र
श्रीमती रेनू रानी शर्मा
अध्यक्ष, त्रिवेणी कला संगम
बी-177, नित्यानन्द नगर, क्वीन्स रोड, जयपुर-302021
दूरभाष : 0141-2352371

प्रकाशकीय

साहित्य, संगीत एवं कला के साधक डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का जन्म राजस्थान के ऐतिहासिक स्थान मैड़ गाँव के एक साधारण कृषक परिवार में हुआ। जन्मते ही प्रकृति के स्वच्छन्द दर्शन ने उनके मन में रचनात्मकता के बीजों का रोपण किया जिसकी पृष्ठभूमि पर उन्होंने अपनी लेखनी से माँ सरस्वती के भण्डार में श्रीवृद्धि की। प्राकृतिक परिदृश्य, मूक प्राणी, और सामाजिक यथार्थ उनकी प्रेरणा के स्रोत हैं।

स्वतन्त्र व्यक्तित्व वाले शर्मा जी गहन मानवीय संवेदनाओं के सशक्त हस्ताक्षर रहे जिन्होंने भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश का स्पष्ट चित्र अपनी कहानियों, उपन्यासों, गीतों एवं नाटकों आदि में किया है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने जिस जीवन को जिया, जिन संघर्षों को झेला, उसी का यथावत् चित्र अपनी रचनाओं में अंकित किया है। उन्होंने अपने लेखन का प्रारम्भ अपने बाल्यकाल से ही प्रारम्भ कर दिया था और वह भी कविताओं के माध्यम से।

शर्मा जी मूलत: कवि और नाटककार हैं परन्तु उन्होंने अपनी लेखनी से साहित्य की लगभग सभी विधाओं में लेखन कार्य किया है। वे त्रिवेणी कला संगम, जयपुर के संस्थापक सदस्य रहे हैं और वर्तमान में इस संस्था के सचिव के रूप में अपनी सेवाएं दे रहे हैं। हमारी संस्था द्वारा स्थापित त्रिवेणी संगीत महाविद्यालय, जयपुर के मानसेवी प्राचार्य के दायित्व के निर्वहन के साथ ही साथ आपने महाविद्यालय में हिन्दी भाषा के अध्यापन एवं संगीत-कत्थक नृत्य के गुरु के रूप में भी अपनी सेवाएं देकर संस्था को सहयोग प्रदान किया है। आपके लिखे गीतों पर आप ही के निर्देशन में हमारी संस्था द्वारा 'त्रिवेणी कैसेट-सी.डी.' का निर्माण किया गया जिन्हें संगीत जगत् में पर्याप्त मान्यता मिली और आगे चलकर उनके गीतों पर किये गये शोधकार्य पर श्री सुधीर माथुर को राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा पीएच.डी. की उपाधि प्रदान की गई।

हमारी संस्था के सहयोग से बाणगंगा प्रकाशन, जयपुर द्वारा डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा की प्रथम पुस्तक 'तुक्के का बादशाह' का प्रकाशन किया गया। पुस्तक के प्रकाशन से पूर्व इस पुस्तक के नाटक 'पेड़ हमारे मित्र' को हमारी संस्था के बाल कलाकारों ने जयपुर दूरदर्शन के 'नन्ही दुनिया' कार्यक्रम के लिये शर्मा जी के निर्देशन में तैयार किया जिसका 13 जनवरी 1997 को दूरदर्शन द्वारा प्रसारण किया गया। इसके पश्चात् हमारी संस्था द्वारा शर्मा जी के लिखे हुए कई दर्जन नाटकों का देश के विभिन्न भागों में मंचीय प्रस्तुतीकरण कराया गया।

त्रिवेणी कला संगम, जयपुर द्वारा उनके कई ग्रंथों का प्रकाशन किया गया जिनमें रेणुका इसरानी द्वारा संपादित पुस्तक 'कर्मपथ' प्रमुख है, क्योंकि डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के साहित्य पर देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में पीएच.डी. एवं एम.फिल हेतु हो रहे शोधकार्यों में यह पुस्तक बड़ी उपयोगी रही है। इसी क्रम में डॉ. सुनील कुमार के सम्पादन में डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के समग्र साहित्य से परिचित कराने वाली प्रस्तुत पुस्तक भी इन शोधार्थियों के लिए अवश्य ही उपयोगी रहेगी मुझे ऐसा विश्वास है।

इस पुस्तक हेतु जिन-जिन महानुभावों ने अपने शोध-आलेख प्रस्तुत किये हैं उनका मैं संस्था की ओर से आभार व्यक्त करती हूं तथा डॉ. सुनील कुमार को इसके कुशल सम्पादन के लिए बधाई देती हूं।

रेनू रानी शर्मा

दिनांक : मई 17, 2014

(रेनूरानी शर्मा)
अध्यक्ष, त्रिवेणी कला संगम,
बी-177, नित्यानन्द नगर
क्वीन्स रोड, जयपुर -302021
मो. 08600043066
ई.मेल.* trivenikalasangam@gmail.com
* trivenikalasangam@yahoo.com

सम्पादकीय

साहित्य सतत प्रवाहमान धारा है, ठीक हमारे जीवन-प्रवाह की भाँति। डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का साहित्य इसका अपवाद नहीं है। उनकी कहानियाँ, उपन्यास, नाटक, गीत, संस्मरण उनके निरंतर प्रवाहमान चिंतनधारा के प्रतीक हैं। वर्तमान युग के विडम्बनापूर्ण, असंतोष भरे वातावरण के विरूद्ध डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा ने निरन्तर संघर्ष किया। इनके साहित्य में परम्परागत मूल्यों से विरक्त होकर नये मूल्यों की तलाश मिलती है। इनके साहित्य में व्यक्ति-स्वतन्त्रता की तीव्र अभिलाषा, शोषण-प्रधान अर्थ-व्यवस्था का विरोध तथा आधुनिकता के प्रति सजग चेतना व्यक्त हुई है और इन्होंने नये सांस्कृतिक बोध के अंतर्गत जर्जर सांस्कृतिक मूल्यों को अस्वीकार करके, मानव को मानव के रूप में प्रतिष्ठित किया है। उन्होंने नारी के रूप सौंदर्य की अपेक्षा मानव के श्रम एवं कर्म सौंदर्य को ज्यादा महत्व दिया है। इनकी साहित्य संवेदना युग-चेतना से संपृक्त है। इनका साहित्य इनके व्यक्तित्व का ही परिचायक है तो इनका व्यक्तित्व इनके साहित्य का।

किसी भी कृति का मूर्त रूप पाना, व्यक्तिगत कार्य नहीं होता है इसमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मार्गदर्शकों, शुभचिंतकों, विद्वानों एवं 'नींव की ईंटों' का मौन समर्पण होता है। इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए हृदयस्थ अपने शुभचिंतकों का कृतज्ञ हूँ क्योंकि यह कृति उनकी ही अप्रतिहत कर्मनिष्ठा का प्रतिफल है। मैं तो निमित्त मात्र हूँ।

'डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा की साहित्य-साधना' संज्ञक इस ग्रंथ को आकार प्रदान करने के लिए अनेक विद्वानों-रचनाकारों ने अपना सारस्वत सहयोग दिया है। अस्तु, मैं उन सभी विद्वानों-रचनाकारों के प्रति अपनी प्रणति अर्पित करता हूँ, जिनके लेख इस ग्रंथ में हैं।

मैं परम पूजनीय पिता जी, स्नेहमयी माँ, भाई, भाभी, जीवनसंगिनी

का चिरऋणी हूँ, जिनकी सतत प्रेरणा के फलस्वरूप मैं अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँच पाया हूँ और यह पुण्य कार्य हो पाया है। भतीजी (कल्पना, अल्पना), पुत्र-पुत्री (सक्षम-सृष्टि) का अवश्य धन्यवाद करना चाहूँगा जिनकी मोहक मुस्कान इस कार्य की साक्षी रही है। श्रद्धेय गुरुवर डॉ. रामसजन पाण्डेय (प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक), ममतामयी डॉ. अंजु शर्मा, गुरुपुत्र पारिजात का हृदय से आभार एवं धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ जिनसे मुझे हर स्तर पर संबल मिला।

मैं अतिशय आभारी हूँ 'त्रिवेणी कला संगम, जयपुर' का जिन्होंने अत्यल्प समय में प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन सुरुचिपूर्ण ढंग से किया है।

अंत में इस सम्पादित पुस्तक में जो भी विषयगत विचार हैं, वे लेखकों के व्यक्तिगत विचार हैं। इसमें सम्पादक की सहमति-असहमति के सरोकार नहीं हैं।

'डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा की साहित्य-साधना' नामक यह ग्रंथ अब आपके हाथों में है। देखें, पढ़ें। इति।।

दिनांक : मई 14, 2014
बुद्ध पूर्णिमा

-डॉ. सुनील कुमार
सहायक प्रोफसर, हिन्दी विभाग
गुरु नानक देव विश्वविद्यालय,
अमृतसर-143005 (पंजाब)
मो. 09878550034
ई.मेल. drsunilgndu@gmail.com

अनुक्रमणिका

प्रकाशकीय 3
सम्पादकीय 5
1. त्रिवेणी कला संगम और कैलाश चन्द्र शर्मा 12
—डॉ. रामवीर सिंह शर्मा
2. एक बहुआयामी रचना प्रस्थान का नाम है यह 16
—डॉ. जंगबहादुर पाण्डेय 'तारेश'
3. नृत्य के क्षेत्र में डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का योगदान 19
—राजेन्द्र गंगानी
4. 'लड़ी मैड़ की' और 'मोती मैड़ के' नाटकों की कथावस्तु का विवेचन 24
—डॉ. डेविड तेजा
5. तुक्के का बादशाह : एक जागरूकता अभियान 30
—डॉ. मूर्ति मलिक
6. भारतीय अखंडता का नाटक : मानवता की पुकार 41
—डॉ. विकास कुमार
7. वीर शिरोमणि पृथ्वीराज चौहान : नाट्य तत्व 48
—डॉ. सुनील दत्त
8. 'तुक्के का बादशाह' : सहजता का दर्पण 57
—नीना गुप्ता
9. राजनीति व सामाजिक विषमता के प्रति संवेदनशील नाटककार: डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा 61
—डॉ. सरबजीतराय कौर

10. अर्थ, पत्रकारिता और नैतिक अवमूल्यन 67
('देख जात के ठाठ' के विशेष संदर्भ में)
—डॉ. बोस्की मैंगी
11. ऐतिहासिक नाटक: पृथ्वीराज चौहान 77
—डॉ. परमेश्वरी शर्मा, कु. सपना देवी
12. कैलाशचन्द्र शर्मा के नाटकों का विश्लेषणात्मक अध्ययन 85
—रीना कुमारी
13. डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के एकांकी 'अफ़सर का कुत्ता' एवं
'पेड़ हमारे मित्र' का चिन्तन-मूल्यांकन 93
—डॉ. सपना शर्मा
14. डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के नाटकों में समकालीन यथार्थ 103
—डॉ. जोगेश
15. कैलाशचन्द्रशर्मा के नाट्य साहित्य में व्यंग्य 119
—डॉ. स्नेहलता भारद्वाज
16. कैलाशचन्द्र शर्मा के नाटकों में युग एवं कालबोध 126
—डॉ. अनीता शर्मा
17. 'कंस' 132
—डॉ. इला प्रसाद
18. उद्‌गार 134
—जयन्त सावरकर
19. 'विरह का इन्द्रधनुष' में चित्रित जीवन-संघर्ष 136
—डॉ. अंजू थापा
20. हिंदी उपन्यास में सामाजिक जीवन का तानाबाना
और विरह का इन्द्रधनुष 144
—डॉ. राजेन्द्र कुमार सेन
21. 'विरह का इन्द्रधनुष' में प्रेम और सौन्दर्य 152
—डॉ. संजीव कुमार .....
22. कैलाशचन्द्र शर्मा कृत उपन्यास 'विरह का इन्द्रधनुष' में

वर्णित समस्याएं 158
—पिंकी शर्मा
23. अभिव्यक्ति एवं विरह का इन्द्रधनुष का कथा शिल्प 168
—सौ. पद्मश्री .....
24. अनाभिव्यक्त की 'अभिव्यक्ति' 173
—डॉ. शैली जग्गी
25. मौन सम्बन्धों की अभिव्यक्ति का उपन्यास 181
—डॉ. जय कौशल
26. डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा द्वारा लिखित उपन्यास 'अभिव्यक्ति'
की मूल संवेदना 186
—डॉ. सुरजीत कौर .....
27. अभिव्यक्ति: समीक्षा के आईने में 191
—डॉ. विजय बहादुर सिंह
28. मौन की मुखर अभिव्यक्ति के संवाहक : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा 195
—डॉ. किरण छाबडा
29. 'अभिव्यक्ति' ने साहित्य पढ़ने की रुचि लौटा दी 199
—रेणुका इसरानी
30. 'अबला की मंज़िल' : स्थापत्य और शिल्प 200
—डॉ. जितेन्द्र वत्स
31. *कहानीकार डॉ.* कैलाशचन्द्र शर्मा 213
—डॉ. चंचलबाला
32. 'अबला की मंज़िल' : एक अध्ययन 222
—डॉ. अनीता शर्मा
33. अबला की मंज़िल : मानवीय सम्बन्धों का
प्रतिमान रचती कहानियां 237
—डॉ. पुनीत कुमार राय
34. 'अबला की मंज़िल' : एक नज़र 244
—डॉ. अनीता नरेन्द्र
35. *डॉ.* कैलाशचन्द्र शर्मा कृत 'अबला की मंज़िल' कहानी संग्रह

का आलोचनात्मक अध्ययन 257
— रोहित कुमार.....
36. डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा और 'अबला की मंज़िल' 266
— डॉ. देवेन्द्र कुमार
37. *डॉ.* कैलाशचन्द्र शर्मा के कहानी संग्रह 'अबला की मंज़िल' में चित्रित युगीन परिदृश्य..... 278
— डॉ. अशोक पंकज
38. 'ओवरकोट' कहानी संग्रह में मूल्य 286
— डॉ. कमलेश कुमारी
39. कहानी संग्रह 'ओवरकोट': एक समीक्षा..... 292
— विजय कदम
40. कैलाशचन्द्र शर्मा की कहानियों का मूल स्वर 297
('ओवरकोट' के संदर्भ में)
— सविता
41. प्रकृति के अप्रतिम कवि : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा 303
— डॉ. कुलविन्दर कौर
42. शर्मा जी की कविता : अनुभूति की आत्मकथात्मकता 310
— डॉ. सत्यनारायण पाण्डेय
43. *'तरुणाई' में नारी यौवन आकर्षण और अन्य भाव* 315
— डॉ. अशोक कुमार
44. *डॉ.* कैलाशचन्द्र शर्मा की कविताओं में सहजानुभूति..... 319
— डॉ. विनोद कुमार
45. कैलाशचन्द्र शर्मा कृत खण्डकाव्य 'माँ संतोषी' का अनुशीलन 323
— अनिल कुमार
46. गीतकार कैलाशचन्द्र शर्मा..... 330
— डॉ. सुनील कुमार
47. *डॉ.* कैलाशचन्द्र शर्मा के गीतों का नृत्य-नाट्य पक्ष..... 343
— आशा जोगलेकर

48. डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के नगाड़े की थाप: 'बोल नगाड़ा बोल' 348
— ओमप्रकाश शर्मा 'निर्लेप'.....
49. धर्म और कर्म का योग : महन्त श्री गणेशदास जी 359
— डॉ. अनुपाल भारद्वाज
50. मानवता के सन्देशवाहक : गणेशदास जी 366
— डॉ. विपिन गुप्त
51. कर्मयोगी कर्म का दर्पण 370
— डॉ. शैलेन्द्र स्वामी 'शैल '
52. कर्मयोगी महन्त गणेशदास : एक अवलोकन..... 373
— डॉ. विनय कुमार
53. निर्धनता में सफलता : (बम्बई की डायरी से) 376
— डॉ. मिथिलेश कुमार सिंह
परिशिष्ट 1 साक्षात्कार..... 390
परिशिष्ट 2 डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व ... 401
परिशिष्ट 3 छायाचित्र 416

1

त्रिवेणी कला संगम और कैलाशचन्द्र शर्मा

डॉ. रामवीर सिंह शर्मा

जिस प्रकार तीन स्रोतों का संगम इलाहाबाद भारतवर्ष के प्रसिद्ध तीर्थों में अपना स्थान बनाये हुए है उसी प्रकार साहित्य, संगीत और नृत्य कलाओं को प्रवाहित करने वाली संस्था 'त्रिवेणी कला संगम' अपना महत्व स्थापित अवश्य करती है। इसके संस्थापक डॉ. कैलाश जी प्रयत्न में जीवन की प्रारम्भिक अवस्था से ही लग गये होंगे, ऐसा अनुमान करता हूँ।

आपसे प्रथम परिचय जोधपुर में मेरे घर पर हुआ। साथ में प्रोफेसर रमेश कुमार शर्मा, आगरा का संदर्भ था। प्रोफेसर शर्मा का ज़िक्र मेरे लिए जीवन की स्पष्टता, निर्भीकता, कर्मठता, आत्मीयता, दयालुता आदि के पर्याय स्वरूप है। उन्होंने ही मुझे मानव-जीवन की महानता से परिचित कराया। ख़ैर, कैलाश जी मेरे लिए अतिथि देवो भवः थे।

डॉ. कैलाश जी का एक पत्र खुद के बारे में कई जानकारियों से सम्पन्न , साथ में कुछ विशेष सामग्री के साथ था। खोलकर एक नज़र डाली, कुछ दिनों बाद दूसरी नज़र विस्तार से, कल तीसरी बार खोजी नज़र से परखने का मौका मिला, जिसमें 'बम्बई की डायरी' (1980) मेरी आँखों में टिक गई। यदि देखा जाय तो मेरे लिए डॉ. कैलाश जी का इतना परिचय ही पर्याप्त है जिसमें इनके हृदय की झाँकी अनुभव की जा सकती है। जहाँ हृदय होता है वहाँ सभी कुछ की सम्भावनाएं बनती हैं, जहाँ हृदय नहीं होता वहाँ जीवन का अभाव हो तो इसमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए। हृदय वह पाठशाला है

*एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)

जिसमें विभिन्न कलाकार शिशु, दो एकम् दो, दो दूनी चार करते मिल जायेंगे। उनके नाम साहित्य, संगीत नृत्य, चित्र, स्थापत्य आदि अनेक हो सकते हैं। इन शिशुओं के स्वरूप किस जीवन की मोहकता के प्रसून नहीं हो सकते। ये ही तो किसी देश के समाज के सच्चे उन्नायक होते हैं, बाकी तो पैसा कमाऊ के कोल्हू बैल। जब किसी के हृदय की पाठशाला से ये शिशुताएं झाँकने लग जाती हैं तब उनका हृदय धन्य-धन्य होना प्रारम्भ हो जाता है। इस पाठशाला का एक शिशु परिवार, समाज तथा देश के बराबर होता है। सही मायने में देश का निर्माता होता है। शिशु सौन्दर्य सम्पन्न कलाकार किसी भी एक कला को जन्म देकर उसकी वास्तविक झलक प्रस्तुत कर पाता है, वह इस देश की संस्कृति का सच्चा सिपाही होता है। यों तो संस्कृति सम्पन्नता की फौज इस देश में मौजूद है लेकिन वह इस देश के ही या विदेश के भी अनेक उन लोगों से इसे नहीं बचा पा रही है, जो इस देश को जिन्दा, विभिन्न प्रकार से खाये जा रहे हैं। जबकि एक लेखक अपने लेखन में ऐसे भी लोगों को चिन्हित-इंगित करता है, अपनी अभिव्यंजना कला से। यह अलग बात है कि अधिकांश पाठक नहीं समझ पाते हैं कि यह उन्हीं की दाढ़ी का तिनका है न कि किसी अन्य विशेष की। इस दृष्टि दोष का उपचार बाह्य चश्मा नहीं हो सकता क्योंकि अधिकांश लोग बाह्य दृष्टि दोष का चश्मा अपने-अपने नम्बरों का धारण किए हुए हैं। साहित्य ऐसे लोगों में से सहृदय के चरणों को अन्तः दृष्टि भेदक बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वे अन्तः अन्धकार में झाँकने में सम्पन्न दिव्यदृष्टि धनी हो सकते हैं यदि चाहें तो। यहां तो अधिकतर खुद को भी नहीं पहचानने वाले अन्धों की भीड़ तैयार होती जा रही है। साहित्यिक दृष्टि से इन्हें क्या लेना देना। अपने देश की पारम्परिक सांस्कृतिक सोपानों की ऊँचाई उनके लिए नहीं के बराबर है, अपने विचार भवनों के आगे। साहित्य समझने लिखने के लिए चाहिए स्थिर संवेदनशीलता । हमारे देश में संवेदनशीलता की कमी नहीं है चाहे वह क्षणिक ही क्यों न हो। आवश्यकता तो उसके अधिक से अधिक समय तक सोच में बने रहने की है। आज के समाज में इसके अभाव को अनुभव किया जा सकता है। तब साहित्य क्या करे क्योंकि उसे तो उसकी ही ज़मीन (संवेदनशीलता) नहीं मिलती है तब कहां पर जीवन सापेक्ष वैचारिक फैसला पैदा हो और कैसे सम्बन्धित देश का जीवन, जीवन्त और ऊर्जावान बने। क्या यह स्थिति, व्यक्ति को साहित्य

से दूर नहीं करती है, या साहित्य व्यक्ति से दूर नहीं रहता है। व्यक्ति तो सभी स्तरों पर भागम-भाग में लगा है। पता नहीं कहाँ जा रहा है, क्यों जा रहा है। हाँ, पैसे ने व्यक्ति को ऐसा घोड़ा बना दिया है कि वह हर समय दौड़ता रहता है। इस दौड़ में उसे कुछ भी अपने आस-पास (परिवार भी) नहीं दिखाई देता तो साहित्य किस खेत का मूला है। डॉ. कैलाश जी का साहित्य ऐसी परिस्थिति में क्या सोच रहा है, गौर करने की बात है।

मनुष्य के पास अपने को अभिव्यक्त करने का अन्य माध्यम नृत्य है। यह साहित्य की तुलना में सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने का सरल माध्यम हो सकता है। इसमें दर्शक की दृष्टि विषय वस्तु को ग्रहण कर सहृदय को आनन्द से सीधे जोड़ देती है। इसमें अर्थानुभूति शब्दों की तुलना में सहज-सरल तरीके से दर्शक को होने की अधिक सम्भावनाएं बन सकती हैं। यह सब प्रस्तुतकर्ता पर निर्भर करता है। वह अपने को कितना तराश पाता है यही उसकी सफलता का मापदण्ड़ भी होता है क्योंकि इसमें विषय वस्तु एकदम सामने रहती है। अभिनय अपने आप में अनुकरण की पूर्ण अभिव्यक्ति है जिसमें शारीरिक भंगिमाओं के साथ-साथ मानसिक नुकीलेपन की नितांत आवश्यकता रहती है। अभिनय के समय अभिनेता का अपना सब कुछ एक तरफ हो जाता है, पात्र एकदम सामने आ जाता है। पात्र को पूर्ण अभिव्यक्त कर पाना ही अभिनय की कसौटी है। आधुनिक परिवेश में इस क्षेत्र में सिनेमा की भी महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है लेकिन उसका नितांत व्यवसायीकरण होना एक अलग बात है। डॉ. कैलाश जी नृत्यकला का प्रशिक्षण इस दौर में भी नि:शुल्क दे रहे हैं मनन करने का विषय है। इस माध्यम से कितने लोगों को जीवन जीने का ढंग बता पाते हैं, यही उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि इस समाज के लिए होगी।

गीत-संगीत जीवन की एक लय है। इस लय की लहरें अपनी ताल आदि सैद्धान्तिक वैज्ञानिकता के साथ कानों में बहकर हृदय में पहुँचकर मनुष्य को आनन्द से सराबोर किए बिना नहीं रहती। श्रोता किसी भी स्तर का क्यों न हो, उसके हृदय में जीवन राग पैदा हो ही जाता है। यह संगीत ही जीवन को देन कही जा सकती है। जीवन को आनन्दित करने का यह माध्यम साहित्य-नृत्य से भी अधिक प्रभावशाली कहा जा सकता है, जिसमें लगभग सभी श्रोताओं की भागीदारी होती है कोई भी अछूता नहीं रहता है। इस क्षेत्र

में समझ में आना नहीं आना उतना महत्व नहीं रखता जितना आनन्दित होना रखता है। यह कला विभिन्न मतों, धर्मों, उम्रों, व्यवसायों के सभी श्रोताओं को अपने में समेटने की सामर्थ्य रखती है। कम अधिक स्तर अलग बात है। छोटे-छोटे बच्चों को थिरकते हुए देखा जाना बहुत कुछ स्पष्ट कर देता है जो संगीत के आनन्द को शरीर के माध्यम से थिरकने में व्यक्त करने से खुद ब खुद जुड़ जाते हैं। अभिप्राय यह कि संगीत में नृत्य और साहित्य दोनों समाहित हो जाते हैं। यहाँ आकर त्रिवेणी शब्द अनायास उभर आता है।

डॉ. कैलाश जी की संस्था त्रिवेणी कला संगम में उनके परिवार की भागीदारी उसी प्रकार से है जिस प्रकार से जीवन में। वे निश्चित रूप से धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने अपने जीवन की प्रारम्भिक अवस्था से आज तक जीवन सौन्दर्य की खोज में अपने को समाये रखा है तब उनकी गणना सामान्य सामाजिकों में न होकर विशेष सामाजिकों में होने की अपेक्षा रखती है। मैं परमपिता परमेश्वर से याचना करता हूँ कि वे इस क्षेत्र में निरन्तर आगे बढ़ते जायं और समाज उनके सत् विचारों और कार्यों से प्रेरणा ग्रहण करता जाय ऐसी विशेष शक्ति का उनमें संचार होता जाय।

❑❑❑

2

एक बहुआयामी रचना प्रस्थान का नाम है यह

डॉ. जंगबहादुर पाण्डेय 'तारेश'

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का रचना-संसार बहुतों के लिए अपरिचित जैसा है। उनकी कलम मशहूर न होकर भी मौलिक है। यही कारण है कि उनके सृजन और चिन्तन में विविधता के साथ-साथ युग की नब्ज़ टटोलने का कौशल है।

उनकी रचना-यात्रा कई विधाओं से गुज़रती हुई एक समर्थ और जीवन्त रचनाकर्मी के बारे में आश्वस्त करती है। उपन्यास, कहानी, कविता, समीक्षा, शोध, डायरी, साक्षात्कार जैसी कई विधाओं का स्पर्श करती हुई डॉ. शर्मा की प्रतिभा ने नाटकों के क्षेत्र में सर्वाधिक विशिष्ट पहचान बनाई है। उन्होंने सृजन से लेकर मंचन तक, संयोजन से लेकर निर्देशन तक अपनी क्षमता का परिचय नाटक विधा के क्षेत्र में दिया है।

सृजन के संदर्भ में यह सच है कि परिवेश लेखन को प्रभावित करता है। इसलिए परिवेश के यथार्थ और उनके अनुभवों की अभिव्यक्ति लेखक अपनी दृष्टि से अपनी विधा में करता है। डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा ने अपने सृजन की हर विधा में परिवेश के अनुभवों की ही ईमानदार अभिव्यक्ति की है। जन्मजात संस्कार की तरह उनकी प्रतिभा के बीज अँकुरित हुए हैं और समय के साथ उनकी उपलब्धियों का पौधा भी दिखने लगा है। इससे संकेत मिलता है कि प्रतिभा को प्रेरित होने भर की देर होती है, लेखक अपनी क्षमता का उपयोग करने में जुट जाता है। डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का सृजन भी इस प्रक्रिया का जीवन्त उदाहरण है, क्योंकि चुनौती और स्वाभिमान के साथ उन्होंने लेखन

*स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, राँची विश्वविद्यालय.
निवास : तपोवन, बह्मर्षिनगर, पिस्का मोड़ रातू रोड, राँची-834005

को अपनाया है। इसमें संदेह नहीं कि प्रगति का रास्ता आसान नहीं होता और सुनिश्चित भी नहीं होता। इसके बावजूद डॉ. शर्मा ने साहित्य के राजपथ पर अपनी यात्रा निरन्तर जारी रखी है। तभी उनकी रचनाएं उनकी चुनौती को सफल करती हुई अपनी पहचान बनाती हुई नजर आती हैं।

प्रसिद्ध साहित्यशिल्पी नरेश मेहता के कथा साहित्य के सन्दर्भ में डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा की टिप्पणी है-

'उन्होंने काल्पनिक जगत् की कथा को प्रस्तुत न करके अपनी रचनाओं में वास्तविक विश्व के मानव-जीवन को यथार्थ रूप में चित्रित किया है। वे व्यक्ति, समाज, संस्कृति, राजनीति आदि किसी को नहीं भूले हैं और सभी को उन्होंने अपने कथानकों में यथेष्ठ स्थान प्रदान किया है।'

यह टिप्पणी स्वयं डॉ. शर्मा की रचनाओं पर भी सटीक लगती है। डॉ. शर्मा के दोनों उपन्यासों, दोनों कहानी संकलनों और सभी नाटकों में जीवन सत्य अपनी सम्पूर्णता में उपस्थित है। इन सभी रचनाओं का आधारफलक वह समकालीन जीवन ही है, जिसमें हमारे समय की वास्तविकताएं और समस्याएं एकत्र हैं। 'मन चंगा तो कठौती में गंगा ', 'अफ़सर का कुत्ता' कार्यवाहक हलवाई, 'आधुनिक यमलोक', 'देख जात के ठाठ' तथा 'नामकरण' जैसी नाट्यकृतियों में तो डॉ. शर्मा ने यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए व्यंग्य का उपयोग भी किया है। युगसत्य उनके रचना-संसार का आधारफलक है, जिस पर उनके चिन्तन और लेखन के सारे अवयव अवलम्बित हैं। अपने समय की चिन्ताओं, पीड़ाओं और चुनौतियों को डॉ. शर्मा ने भलीभाँति अनुभव करने के बाद ही अपनी रचनाओं में उतारा है। तभी उनकी कृतियां इतनी विश्वसनीय बन सकी हैं। उनके नाटकों के प्रशंसित मंचनों से इस सत्य की पुष्टि बार-बार होती रही है।

जीवन के व्यापक अनुभव और कठिन परिश्रम से डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के लेखक-व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है। वस्तुत: खुली आँखों से अपने आसपास की स्थितियों का सर्वेक्षण करने वाला और कठिन परिश्रम करने वाला ही सफल लेखक बनता है। डॉ. शर्मा ने इन दोनों स्तरों पर अपनी सजगता और सक्रियता से प्रभावित किया है तभी उनकी रचना-धारा एक नियमित प्रवाह की तरह चल रही है।

डॉ. शर्मा का भाषाचिन्तन उनके साहित्यिक विस्तार की तरह

बहुआयामी है। एक ओर वे हिन्दी के विश्वव्यापी स्वरूप के प्रति आश्वस्त नजर आते हैं, तो दूसरी ओर अपनी मातृभाषा/स्थानीय भाषा ढूंढाड़ी के प्रति श्रद्धाभाव से समर्पित दीखते हैं। राष्ट्र और विश्व के स्तर पर वे हिन्दी की शक्ति और सत्ता के प्रति आश्वस्त हैं । उनकी स्पष्ट धारणा है कि – 'यदि अंग्रेज़ और मुसलमान शासकों के शासनकाल में हमारी संस्कृति को छिन्न-भिन्न एवं नष्ट कर गुलामों की भाषा थोपने के नियोजित षड्यंत्र न किये गए होते तो हिन्दी भाषा विश्व में सिरमौर होती।'

अतीत से वर्तमान हिन्दी के विकास की दिशाओं से सुपरिचित डॉ. शर्मा ने हिन्दी भाषा को विश्व की गरिमामयी भाषा माना है। लेकिन अपने देश की भाषा ढूंढाड़ी के प्रति उनका प्रेम और आग्रह बहुत ही प्रभावित करता है। 'न हर को रह्यो न घर को' शीर्षक अपने विचारोत्तेजक निबन्ध में डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा ने ग्रियर्सन के ज़माने से चली आ रही अवधारणा का नूतन विश्लेषण किया है। उनका यह स्पष्ट मत है कि 'राजस्थानी' भाषा का तात्पर्य सिर्फ 'मारवाड़ी' उपभाषा नहीं है। राजस्थान में ढूंढाड़ी, शेखावाटी, मेवाती, बागड़ी आदि कई उपभाषाओं का प्रचलन है। इसी कारण डॉ. शर्मा प्रबलतापूर्वक सिर्फ मारवाड़ी को राजस्थानी के रूप में प्रतिष्ठित करने का विरोध करते हैं। उनका यह विरोध तार्किक है और भाषिक दृष्टि से मौलिक भी है।

आपके सृजन और चिन्तन के अभिनय विन्यास द्वारा डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा ने लगातार मौलिकता और प्रभावात्मकता का परिचय दिया है इसीलिए वर्तमान और भविष्य में उनके रचना-सँसार से होकर गुज़रना सजग पाठकों के लिए अनिवार्य होता जाएगा।

❑❑❑

3

नृत्य के क्षेत्र में डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का योगदान

राजेन्द्र गंगानी

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा एक ऐसा व्यक्तित्व है जिन्होंने त्रिवेणी कला संगम, जयपुर के माध्यम से साहित्य-संगीत एवं नृत्य का प्रचार-प्रसार कर एक ऐसा पुण्य कार्य किया है, जिसके लिए आने वाली पीढ़ियां तक उनकी ऋणी रहेंगी।

जयपुर जिले के ग्राम मैड़ में जन्मे डॉ. शर्मा को साहित्य एवं संगीत के प्रारम्भिक संस्कार अपने पिता स्व. श्री गणेशदास जी से मिले जो स्वयं भजन आदि गाते भी थे तथा श्री सियावरजी के मन्दिर के महन्त के उत्तरदायित्व का निर्वहन करते हुए उन्होंने विराटनगर अँचल के गाँवों में संगीत के प्रचार-प्रसार का ऐसा कार्य किया जिससे उनके दो पुत्र – बाबूलाल एवं कैलाश संस्कारित हुए। कैलाश अपने बाल्यकाल से ही कुशाग्र बुद्धि, साहित्यानुरागी एवं रामलीला, नौटंकी एवं लोकनृत्यों के शौकीन रहे हैं। उनके पिताश्री श्री सियावरजी का मन्दिर,बाणगंगा, ग्राम मैड़ नामक स्थान पर प्रतिवर्ष एक मेले का आयोजन कराते थे जिसमें उनके शिष्य एवं भक्तगण दूर-दूर के गाँवों से आकर भगवान के दरबार में आयोजित सत्संगों में भाग लिया करते थे। इस अवसर पर बिसायतियों द्वारा महिलाओं एवं बच्चों की जरुरत की छोटी-मोटी वस्तुओं , सौंदर्य-प्रसाधनों आदि से सम्बन्धित वस्तुओं की दुकानें भी लगायी जाती थीं, जिनसे महिलाएं टीकी, बिन्दी, चुटीला, पिनें, पहनने के छोटे-मोटे कपड़े आदि खरीदती तथा बच्चे लोग पपीहे (मुँह से बजाने की सीटी), बाँसुरी आदि खरीदकर मेले का आनन्द उठाया करते थे।

नौटंकी के बाद या रामलीला समाप्ति के पश्चात् नाटक मंडलियों द्वारा

*वरिष्ठ नृत्य गुरु, दिल्ली कत्थक केन्द्र, दिल्ली

लोकनाटकों के प्रदर्शन भी किये जाते जिनमें, लोकनृत्यों की प्रधानता होती। उन दिनों नाच-गान के लिए कामां (भरतपुर) निवासी मनोहर-गिर्राज की मण्डली प्रसिद्ध मानी जाती थी और हर ब्याह शादी में इस मण्डली को बुलाया जाना प्रतिष्ठा का सूचक माना जाता था। महाभारतकालीन स्थान विराटनगर भी डॉ. शर्मा के जन्म स्थान ग्राम मैड़ से लगभग 8-9 किमी. की दूरी पर स्थित हैं जहाँ पर अर्जुन ने वृहन्नला के वेश में राजा विराट की पुत्री उत्तरा को संगीत एवं नृत्य की शिक्षा प्रदान की थी। उन दिनों के सांस्कृतिक परिवेश, विभिन्न अवसरों पर लोकनृत्यों एवं लोकनाटकों की प्रस्तुतियों तथा महाभारतकालीन अँचल में जन्म होने का यह संयुक्त प्रभाव ही था जिसके कारण डॉ. शर्मा का बाल्यकाल से ही संगीत, नृत्य, एवं नाट्य विधा के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ।

मेरा स्वयं का बचपन वनस्थली विद्यापीठ में बीता और मैड़-विराटनगर के आस-पास से अनेक बार गुजरने का अवसर मिला परन्तु डॉ. शर्मा जैसा व्यक्तित्व इस गाँव की धरोहर है, इसके बारे में जानकारी नहीं थी।

वैसे तो वर्ष 1995 से ही मैं त्रिवेणी कला संगम, जयपुर की संगीत नाटक एवं नृत्य सम्बन्धी गतिविधियों की पृष्ठभूमि पर कैलाश जी के नाम से परिचित था और जयपुर की नृत्यगुरु श्रीमती शशी साँखला, स्वर्गीय मोहन लालजी गुरुजी के शागिर्द श्री माँगीलाल जी पँवार, श्री गिरधारी महाराज आदि से डॉ. शर्मा की नृत्य सम्बन्धी अभिरूचि एवं इस क्षेत्र में किये गये उनके कार्यों के बारे में सुन रखा था परन्तु उनसे व्यक्तिश: परिचय हुआ वर्ष 2002 में जोधपुर में।

मैं संगीत नाटक अकादमी जोधपुर की बैठक में भाग लेने दिल्ली से जोधपुर आया था। जोधपुर में मेरे गुरु भाई रहते थे श्री हरीश पुरी जी 'नागा'। जब मैं उनसे मिलने उनके घर गया तो उन्होंने मुझे बताया कि डॉ. कैलाश शर्मा इन दिनों अपनी बैंक की नौकरी में पदोन्नत होकर जोधपुर आये हैं और वे चौपासनी हाउसिंग बोर्ड में अपने निवास स्थान पर त्रिवेणी कला संगम की ओर से संगीत एवं नृत्य की कक्षाएं चला रहे हैं। उन्होंने यह भी बताया कि वे यहाँ पर त्रिवेणी कला संगम, जयपुर की एक अस्थाई शाखा के शिक्षक के रूप में संगीत नाटक एवं नृत्य का नि:शुल्क प्रशिक्षण प्रदान कर रहे हैं और इस कार्य में स्वयं (नागा जी), गायक श्री शकूर खां साहब एवं एक रिटायर्ड पुलिस अधीक्षक श्री मेघराज जी रामावत उनका मनोबल बढाकर सहयोग प्रदान

कर रहे हैं।

नागा जी ने यह भी बताया कि शर्मा जी, गुरूजी (स्व. श्री कुन्दन लाल जी गंगानी) की कुछ बंदिशें सीखने के लिए मेरे पास भी आते हैं और कुछ समय पूर्व ही उन्होंने मंजू पुरी के साथ सरदार पटेल स्कूल के ऑडीटोरियम में कत्थक नृत्य की बहुत ही प्रभावशाली प्रस्तुति दी है।

नागा जी से यह सब सुनकर मुझे लगा कि हमारा कोई साथी बैंक जैसी नौकरी में रहकर भी कत्थक नृत्य सीख रहा है, सिखा रहा है और प्रस्तुतियां भी दे रहा है यह निश्चय ही इस क्षेत्र से जुड़े लोगों के लिए प्रेरणादायक है और मैंने पुरी जी से कहा कि मैं कैलाश जी से मिलना चाहता हूँ। उन दिनों शर्मा जी ने त्रिवेणी कला संगम, जयपुर की ओर से यूथ हॉस्टल, जोधपुर में एक संगीत, नृत्य एवं नाट्य प्रशिक्षण शिविर लगाया था। पुरी जी ने बताया कि शर्मा जी अपनी बैंक की ड्यूटी पूरी करके शाम 6 से 8 बजे तक शिविर में प्रशिक्षण देते हैं और इसके बाद प्रतिदिन लगभग 9 बजे मेरे पास कत्थक नृत्य की प्रैक्टिस करने आते हैं।

मैं प्रत्यक्ष में शर्मा जी की गतिविधियों को देखने का लोभ संवरण न कर पाया और मेरी शिष्या अनुराग वर्मा, नागा जी, रेशमा पुरी आदि के साथ शर्मा जी से मिलने लगभग शाम 7 बजे यूथ हॉस्टल पहुँचा। हॉस्टल के कम्पाउण्ड में घुसते ही चक्करदार तोडा बोलने एवं घुँघरुओं की लयबद्ध ध्वनि ने रोमांचित कर दिया । हम तोडे की पढंत पूरी होने तक बाहर ही रहे परन्तु शायद शर्मा जी ने हमें देख लिया था अत: सम आने पर उठे और हमें अन्दर ले जाकर आदर से बैठाया।

उन्होंने हमें शिविर की गतिविधियों के बारे में जानकारी दी तथा अपनी उन छात्राओं के कत्थक नृत्य की प्रस्तुति भी दिखलायी जो उन्होंने पिछले लगभग दो माह में उन्हें सिखाया था। कत्थक नृत्य की कठिन आमद-परन एवं छोटे-छोटे कवित्त उन्होंने किस प्रकार आसान तरीके से अपनी शिष्याओं को सिखाये, इसे देखकर मैं स्वयं आश्चर्यचकित रह गया।

शर्मा जी ने अपने शिक्षण में अपनी ही कुछ श्रृंगार रस की कविताओं को भी सम्मिलित किया था। उन्होंने हरीश भाई के निर्देशन में अपनी 'तरुणाई' काव्य संग्रह की कविता 'बन्धन' पर पूर्व में दी गई प्रस्तुति को मंजूपुरी के साथ में हमें प्रस्तुत करके दिखाया। इस प्रस्तुति में पढंत कर रहे थे हरीश

भाई, स्वर दे रही थी रेशमा, और तबला संगति कर रहे थे भूपेन्द्र पुरी। उनकी प्रस्तुति वाकई प्रशंसनीय थी। लग ही नहीं रहा था कि जो व्यक्ति 20 वर्ष की एक लड़की के साथ कत्थक नृत्य की इतनी सुन्दर प्रस्तुति दे रहा है वह 45 वर्षीय एक बैंक मैनेजर है। उनकी प्रस्तुति में भाव-भगिमाएं, ताल - लय एवं हाव-भाव इन सभी का बेजोड़ संगम था जिसमें अभिनय भी स्पष्ट रूप से झलक रहा था। इसे देखकर हरीश भाई द्वारा कही गई यह बात स्वयं सिद्ध हो गई थी कि कैलाश जी एक कुशल रंगकर्मी भी हैं।

कैलाश जी को मैंने उनके कार्यों एवं उनकी नृत्य प्रस्तुति के लिए बधाई दी जिसके प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा कि यदि वाकई आपको मेरी प्रस्तुति अच्छी लगी तो इसे और अच्छी बनाने में सहयोग प्रदान करें। हरीश भाई ने इस बात पर उनकी ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा तो उन्होंने कहा था- 'हाँ पुरी साहब, मेरी प्रस्तुति तभी अच्छी बन सकेगी जब राजेन्द्र भाई मुझे कुछ तोडे, कुछ परन और कुछ बंदिशें अपने हिसाब से सिखायें।' उनकी इस बात पर मैं मुस्कुराए बिना न रह सका और कैलाश जी के हठ पर मुझे अपने जोधपुर प्रवास के दौरान कत्थक नृत्य के कुछ बारीक पक्ष उन्हें सिखाकर बड़े सुख की अनुभूति हुई।

उसके बाद तो शर्मा जी मेरे अभिन्न मित्र हो गये। होली, दीवाली, नववर्ष आदि के अवसर पर उनसे दूरभाष पर वार्ता करके मन को आनन्द मिलता। मुझे इस बात से प्रसन्नता थी कि शर्मा जी अपनी बैंक की नौकरी में रहते हुए खैरागढ़ विश्वविद्यालय से सम्बद्ध संस्था 'त्रिवेणी संगीत महाविद्यालय' के लिये कत्थक नृत्य का शिक्षण कार्य भी कर रहे हैं और हिन्दी-मराठी नाटकों पर डी. लिट् उपाधि हेतु शोध कार्य भी कर रहे हैं। शर्मा जी की बेटी काजल एवं अभिषेक ने लगभग 3 वर्ष की आयु से ही कत्थक एवं नाटकों का विधिवत प्रशिक्षण प्राप्त किया और भाभी जी (श्रीमती रेनूरानी शर्मा) ने भी जयपुर के वरिष्ठ संगीतज्ञ श्री मांगीलाल जी पँवार से गायन सीखा। मुझे इस बात से बड़ी खुशी होती कि पूरा का पूरा परिवार ही साहित्य, संगीत, नाटक एवं नृत्य को समर्पित है।

एक वाकया याद हो आया। मैं दिल्ली में दुर्घटनाग्रस्त हो गया और कई दिन तक बिस्तर पर ही रहा। जब शर्मा जी को पता चला तो वे मेरा हाल-चाल पूछने जयपुर से दिल्ली आये, मुझसे मिले और कहा कि राजेन्द्र भाई आप जल्दी ठीक हो जाओगे क्योंकि मेरी, मेरे परिवार की और नृत्य जगत् से जुड़े बहुत लोगों की शुभकामनाएं एवं दुआएं आपके साथ हैं।

मैं जल्दी ही ठीक हो भी गया परन्तु इस बीच शर्मा जी का फोन निरन्तर

आता रहा। फोन पर वे अपनी गतिविधियों की जानकारी देते और मेरे कार्यों की जानकारी लेते जिससे मुझे अच्छा लगता। वर्ष 2004 में उन्होंने मुझे बताया था कि उन्होंने जयपुर की शुद्ध बोली ढूंढाड़ी में 3-4 गीतों की रचना की है और उन पर अपनी शिष्याओं से नृत्य भी कराया है। मैंने उन्हें शुभकामना देते हुए कहा था कि भगवान करे आप इस क्षेत्र में आगे बढ़ें।

जब वे मुझसे मेरे दुर्घटनाग्रस्त होने के समय दिल्ली में मिले तो मेरा मन बहलाने के लिए, वातावरण को हल्का-फुल्का करने के लिए मुझे अपना लिखा ढूंढ़ाड़ी गीत ' टर्र ' भी सुनाया जिसे सुनकर मैंने कहा था कि कैलाश भाई आपका यह गीत पूरी तरह से ग्राम्य जीवन का नक्शा प्रस्तुत करता है और इसमें नृत्य के भरपूर तत्व हैं, अत: आप ऐसे गीतों पर कार्य करके वीडियो एलबम की दिशा में अपना रुख कर सकते हैं। मैंने यह बात साशय शर्मा जी को कहीं थी क्योंकि मैं जानता था कि कैलाश जी स्वयं अच्छे कम्पोजर एवं नर्तक भी है अत: वे ऐसा कर सकते हैं।

जनवरी 2007 में शर्मा जी से हुई दूरभाष वार्ता में उन्होंने बताया कि 25-26 दिसम्बर 2006 को उन्होंने रवीन्द्र मंच, जयपुर पर 'लडी मैड़ की' नाटक प्रस्तुत किया जिसमें उन्हें ढूंढाड़ी गीत, नृत्यों आदि के माध्यम से राजस्थान के ग्राम्य जीवन, बोली, भाषा, खान-पान, पहनावा, रीति-रिवाज आदि की मनोरम झाँकी प्रस्तुत करने में आशातीत सफलता मिली है। उन्होंने यह भी बताया कि उनके द्वारा अब तक कुल 64 ढूंढाड़ी गीत लिखे जा चुके हैं जिनका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद राजस्थान ब्रजभाषा अकादमी के पूर्व अध्यक्ष श्री हीरालाल जी शर्मा 'सरोज' कर रहे हैं।

मैं बता नहीं सकता मुझे यह सब जानकर कितनी प्रसन्नता हुई कि मेरे एक मित्र जो सतत् रुप से संलग्न हैं अपने सृजन पथ पर बिना किसी लालच के, बिना किसी प्रतिफल की कामना के।

जब उन्होंने बताया कि त्रिवेणी कला संगम की ओर से प्रथम आडियो कैसेट की रिकॉर्डिंग 15 जनवरी 2007 को जयपुर में की जायेगी जिसमें उन्हीं के कम्पोजीशन में ऐसी प्रतिभाओं को गाने का अवसर प्रदान किया गया है जो प्रथम बार इस क्षेत्र में अपनी कला का प्रदर्शन कर रही हैं, तो और भी अधिक खुशी हुई और मन की गहराईयों से शर्मा जी के लिए स्वत: ही शुभकामनाएं निकल पड़ी।

'मेरे मित्र आप इसी तरह जीवन में आगे बढ़ते रहें और संगीत, नृत्य एवं नाटक के क्षेत्र में नवीन प्रतिभाओं को अवसर प्रदान करते रहें।'

❑❑❑

4

'लड़ी मैड़ की' और 'मोती मैड़ के' नाटकों की विषय वस्तु का विवेचन

डॉ. डेविड तेजा

डॉ कैलाश चन्द्र शर्मा एक प्रतिभाशाली रचनाकार है उनकी पद्यात्मक एवं गद्यात्मक दोनों प्रकार की रचनाओं में राजस्थानी जीवन के सभी रंगों एवं पक्षों के दर्शन होते हैं । उन्होनें डेढ़ दर्जन नाट्य कृत्तियों की रचना की है । 'लड़ी मैड़ की' नाटक भारतीय संस्कृति, कला, जीवन एवं भाषा के प्रति अनन्य आस्था को दर्शन कराने वाला नाटक है ।

इस नाटक की विषय वस्तु भारतीय ग्रामीण जीवन के जीवंत एवं यथार्थ रूप को प्रस्तुत करती है। पूरा नाटक तीन दृश्यों में विभाजित है । पहले दृश्य में नाटक की भूमिका, प्रस्तावना एवं परम्परागत नाट्य शिल्प में सूत्रधार की तरह नट नटी के रूप में मि. हाल्वे और सिल्विया द्वारा प्रस्तुत नाटक की विषयवस्तु एवं उद्देश्य को स्पष्ट किया गया है ।

भारत के लोगों की अपनी संस्कृति, सभ्यता और जीवन मूल्यों के प्रति उदासीनता को उभारना और सामाजिक परिवेश में व्याप्त विकृतियों को उजागर करना इस नाटक का उद्देश्य है ।

आधुनिक परिवेश में औद्योगीकरण तथा अत्याधुनिक तकनीकों के कारण समग्र साहित्य रचना प्रभावित हुई है । नए संचार साधनों ने लोगों की अवश्यकताओं, अपेक्षाओं और बदलती रूचियों के अनुरूप नाट्य साहित्य में विशेष परिवर्तन लक्षित होते हैं । परम्परागत शास्त्रीय रंगमंच एवं नाट्य कला का रंग रूप इतना बदलता जा रहा है कि हमारा सांस्कृतिक परिदृश्य ही पहचानना

* हिन्दी विभाग, बेरिंग यूनियन क्रिश्चियन कॉलेज, बटाला (गुरदासपुर)

मुश्किल है । इसी विषय पर बहुत ही सारगर्भित टिप्पणी डॉ. प्रवीण सिंह चैहान ने अपने लेख में की है । 'आज का सांस्कृतिक परिदृश्य बहुत ही जटिल है । आज बाजारवाद विश्व संस्कृति के नाम पर जो कुछ बेच रहा है उसमें कला कम है, उसका क्षरण ज्यादा है । बाहरी अपसंस्कृति का मायाजाल हमारी संस्कृति को नेपथ्य में विस्थापित कर रहा है । इस दौर में आज नाटक खेलना एक चुनौती बन गया है ।' [1]

डॉ. शर्मा की नाट्य कृतियाँ आज के संदर्भ में नाट्य कला को बचाने और संभालने वाले रचनाकार के तौर पर जूझते हुए कर्मठ व्यक्तित्व की कृतियां हैं। उन्होनें नाट्य आकाश से लुप्त हो रही नाट्य शैलियों, रूपों एवं विषयवस्तु को अपनी नाट्यकृतियों के माध्यम से संरक्षित किया है ।

लोक नाट्यकला के बारे में डॉ. चौहान का मानना है–

'लोक नाटक की स्थिति में परिवर्तन के लिए दो उपाय आवश्यक हैं–

1. लोक नाट्य की उस विशेषता को लोप नहीं होने देने के लिए प्रयत्न करना जो रंगदारी नाटकों से उसकी अलगारी है । अर्थात् गायकी और नृत्य तथा लोक संगीत ।
2. लोक नाट्य के कथ्य तथा कथानक में परिवर्तन करना चाहिए जिसमें वह अपने समय की चुनौतियों का उत्तर दे सके ।' [2]

डॉ. शर्मा के नाटक 'लड़ी मैड़' की और 'मोती मैड़ के' लोक नाटक की मूलभूत विशेषताओं से परिपूर्ण है । यहां 'मोती मैड़ के' में लोकजीवन की अमूल्य निधियों को समेटने एवं सहेजने की निष्ठा है तो 'लड़ी मैड़ की' में ग्राम जीवन की विलक्षणता एवं स्थानीय आस्थाओं विश्वासों एवं भाषा के ठेठपन एवं खरेपन के प्रति एक विश्वसनीय मौलिक उद्देश्य दिखाई देता है ।

जमूरा मदारी की अदाकारी और निराली कलात्मकता और बाजीगरी है तो दूसरी तरफ संगीत एवं लोक गीत अर्चना के गीतों का प्रयोग भी बखूबी किया गया है ।

डुगडुगी का हंसाने वाला नृत्य और नट नटी का प्रयोग परम्परागत नाट्य सिद्धांतों एवं विधियों के प्रति नाटककार की सिद्धि एवं व्यावहारिक ज्ञान की पुष्टि करता है ।

आज के बाजारवाद को टक्कर देने के लिए इन प्रयासों की जितनी

प्रशंसा की जाए कम है । राजस्थानी जीवन के विभिन्न विलक्षण रंगों से अवगत कराने वाली डॉ. शर्मा की नाट्यकृतियां वास्तव में प्रशंसनीय हैं ।

'लड़ी मैड़ की' नाटक में राजस्थान के जयपुर क्षेत्र की भाषा जिसे ढूँढाड़ी भी कहा जाता है का प्रयोग किया है । राजस्थानी हिंदी की प्रमुख बोलियों में से एक है । अपनी भाषा, खान पान, रहन सहन रीति रिवाजों के प्रति पढ़े लिखे भारतीयों के दृष्टिकोण को यथार्थ रूप में चित्रित किया गया है ।

'उस्ताद : ठीक कहा जमूरे तूने। आज हिन्दुस्तान में तो तमाशे की कद्र है नहीं पर विदेशों में है । फिरंगी पागल हो रहे हैं, हमारी बोली-भाषा, कला-संस्कृति और रीति-रिवाजों को जानने सीखने के लिए (जमूरे से) - जा हुक्का ले आ । (जमूरा हुक्का ले आता है, उस्ताद हुक्के का एक लम्बा घूंट खींचता है, फिर धुएँ को आकाश में छोड़ते हुए-शून्य में देखते हुए)- और हमारे देश के लोग इसे पिछड़ेपन की निशानी समझ कर भूलते जा रहे हैं । थू (थूकता है) पर अब मैनें सोच लिया है ।

कजरी : क्या सोचा उस्ताद ?

उस्ताद : यही कि अपनी ही वेशभूषा पहनूंगा और अपने ही गांव की बोली बोलूंगा ।' [3]

भाषा देश को लोगों को जोड़ती है और एक स्वस्थ समाज की रचना करती है । आज के संदर्भ में राजनीति के दोगलेपन और ओछेपन के कारण सिद्धांतहीनता प्रत्येक क्षेत्र में व्यवस्था में घुस गई है । इसने देश के चरित्र एवं स्वरूप को ही बदल डाला है । उस्ताद, जमूरा और कजरी के वार्तालाप के द्वारा नाटककार ने इस गंभीर समस्या की ओर ध्यान दिलाया है-

'उस्ताद : अपना विगत, छुटपन के दिन हमारे देश की धर्म निरपेक्षता, अखण्डता और एकता की एक झलक ।

कजरी : कैसी बहकी बहकी बातें कर रहे हैं उस्ताद ।

जमूरा : मैने चौथी कलास की पुस्तक में पढ़े थे सब । उसमें लिखे हुए थे सब। धर्म निरपेक्षता, अखण्डता, एकता वगैरह वगैरह ।'

उस्ताद : केवल लिखा ही नहीं है वैसा है भी हमारा देश ।

कजरी: क्यों झूठ बोल रहे हो उस्ताद । कहां है धर्म निरपेक्षता, अखण्डता, एकता। देख नहीं रहे कैसे सामुदायिक और जातीय दंगे चल रहे

हैं हमारे देश में । हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, ये सब अलग अलग खेमों में बंटते जा रहे हैं और तुम कह रहे हो कि मैं उन सबको एक सूत्र में बंध हुआ देख रहा हूँ ।

उस्ताद: (आह भरते हुए): तुम नहीं समझोगी कजरी । यह सब राजनीतिक चक्रव्यूह है आज के युग का ।' 4

नाटककार ने बड़ी पैनी दृष्टि से समाज, देश और मानवता के साथ राजनीतिक संबंधों का विवेचन बेबाक ढंग से प्रस्तुत किया है । देश के धर्म निरपेक्ष चेहरों को राजनेताओं ने अपने संकीर्ण हितों के लिए कुरूप कर दिया है । देश की अखंडता के लिए वे वचनबद्ध नहीं अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु किसी भी प्रकार का समझौता कर लेते हैं और सामाजिक एकता के स्थान पर वे ओछी, लोगों को जाति, धर्म, वर्ग के नाम पर बांटने की राजनीति करते हैं । इस चक्रव्यूह ने आदर्श मूल्यों का हनन किया है ।

'लड़ी मैड़ की' नाटक देश में व्याप्त समस्या से साक्षात्कार कराता है और कलाकार की वेदना को प्रस्तुत करता है । उपभोक्तावाद और विश्व मंडी ने पूरी मानवता के लिए गंभीर संकट खड़ा कर दिया है । लोक कलाओं और कलाकारों के जीवन के दयनीय पक्ष की ओर नाटककार ने विशेष ध्यान दिया है -

'मोती मैड़ के' नाटक में

मदारी-डुगडुगी के संवादों से रचनाकार अपने देश के अंचलों की विरासत के प्रति उदासीनता और अलगाव की प्रवृत्ति को स्पष्ट कर पाया है । मैड़ गांव के गौरवमय इतिहास को स्मरण करवाने वाले कई उदाहरण हैं-

'मदारी : मैड़ गांव महाभारतकालीन स्थान विराट नगर के पास का एक पवित्र नगर रहा है । आज मैड़ गांव की बाणगंगा का पानी सूख गया है परन्तु उसकी तलहटी में जो मोती बिखरे पड़े हैं उनको समेटना जरूरी है । ये मोती अपनी चमक से हमें हमारे अतीत का दर्शन कराते हैं। परन्तु इन मोतियों का तो वहां के वाशिंदों तक को पता नहीं।'

डुगडुगी : 'मैं मैड़ गांव के झरोखों से ग्राम्य जीवन का जीता जागता सिनेमा दिखलाती हूं और वह भी बिना पैसे का ।' [5]

मदारी और डुगडुगी के संवादों के माध्यम से रचनाकार ने अपने ग्रामीण समाज एवं अंचल की वर्तमान दशा को प्रस्तुत किया है । इसके साथ

ही उस गौरवमय सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक यथार्थ से संबंध जोड़ने के प्रति वर्तमान पीढ़ी से आग्रह भी किया है । हम अपनी मौलिक पहचान अपने अतीत से जुड़कर ही दिखा सकते हैं ।

मैड़ गांव के प्रति शर्मा जी का लगाव एवं ग्रामीण जीवन के रंग बिरंगे मिजाज के प्रति उनकी श्रद्धा भावना, उन्होंनों वहां के मेलों एवं अन्य उत्सवों का चित्रण करके प्रस्तुत की है।

'जोशी जी की पाठशाला' में परम्परागत ढंग से शिक्षा प्रदान कराने की रीति को प्रस्तुत किया गया है । बच्चों के मानसिक स्तर के अनुसार सरल एवं सादा ढंग से शिक्षार्थियों को पढ़ाने की विधि का चित्रण आकर्षक होने के साथ साथ तार्किक भी है ।

किस्सों, लोकोक्तियों, पहेलियों के माध्यम से ज्ञान बांटना और शिक्षा प्राप्त करने की परम्परा लगभग समाप्त हो गई है । कहावतों के साथ अन्तर्कथाएं जुड़ी रहती हैं । यह भी एक प्रकार की शिक्षा देने का ढंग रहा है ।

दूसरा युवक : अब तुम बताओ –
'खैडे मैड़ कांकै भरोसै राण्ड मत वहै जाजे' [6]

मैड़ गांव के युवकों के मनचलेपन को स्थानीय लोकोक्ति के द्वारा बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है ।

इसी प्रकार अनेक पहेलियों बुझारतों आदि के माध्यम से युवक अपने ज्ञान को बढ़ाने का प्रयत्न किया करते थे जैसे–

पहला युवक : 'च्यार लाठी चौधरी अर पांच लाठी पंच, जींका घर में दस लाठी पंच गिणे नै टंच।'

दूसरा युवक : यहां पर एक लाठी का अर्थ घर के एक पुरुष सदस्य से लिया जाता था। इस प्रकार इस उक्ति में मानवीय बल के अर्थ को दर्शाया गया है ।' [7]

'लड़ी मैड़ की' के तीसरे दृश्य में 'जोशी गणेश दास की पाठशाला' में बच्चों की पढ़ाई का दृश्य प्रस्तुत किया गया है । बच्चों को खेल-खेल में और वर्णमाला को अर्थ पूर्ण ढंग से रूचिकर बनाकर पढ़ाने से वे सुगमता से सीख सकते हैं । उसी प्रकार बारहखड़ी को बड़े ही रोचक ढंग से पढ़ाने की कला यहां एक तरफ आधुनिक शिक्षा पद्धति को चुनौती दे सकने की पद्धति लगती है तो दूसरी तरफ बच्चों को उनकी मनोदशा के अनुरूप बिना बोझ

व्यावहारिक शिक्षा प्रदान करने के एक सार्थक प्रयास के तौर पर ग्रहण किया जा सकता है ।

'लड़ी मैड़ की' में चौथे और पांचवें दृश्य में 'घोष के धोबी का गधा घर का न घाट का' और 'गधा जितना भी समझदार हो दुलत्ती मारने की आदत नहीं छोड़ता' कथाओं को आधार बनाकर रचा गया दृश्य है ।

मनुष्य की स्वाभाविक जीवन शैली और उसके व्यावहारिक यथार्थ पक्ष को व्यंग्यात्मक ढंग से चित्रित किया गया है । इस दृश्य का अंतिम संवाद नाटककार के उद्येश्य एवं प्रतिबद्धता को भलीभांति प्रस्तुत करता है।

'भीलू : (कमर सलहते हुए उठता हुआ प्रसन्न स्वर में धोबन से) – चाहे हमारा रामू कलैक्टर बनकर हमें भूल गया है परन्तु यह खुशी की बात है कि वह दुलत्ती मारना नहीं भूला । (फिर दर्शकों की ओर मुखातिब होकर) आप लोग भी अपने संस्कार और परम्परा को कभी मत भूलना । अच्छा राम राम ।' [8]

इस प्रहसन के द्वारा कैलाशचन्द्र शर्मा ने विस्मृत लोककथाओं, लोकविश्वासों, लोकसरोकारों, जनमनोवृतियों, विकारों एवं प्रतिबद्धताओं का सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करने के एक सार्थक एवं नवीन दृष्टिकोण का भव्य दृश्य दर्शाया है । भरपूर मनोरंजन कर सकने वाले इस नाटक में अनेक प्रयोग किए गए हैं । नई शैलियों को समेटे हुए यह नाटक भारतीय नाट्य परम्परा की एक श्रेष्ठ नाट्य कृति कही जा सकती है ।

संदर्भ

1) 'आज का नाटक दशा एवं दिशा', डा. प्रवीण सिंह आर चौहान, रचनाकर्म: संपादक डॉ. माया प्रकाश पाण्डेय, अंक 3–2007 संवाद पृ. 43

2) वही , पृ. 46

3) डा. कैलाशचन्द्र शर्मा का नाट्य साहित्य : त्रिवेणी कला संगम, जयपुर, 2012, पृ. 159–160

4) वही पृ. 161 5) वही पृ. 276 6) वही पृ. 277

7) वही पृ. 277–278 8) वही पृ. 304

❑❑❑

5

तुक्के का बादशाह : एक जागरूकता अभियान

डॉ. मूर्ति मलिक

कैलाशचन्द्र शर्मा विरचित बाल-नाट्य-संग्रह 'तुक्के का बादशाह' विभिन्न विषयों, प्रथाओं, भावनाओं का पुष्प-गुच्छ है। 'डॉ. ईश्वर सिंह के शब्दों में - ''जिसमें इन्होंने बालकों की भावनाओं एवं सहज क्रिया-कलापों को आधार मानकर प्रभावी वाक्य-विन्यास एवं सहज सरल, भाषा-शैली के माध्यम से विभिन्न सामाजिक विषयों, प्रथाओं एवं भावनाओं को प्रस्तुत करने का सहज प्रयास किया है।''[1] ये नाटक किशोर वय तक के आयु समूह को ध्यान में रखकर लिखे गये हैं। इस आयु तक बच्चे सहज, सरल और जिज्ञासु रहते हैं। वे स्वयं भी अपने जीवन के लिए आदर्श तलाशने के मोड़ पर होते हैं। बच्चे उपदेश पसन्द नहीं करते। वे वर्जनाओं को तोड़ने में सुख पाते हैं। लेखक ने बच्चों के बालपन व बालमन के इस मनोविज्ञान को समझ लिया है। पहले बुरा करवाओ फिर अच्छे की तरफ मोड़ो, पाँचों नाटकों में इसी तरह के कथा-सूत्र मिलते हैं। सभी नाटकों के संदेश सकारात्मक हैं। पर्यावरण एवं छूआछूत जैसी विश्वव्यापी एवं सामाजिक समस्याएँ नाटक को राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विचार करने की क्षमता बालकों में उत्पन्न करती हैं। साथ ही इन नाटकों में बालकों को चरित्र-निर्माण, जीवन में सफलता हेतु प्रयास व ऊँच-नीच, भेद-भाव को भुलाकर आपसी भाई-चारे व मेल-मिलाप की शिक्षा देने का प्रयास किया गया है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना से अनुप्राणित ये नाटक भाव एवं शैली दोनों दृष्टिकोणों से उत्तम कोटि के साबित होते हैं।

*एसोसिएट प्रोफेसर, बी.पी.एस. महिला विश्वविद्यालय, खानपुर कलां (सोनीपत)

नाटक साहित्य की अन्य विधाओं से अलग इसलिए माने जाते हैं क्योंकि उनमें मंच पर अभिनीत होने की क्षमता निहित होती है। रंगमंच की दृष्टि से भी प्रस्तुत कृति एक सफलतम रचना है। इसका कारण यह भी है कि लेखक स्वयं अभिनय एवं निर्देशन के क्षेत्र में सक्रिय रहे हैं। कई नाटकों का अभिनय एवं निर्देशन कर चुके हैं इसलिए मंच सज्जा तथा रंगमंच से जुड़ी सभी बारीकियों से परिचित हैं। चाहे कथानक की बात हो या संवादों की प्रस्तुति की अथवा वातावरण को जीवंत रूप में प्रस्तुत करने की। 'तुक्के का बादशाह' कृति इन सभी कसौटियों पर खरी उतरती है। जैसा कि डॉ. ईश्वर सिंह ने भी इन नाटकों के विषय में लिखा है - ''नाट्य संग्रह 'तुक्के का बादशाह' सही मायने में एक महत्त्वपूर्ण कृति है जिसमें नाटक एवं रंगमंच की भावनाओं का भली-भाँति निर्वाह किया गया है। यह कृति निर्देशक, अभिनेता, परिकल्पना, मंच-सज्जाकार आदि सभी के लिए एक चुनौती है और इसलिए वर्तमान बाल नाट्यान्दोलन का दिशा-निर्देशक बनने की क्षमता इस कृति में है।''[2] शर्मा जी की यद्यपि यह पहली नाट्य कृति है जिसे उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है - ''नाट्य-लेखन की दिशा में मेरा यह प्रथम प्रयास था।''[3] प्रथम रचना होते हुए भी यह रंगमंचीय संभावनाओं से भरपूर है। वयस्क वर्ग के लिए नाटक लिखना और उनका मंचन एवं निर्देशन करना अपेक्षाकृत सरल कार्य है किन्तु बच्चों को संतुष्ट करना अत्यन्त दुरूह कार्य है। बाल कवि वैरागी भी इस सत्य को स्वीकार करते हुए लिखते हैं - ''अनुभव जन्य मान्यता है कि संसार में सबसे कठिन काम है बच्चों के लिए लिखना।''[4] इस कृति की रंगमंचीय सफलता का प्रबल प्रमाण यह भी है ''दूरदर्शन से भी इसका प्रस्तुतीकरण हो चुका है।''[5]

कथानक की दृष्टि से पाँचों नाटकों के सभी अंक स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाते हैं। पहला, दृश्य बड़ा तथा उसके बाद निरन्तर छोटे दृश्य बंधों की रचना करके नाटककार ने सभी नाटकों को एक नोक प्रदान की है। कथा निरन्तर आगे बढ़ती हुई पात्रों के चरित्र का विश्लेषण करने में सक्षम है तथा उद्देश्य को भी संवादों के माध्यम से दर्शक तक सम्प्रेषित कर देती है। नाटकों की सफलता बहुत कुछ उसके संवादों पर आधारित होती है। प्रस्तुत कृति में सभी संवाद तार की भाँति संक्षिप्त एवं गंभीर हैं। किसी भी स्थान पर अनर्गलता का अहसास नहीं होता। अभिनेता भी पात्रों जैसी वेश-भूषा धारण करके पात्रों

से निकटकता का/जुड़ने का अहसास महसूस करते हैं। आहार्य अभिनय के माध्यम से पात्र-वैशिष्ट्य का भी बोध होता है। इसी के माध्यम से दर्शक पात्रों को पहचान लेता है। कोष्ठकों में दिए गए रंग संकेत पाठकों तथा दर्शकों को रसानुभूति के निकट ले जाते हैं।

नाटककार नाटक के रूप में कच्ची सामग्री देता है जिसे मंच पक्के माल के रूप में प्रस्तुत करता है। नाटक पढ़ते समय जो दृश्य पाठक को अपने मानस मंच पर दिखाई देते हैं वही दृश्य मंच पर प्रत्यक्ष रूप में दिखलाई पड़ते हैं। मंच के माध्यम से ही नाटक की सभी निहित संभावनाएँ पूरी ऊर्जा के साथ चरितार्थ होती हैं। वस्तुत: मंच पर ही वह अपनी सही जिन्दगी जीता है। मंच ही नाटक की शक्ति है जिसके द्वारा वह मूर्त एवं जीवंत रूप धारण करता है। प्रत्यक्ष घटना का हमारे मन पर गहरा प्रभाव होता है जबकि सुनी-सुनाई या पढ़ी गई बात उतना असर नहीं करती।

'पेड़ हमारे मित्र' नाटक में नाटक एवं रंगमंच की भावनाओं का निर्वाह भली-भाँति किया गया है। यह नाटक ग्रामीण पृष्ठभूमि को जीवन्त रूप में दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। गाँव के खेत का दृश्य, गाँव जाने वाली सड़क के किनारे एक छोट-सा खेत, जिसमें एक विधवा टूटी हुई खाट पर बैठी हुक्का पी रही है। पास में ही उसका बेटा भीखू फावड़े से जमीन खोदता हुआ कविता गुनगना रहा है। यह एक ओर ग्रामीण जीवन का जीवंत दस्तावेज है, तो दूसरी ओर प्रसाद के नाटकों में गीतों की योजना का भी स्मरण कराते हैं। लेखक ने पात्रों के मनोविज्ञान का बहुत गहराई से चित्रण किया। 'पेड़ हमारे मित्र' नाटक में जब भीखू खुदाई करता है तो उसकी बुढ़िया माँ का ममत्व जाग उठता है वह अपनी सेहत की परवाह न करते हुए कहती है - ''अरे बेटा भीखू! बहुत हो गई खुदाई। आ जा थोड़ी देर सुस्ता ले।''[6] माँ भले ही कितनी ही वृद्धा एवं असहाय स्थिति में हो, किन्तु बेटे की चिंता उसे सताती रहती है। बाल मनोविज्ञान की गहरी समझ इस प्रसंग से भी मिलती है जब भीखू के गोफन का ढेला सिमरन को लग जाता है तो वह डरकर सहम जाता है तथा दूसरी ओर तीसरी लड़की गर्व से सिमरन का परिचय देती है। इसी प्रकार सिमरन भी अपनी कुलीनता का परिचय अपनी गर्दन ऐंठकर निम्न शब्दों में देती है - ''क्यों बे ... अब तो पता चला कि तूने किसके साथ उद्दण्डता की जुर्रत की है।''[7] भीखू का प्रकृति प्रेम भी उसके स्वगत कथन से

अपने आप ही प्रकट हो जाता है। ''अब मैं इसमें आम की गुठलियाँ बोऊंगा। जिनसे छोटे-छोटे पौधे बनेंगे और फिर इन पौधों को अपने खेत में लगाऊंगा .....।''[8] भीखू का प्रकृति प्रेम उसके प्रकृति के प्रति उदार दृष्टिकोण को भी मुखरित करता है। ''मेरे पिताजी कहा करते थे कि पेड़ों को काटना पाप है। वे हमें शुद्ध हवा और खाने को मीठे फल देते हैं .... मेरे पिताजी ने ही आपके बगीचे में पेड़ लगाए थे, इनमें मेरी और मेरी बूढ़ी माँ की आत्मा बसती है।''[9]

पेड़ों से जलवायु परिवर्तन में सकारात्मक परिणाम सामने आते हैं। पेड़ ही हमारे पर्यावरण को संतुलित रखकर हमें स्वस्थ जीवन प्रदान कर सकते हैं। प्राचीन ग्रन्थों में भी तथा आचार्यों ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है। आयुर्वेद विज्ञान पेड़-पौधों, जड़ी-बूटियों, छाल आदि से विभिन्न रोगों को दूर करने के उपाय सुझाता है, जो वास्तव में ही आधुनिक मेडिकल साईंस की नई तकनीकों से मेल खाता है। आज जो हम बोतलों में बन्द मिनरल वाटर पैसे खर्च करके ग्रहण कर रहे हैं, वह हमारी प्रकृति तथा पेड़ों के प्रति उदासीनता तथा स्वार्थ की भावना तथा आलसीपन को रेखांकित करता है। जैसा कि 'पेड़ हमारे मित्र' नाटक में सिमरन पेड़ों को कटवाकर, स्वीमिंग पूल बनवाकर अंत में संक्रामक बीमारी का शिकार हो जाती है। 'पेड़ हमारे मित्र' नाटक सही अर्थों में, आज के युग में जबकि जंगलों की अंधाधुंध कटाई हो रही है पेड़ों की जगह सीमेंट के पेड़ (बड़ी-बड़ी गगनचुम्बी इमारतें) खड़े किए जा रहे हैं, पशु-पक्षियों से उनके घरोंदे छीने जा रहे हैं, जिसके कारण वे हिंसक होकर शहरों में घुसकर मानव पर हमला कर रहे हैं जैसे विषयों पर सोचने को मजबूर करता है तथा इस तथ्य की ओर भी संकेत करता है कि यदि पेड़ नहीं होंगे तो मानव जीवन खतरे में पड़ जाएगा। अत: 'पेड़ लगाओ जीवन बचाओ' के नारे लगाकर बच्चों के मन में पेड़ों के प्रति आत्मीयता की भावना जागृत करता है। विश्वम्भरनाथ कौशिक की कहानी 'अशिक्षित का हृदय' में भी पात्र मनोहर सिंह पेड़ को भाई-समान समझता है और उसको काटने से बचाने के लिए वह मरने-मारने पर उतारू हो जाता है। आज जबकि पूरा विश्व पर्यावरण असंतुलन से त्रस्त है। यू.एन.ओ. जैसी संस्थाएं भी प्रकृति के विनाश को मंडराने वाली आपदा से आशंकित है। ऐसी स्थिति में प्रस्तुत नाटक और भी प्रासांगिक एवं सार्वकालिक संदेश विद्यार्थियों को देता है। उत्तराखण्ड में केदारनाथ एवं

बद्रीनाथ धाम में जो विनाश लीला मानवता को हिला देने वाली हुई, उसका कारण भी प्रकृति से छेड़ छाड़ ही है। प्रकृति के सीने को चीर, पेड़ों को काटकर फाईव स्टार होटल बनाने का परिणाम इन्हीं आपदाओं को जन्म देगा।

भीखू का पेड़ों के प्रति लगाव उस समय प्रबल हो उठता है जब उसे ज्ञात होता है कि उसके खेतों की जमीन खरीद कर सिमरन रेसकोर्स का मैदान बनवाना चाहती है तो वह बुड़बड़ाता हुआ पेड़ों के फायदे गिनवाने लगता है – ''ये पेड़ बेकार के नहीं हैं, ये हमारी जान है। हम लोगों ने पसीने से इन्हें सींचा है। पेड़ों का हर भाग हमारे लिए जरूरी है।''[10] पेड़ों के कटने के कारण होने वाले नुकसान/प्रदूषण से भी प्रस्तुत नाटक हमें अवगत कराता है। नाटक के अन्त में जब डॉक्टर सिमरन के टी.बी. होने का संकेत भीखू को देता है तो न केवल भीखू सिमरन की बीमारी के प्रति चिन्तित है बल्कि अपनी वफादारी को प्रकट करता हुआ कहता है ''नहीं डॉक्टर साहब मेरी बीबीजी को टी.बी. नहीं हो सकती। मैं बगीचे के मीठे-मीठे फल उन्हें खिलाऊँगा। मेरे फलों में जादू है .... मेरे पिताजी कहा करते थे कि ताजी हवा व ताजे फलों से बड़ी से बड़ी बीमारी भी ठीक हो सकती है।''[11] डॉक्टर भी बच्चों को समझाते हुए कहता है – ''हाँ मेरे बच्चों, पेड़ों में बड़ी शक्ति होती है परन्तु तुम्हें इस बगीचे में पेड़ पुनः लगाने पड़ेंगे। धुएँ व शोर से प्रदूषण फैलाने वाले बड़े-बड़े यन्त्रों को हटाना होगा।''[12] यह नाटक बच्चों को पौधारोपण कार्यक्रम के प्रति जागरूक करता है तथा साथ ही यह भी संकेत करता है कि पेड़ हमारे लिए दवा एवं दुआ दोनों काम करते हैं। सिमरन की बीमारी ठीक होने के प्रसंग में हम इस सच्चाई से रू-ब-रू होते हैं। पेड़ आधुनिक जीवन के प्रतिकूल व प्रदूषित वातावरण से रक्षा करने में एक अनमोल औषधि का काम करते हैं।

अतः वृक्षारोपण की प्रवृत्ति को प्रबल बनाकर अकाल एवं बाढ़ जैसे प्राकृतिक प्रकोपों से भी मुक्त हो सकते हैं। भारतीय संस्कृति में वृक्षों में देवत्व का आरोपण किया जाता रहा है। भारतीय समाज में उनकी पूजी की जाती है। पीपल, केले व तुलसी की पूजा का वर्णन शास्त्रों में मिलता है। हरे पेड़ को काटना अपराध एवं पाप माना जाता है। अतः सच्चे अर्थों में पेड़ हमारे मित्र हैं तथा हमारी नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक समृद्धि के मूल स्रोत हैं। यह नाटक विद्यार्थियों को अधिक से अधिक वृक्षारोपण एवं इनके संरक्षण का

सकारात्मक संदेश देता है। भीखू का पेड़-प्रेम हमें 'चिपको आन्दोलन' की याद दिलाता है।

'छोटा बेगारी' नाटक में मध्य युग में व्याप्त 'बेगारी प्रथा' की ओर पाठक वर्ग का ध्यान आकर्षित किया गया है। समाज में ऊँची जाति वाले नीची जाति वालों से घृणा करते हैं तथा इनकी छाया मात्र से भी इन्हें भयंकर पाप लगते हैं। नीची जाति के स्पर्श से स्वयं को अपवित्र मानने लगते हैं। बजरंगी की अनुपस्थिति में जब गोपी तबला बजाता है तो बजरंगी को उससे ईर्ष्या होती है। रेवती के शब्दों में – ''बजरंगी हम छोटी जाति वालों से नफरत करता है। हम लोगों की तरक्की से जलता है।''[13] इसी प्रकार चौबे जी गोपी के मुँह से गुरुजी कहलवाना भी पसन्द नहीं करते – ''हम संस्कृत के गुरु हैं, संस्कृत के। और किसी नीच जात वाले के मुँह से गुरु कहलाना पसन्द नहीं करते। इससे हल्की होती है हमारी। और फिर क्या केवल तुम बेगारी ही बचे हो हमारे शिष्य बनने को।''[14] और इससे भी अधिक जब गोपी का पोंछा चौबे जी के पैरों में लग जाता है तो वह पैर पटकते हुए राम-राम चिल्लाने लगता है – ''भ्रष्ट कर दिया इस नीच जात ने मुझे छूकर।'' [15] तथा उसे खा जाने वाली दृष्टि से देखता है। मास्टरनी जी गोपी का पक्ष लेती है, उसी समय चौबे जी वहाँ से चुपचाप खिसक जाते हैं। इस नाटक में गांधी के अस्पृश्यता तथा छुआछूत के खिलाफ आन्दोलन का कुछ अंश दिखाई देता है। भेदभाव एवं छुआछूत हमारे समाज की संक्रामक बीमारियाँ हैं जिनसे निजात शिक्षा जैसे कार्यक्रमों से पाई जा सकती है।

गोपी एक होनहार बालक है। पढ़ाई में वह पूरे जिले में प्रथम स्थान अर्जित करता है। शिक्षाधिकारी उसका सम्मान करते हैं तथा सरकार द्वारा दिए गए वजीफे की घोषणा करते हैं। गाँव का पुजारी गोपी की संगीत में रूचि को देखते हुए संगीत के खर्चे को वहन करने की जिम्मेदारी लेता है। इसमें गोपी के चरित्र के माध्यम से बच्चों में स्वावलम्बन की भावना को भी उकेरा गया है। वर्तमान परिदृश्य में जब हम देखते हैं कि हर तरफ कोंचिग सेंटरों के रूप में शिक्षा की दुकानें सर्वत्र फैली हुई हैं, ऐसे में उन विद्यार्थियों की भी कमी नहीं है जो अपनी क्षमता, योग्यता एवं प्रतिभा के बल पर अच्छे ओहदे प्राप्त कर लेते हैं और बाद में अपनी ईमानदारी और निष्ठा का परिचय देते

हैं। गोपी ग्रामीण परिवेश में पला एक ऐसा ही होनहार बालक है जो हर प्रकार, हर बार सेठ जी, चौबे जी, बजरंगी जैसे लोगों से अपमानित होता रहता है किन्तु पंडित जी व मास्टरनी जी से प्रोत्साहन पाकर वह अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाता है और पुलिस अफसर बन जाने के बाद भी हेकड़ी नहीं दिखाता। अपमान का गरल उसके कण्ठ तक ही रहता है। उसकी सोच को छू भी नहीं पाता। तभी तो जब पुलिस वाला बजरंगी को बेकसूर होते हुए भी पकड़कर डण्डा मारते हुए गोपी थानेदार के समक्ष ले जाता है तो वह फाइलें देखने में व्यस्त होते हुए भी कहता है – ''कहो हवलदार! ये कौन-सा मुजरिम पकड़ लाए। फिर किसी निर्दोष गरीब को तो पकड़कर नहीं ले आए हमेशा की तरह।''[16] कहकर अपनी ईमानदारी का परिचय देता है। कुल मिलाकर नाटक में यही दिखाया गया है कि अंहकार की भावना में लिप्त समाज का उच्च वर्ग निम्न वर्ग का शोषण करता है, अत: छुआछूत एवं भेदभाव की यह दीवार समाज को तोड़ती है। इन बुराईयों को खत्म करके ही समाज का विकास संभव है। गोपी इसका जीवंत उदाहरण है। यद्यपि सरकार द्वारा शोषित वर्ग की हिमायत ली जा रही है लेकिन सामाजिक स्तर पर गोपी जैसे बालकों द्वारा समाज का उद्धार संभव है।

'जैसे को तैसा' मनोरंजन के उद्देश्य से लिखा गया नाटक है। इसमें बाल-सुलभ चेष्टाओं का बड़ी सूक्ष्मता से सजीव चित्रण किया है। बालपन व बालमन की गहरी समझ लेखक को है तभी तो वे बालमन की हर सतह को खोलते खोजते दर्शक का मनोरंजन निरन्तर करते रहते हैं। नाटक के अंत में पीटर की हूबहू नकल बच्चों से करवाते हैं तथा भविष्य में उससे नकल न करवाने का प्रण लेते हैं। बालकों के नटखनपन व नकल के दुष्परिणामों से भी यह नाटक अवगत कराता है। मेरी उसे सबक सिखाती है – ''अब तुम्हें पता चलता कि नकल कितनी दु:खदायी है। अब तुम प्रतिज्ञा करो कि भविष्य में किसी की नकल नहीं करोगे।''[17] इसमें श्रीमती सिन्हा के द्वारा दोहरे व्यक्तित्व वाले मनुष्यों की भी पोल खोली गई है। वह पीटर के घर से खुद तो छाता मांगने आती है किन्तु पीटर के सामने ही कहती है – ''पता नहीं लोग भिखमंगों की तरह कैसे चीज़ें मांगने आ जाते हैं।''[18]

'तुक्के का बादशाह' नाटक गाँव के अभावग्रस्त जीवन का सजीव

चित्रण करता है। गाँव के लोगों के पास सीमित साधन होते हैं और उन्हीं से वे अपना निर्वाह बड़ी सजगता से करते हैं। इसमे दर्शाया गया है कि कलुआ कुम्हार कहीं जाने की तैयारी कर रहा है, उसने नए कपड़े पहने हैं, सिर पर पगड़ी बांधी है। अब वह अंगोछा कन्धे पर डालकर कहीं जाने की तैयारी में है। लेकिन ससुराल जाते वक्त उसका उत्साह देखते ही बनता है। कलुआ की ससुराल में धन्नो एवं खेमा के खाने के लिए मात्र तीन रोटियाँ हैं और वे किसी तरह जुगाड़ तथा झूठा अभिनय करके उन्हीं तीन रोटियों से काम चलाते हैं। अभावग्रस्त होने के साथ-साथ गाँव के लोग अन्धविश्वासी भी होते हैं। झाड़-फूंक तथा स्याणे के चक्कर में सच्चाई से दूर भागते हैं। इस समस्या से गरीब एवं अशिक्षित लोग ही ग्रस्त नहीं बल्कि मंत्री तथा राजा भी बड़के जैसी रीति-रिवाजों में विश्वास करते हैं। रानी का हार चोरी होने के बाद राजा ज्योतिषियों एवं स्याणों की सहायता लेने लगते हैं तथा रानी का हार मिलने पर कलुआ को सम्मानित करते हुए वे कहते हैं – ''आज बड़के वाले महाराज के आने से हमारे दरबार के नवरत्न पूरे हुए। अब हम निश्चिंत हैं कि राज्य में कोई चोरी नहीं होगी।''[19] इस नाटक में तथाकथित पण्डितों तथा स्याणों के प्रभाव को दिखाया गया है। अशिक्षित तथा परेशान व्यक्ति किस प्रकार दुखी होकर झाड़-फूंक-बूझा और बड़के जैसी रूढ़ियों में विश्वास करने लगता है। मन की इच्छा की पूर्ति हेतु वे सभी सीमाएँ पार करने को तत्पर हो जाते हैं तथा हर समय हर किसी को ललचाई आँखों से देखते हैं। यहाँ तक कि राजा भी जब रानी का नौलखा हार चोरी हो जाता है तो कलुआ के आगमन से स्वयं को धन्य समझते हैं तथा तुक्के से रानी का हार मिलने पर राजा न केवल उसका सम्मान करते हैं वरन् उसे नवरत्न की उपाधि भी प्रदान करते हैं।

'जंगल मित्र' नाटक में वनों की महिमा बतायी गई है। नाटक बच्चों को 'जल, जंगल, जमीन बचाओ' अभियान से जोड़ने का एक प्रयास है। भारत में वनों को बचाने की परम्परा बहुत प्राचीन है। सम्राट अशोक ने भी पर्यावरण को बचाने हेतु वनों को न काटने की अनेक राजकीय घोषणाएँ की थी। 'जंगल मित्र' नाटक में मास्टरनी जी बचपन से ही बच्चों को वनों के लाभ बतलाकर पर्यावरण सुरक्षा के प्रति जनचेतना जागृत करती है तथा बताती है कि जंगल

काटोगे तो पर्यावरण में बदलाव होगा और उसका सीधा असर मानव पर पड़ेगा। वह ''जंगल के दुश्मन मुर्दाबाद तथा जंगल का मित्र सुक्खा - जिन्दाबाद .... जिन्दाबाद।''[20] के नारे लगवाकर बचपन से बच्चों को सचेत बनाकर प्रशिक्षित व शिक्षित करने का प्रयास करने पर जोर देती है।

इस नाटक में दिखाया गया है कि अधिकारियों की मिलीभगत से बहुत बड़े स्तर पर लकड़ी की चोरी की जाती है। जंगल के जंगल रेगिस्तान में बदल दिए जाते हैं। विरोध करने वालों को पैसे की, ओहदे की धौंस दिखाकर दबाया जाता है। जब सुक्खा पटवारी जी को जंगल से लकड़ियाँ काटकर सोमपुर ले जाने की बात कहता है तो हरिसिंह कहता है ''इसकी हिम्मत तो देखो हमसे जुबान लड़ाता है।''[21] और कहता है कि ''तेरी बात पर कोई विश्वास नहीं करेगा, माना वही जाएगा जो हमारे पटवार घर के रजिस्टर में दर्ज होगा।''[22] इस प्रकार स्वार्थी लोगों द्वारा गैर कानूनी ढंग से लकड़ियाँ बेचने का दुष्परिणाम आज हमारे समाने है। आज छोटे-छोटे बच्चे अनेक बीमारियों की चपेट में आ चुके हैं तो उसका एक बड़ा कारण वनों का कटाव है तथा उससे उत्पन्न पर्यावरण प्रदूषण है क्योंकि वृक्ष वातावरण में फैली कार्बनडाइ ऑक्साइड को ग्रहण कर आक्सीजन का उत्सर्जन कर पर्यावरण को स्वच्छ रखने में अहम् योगदान देते हैं। हैडमास्टरनी जी बच्चों को समझाते हुए कहती है - ''पर्यावरण की शुद्धता हेतु वृक्षों का बहुत महत्व है।''[23] बच्चों को जागरूक करते हुए वह कहती है - ''पेड़ बचेंगे तो जीवन बचेगा''[24] अन्यथा मुखिया जैसे झूठे समाज संरक्षक अपने स्वार्थों की पूर्ति में लिप्त होकर जंगलों में बेचकर हरी-भरी धरती को बंजर बनाकर संतान की आस में तड़पती माँ की तरह व्याकुल अवस्था में छोड़ देगें।

नाटक का स्वर प्रगतिवादी विचारधारा से मेल खाता है, इसीलिए नाटककार ने शोषित वर्ग की हिमायत ली है। शोषक वर्ग द्वारा शोषित वर्ग का शोषण दिखाना भी नाटककार का लक्ष्य है। हरिसिंह भरी पंचायत में सुक्खा को अपमानित कर नीचा दिखाने का प्रयास करता है - ''अजी साहब, जिसके बाप-दादा ने कभी हम लोगों के सामने जबान खोलने की हिम्मत नहीं की वे ही लोग हमें नसीहत देते हैं।''[25] इसी तरह मुखिया - ''अच्छा! इतने पर निकल आए इनके आजकल कि सरकारी मुलाजिमों पर लांछन लगाने लगे।''[26] वह

भी उसे धमकी देता है कि ''दो कौड़ी के आदमी ने हमारी तौहिन कर दी।'' नाटक में उच्च वर्ग की वास्तविकता को उजागर कर लेखक निम्न शोषित दलित वर्ग की हिमायत लेता है। शोषित वर्ग का प्रतिनिधि पात्र सुक्खा आधुनिक विचारों वाला है। वह जानता है कि गोबर व सीवरेज से किस प्रकार अच्छी पैदावार बढ़ाई जा सकती है, किन्तु शोषक वर्ग के प्रतिनिधि पात्र पण्डित व अन्य उसकी खिल्ली उड़ाते हैं। उसकी जागरूकता से परम्परावादी समाज को अपनी सत्ता हिलती नजर आती है - ''इसने तो मेरी सारी दुकानदारी चौपट की दी ... यह किसानों को बहकाता है। शहर से खाद सस्ती मिल जाएगी। अब मेरी दुकान से अंग्रेजी खाद कौन खरीदेगा?''[27] मुखिया भी उसे गांव से निकालने की धमकी देता है और उसके घर में 'कांजी हाऊस' खोलने की बात कहता है। किन्तु सुक्खा जैसे निर्भीक व निडर व्यक्ति ही गाँव के बुजुर्ग वर्ग की खिलाफत करने की हिमाकत कर सकते हैं। वह अनेक प्रकार से प्रताड़ित होने पर अपने ईमान को विचलित नहीं होने देता। वह कहता है - ''भले ही आप मुझसे कैसा भी व्यवहार करें पर मैं अपने कर्त्तव्य से नहीं हटूंगा। इसके लिए भले ही मुझे कितने भी कष्ट उठाने पड़ें। मैं खेत में जाकर रह लूंगा, पर अपने खेतों में पेड़ लगाऊंगा और जंगल चौपट करने वालों के खिलाफ आवाज उठाऊंगा।''[28] सुक्खा की यह सोच उसे सही अर्थों मे सच्चा पर्यावरण संरक्षक सिद्ध करती है। साथ ही वह अपनी प्रगतिवादी सोच से समाज में सुधार लाना चाहता है और स्वार्थी, भ्रष्टचारियों तथा पर्यावरण के दुश्मनों की पोल खोलकर एक सच्चे मानवतावादी नागरिक होने का परिचय देता है।

यद्यपि रंगमंचीय दृष्टि से नाटकों की समीक्षा नहीं की गई है परन्तु समग्र विवेचन-विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष यह है कि सभी नाटक रंगमंचीय संभावनाओं से भरपूर है। कलमगर के स्वयं मंच से जुड़े होने के कारण वे भली-भाँति मंच पर प्रस्तुत किए जा सकते हैं। ग्रामीण परिवेश को उकेरते कथानक बच्चों को पर्यावरण के प्रति सचेत बनाते हैं। उसके प्रदूषण से होने वाली हानियों से अवगत कराते हैं। कथानक को अभिनेता अपने तार के समान संक्षिप्त एवं गतिशील संवादों से दर्शक तक पहुंचाने में पूरी तरह सक्षम है। सहज, सरल शैली में लिखे गए सभी नाटक अपने समाजोपयोगी व बालोपयोगी संदेश सरलता से सम्प्रेषित करते हैं। आज जब सारी दुनिया

ग्लोबल वार्मिंग जैसी समस्याओं पर चिंतन-मनन करते हुए अनेक संगोष्ठियों एवं सेमिनारों तथा कार्यशालाओं का आयोजन कर उसके प्रति सबको जागरूक कर रही है। ऐसे में यदि बच्चों में बचपन से ही संस्कार भर दिए जाएं, उन्हें पर्यावरण के प्रति जागरूक कर दिया जाए, तो कुछ हद तक इस भयंकर समस्या का निदान ढूंढने में उनका योगदान अहम् भूमिका अदा कर सकता है। बच्चे तो कच्ची टहनी के समान होते हैं। अल्पायु में जो संस्कार उनमें भरे जायेंगे वे आजीवन उनके जीवन में बने रहेंगे। भीखू तथा सुक्खा दोनों पात्र अपमान का घूंट पीकर भी अपने मार्ग से विचलित नहीं होते वरन् पूरे प्राण-प्रण से अपने दायित्व का निर्वाह करते हुए अतत: अपने गंतव्य को प्राप्त कर लेते हैं। कलमगर का यह प्रथम प्रयास नि:स्संदेह एक सार्थक एवं सफलतम प्रयास है।

संदर्भ

1) डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा, तुक्के का बादशाह, समीक्षात्मक टिप्पणी (कवरपेज) 2) वही, कवरपेज 3) वही, कवरपेज
4) वही, भूमिका 5) वही, कवरपेज 6) वही, पृ. 13
7) वही, पृ. 15 8) वही, पृ. 14 9) वही, पृ. 14
10) वही, पृ. 21 11) वही, पृ. 22 12) वही, पृ. 23
13) वही, पृ. 32 14) वही, पृ. 34 15) वही, पृ. 35
16) वही, पृ. 47 17) वही, पृ. 65 18) वही, पृ. 55
19) वही, पृ. 85 20) वही, पृ. 100 21) वही, पृ. 92
22) वही, पृ. 92 23) वही, पृ. 96 24) वही, पृ. 96
25) वही, पृ. 91 26) वही, पृ. 91 27) वही, पृ. 92
28) वही, पृ. 93

❑❑❑

6

भारतीय अखंडता का प्रतीक नाटक: मानवता की पुकार

डॉ. विकास कुमार

साहित्य की विविध विधाओं के ज्ञाता व रचयिता कैलाशचंद्र शर्मा किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं। साहित्य के क्षेत्र के साथ-साथ रंगमंच व संगीत के शिक्षण-प्रशिक्षण में संलंग्न रहना जहाँ उनके व्यक्तित्व के बहुयामी रूप को दर्शाता है, वहीं उनकी कर्मठता को भी चरितार्थ करता है। यह उनकी कर्मठता का ही परिणाम है कि भिन्न-भिन्न संस्थाओं द्वारा वह कई बार सम्मानित किये जा चुके हैं। यह उनके व्यक्तित्व का एक अन्य पहलू है कि वह साहित्य लेखन के साथ-साथ शोध-कार्य व पत्र-वाचन आदि में भी सक्रिय रूप से भागीदार रहे हैं। उनके द्वारा रचित यह नाटक छ: दृश्यों में प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक पर विशेष चर्चा इस प्रकार है-

प्रस्तुत नाटक 'मानवता की पुकार' अपने आप में वर्तमान समय में हमें विगत कई वर्षों से हो रही आतंकवादी गतिविधियों से न केवल परिचित करवाता है बल्कि आतंकवादी हमले के तदुपरांत पैदा हुई स्थितियों में भारतवासियों के चरित्र को भी इंगित करता है। नाटक का सारा घटनाक्रम राजस्थान के भूमण्डल पर रचा गया है जबकि इसकी मूल संवेदना हमारे पूरे भारत वर्ष की पृष्ठभूमि को दर्शाती है। नाटक के पहले दृश्य में हमें भारत की विविध प्रकार की संस्कृति में व्याप्त एकता, अखण्डता व भाईचारे की सच्ची तस्वीर दिखाई देती है। 'सब धर्मों का हुआ समागम नहीं कोई अलगाव' जैसी पंक्तियां इसी पर पूरी तरह से लागू होती हैं।

* असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग, एस.यू.एस. राजकीय कॉलेज, सुनाम (संगरूर)

नाटक के दूसरे दृश्य में राजस्थान के गौरव व इतिहास के माध्यम से भारतीय संस्कृति के आधार स्तम्भों को चरितार्थ करने का प्रयत्न किया गया है। जहाँ अमर सिंह राठौर और नरसेबाज पठान वायदा पूरा करने हेतु जीवन दांव पर लगाने की बात, हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रतीक रानी व हुमायूं का भाई-बहिन का रिश्ता आदि कई उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। साथ ही इस देश की एकता, अखण्डता व भाईचारे को दीमक की तरह चाट कर खोखला करने हेतु उत्तर-आधुनिकता के गर्भ से पनपे युग परिवर्तन जैसे स्वार्थी मंतव्यों के प्रति भी चिंता प्रकट की गई है।

तीसरा दृश्य नाटक को उसके उद्देश्य की ओर ले जाने के लिए उठाया गया पहला कदम कहा जा सकता है। इस दृश्य में आतंकवादी संगठन के चीफ व उसके सदस्यों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है कि आतंक फैलाने वालों का कोई धर्म नहीं होता। उनका सिर्फ एक लक्ष्य होता है जिसे वे हर कीमत पर पूरा करना चाहते है। 'हिन्दू धर्म की अस्मिता, संस्कृति और नैतिकता के ढोंगी उपदेश, मुस्लिम धर्म के व्यक्ति के साथ छल, सिक्ख धर्म के व्यक्ति के साथ अलगाव की भावना, ईसाई का अलग-थलग पड़ना' [1] आदि जैसे वे मुद्दे हैं जिनका सहारा लेकर इन धर्मों के व्यक्ति स्वयं द्वारा आतंकी गतिविधियों में शामिल होने को सही ठहराते दिखाई देते हैं। वास्तव में आतंकवाद की यह दुकान विदेशियों द्वारा भारत की एकता, अखण्डता व भाईचारे की भावना को चूर-चूर करने हेतु चलाई गयी एक ऐसी योजना है जिसका शिकार होकर भारत प्रगति की राह पर पीछे रह जाएगा। इन विदेशी आकाओं के आदेश पूरा न कर पाने की चिंता भी इसी दृश्य में आतंकवादी संगठन के चीफ को विचलित कर देती है। उसका यह कहना कि, 'विदेशी संगठनों को क्या जवाब देंगे? टारगेट का क्या होगा? पिछली मीटिंग में सुपरबॉस ने तगड़ी खिंचाई की थी। स्टेटमैंट के आधार पर रिव्यू किया गया था। हमारी गतिविधियों का, और इस तिमाही में एक हजार हिन्दुस्तानियों को बम बलास्ट से उड़ाने का टारगेट दिया गया था हमें, और वह भी मजहबी हमला साबित करके ताकि हमारे आका लोग हिन्दुस्तान में धर्म, जाति, सम्प्रदाय के नाम पर फुट डालने में कामयाब हो सकें।' [2] जहाँ उसकी वास्तविक चिंता दर्शाता है, वहीं इन संगठनों के उद्देश्यों से भी पर्दा उठाता है। इस दृश्य का अंत होते-होते शहर में बम ब्लास्ट की पूरी योजना का खाका तैयार कर लिया जाता है तथा यह भी तय किया जाता

है कि उसे जातीय व साम्प्रदायिक हमले का रंग देकर प्रस्तुत किया जाएगा।

चौथे दृश्य में विशेष रूप में सिलसिलेवार बम धमाकों को दर्शाया गया है। कुछ ही मिनटों में अलग-अलग स्थानों पर बम धमाकों के होने तथा कई मौतें व कई घायल व्यक्तियों को चरितार्थ किया गया है।

पाँचवें दृश्य में मुख्य रूप से बम धमाकों के पश्चात् लोगों में व्याप्त भाईचारे को विशेष रूप से उकेरा गया है। बम धमाकों में घायल व पीड़ित व्यक्तियों की सहायता वहां के लोग अपना धर्म, जाति आदि सब भूलकर केवल मानव होकर करते दिखाई देते हैं। इस दृश्य में मानवता का सच्चा रूप हमें इन लोगों में स्पष्ट देखने को मिलता है जो कि सहायता के लिए स्वयं को आगे लेकर आते हैं और सही अर्थों में यही वे लोग हैं जो हमारे जीवन को सही मार्ग दर्शन प्रदान करते हैं। इसी दृश्य में एक समाचार चैनल को आधार बनाकर मीडिया के क्षेत्र में बैठे व्यवसायी वर्ग की घिनौनी शक्ल से भी बनावटी मुखौटा नोचा गया है। वहीं प्रशासन व सरकार की तरफ से दी जा रही तत्कालीन सहायता को विशेष रूप से उकेरा गया है। आपसी भाईचारे का एक उदाहरण तब मिलता है, जब अलग-अलग धर्मों के, जातियों के व आयु के लोग अपने-अपने ढंग से सहायता देने का कार्य करते हैं-

'मुस्लिम महिला	:	हम घर-घर जाकर खाना पकायेंगी।
हिन्दू महिला	:	हम असहाय बच्चों और घायलों की देखभाल करेंगी।
सरदार	:	और हम घायलों के परिवारों को हौसला देंगे।
चार-पाँच नवयुवक:		हम घायलों को अपना खून देंगे।' [3]

नाटक के छठे व अंतिम दृश्य में अस्पताल के अंदर और बाहर के घटनाक्रम को आधार बनाकर लोगों में व्याप्त एकता व भाईचारे को विशेष रूप से दर्शाने का प्रयास किया गया है। 'अस्पताल के अंदर के सभी बैड पूरे हो गये हैं परन्तु जनसहयोग एवं अस्पताल प्रशासन के सहयोग से अस्पताल के बरामदे एवं छतों पर भी बिस्तर लगाकर घायलों का उपचार किया जा रहा है। उस संकट की घड़ी में स्वयंसेवकों एवं समाजसेवी संस्थाओं के सहयोग से घायलों की हर संभव सहायता की जा रही है। घायलों को खून देने हेतु

विद्यार्थियों, युवाओं, स्त्री एवं पुरुषों में होड़ चल रही है, वहीं डाक्टर, नर्स और कम्पाउण्डर घर-बार जाना भूलकर घायलों के उपचार मे लगे हुए हैं।' [4] इसके अतिरिक्त हिन्दू बुजुर्ग, मुस्लिम महिला, दो बच्चों, नौजवानों आदि द्वारा खून दान के लिए आना, खाना लाना, व्यापारी वर्ग द्वारा चंदा भेंट करना आदि भारतीय समाज की एकता, सौहार्द्र की और संकेत करते हैं। सरकार द्वारा मृतक के पारिवारिक सदस्य को पाँच लाख देने की घोषणा की जाती है। इस दृश्य व नाटक का अंत होते-होते नाटककार यह संदेश देता है कि जब तक एकता, अखण्डता व भाईचारा कायम रहेगा तब तक हम आतंकवाद के मुँह पर तमाचा जड़ते रहेंगे।

इसके अतिरिक्त इस नाटक को नाट्य तत्वों के आधार पर भी परखा जा सकता है। यह सर्वमान्य है कि नाटक शब्द की उत्पत्ति नट् धातु से हुई है, जिसका अर्थ है - अभिनय। नाटक एक दृश्य काव्य है। इसकी रचना करते समय रंगमंच की सीमाओं और नियमों को विशेष रूप से ध्यान में रखा जाना अनिवार्य है। वस्तुत: इन बातों को ध्यान में रखकर जो नाटक लिखे गये हैं, वे सफल व उत्कृष्ट माने गए हैं। संस्कृत में नाटक को दृश्य-काव्य इसलिए कहा गया है ताकि इसका प्रत्येक दृश्य रंगमंच पर अभिनीत हो सके तथा एक सफल नाटक की यह पहचान है कि उसके सजीव एवं यथावत अभिनय करने में कोई बाधा न आए। प्रस्तुत नाटक को निम्न प्रकार से इसी कसौटी पर परखा जाएगा।

अभिनय नाटक के लिए उसका कथानक तीन-चार घण्टों से कम समय से प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है। दृश्यों की सीमित संख्या के कारण प्रस्तुत नाटक समयावधि को ध्यान में रखकर लिखा गया है परन्तु साथ ही यह बात भी स्मरणीय है कि नाटक में घटनाओं की संख्या की अधिकता व भीड़-भरे बाजार आदि दृश्यों के कारण कई जटिलताएँ भी देखने को मिलती हैं। फिर भी यदि इस नाटक को रंगमंच पर प्रस्तुत करना चाहें तो इसके कथानक को कुछ संशोधित करके प्रस्तुत किया जा सकता है। विविधताओं से भरे दृश्य होते हुए भी इस नाटक का कथानक काफी रोचक और प्रासंगिक है।

एक सफल नाटक हेतु उसके पात्रों की संख्या कम से कम होनी अनिवार्य है क्योंकि पात्रों की अधिकता से रंगमंच पर अभिनय प्रस्तुत करने

में कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। अधिक पात्रों की संख्या से वेशभूषा, प्रशिक्षण आदि जैसी कई बातों के कारण काफी जटिलताएँ उत्पन्न हो जाती हैं। इस दृष्टि से प्रस्तुत नाटक काफी सीमा तक त्रुटिहीन है। पाँचवें व छठे दृश्य में पात्रों की संख्या में जो गौण पात्रों की बढ़ोतरी हुई है, उसे रंगमंचीय पद्धति के प्रयोग से सरल बनाया जा सकता है। हालांकि इतना करने पर भी पात्रों की संख्या पंद्रह से बीस तक रह जाती है परन्तु यह पात्र अलग-अलग स्तर व दृश्य में स्वयं को प्रस्तुत करते हैं जिस कारण अभिनय करने में मुश्किलें नहीं आएंगी। नट और नटी इस नाटक में कई बार नरेटर जैसा कार्य करते भी दिखाई देते हैं।

नाट्य-शास्त्रकारों ने रंगमंच को ध्यान में रखकर अभिनय पर जो अपने विचार-प्रस्तुत किये हैं, उनमें संकलनत्रय को महत्वपूर्ण बताया गया है। यह संकलन है देश, काल और वातावरण का। नाटककार को यह ध्यान रखना होता है कि घटनाओं और प्रसंगों को घटित होने में कितना भी समय क्यों न लगे, परन्तु उन्हें रंगमंच पर इस प्रकार प्रस्तुत करें कि घटनाओं और प्रसंगों के बीच का अंतराल श्रोताओं को अनुभव न हो। नाटक में आदि से अंत तक कथानक एक निर्वाह व बाधाहीन होना भी अनिवार्य है। किसी कारण भी प्रासंगिक कथा अधिकारिक कथा के विकास में बाधा न बने। नाटककार कैलाशचंद्र ने प्रस्तुत नाटक में इस बात को पूरी तरह से ध्यान में रखा है कि नाटक में नट, नटी का प्रवेश सदैव अधिकारिक कथानक को विकास की ओर ही ले जाता है। जहाँ तक समय व वातावरण से सम्बंधित बात है तो यह स्पष्ट है कि इस नाटक का कथानक ज्यादा पीछे का समय नहीं दिखाता। हम तो यह भी स्वीकार कर सकते हैं कि यह कुछ समय पूर्व की घटनाओं अथवा वर्तमान को आधार बनाकर लिखा गया है। वातावरण के अंतर्गत सीमापार का दृश्य, भीड़-भरा बाजार व अस्पताल आदि जैसे दृश्यों को रंगमंच की सीमा को ध्यान में रखकर अनुकूल बनाया जा सकता है।

एक सफल नाटक हेतु उसमें संवाद की भूमिका को महत्वपूर्ण माना गया है। नाटक की सफलता के लिए छोटे-छोटे संवादों का होना अनिवार्य है। संवाद पूरे नाटक को सफल बनाने में इसलिए भी सहायक सिद्ध होते हैं क्योंकि इसमें एक तो पात्रों के चरित्र की पूरी जानकारी मिलती है दूसरा यह कथानक के विकास को गतिमान बनाते हैं जिस कारण संवाद की महत्ता भी

स्पष्ट होती है। संवाद की दृष्टि से हम प्रस्तुत नाटक को सफल स्वीकार करेंगे क्योंकि इस नाटक के संवाद प्राय: सरल, स्वाभाविक, संक्षिप्त तथा पात्र, घटना व प्रसंग के अनुकूल बन पड़े हैं परन्तु साथ ही दूसरे दृश्य में पार्श्व गीत, तीसरे दृश्य में चीफ का संवाद आदि कुछ कठिन अवश्य हैं पर उन्हें रंगमंच के अनुकूल बनाकर प्रयोग में लाया जा सकता है।

नाटक में भाषा का विशेष महत्व होता है। आचार्य भरतमुनि ने यह कहा है कि नाटक में बलपूर्वक खोजकर अलंकारों का विधान नहीं करना चाहिए अन्यथा भाषा क्लिष्ट, अस्वाभाविक व दुरूह बन जाएगी। कैलाशचन्द्र इस बात से भली-भांति परिचित दिखाई देते हैं जिस कारण उन्होंने नाटक की भाषा हिन्दी का वह रूप अपनाया है जो सर्वमान्य है परन्तु साथ ही साथ अंग्रेजी व उर्दू भाषा के कई शब्दों का प्रयोग भी किया है। जैसे उर्दू में मंसूबों, हिन्दुस्तान, खिलाफ़, इस्तेमाल, उसूलों, ईमान, कौमी, मजहबी आदि।
अंग्रेजी में - चीफ़, टारगेट, चार्टर, रिव्यू, मीटिंग, सुपरबॉस, बम ब्लास्ट, टाईमबम, रॉक सिटी, स्पेशल बुलेटिन आदि।

दृश्य दो में जो गीत प्रस्तुत किया गया है, वह राजस्थान की स्थानीय संस्कृति को अपने कलेवर में समेटे हुए है। नाटक की मूल भाषा हिन्दी ही है।

प्रस्तुत नाटक में वर्तमान व विगत के कुछ दशकों की एक गंभीर समस्या को उकेरा गया है परन्तु नाटककार का उद्देश्य इस समस्या के माध्यम से हमें आपसी भाईचारे, अखण्डता, एकता को बचाये रखने हेतु प्रेरित करना है। हालांकि यदि भारतीय परिदृश्य पर घटित ऐसी आतंकवादी घटनाओं पर ध्यान दिया जाए तो कुछेक बातें ऐसी भी मिलेंगी जोकि अलगावद की ओर गौण रूप से संकेत करती है परन्तु इतना होने पर भी समाज में आपसी भाईचारे को कायम रखने की एक कोशिश इस नाटक के पात्रों द्वारा की गई है जो कि मूल रूप से इस नाटक का उद्देश्य बन पड़ी हैं।

रंगमंच पर प्रत्येक दृश्य का विधान सकंलन रूप से किया जाता है। इसी कारण प्रत्येक दृश्य को ध्यान में रखकर पृथक-पृथक पर्दों व दृश्य के अनुसार सामान आदि की व्यवस्था भी करनी पड़ती है। इससे एक बात तो स्पष्ट है कि जितने अधिक दृश्य होंगे उतनी ही रंगमंचीय व्यवस्थाएँ भी बढ़ जाएंगी। प्रस्तुत नाटक में कुछ दृश्य अत्यधिक संक्षिप्त हैं परन्तु यदि इन दृश्यों

को हटा दिया जाए तो नाटक की संवेदना व लयात्मकता समाप्त हो जाएगी। इस नाटक को पूरे दृश्यों के सामान के साथ प्रस्तुत करने हेतु एक योग्य निर्देशक की अनिवार्यता को नकारा नहीं जा सकता। यह बात भी अति-आवश्यक है कि पार्श्वगीत व टिप्पणियाँ हेतु पर्दे के पीछे प्रयोग लाई जाने वाली पद्धतियों का सहारा भी लिया जा सकता है। शेष सब समय-सीमा पर विशेष रूप से निर्भर करता है।

यदि ध्यान से देखा जाए तो ज्ञात होता है कि यह नाटक राजस्थान के एक अंचल विशेष को आधार बनाकर पूरे भारतीय समाज की उस तस्वीर को प्रस्तुत करता है जो कि हमारी एकता, अखण्डता व भाइचारे की प्रतीक है। यही नहीं यह साथ ही साथ इस माध्यम से लोगों को गौण संदेश भी प्रेषित करता है जिसका तात्पर्य है कि हम चाहे किसी भी जाति, धर्म व समुदाय के हों, ऐसी मुसीबत के समय हम केवल मानव हैं। यह कहना गलत न होगा कि वास्तव में हम इतने आतंकवादी हमलों के बाद भी यदि साथ-साथ हैं तो यह हमारी एकता ही है, हमारी अखण्डता ही है, हमारा भाईचारा ही है, जो हमें एक सूत्र से पिरोये हुए है। नाटकीय तत्वों के आधार पर भी यह एक सफल नाटक बन पड़ा है। हाँ, कुछ स्थानों पर इसे प्रस्तुत करने में कठिनाईयां आ सकती हैं परन्तु इतना होने पर भी यह एक सफल व सार्थक नाटक है, इस बात को नकारा नहीं जा सकता। संक्षेप में कहें तो यह नाटक हमारी एकता, अखण्डता व भाईचारे के परिपक्व रूप को दर्शाने का प्रयास है। कैलाशचंद्र शर्मा द्वारा रचित यह प्रासांगिक नाटक उन्हें बधाई का पात्र बनाता है।

संदर्भ :

1. कैलाशचन्द्र शर्मा, मानवता की पुकार, पृष्ठ 28-30
2. वही, पृ. 32
3. वही, पृ. 40
4. वही, पृ. 41

❑❑❑

7

वीर शिरोमणि पृथ्वीराज चौहान : नाट्य तत्व

डॉ. सुनील दत्त

नाटक मानव जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने वाला श्रेष्ठतम साहित्य रूप है। नाटक एक समन्वित सृष्टि है। जीवन के लगभग हर क्षेत्र को नाटक का विषय बनाया जा सकता है। हमारी ज़िन्दगी भी एक नाटक है जो जन्म से शुरू होकर मृत्यु तक चलता रहता है। 'नाटक साहित्य की सर्वोत्तम विधा है।' [1] वस्तुत: नाटक में सभी कलाओं का एक साथ समाहार हो जाता है। नाटक में एक ही समय में विभिन्न रूचियों तथा भिन्न-भिन्न वर्गों के लोगों को प्रसन्न करने की शक्ति विद्यमान रहती है। 'नाटक में ज़िन्दगी के बीते हुए अनुभव क्षण व्यतीत न रहकर वर्तमान के रह जाते हैं।' [2] नाटक अन्य कलाओं की अपेक्षा वस्तुवादी तथा सम्प्रेषणीय है। नाटक का कार्य व्यापार व्यक्ति का अनुकरण नहीं जीवन का प्रस्तुतीकरण है। हमारे सामने रोज की समस्याएं हैं, उनका विवेचन और समाधान करने में ही नाटक की उपयोगिता है। मानवीय कार्य व्यापारों की सशक्त अभिव्यक्ति नाटकों में होती है। नाटक के पात्र विभिन्न हावभावों का अभिनय कर पाठक या दर्शकों के हृदय पर अमिट छाप छोड़ते हैं। सफल नाटककारों में समय की पकड़ बड़ी जबरदस्त होती है। युग की नव्य संवेदना की अभिव्यक्ति के लिए कविता और कहानी जितना सशक्त माध्यम नाटक और रंगमंच होता है। सामूहिकता की कला होने के नाते नाटक का सम्पर्क अपने युग जीवन के प्रत्यक्ष रहता है। नाटक अपने युग का बैरोमीटर कहा जाता है।

'वीर शिरोमणि पृथ्वीराज चौहान कैलाशचन्द्र शर्मा का एक ऐतिहासिक नाटक है जो तमाशा शैली में रचा गया है। देश के शूरमाओं के त्याग, बलिदान, है।' [3] इस नाटक को लिखने की प्रेरणा लेखक को 'जयपुर तमाशा' शैली

* सहायक प्रोफेसर, राजकीय महाविद्यालय, इसराना (पानीपत)

के कलाकारों से मिली और इस शैली में लिखी लेखक की यह प्रथम रचना है।

'तमाशा शैली एक विशिष्ट नाट्य शिल्प है, जिसमें संगीत की गायिकी और तालबद्धता के साथ-साथ सूत्रधार द्वारा कथानक को प्रस्तुत किया जाता है।' [4]

'वीर शिरोमणि पृथ्वीराज चौहान' की कथा-वस्तु ऐतिहासिक वीर पृथ्वीराज चौहान के जीवन से सम्बन्धित है और नाटक का मुख्य पात्र भी यही है। 'इस नाटक में मैंने वीर शिरोमणि के रूप में पृथ्वीराज चौहान को प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति प्रदान कर राजपूतों की वीरता, क्षमाशीलता, क्षात्र धर्म के पालनार्थ वीरों की युद्ध में आहूत होने की तीव्र उत्कण्ठा, वीर माताओं द्वारा इस हेतु अपने पुत्रों को दिया गया प्रोत्साहन, देश और कौम के सांस्कृतिक मूल्यों की विद्यमानता, वीर-पुत्रियों द्वारा वीरता का वरण, चाकरों की भक्ति एवं देशद्रोहियों की राष्ट्र विरोधी भावना आदि से वर्तमान पीढी को साक्षात्कार कराने का लघु प्रयास किया है।' [5]

लेखक ने कथा का आधार जन प्रचलित कथा को ही बनाया है। नाटक की कथावस्तु सीधी-सादी तथा प्रसिद्ध है। नाटक अठारह दृश्यों मे बाँटा गया है। इसके पाँच दृश्य उस्ताद, जमूरा तथा कजरी से सम्बन्धित हैं जो नाटक के सभी दृश्यों को जोड़ने का काम करते हैं। इन पात्रों में उस्ताद सूत्रधार के पात्र का निर्वाह करता है तथा जमूरा और कजरी कथा को आगे बढाने में उस्ताद का साथ देते हैं। ये तीनों पात्र पूर्णत: काल्पनिक हैं। इन्हीं पात्रों के माध्यम से हास्य रस की उत्पत्ति भी होती है-

उस्ताद : जमूरे!

जमूरा : क्या है उस्ताद?

उस्ताद : वो बजरी कहाँ है?

जमूरा : बजरी! उस्ताद बजरी का तुम क्या करोगे! ..... चलो हम सुबह ही गाड़ी वाले को कह देंगे बजरी के लिए।

उस्ताद : अबे मैंने तो उस लड़की के बारे में पूछा है और तू अनर्गल बके जा रिया है।

जमूरा : (ताली मारते हुए) - अरे वो लड़की! अबे उस्ताद वो बजरी

नहीं है, उसका नाम कजरी है कजरी।

इस प्रकार से उस्ताद, जमूरा तथा कजरी नाम के पात्र नाटक को 'तमाशा' शैली से जोड़ते हैं तथा कथावस्तु को क्रमश: आगे बढाते हुए पाठक या दर्शक को जोड़े रखने में सफल रहते हैं, जो किसी भी नाटक का विशेष गुण माना जाता है। इसके अतिरिक्त आठ दृश्य नाटक की मूल कथावस्तु है जो प्रसिद्ध इतिहास वीर पृथ्वीराज चौहान के जीवन से सम्बन्धित है। पृथ्वीराज चौहान दिल्ली का अन्तिम राजपूत सम्राट माना जाता है। उसका संयोगिता के लिए पंगुराज जयचंद से युद्ध हुआ इस युद्ध में जयचंद पराजित हुआ। जयचंद अपनी हार का बदला लेने के लिए मोहम्मद गौरी को चौहान पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित करता है और पृथ्वीराज को पराजित करके बंदी बनाकर अपने साथ कंधार ले जाता है। वहां पृथ्वीराज को अंधा करके कारावास में बंद कर दिया जाता है। पृथ्वीराज चौहान का मन्त्री तथा मित्र, जो एक कवि भी था वेश बदलकर गौरी के दरबार में पहुंचता है और बादशाह के सामने बंदी पृथ्वीराज चौहान की शब्द बेधी बाण चलाने की विद्या की प्रशंसा करता है। पृथ्वीराज चौहान को दरबार में लाया जाता है और शब्द बेधी बाण चलाने के लिए कहा जाता है। कविचन्द एक कविता के माध्यम से मोहम्मद गौरी की ओर इशारा करते हैं-

चार बाँस चौबीस गज, अंगुल अष्ट प्रमाण
ता ऊपर सुल्तान है, मत चूके चौहान।

पृथ्वीराज इस अनुमान के आधार पर तीर चला देते हैं जो सीधा मोहम्मद गौरी को जाकर लगता है। वहाँ उपस्थित लोगों एवं सैनिकों में भगदड मच जाती है। इस अवसर का लाभ उठाकर पृथ्वीराज और कविचन्द एक दूसरे को कटार मारकर इस लोक से प्रयाण कर जाते हैं।

'वीर शिरोमणि पृथ्वीराज चौहान' में कुल अठारह पात्र हैं जिनमें तीन स्त्री पात्र हैं। नाटककार ने सूत्रधार (उस्ताद) और जमूरा तथा कजरी पात्रों के द्वारा कथानक के सूत्र जोड़ने का काम लिया है, किन्तु ये नाटक के मूल पात्र नहीं केवल परिचायक पात्र हैं। पात्र तो पन्द्रह ही हैं जिन पर कथानक का ढाँचा निर्भर है। पात्रों में पृथ्वीराज चौहान, संयोगिता, शाहबुद्दीन गौरी, जयचन्द, कविचन्द, जोधमल, धाय माँ, कमास/ धर्मायण, सैनिक, ताहर, दूत, रामसिंह, मंत्री, राजभट्ट, चोबदार आदि हैं। इनमें से मूल पात्र पृथ्वीराज चौहान, संयोगिता, शाहबुद्दीन गौरी,

जयचन्द, कविचन्द हैं जिनके पात्रों में विशिष्टता दिखाई देती है और अन्य पात्र नाटक के आरम्भ से लेकर अंत तक पात्र बने रहते हैं चरित्र नहीं बन पाते। नाटककार ने इन्हीं चरित्रों के माध्यम से अपने कथ्य को स्पष्ट किया है। इन्हीं चरित्रों में नाटकीय उतार-चढाव दिखाई देते हैं और ये ही पाठक/ दर्शक पर स्थायी प्रभाव छोडते हैं।

पृथ्वीराज चौहान नाटक का नायक है। सभी पात्रों में वह नायक होने का अधिकारी है, क्योंकि नायक होने की सभी शर्तें वह पूरी करता है। नायक वह पात्र होता है, जो पूरे कथानक की धुरी होता है, सारा घटनाक्रम जिसके चारों ओर घूमता है, जो नाटक के उद्देश्य और कथ्य को पूरा करता है और जो अन्य सभी पात्रों को प्रभावित करता है। इस नाटक का आरम्भ पृथ्वीराज चौहान के दरबार से होता है जो देश की रक्षा के लिए चिन्तित है और अपने दरबारियों से इस विषय में मन्त्रणा कर रहा है- 'राज-शासन संभालने से पहले मेरी दो बातें याद रखना पुत्रवर। एक तो यह कि प्रजा पालन में अपने प्राणों की आहूति देकर भी प्रजा की रक्षा करना, दूसरे अपने देश की रक्षा करने में देश के शत्रु से कभी मत डरना। कभी मत डरना।'[8] और अन्त में देश के दुश्मनों से लडता हुआ वीरगति को प्राप्त हो जाता है। नाटक के अन्य सभी पात्र पृथ्वीराज चौहान के निर्देशों का पालन करते हैं। और केन्द्रीय पात्र चौहान के अलावा कोई नहीं इसलिए पृथ्वीराज चौहान ही इस नाटक का नायक है।

नाटक में संयोगिता नारी पात्रा है जो पृथ्वीराज चौहान से प्रेम करती है परन्तु उसका पिता जयचन्द पृथ्वीराज चौहान से वैर भाव रखता है। जयचन्द संयोगिता का स्वयंवर रचाता है, देश के सभी राजाओं को स्वयंवर में निमन्त्रित करता है किन्तु पृथ्वीराज चौहान को बुलावा नहीं भेजता। पृथ्वीराज चौहान का अपमान करने के लिए उसका पत्थर का बुत बनवाकर द्वार पर लगा देता है। संयोगिता एक सच्ची प्रेमिका है, जो पत्थर की मूर्ति को ही वरमाला पहना देती है। इस प्रकार संयोगिता नाटक की दूसरी पात्रा है जो कथावस्तु को आगे बढाती है। जयचन्द, चन्द और मुहम्मद गौरी नाटक को आगे बढाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। धाय माँ, कमास राजभट्ट, नख्तरखान, ताहर आदि पात्रों की गौण भूमिकाएं हैं।

कैलाशचन्द्र शर्मा एक अनुभवप्राप्त लेखक हैं, इसलिए नाटक में संवादों से भली भंति परिचित हैं कि नाटक में संवाद कथा और चरित्र-विकास

की दृष्टि से बहुत आवश्यक होते हैं। संवाद की बैसाखियों पर ही नाटक तन्त्र खड़ा और अग्रगामी होता है।

'वीर शिरोमणि पृथ्वीराज चौहान' के संवाद कथा, चरित्र, घटना प्रवाह, वातावरण निर्माण और नाटककार के उद्येश्य को स्पष्ट करने में सहायक हुए हैं। कथा विकास के लिए नाटककार ने संवाद को 'तमाशा शैली' आदि प्रयोगों से जोड़ा है। सूत्रधार और दो पात्र (जमूरा, कजरी) अपने गीतों और गद्यात्मक संवादों से नाटक के कथा संकेत देते हैं, वातावरण का निर्माण करते हैं और बीच में कथा सूत्रों को जोड़ते हैं-

'**उस्ताद** : धत् तेरे की। तू पृथ्वीराज चौहान को नहीं जानता।
तू जानती है कजरी पृथ्वीराज चौहान कौन है?

कजरी : मैं क्या जानूँ। मैं तो वहाँ जंगल में रहती हूँ। मेरे बापू तो मुझे शहर में ले ही नहीं जाते हैं किसी से मिलाने। फिर मैं क्या जानूँ। पृथ्वीराज चौहान कौन है?

उस्ताद : धत् तेरे की। कैसे बच्चे हो तुम लोग, अरे अपने देश के इतिहास को नहीं जानते। ऐसे प्रतापी राजा को नहीं जानते जिसके लिए राजस्थान का इतिहास गर्व से सीना ताने विश्व में अपनी विशिष्ट पहचान रखता है।

जमूरा : हम तुम्हारी बड़ी-बड़ी बातों को नहीं समझ पा रहे हैं उस्ताद।

कजरी : हमें तो कुछ इस प्रकार बताओ कि हम आसानी से समझ जाएं कि पृथ्वीराज चौहान कौन है?

उस्ताद : अजयमेरू अधिपति हुए, श्री सोमेश्वर नाम,
शौर्य-कीर्ति कम नहीं, जाने सब संसार।
दिल्ली के राजा हुए, अनंगपाल बलवान,
युद्ध हुआ कन्नौज से, इनका जब हर बार।
सोमेश्वर के साथ से, मिली विजयश्री आज,
क्योंकर इसको भूलते, राजा अनंगपाल।
हीरे के थे पारखी, लिया उसे अपनाय,
पुत्री कर्पूर से किया, सोमेश्वर का विवाह।
कर्पूर ने दिया, पृथ्वीराज को जन्म,

दिल्ली पूरे राज्य में, चहुँ ओर आनन्द।'[9]

रागात्मक संवादों में कथानक को जोड़ते हुए आगे गाते हैं-

' आठ वर्ष का जब हुआ, बालक पृथ्वीराज,
सोमेश्वर ने दे दिया, उसको अपना राज्य।
यही शत्रुता का बना, कारण जयचन्द साथ,
पृथ्वीराज राजा बने, उसको कहां सुहाय।
उन दोनों की शत्रुता, देश हुआ बर्बाद,
मुहम्मद गौरी को मिला, इस अवसर का लाभ।
ता थै थै तत, आ थै थै तत, तत तत थै,
तत तत थै , तत तत ता.....'[10]

पृथ्वीराज चौहान के संवादों से उसकी वीरता तथा राष्ट्रभक्ति का चरित्र सामने आता है-

' **पृथ्वीराज** : तुम्हारा वचन सत्य है वीरवर। तुम ठीक कहते हो। परन्तु मानव धर्म यह बताता है कि बहादुर योद्धा क्षमादान से ही कीर्ति पाता है बहादुर के लिए याचक को दण्ड़ देना उचित नहीं। और फिर इस बार तो उसने ऐसी मात खाई है कि यदि मनुष्य होगा तो चुल्लू भर पानी में डूब मरेगा पर फिर कभी इधर मुँह उठाकर भी नहीं देखेगा।'[11]

इस प्रकार से चन्द के संवादों से उसके कवि हृदय की प्रतीति होती है। जयचन्द और मुहम्मद गौरी के संवाद उनकी क्रूरता, उसके छलछद्म और अहंकार को सूचित करते हैं तो भट्ट, दूत, सैनिक जैसे पात्र अपने-अपने कर्तव्य-कर्म के अनुसार संवाद बोलते हैं। नाटक के सभी संवाद वातावरण और परिस्थिति के अनुसार उचित हैं।

इस नाटक की भाषा मिश्रित है। पात्रों के संवादों में तत्सम, तद्भव, देशज और फारसी के मूल शब्दों का मिश्रण है। नाटककार को रंगमंचीय अनुभव है और इस अनुभव का फायदा लेखक ने नाटक के लिए सरल भाषा का प्रयोग करके किया है, जिससे नाटककार दर्शक और पाठक तक अपनी संवेदना सफलतापूर्वक पहुंचा सके। मंचीय दृष्टि होने के कारण इसके संवादों की काव्य रचना संक्षिप्त और सरल है तथा विस्तार और जटिलता बहुत कम स्थलों पर

मिलते हैं। जब लेखक 'तमाशा शैली' का प्रयोग करता है तो शैली के अनुरूप भाषा का प्रयोग करता है इस प्रयोग में अंग्रेज़ी के शब्द भी आ जाते हैं–

'**उस्ताद** : (रुआंसा होकर) – चलो हटो, अब मेरा मूड खराब हो गया। अब मैं नहीं दिखाता नाटक–वाटक।' [12]

'**कजरी** : अरे उस्ताद, कितना मजा आ रहा था स्टोरी में

जमूरा : स्टोरी नहीं बे इस्टोरी' [13] इस प्रकार से सूत्रधार सम्बन्धी संवादों में भाषा इतनी साधारण हो जाती है कि एक आम–आदमी की भाषा कही जा सकती है। ये संवाद सड़कों पर होने वाले मदारी के तमाशे की याद दिला देते हैं। मुहम्मद गौरी के संवादों में फारसी शब्दों का सुन्दर प्रयोग मिलता है जिसके कारण गौरी के संवाद स्वाभाविक हो जाते हैं–

'**शाहबुद्दीन** : मैं आपके पैगाम और हमदर्दी का शुक्रगुजार हूँ राजा साहब। आपने हमें जो सहयोग दिया है एवं गजनी पर जो एहसान किया है उससे गजनी का बच्चा–बच्चा आज आपका एहसानमन्द रहेगा महाराज।

जयचन्द : (झेंपते हुए) यह तो आपकी जर्रानवाजी है आलीजाह जो आप इस नाचीज की शान में चार चाँद लगा रहे हैं।

जयचन्द : अगर गुस्ताखी माफ हो आलीजाह, तो अपने दरम्यान जो शर्तें तय हुई थी उनको एक बार फिर दोहराना चाहता हूँ।' [14]

भाषा प्रयोग के मामले में नाटककार की सफलता इस बात में देखी जा सकती है कि उसने कोमल और भावुक प्रसंग के अवसरों पर कोमलकांत पदावली का प्रयोग किया है, तो शौर्य और उत्साह के अवसरों पर उनकी भाषा में ओजगुण भर गया है–

'**पृथ्वीराज** : हे भारत भूमि के वीर योद्धाओ! आज तुम्हारी परीक्षा का समय आ गया है। आज वह कायर शाहबुद्दीन फिर युद्ध के लिए आ गया है जिसको अनेक बार दया करके हमने जीवनदान दिया। परन्तु इस बार उस देशद्रोही जयचन्द ने उसको सैनिक सहायता दी है इसलिए वीरो यह युद्ध हमें बहादुरी से लड़ना है और उन दोनों को सबक सिखाना है।' [15] नाटककार ने प्रसंगानुसार नाटक में विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया है। पद्य में लगभग तुकान्त शैली का उपयोग मिलता है। नाटक का प्रमुख रस वीर रस रहा है इसके साथ–साथ हास्य रस का उपयोग भी मिलता है। ' [15]

'वीर शिरोमणि पृथ्वीराज चौहान' के रचयिता कैलाशचन्द्र शर्मा रंगमंच के सभी पहलुओं से जुड़े सक्रिय अभिनेता और नाटककार हैं, इसलिए इन्होंने हिन्दी नाटक को ध्वनि, प्रकाश और दृश्यबंध के सफल समन्वय के साथ रंगमंच पर प्रस्तुत करने की दिशा में सुविचरित कदम उठाया, इसीलिए नाटकीय प्रयोगधर्मिता रंगमंच के सन्दर्भ में विशेष रूप से उभरी है। इस नाटक में कथ्य की तरह मंच भी प्रयोगात्मक है क्योंकि युद्ध आदि के दृश्य मंच पर प्रस्तुत करना कठिन होता है परन्तु नाटककार ने इस नाटक के युद्ध सम्बन्धी दृश्य बड़ी कुशलता से सूत्रधार द्वारा पद्यात्मक शैली में कहलवा दिये हैं यथा–

'धावा किया गौरी ने यों फिर जाय पृथ्वीराज पर।
देश का गद्दार जयचन्द साथ था अभियान पर॥
आ डटे थे युद्ध में तब पृथ्वीराज चौहान भी।
दूर तक था ना अंदेशा युद्ध का विश्वास भी॥
ऐसा हुआ घनघोर मर्दन युद्ध के मैदान में।
देखा नहीं ना ही सुना ऐसा समर संसार में॥
पर क्या करें जब देश में गद्दार पैदा हो गए।
सब और थे निश्चिन्त हो रंग राग में थे खो गए॥
जयचन्द द्रोही देश का, था साथ गौरी का दिया।
लड़कर मिटे चौहान योद्धा, साथ स्वामी का दिया॥
पृथ्वीराज चौहान तो भी , युद्ध करता ही रहा।
नि:शस्त्र होकर भी वह, उत्साह से लड़ता रहा॥
पर अन्त में बन्दी बना, गौरी उसे लेकर चला।
गजनी चलें बन्दी बने क्या हाल पृथ्वीराज का॥' [16]

इस प्रकार से मंचीय दृष्टि से भी यह नाटक सफल नाटकों में माना जा सकता है।

संदर्भ :

1. डॉ. बाबूराव देसाई, स्वतन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 28
2. भूपेन्द्र कलसी, प्रसादोत्तर हिन्दी नाटक, पृष्ठ 5

3. डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा, 'वरा शिरोमणि पृथ्वीराज चौहान' (दो शब्द) पृष्ठ 81

4. वही, पृष्ठ 81

5. वही, पृष्ठ 81

6. वही, पृष्ठ 81

7. वही, पृष्ठ 81

8. वही, पृष्ठ 81

9. वही, पृष्ठ 81

10. वही, पृष्ठ 81

11. वही, पृष्ठ 81

12. वही, पृष्ठ 81

13. वही, पृष्ठ 81

14. वही, पृष्ठ 81

15. वही, पृष्ठ 81

16. वही, पृष्ठ 81

❑❑❑

8

'तुक्के का बादशाह' : सहजता का दर्पण

नीना गुप्ता

बच्चों का कोमल हृदय साहित्य के गूढ तत्त्वों से अनभिज्ञ रहता है इसलिए यह आवश्यक है कि बच्चों के लिये जो कुछ भी लिखा जाय उसकी भाषा और संवाद सहज-सरल हों। प्रस्तुत समीक्ष्य नाटक 'तुक्के का बादशाह' में लेखक डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा ने बालकों की भावनाओं एवं सहज क्रियाकलापों को आधार मानकर प्रभावी वाक्य विन्यास तथा सहज-सरल भाषा शैली के माध्यम से विभिन्न सामाजिक विषयों, प्रथाओं और भावनाओं को प्रस्तुत किया है। 'तुक्के का बादशाह' नामक यह पुस्तक पाँच नाटकों का संग्रह है जिसके प्रत्येक नाटक में बच्चों को चरित्र निर्माण, जीवन में सफलता के प्रयास एवं ऊंच-नीच के भेद-भाव को भुलाकर आपसी मेल-मिलाप करने की शिक्षा देने का प्रयास लेखक ने किया है। शर्मा जी ने अपनी इस रचना में इस तरह के दृश्य प्रस्तुत किये हैं जिनके माध्यम से इन नाटकों में यथार्थवादी वातावरण की धड़कनें महसूस की जा सकती हैं।

नाटक 'पेड़ हमारे मित्र' में सीमित पात्रों के माध्यम से पर्यावरण संतुलन, पेड़ों के महत्त्व, ऊंच नीच और अमीर ग़रीब के भेदभाव को समाप्त कर आपसी मेल मिलाप करने की शिक्षा दी गई है। जिस प्रकार पारिवारिक संस्कारों एवं अर्थसम्पन्नता के कारण अमीर वर्ग के बच्चों में अहंकार की भावना आ जाती है उसी प्रकार इस नाटक की पात्र सिमरन जो एक सम्पन्न सेठ की बेटी है उसमें भी अहंकार अपने चरम रूप में मौजूद है और गाँव आते ही एक ग़रीब लड़के भीखू से उसका टकराव हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप वह भीखू द्वारा बगीचे में लगाये गये पेड़ों को कटवा देती है। वह भीखू की

*रंगकर्मी-अभिनेत्री, 19 बी, क्लिस्टन, 4 फ्लोर, बिरला केयर कॉर्नर, जूहू, मुम्बई- 400049

इन भावनाओं का भी तिरस्कार करती है- 'बीबीजी, इन हरे-भरे पेड़ो पर दया करो। ये हमें फल देते हैं, ताजी हवा देते हैं और इन्हें देखने से आँखों की ज्योति बढ़ती है।'

इसके बाद इस नाटक के लेखन का मूल उद्येश्य शुरू होता है। सेठ की लड़की सिमरन को टी.बी. की बीमारी हो जाती है। जब डाक्टर साहब इस बात की घोषणा करते हैं तो संवेदनशील भीखू कहता है-

'नहीं डाक्टर साहब नहीं। मेरी बीबीजी को टी.बी. नहीं हो सकती.....मैं इन्हें अपने बगीचे के मीठे-मीठे फल खिलाऊंगा और हम लोग पुनः पेड़ लगायेंगे जिससे ये बड़ी जल्दी स्वस्थ हो जायेंगी।' भीखू जैसा कहता है वैसा ही करता है और इस प्रकार सिमरन स्वस्थ हो जाती है ।

हास्य से सराबोर एक नाटक 'जैसे को तैसा' बालमन को आकृष्ट करने का एक सफल प्रयास है। प्रत्येक बात की नकल करने की पीटर की आदत से जहाँ आये दिन किसी न किसी को हँसी का पात्र बनना पड़ता है वहीं एक दिन उसकी यह आदत उसी के गले का फंदा बन जाती है। बाल मन की नटखट हरकतों से हास्य उत्पन्न करने में लेखक को कामयाबी मिली है।

शीर्ष नाटक 'तुक्के का बादशाह' लोककथाओं पर आधारित एक सशक्त कथानक वाला हास्य नाटक है। नाटक का प्रमुख पात्र कलुवा अवसरवादी एवं चालाक व्यक्ति है और किसी न किसी बहाने से आये दिन अपने ससुराल पहुँचकर मौज मस्ती करता है। एक दिन जब वह अपने ससुराल में होता है तो हँसी-मजाक में यह घोषणा कर देता है कि उसे बडका (सब कुछ बात सही-सही बताने की दैव-प्रदत्त शक्ति) आता है। उसकी इस घोषणा से गाँव के अनेक व्यक्ति अपनी- अपनी समस्याएं लेकर उसके पास आते हैं। उसकी कुछ बातों का ऐसा तुक्का बैठ जाता है कि वे सत्य साबित होती हैं और कुछ गाँव वालों की समस्याओं का समाधान हो जाता है और गाँव वाले उसकी जय-जयकार करते हैं।

आज टी.वी. और कम्प्यूटर के इर्द-गिर्द घूमती बच्चों की ज़िन्दगी में इस तरह का नाटक रोचकता के साथ सकारात्मक संदेश देता है। इस नाटक के सभी पात्र सामान्यजन में से लिए गये जान पड़ते हैं। कलुवा का सीधा-

सरल जीवन मन को छू लेता है।

'पेड़ हमारे मित्र' से इस नाट्य संग्रह का शुभारम्भ करते हुए उसी विषय के 'जंगल मित्र' से समापन करना लेखक की अपनी मौलिक विशेषता है। दोनों नाटक पेड़ों के महत्त्व को प्रदर्शित करते हैं फिर भी इनका कथानक एक दूसरे से भिन्न है। 'जंगल मित्र' नाटक में छोटे-छोटे संवादों के माध्यम से पेड़ों की कटाई से होने वाली हानि को इस प्रकार रोचकता के साथ बताया गया है कि इससे बच्चे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। नाटक के नायक सुक्खा को जंगल मित्र के रूप में प्रस्तुत करने से बच्चों का मनोबल बढ़ता है और वे नाटक में अपने को पाकर उसकी शिक्षाओं को सहर्ष स्वीकार करते हैं। बुरे काम का नतीजा भी बुरा ही होता है इस बात को इस नाटक के माध्यम से उजागर किया गया है। गाँव का मुखिया, पटवारी, फिरवाल आदि सभी के सभी भ्रष्ट हैं और लकड़ियों की अवैध रूप से कटाई करके शहर ले जाकर बेचने में अब्दुल्ला की सहायता करते हैं। जब सुक्खा द्वारा इस बात का विरोध किया जाता है तो ये सब भ्रष्ट लोग मिलकर उल्टे उस पर ही आरोप लगाते हैं। इस प्रकार यह नाटक समसामयिकता का सही नमूना है और हमारे वर्तमान समाज का सही रूप उजागर करता है।

नाटक 'छोटा बेगारी' भी ग्रामीण पृष्ठभूमि के कैनवास पर हमारे ग्राम्य जीवन की सही तस्वीर उपस्थित करता है। हमारे देश में प्राचीन काल से ही वर्ण व्यवस्था तथा जातिगत एवं वर्गगत विभाजन देखने को मिलता है। अपनी प्रारम्भिक अवस्था में समाज को इस प्रकार से विभाजित किये जाने का उद्येश्य दैनन्दिन कार्यों का समुचित रूप में निष्पादन किया जाना था परन्तु कालान्तर में किन्हीं कारणों से इनकी जड़ें इतनी गहरी जाकर फैल गई की समाज कई वर्गों में बँट गया और उच्च वर्ग के कुछ लोगों द्वारा निम्नवर्ग को हेय दृष्टि से देखा जाकर उन पर अत्याचार किये जाने लगे।

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा ने अपने इस नाटक में नायक बालक गोपी के माध्यम से उच्च वर्ग की प्रताड़नाओं से प्रेरित होकर निम्न वर्ग के जीवन में आगे बढने के यथार्थ को चित्रित किया है जो आज के युग में हर कहीं देखा जा सकता है। शर्मा जी ने जीवन के इस सत्य को यहां पर उजागर किया है कि जहाँ-जहाँ भी मनुष्य पर अत्याचार किये गये, उसको दबाने का प्रयास

किया गया उसके इरादे पुष्ट होकर उन्नति हेतु ज्वालामुखी के रूप में फूट पड़े। भूरा बेगारी का बेटा गोपी भी बजरंगी काका जैसे प्रभावशाली लोगों के अत्याचारों से त्रस्त होकर एवं पुजारी बाबा की प्रेरणाओं से पढ़ लिखकर पुलिस विभाग में थानेदार का पद प्राप्त करता है और जब बजरंगी काका को उसके समक्ष अपराधी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है तो थानेदार गोपी उसे गले लगा लेता है और कहता है –'मुझे नहीं पहचाना काका, मैं हूं तुम्हारा गोपी, भूरा बेगारी का बेटा....। '

गोपी के इस प्रकार के व्यवहार से नाटककार ने हमारे देश की सभ्यता, संस्कृति एवं नैतिक मूल्यों को जनसामान्य के समक्ष उपस्थित किया है।

ये सभी नाटक बच्चों को तो प्रभावित करते ही हैं साथ ही इनसे अन्य आयुवर्ग के लोगों को भी आनन्द मिलता है। किसी भी नाटक में बनावटीपन दिखायी नहीं देता है बल्कि इनमें हमारे समाज की जीवन्त तस्वीर देखने को मिलती है और सबसे बड़ी बात यह कि बच्चे इन्हें मन से स्वीकार करते हैं।

उल्लेखनीय है कि इस पुस्तक के सभी नाटकों को देश के विभिन्न मंचों पर मंचित किया जा चुका है। नाटक पेड़ हमारे मित्र तो 13 जनवरी 1997 को जयपुर दूरदर्शन के 'नन्हीं दुनियां' कार्यक्रम से प्रसारित भी हो चुका है। इसके अतिरिक्त तुक्के का बादशाह के ब्रजभाषा रूपान्तरित एवं आर.डी.गर्ल्स कॉलेज, भरतपुर के वार्षिकोत्सव में की गई प्रस्तुति को भरतपुर के सिटी चैनलों द्वारा भी प्रसारित किया गया।

यह इन नाटकों की प्रसिद्धि एवं दर्शकों तथा पाठकों की स्वीकृति का ही परिणाम है कि पुस्तक के सभी नाटकों का राँची के साहित्यकार श्री नित्यशंकर मुखोपाध्याय ने बँगला में तथा भरतपुर के श्री मनमोहन अभिलाषी ने ब्रजभाषा में अनुवाद किया है। डॉ. शर्मा जी का यह सृजन एवं मंचन स्तुत्य है और मैं इसमें वृद्धि-समृद्धि हेतु उन्हें शुभकामनाएं प्रेषित करती हूं।

❑❑❑

9

राजनीति व सामाजिक विषमता के प्रति संवेदनशील नाटककार : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा

डॉ. सरबजीत राय कौर

हिन्दी साहित्य में कैलाशचन्द्र शर्मा का महत्वपूर्ण योगदान है। आपने साहित्य-जगत को विभिन्न विधाओं- कहानी, उपन्यास, नाटक, कविता, गीत, जीवनी आदि में अनेक पुस्तकें समर्पित की हैं। आप एक संवेदनशील साहित्यकार हैं, जिन्होंने समाज की दुखती रग को न केवल देखा, पहचाना और बयान किया बल्कि उस पर मरहम भी लगाई । जहां आपने समाज में व्याप्त विषमता, बुराइयों, विद्रूपताओं, विसंगतियों, भेद-भाव, ऊंच-नीच, कुरीतियों का चित्रण किया है वहीं राजनीति में फैले भ्रष्टाचार, अवसरवादिता, सत्ता-लोलुपता, स्वार्थ, घूसखोरी, लूट-लालच, चापलूसी और आडम्बर का भी सूक्ष्म निरीक्षण किया है।

'साहित्य समाज का दर्पण होता है।' एक सुचेतक लेखक केवल मनोरंजन के लिए नहीं लिखता बल्कि वह जहां रह रहा है, वहां क्या हो रहा है? क्यों हो रहा है? उसे कैसे रोकना है? इन सभी प्रश्नों के प्रति सजग होता है। शर्मा जी का लेखन समसामयिक परिवेश का आईना है। एक नाटककार के रूप में आपने समाज, धर्म और राजनीति से सम्बन्धित विषयों पर बहुत नाटक लिखे हैं। .... किन्तु मैं यहां पर विषय-सीमा में रहते हुए आपके व्यंग्य नाटक 'नामकरण' और 'छोटा बेगारी' के सम्बन्ध में ही चर्चा कर रही हूं।

साहित्य में गम्भीर सामाजिक समस्याओं को नग्न करने के लिए धार्मिक कुरीतियों पर प्रहार करने के लिए, राजनैतिक जागरुकता का शंख-

* अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग, लायलपुर खालसा कॉलेज फॉर विमेन, जालन्धर (पंजाब)

नाद करने के लिए भाँति-भाँति के रूपक रचकर व्यंग्य नाटक लिखे गए। पौराणिक कथाओं में तत्कालीन कुप्रथाओं का चित्रण कर व्यंग्यात्मक प्रहार किए गए हैं। आज का युग संघर्ष प्रधान है और जब निरन्तर संघर्ष-रत रहने पर भी सफलता प्राप्त नहीं होती तो हृदय को चोट पहुंचती है, इसी आघात, अभाव, वैमनस्य, अव्यवस्थाओं की घुटन, विडम्बित नियति की कटुता को संवेदनशील व्यक्ति हास्य-व्यंग्य की आड लेकर भुलाने का उपक्रम करता है।

'वास्तव में व्यंग्य का मुख्य उद्येश्य है- शोधन के द्वारा दोष-सुधार। शैली की दृष्टि से व्यंग्य के प्रकार हैं- विनोदात्मक व्यंग्य, आघातमक व्यंग्य, और विद्वेषात्मक व्यंग्य। प्रेरणा की दृष्टि से व्यंग्य दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है- व्यक्तिगत और समष्टिगत और समष्टिगत व्यंग्य। व्यक्तिगत व्यंग्य में किसी विशेष व्यक्ति को लक्ष्य बनाकर व्यंग्य किया जाता है, परन्तु समष्टिगत व्यंग्य किसी व्यक्ति विशेष की आलोचना न करके उनकी राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, साहित्यिक व व्यक्तिगत दुर्बलताओं पर प्रहार होता है। इसके मूल में कोई व्यक्ति विशेष नहीं होता बल्कि सम्पूर्ण परिवेश होता है। इसे मानव प्रसूत समष्टिगत व्यंग्य कहा जाता है।' [1] कैलाशचन्द्र शर्मा का नाटक 'नामकरण' भी इसी श्रेणी में आता है। इसमें राजनीति के दाँव-पेंचों का व्यंग्यात्मक चित्रण है। जब देश में जनता जागरूक होती है, तब साहित्य में राजनीतिक व्यंग्य-रचना भी बढती है। किन्तु यहां शासकों के प्रति आक्रोश, विरोध, आलोचना अथवा उपहास करना प्रत्यक्षत: संभव नहीं होता, वहां व्यंग्य का कवच पहनकर प्रहार करना संभव हो जाता है।

'नामकरण' नाटक में एक ओर तो साधारण व्यक्ति को दिखाया गया है कि वह सत्ता-लोलुपता के कारण कितना परिवर्तित हो जाता है, वह अपनी औकात भूल कर बड़े-बड़े सपने देखने लगता है। दूसरी ओर हैं नेता लोग जो अपने दाँवपेच लगाते हैं, समय की नजाकत पहचानकर अपना कार्य-व्यवहार करते हैं और स्वार्थ-सिद्धि के लिए 'गधे को बाप' कहने से भी नहीं हिचकते। तीसरी श्रेणी है- चापलूस, लालची, स्वार्थी, अवसरवादी और घूसखोरों की।

नाटक में भावी नेता और उसकी पत्नी झाबली बहुत ही साधारण और बिल्कुल अनपढ़ हैं। लेकिन समय ने करवट बदली तो इस साधारण से परिवार से सम्बन्धित व्यक्ति में सत्ता-लोलुपता जाग गई, जिसके कारण उसके

पैर ही ज़मीन से उखड़ गए, वह अपने आप को भूलकर हवा में ही उड़ने लगा और अपनी सीधी-सादी पत्नी को भी समझाने लगा-

'नेताजी : (प्रवेश करते हुए अपनी पत्नी से)- अरै झाबली, तन्नै कित्ती बार खैयो अक अब तू झाडू मत लगाया कर।

झाबली : क्यूं ना लगाया करूं झाडू अपणे ही घर मैं ?

नेताजी : अरै तन्नै के पत्तो कोनी कि आगै आबाहाळा इलैक्शन मांयनैं मैं चुनाव मैं खड़ो हूंगो।

नेताजी : (झल्लाकर)- तन्नै! अरै मैं तन्नै कत्ती बार खयो कि अब तू नेताणी बणणै हाळी है, ईं खातर तू या तन्नै हाळी बोली छोड़ दै।' [2]

.....

वह अपनी पत्नी को समझाता है कि अब उसने नेता बनना है इसलिए हमें अपने जीवन में बदलाव करना होगा, इसे सीखने के लिए उसने मास्टर लगाया है।

.....

नेताजी : तो कांईं वा मास्टर न्यूं ही लगा राख्यो है ? अरै वा मन्नै नेतागिरी सिखावण का हर म्हींना दो हज्जार रुपैया ले जावै है। [3]

.....

नेताजी : झुब्बो इब नेतागिरी मैं जावण आतर हमन नै अपणी बोली - भाषा ऊठणो - बैठणो, चाल - ढ़ाल, तौर तरीका, यां सभी मां बदलाव ल्यावण व्हैगो। [4]

इस नाटक में दिखाया गया है कि सत्ता का लोभ व्यक्ति में किस प्रकार बदलाव करता है, वह अवसर मिलते ही सादगी और सात्विकता को त्याग राजनीतिक दांव-पेच सीख कर अपने रहन-सहन, बोल-चाल, व्यवहार, जनता को प्रभावित करना और लोगों से दूरी बनाए रखना सब सीख जाता है।

एक वर्ग मास्टरजी जैसे चापलूस लोगों का भी है, जो अवसर देख कर धन कमाने का मौका नहीं छोड़ते। मास्टरजी नेतागिरी सिखाने के पैसे लेते हैं-

मास्टरजी : इलैक्शन के दिन नजदीक हैं, इसलिए मुझे जल्दी-जल्दी

आपको और टिप्स भी देने चाहिएं .....पहली बात तो यह कि आज हमारे देश में अंग्रेजीकरण का दौर चल रहा है। हर जगह अंग्रेजी-खान-पान, चाल-ढ़ाल, रहन - सहन, बोली-भाषा , सभी में अंग्रेजी। [5]

मास्टरजी तो नेता की पत्नी का नाम तक बदल देते हैं झाबली से जुबली। बात यहीं खत्म नहीं होती। नामकरण पार्टी का भी प्रबन्ध किया जाता है, क्योंकि इस पार्टी का भी महत्वपूर्ण उद्येश्य मास्टरजी कहते हैं-

इस लाईन में पार्टी देना तो एक बहाना होता है। ऐसी पार्टियों में ही बड़े - बड़े सौदे तय हो जाते हैं, बड़े-बड़े लेन देन भी यहीं निपटा लिए जाते हैं। [6]

रिश्वत और घूस देकर ही स्वार्थ-सिद्धि होने की बात भी मास्टरजी बताते हैं-

यहां के प्रदेशाध्यक्ष से मेरी पहचान है, वे सब करा देंगे। हां, बस उनकी बेटी की शादी में आपकी ओर से एक अटैची दे दी जाती तो सब ठीक हो जाता। [7]

राजनीत में चापलूसी और आडम्बर भी जरूरी है, यह मास्टर जी का सुझाव देखिए—

मास्टर जी.....मैडम, प्रदेशाध्यक्ष जी बड़े अतिथि हैं, इसलिए जैसे ही वे आयें तो पहले नेताजी, उनके पांव पखारेंगे और उसके बाद आप उनकी आरती उतारेंगी और आप दोनों को ही ये कार्य मुस्कुराते हुए करने हैं, क्योंकि सभी अखबारों के फोटोग्राफर आप लोगों की फोटो लेंगे जो नेताजी के कैरियर में आगे काम आयेंगी। [8]

नाटक के अन्त में नेताजी ताँबे के लोटे के जल से प्रदेशाध्यक्ष के पाँव धो रहे हैं और फोटोग्राफर ताबड़तोड़ फोटो खींचे जा रहा था। इसके पश्चात् नेताजी इस जल का चरणामृत लेते हैं और शेष जल को उपस्थिति जनसमुदाय के ऊपर छिड़का जाता है।

'नामकरण' नाटक में बहुत ही सहजता से राजनीति में फैली विसंगतियां-रिश्वत, आडम्बर, अवसरवादिता, दिखावा, खोखलापन, चापलूसी, सत्ता-लोलुपता और साधारण जनता से दूरी बनाए रखने का स्पष्ट चित्रण हुआ है, जो नि:स्संदेह व्यंग्य साहित्य में बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान है।

कैलाशचन्द्र शर्मा जी के नाटक 'छोटा बेगारी' में सामाजिक विषमता का संवेदनशील चित्रण है। सदियों से समाज में जाति-पाति, ऊँच-नीच, भेद-

भाव की बुराई के कारण बहुत सारे लोगों को इस बुराई का शिकार होना पड़ता है। इस नाटक में गोपी जैसा होनहार बच्चा पढ़ाई करना चाहता है, परन्तु गाँव के कुछ लोग उसे अपने बच्चों के साथ बैठने तक नहीं देते, उसे मन्दिर में जाने की भी आज्ञा नहीं, क्योंकि वह छोटी जाति से सम्बन्ध रखता है।

गोपी की माँ को इस बात का अहसास है वह कहती है—

रेवती—तुम तो जानते ही हो कि बजरंगी हम छोटी जाति वालों से नफरत करता है। हम लोगों की तरक्की से जलता है मुआ।

तुम्हें क्या पता नहीं जब हम गोपी को स्कूल में दाखिल कराने गए थे तो कैसा झमेला खड़ा किया था बजरंगी ने। हैडमास्टरनी से कहने लगा था—मास्टरनी जी। यदि इस अछूत को हमारे बच्चों को साथ पढ़ने की इजाजत दी तो अच्छा नहीं होगा। [9]

भले ही समाज में सेठ, मुनीम और चौबेजी जैसे लोग इस सामाजिक भेद-भाव की भावना रखते हैं, लेकिन आज कुछ पढ़े-लिखे मास्टरनी और पुजारी जी जैसे लोग भी हैं जो इस सामाजिक भेद-भाव से ऊपर उठ चुके हैं और सभी को समान-अधिकार देने के पक्ष में है। वह कहते हैं—

मास्टरनी—सेठ जी! तन से कोई आदमी पवित्र नहीं होता। आदमी पवित्र होता है मन से। जाति से कोई आदमी छोटा या बड़ा नहीं होता। वह छोटा या बड़ा होता है अपने कर्मों से। [10]

'अछूत' को समाज में बहुत ही संतप्त होना पड़ा है, परन्तु आज चेतन समाज में एसी स्थिति नहीं, लोगों की सोच बदली है। पुजारी जी जैसे लोग इस परिवर्तन की हामी भरते हैं—

पुजारी जी—मन्दिर किसी जाति विशेष का नहीं होता। भगवान किसी एक के नहीं होते। भगवान के दरवाजे सबके लिए खुले रहते हैं। [11]

नाटक में सामाजिक परिवर्तन का संकेत है, गोपी सैकेण्डरी की परीक्षा में समूचे राज्य में प्रथम आता है तो सरकार की ओर से उसे वजीफा मिलता है, ताकि वह आगे की पढ़ाई कर सके।

समाधान—यद्यपि सरकार ने इस समस्या के समाधान के अत्यधिक प्रयत्न किए हैं, तथापि कुछ समाज सेवी संस्थाएँ एवं व्यक्तिगत रूप में भी

मदद के लिए काफी लोग आगे आए हैं।

पुजारी जी—और यह बच्चा तबला भी अच्छा बजाता है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि गोपी अपना अभ्यास जारी रखे..... इस सम्बन्ध में जो भी खर्च होगा वह मेरी ओर से गोपी को दिया जाएगा।[12]

अन्त में गोपी पढ़ लिखकर अफसर बन जाता है तो बजरंगी को भी अपने किए पर पश्चाताप होता है वह कहता है कि मुझे माफ कर दो बेटा। मैंने तुम्हारे साथ बहुत बुरा सलूक किया था।

निष्कर्ष : नाटक के अन्त में बजरंगी के इन्हीं शब्दों में सामाजिक परिवर्तन की भावना छुपी है। आज समाज में जाति-पाति, ऊँच-नीच, छूत-अछूत की भावना खत्म हो रही है। पढ़ाई-लिखाई के कारण यह अन्तराल मिट रहा है, नि:स्संदेह यह नये युग का आगमन है।

संदर्भ :

1) डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, नामकरण नाटक, पृ. 399
2) वही
3) वही, पृष्ठ 400
4) वही, पृष्ठ 401
5) वही, पृष्ठ 407
6) वही, पृष्ठ 410
7) वही, पृष्ठ 410
8) वही, पृष्ठ 411
9) डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : छोटा बेगारी नाटक, पृष्ठ 433
10) वही, पृष्ठ 437
11) वही, पृष्ठ 440
12) वही, पृष्ठ 443

❑❑❑

10

अर्थ, पत्रकारिता और नैतिक अवमूल्यन
('देख जात के ठाठ' के विशेष संदर्भ में)

डॉ. बोस्की मैंगी

'देख जात के ठाठ' नाट्य रचना के रचयिता कैलाशचन्द्र शर्मा हैं। प्रस्तुत नाट्य रचना हमारे यथार्थ जीवन की दशाओं पर आधारित है। शर्मा जी का नाट्य चिंतन आधुनिक मानव की द्वन्द्वात्मक भीषण मन:स्थितियों से अनुप्राणित है, जहां व्यक्ति जीवन पर्यन्त द्वन्द्वात्मक जीवन जीने के लिए विवश है। साहित्यकार अपने समय की समस्याओं की चुनौती का भावुक-संवाहक होता है। इन्हीं समस्याओं की अनुभूति को रचनाकार अपनी रचनाओं के सृजन का केन्द्र बनाता है। इन समस्याओं का निदान या उनका पर्दाफाश करना रचनाकार की तलाश होती है। यही तलाश तो उसका जीवन-मूल्य है। शर्मा जी ने इन्हीं जीवन मूल्यों की खोज का प्रयास किया है। नर नारायणराय के अनुसार- 'नाटककार को हर हालत में अपने देशकाल की अभिव्यक्ति करनी पड़ती है। समसामयिक ज्वलन्त प्रश्नों को अपने दर्शकों के स्तर पर जूझना ही पड़ता है।'[1] शर्मा की जी रचना 'देख जात के ठाठ' तीन दृश्यों में बँटी नाट्य रचना है। शीर्षक में 'जात' शब्द पत्रकारों के संगठन की ओर सूचित करता है और 'ठाठ' से भाव उनकी शानो-शौकत से है। लेखक ने इस कृति में प्रमुख रूप से वर्तमान वैज्ञानिक एवं प्रगतिशील युग में अर्थतंत्र के चलते पत्रकारिता की गिरती छवि को केन्द्र में रखा है।

पत्रकारिता जीवन, समाज, संस्कृति और विश्व की वास्तविक आरसी है। वर्तमान में इसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक एवं विशाल है। अन्याय का प्रतिरोध करने, नये विचारों और कल्पनाओं का वाहक बनने, अभिनव सन्देश का

* असि. प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग, हिन्दू कन्या महाविद्यालय, धारीवाल (गुरदासपुर)

अग्रदूत होने और जीवन-सागर में उठने वाले तूफानों का प्रतिनिधित्व करने में पत्रकारिता को सर्वोपयुक्त माध्यम माना जाता है। सन् 1950 ई. में अखिल भारतीय सम्पादक सम्मेलन के अवसर पर जवाहर लाल नेहरू ने पत्रकारों को सम्बोधित करते हुए कहा था- 'जीवन में जो कुछ निकृष्ट है उसका क्रमश: बढ़ते जाना रोकने में सहायता करना पत्रकारों का कर्त्तव्य है। पत्रकारों को अधिक ऊँचे दर्जे की तथा अधिक उज्जवल सामाजिक चेतना के निर्माण में ही सहायता नहीं करती है, वरन् जीवन की छोटी-छोटी बातों में सामाजिक व्यवहार करना सिखाने में भी।'[2]

आज भूमण्डलीकरण के दौर में हिन्दी पत्रकारिता की चुनौतियां न केवल बढ़ी हैं वरन् उनके संदर्भ भी बदल गए हैं। पत्रकारिता के सामाजिक उत्तरदायित्व जैसी बातों पर सवालिया निशान तो उसकी नैसर्गिक सैद्धांतिकता भी कठघरे में है। यह समय बाजार का समय है। यह बाजार मात्र चीजें और सहूलियतें देने वाला बाजार नहीं है। यह चुनौती, चिढ़, ईर्ष्या, प्रेम, घृणा सबके विस्तारण का माध्यम है। इस बाजार के बसंत का अग्रदूत है- 'पत्रकारिता'। लेखक ने रचना में व्यक्ति केन्द्रित दर्शन, आत्महीनता, 'स्व' की प्रधानता, निजता तथा आत्मतुष्टि की पराकाष्ठा को दर्शाया है। 'अर्थ' की प्रधानता सर्वोपरि हो गई है। पत्रकारिता का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं रहा। हम यही मान कर चले थे कि समाज के सजग प्रहरी के रूप में पत्रकार समाज में घटित घटनाओं की गहराई में प्रवेश करता है और निरंतर बदलते हुए परिवेश और मानव सम्बंधों की जटिलता के कारणों, प्रतिक्रियाओं और परिणामों को विश्लेषित करना उसका दायित्व है। परन्तु जब प्रहरी अर्थात् रक्षक ही भक्षक बन जाए तो समाज की दिशा एवं दशा पर प्रश्न चिन्ह लगना स्वाभाविक ही है। प्रस्तुत कृति में यही विचारणीय प्रश्न है।

उत्तर आधुनिक समाज पीछे मुड़कर नहीं देखता। आज पत्रकारिता अथवा मीडिया ने जिस समाज को बनाया है, वह एकदम रीता या खाली समाज है। इसमें केवल शून्यता और केवल शून्यता ही विराजमान है। यह दुनिया अराजकता से परिपूर्ण है। जो मन चाहे करो, सब मुक्त है। लेखक ने यह तथ्य भी उठाया है कि यह स्वतन्त्रता पूंजीवादी क्षेत्र में ही नहीं यहां तक कि पत्रकारिता क्षेत्र तक व्याप्त हो चुकी है। पूंजीवाद एवं बाजारवाद के इस दौर

में अगर किसी ने अपने पैर जमाने हैं तो Development due to development के सिद्धान्त को अपनाया जाए। अर्थात् 'विकास में ही विकास' का लक्ष्य निर्धारित है। जिस तरह पूंजीवादी क्षेत्र में ग्राहक को अपनी तरफ आकर्षित करने में कामर्शियल कॉम्पलैक्स, छोटी-छोटी दुकानों की बजाए बड़े-बड़े मॉल ने स्थान ग्रहण कर लिया है। जहां वस्तुओं पर Brand का लेबल चिपका कर बिक्री दर बढ़ा दी जाती है और ग्राहक भी आँखें मूंद कर और ऑफर देख कर इस जाल में फंस जाता है। ठीक ऐसी ही स्थिति पत्रकारिता के क्षेत्र में लेखक ने अपनी रचना 'देख जात के ठाठ' में दर्शायी है कि भूमंडलीकरण के बाद पत्रकारिता एक नए रूप में दिखाई दे रही है। आज इसका उद्देश्य आम जन-मानस की चेतना का निर्माण करने का नहीं रह गया है, बल्कि अपने व्यावसायिक हित को ध्यान में रखकर ही सारी नीतियां बनायी जाती हैं। इसीलिए इस बात पर जोर दिया जाता है कि ख़बरों का प्रस्तुतीकरण बहुत ही अलग तरह से हो।

'परिवर्तन' प्रकृति का नियम है, इसलिए परिवर्तन होते रहने चाहिए। सिद्धांत और व्यवहार परिवर्तन के प्रमुख दो तत्व हैं। इसमें सिद्धांत तो स्थायी होता है लेकिन व्यवहार में समय के अनुसार परिवर्तन आ सकता है। पत्रकारिता के क्षेत्र में सिद्धांत (Theory) और व्यवहार (Practical) में जमीन-आकाश के इस अन्तर से पर्दा हटाया गया है। 'जात' अर्थात् पत्रकारों के एक संगठन का संक्षिप्त नाम है। जिसका अर्थ है- 'जर्नलिस्ट एसोसिएशन ऑफ थार।' आज साधारण से साधारण पत्रकार नाम कमाना चाहता है। उसके लिए उसे किसी नामी लेबल अर्थात् मजबूत संगठन की छत्रछाया चाहिए। 'जात' इसी की खानापूर्ति करने वाला संगठन है। इससे जुड़े पत्रकारों के लिए अख़बार निकालना मात्र दिखावटी काम है। वास्तव में अख़बार की आड़ में अन्य कई प्रकार के कार्यों से कमाई की जाती है और उस कमाई पर 'जात' की ओर से पचास प्रतिशत कमीशन दिया जाता है, जोकि एक लुभावने ऑफर की तरह होता है।

आज हर व्यक्ति करोड़पति बनना चाहता है स्वप्न तो सब देखते हैं। मीडिया ने करोड़पति बनने के स्वप्न बांटे भी हैं। मितव्ययिता अब रूढ़ी बन गई है। आज और अभी महत्वपूर्ण हो गए हैं। कल किसने देखा है। चार्वाक

दर्शन फिर से प्रासंगिक हो उठा है। पूंजी कमाने के उचित और अनुचित मार्ग में एक **झीनी,** वह मिटा दी गई है। साहित्य सृजक, संवेदना, 'मिशन-पत्रकारिता' को कलंकित करने वाले व्यापारी अनैतिक धंधा करने लगे हैं। नाट्य के एक दृश्य में यही दिखाया गया है कि प्रत्येक बेरोजगार व्यक्ति जो पत्रकार बनने का इच्छुक है उसे 'जात' के सदस्य अपनी ओर आकर्षित करते हैं और आकर्षित होना भी स्वाभाविक है। इस बात की पुष्टि पत्रकार 1, पत्रकार 2 की नवयुवक से हुई बातचीत से मिलती है।

'पत्रकार 1: आज के युग में पत्रकारिता का हर जगह बोलबाला है। राशन की दुकान, गैस एजेन्सी, पैट्रोल एजेन्सी, एज्यूकेशन फील्ड, बैंकिंग, थाना, तहसील, कचहरी। अरे भाई कहीं भी, और किसी भी प्रकार का कार्य हो ...

पत्रकार 2: 'हम पत्रकारों का काम प्रायरटी पर होता है, जिसका लेंगे हम सेवा शुल्क और उसका पचास प्रतिशत मिलेगा तुमको।'[3]

वर्तमान पत्रकारिता मिशन नहीं व्यवसाय - 'पूर्ण व्यवसाय' बन गई है। आज इसका उद्देश्य अधिक से अधिक समाचार पत्र बेचना है। इसके लिए चाहे उन्हें कुछ भी करना पड़े। ऐसा नहीं कि आज से पहले कभी ऐसा नहीं हुआ है लेकिन तब मुख्य ध्येय पत्रकारिता ही थी। पत्रकारिता की व्यवसाय रूपी झलक नाट्य के दूसरे दृश्य में देखी जा सकती है। पत्रकारों के बीच किसी न्यूज की कवरिंग को कॉन्ट्रैक्ट के रूप में लिया जाता है। जिस कॉन्ट्रैक्ट में जितना अधिक फायदा होता है उसे कवर करने की होड़ पत्रकारों में लगी है। यही स्थिति 'जात' की है, जिसका प्रमुख अधिकारी इस्माइल है। पत्रकार 2 (इस्माइल के बारे में) पत्रकार 1 को बताता है कि वह- 'हम सबके फायदे का एक कॉन्ट्रैक्ट हथियाने गये हैं।'[4] स्पष्ट है कि पत्रकारिता की योग्यता के स्थान पर पूँजी निवेश की क्षमता और व्यावसायिक कुशलता पत्र की लोकप्रियता के लिए अधिक आवश्यक हो गये हैं।

वर्तमान पत्रकारिता की नैतिकता को लेकर भी प्रश्न चिन्ह लगाये जाते हैं क्योंकि पत्रकारिता अपने व्यवसायिक हितों को प्रमुख मानकर अपनी भूमिका निभा रही है। व्यावसायिकता की इस अंधी दौड़ में प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया दोनों है। इनका उद्देश्य खबरों को सनसनी बनाकर प्रस्तुत करना होता है। नाटक के पात्र रूपकिशोर द्वारा लेखक ने यह बात स्पष्ट की

है कि 'पत्रकार ही वे स्तम्भ हैं जो ख़बर को चटनी, आचार और गर्म मसाला मिलाकर इस प्रकार छापते हैं; अपने विशेष कॉलम में पुलिस वालों की बहादुरी का बखान करते हैं कि उन पुलिसवालों को 15 अगस्त और 26 जनवरी को ईनाम मिलते हैं और पदोन्नति हो जाती है उनकी।' [5] इसलिए तो पत्रकारों से पुलिस अधिकारी और हर स्तर का व्यक्ति थर-थर काँपता है और उनकी मेहमाननवाजी करते हैं। बिल्कुल यहां जात के ठाठ निराले ही हैं। यहां थ्योरी और प्रैक्टीकल की प्रक्रिया में भी अन्तर हो जाता है। अपने टारगेट को पूरा करने एवं अपनी नौकरी बचाने हेतु पुलिस की मिलीभगत से 'पत्रकार लोग अपने कवरेज से लॉकअप में बंद शरीफ़ लोगों को अपराधी सिद्ध कर देते हैं और अपराधी साफ़ बच निकलते हैं।' [6] इससे स्पष्ट है कि मीडिया एक मायावी असुर है। सच को झूठ और झूठ को सच में बदलने की चमत्कारी शक्ति मीडिया के पास है। ऐसी स्थिति में पत्रकारिता का उद्देश्य धूमिल होता हुआ प्रतीत होता है। महादेवी वर्मा ने पत्रकारिता की उपयोगिता को समझाते हुए अपनी मान्यता को इस प्रकार व्यक्त किया- 'पत्रकारिता एक रचनाशील विधा है। इसके बगैर समाज को बदलना असंभव है। अत: पत्रकारों को अपने दायित्व और कर्त्तव्यों का निर्वाह निष्ठापूर्वक करना चाहिए। क्योंकि उन्हीं के पैरों के छालों से इतिहास लिखा जायेगा।'[7] गांधी जी ने भी इसे राष्ट्रहित और लोक-हित के अनुरूप माना था। उनके अनुसार पत्रकारिता का उद्देश्य 'जनता की सेवा' है, लोकमत को व्यक्त और प्रचारित करना है तथा निर्भयता एवं नि:स्वार्थता के साथ देश के भाग्य के निर्माण में योगदान करना है।[8] परन्तु आज 'अर्थ लिप्सा' हेतु दायित्व, कर्त्तव्य, नि:स्वार्थता, निर्भयता का भाव धूमिल होता प्रतीत हो रहा है। ऐसी परिस्थितियों में तो पत्रकार को समाज की 'दिव्य दृष्टि' एवं समाज के 'सजग कान' कहने पर भी संकोच उत्पन्न होता है।

पत्रकारिता को आधार बना कर व्यापार करने वाले व्यापारियों का धंधा किस हद तक फल-फूल रहा है इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि नाटक में एक नई संस्था- 'प्राचीन सांस्कृतिक केन्द्र' को कला जगत् में अपना नाम स्थापित करने हेतु 'जात' को डोनेशन देनी पड़ती है ताकि संस्था को अच्छी स्पॉन्सरशिप मिल सके। सभी अख़बारों में अच्छा खासा कवरेज मिल सके। पत्रकारों की इस स्थिति का अनुमान रूपकिशोर और संस्था

की मुखिया रीना की बातचीत से स्पष्ट हो जाता है-

'रूपकिशोर: रीना जी, देखिये कितना भी बड़ा कलाकार हो, पत्रकारों के बिना वह आगे नहीं बढ़ सकता। वे तिल का ताड़ बना दें और ताड़ का तिल।' [9] .... 'और यदि आप इन पत्रकारों को स्पष्ट कर देंगे तो पता है क्या होगा? कल सब अख़बारों में खबर इस प्रकार छपेगी- पाँच सौ दर्शकों के हॉल में दस दर्शक, या फिर 'प्राचीन सांस्कृतिक केन्द्र का फूहड़ कार्यक्रम' दर्शकों ने किया बहिष्कार।[10] ऐसी स्थिति देख कर तो यह कहना गलत न होगा कि समाज में कुछ यथार्थ नहीं है, जो कुछ है वह मीडिया द्वारा निर्मित है। मीडिया ने अति यथार्थता का निर्माण कर दिया है। फलत: वास्तविक यथार्थता पूरी तरह से खो गई है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि पत्रकारिता की नैतिकता पर प्रश्न चिन्ह लग गया है। मूल्यों का हनन हो रहा है। नैतिक-पत्रकारिता का तो आग्रह है कि सभ्य और शिष्ट मनुष्य दूसरों के सामने जिस शब्दावली का प्रयोग नहीं करता, उसे संपादक भी अपने पत्र में स्थान न दे। जन-सेवा और समाज-सेवा ही सच्ची पत्रकारिता है। स्वतन्त्र बुद्धि के आग्रह से रूढ़ियों से मुक्त होकर पत्रकारिता की सफल सेवा की जा सकती है। ऐसा संपादक मानव-समाज की नैतिक चेतना को सदैव प्रेरणा देता रहा है। लेकिन जब पत्रकार, संपादक अपने कर्म रूपी सेवा को व्यवसाय की दृष्टि से देखेंगे तो नैतिकता का हनन अवश्य होगा।

वर्तमान पद, प्रतिष्ठा व पैसे की अंधी दौड़ में आगे निकलने हेतु व्यक्ति मीडिया से संपर्क साधता है। आज व्यक्ति की मानसिकता मीडिया या प्रसिद्ध होने की भावना को लोकर बीमार हो गई है। संपादकों से अपने बारे में लेख लिखवाये जाते हैं या अपने लिखे हुए लेखों को मोटी रकम देकर प्रकाशित करवाया जाता है। लेखक की नजर में आलोचक द्वारा की गई टीका-टिप्पणी प्रमुख है। स्वार्थवश या राजनीतिकरण के द्वारा नए जोड़-तोड़ करके या जुगाड़ बिठाकर घटिया स्तर के लेखक वर्ग को भी पुरस्कारों की दौड़ में शामिल कर दिया जाता है। स्पष्ट है कि साहित्यिक स्तर का अवमूल्यन हो रहा है। मीडिया अथवा पत्रकारिता अब साहित्य को भी अपने सर्वग्रासी जबड़े में ले चुकी है। इसकी पुष्टि नाटक के तीसरे दृश्य में होती है। यहां शर्मा जी ने साहित्यिक क्षेत्र में पनपे भ्रष्टाचार तथा पत्रकारों की गठजोड़ का यथार्थ अंकन

प्रस्तुत किया है। वर्तमान निजी स्वार्थ हेतु कुछ प्रकाशक साहित्यिक विधा की व्यवसायिकता में लगे हैं। उनका यह धंधा खूब प्रफुल्लित हो रहा है। आज लेखक बनना या साहित्यिक क्षेत्र में पुरस्कार प्राप्त कर नाम अर्जित करना या पीएच.डी. की डिग्री हासिल करना कोई मुश्किल काम नहीं है। आज जितना कम पढ़ा-लिखा छपास रोग से ग्रसित व्यक्ति होगा, कुछ प्रकाशक उसकी पुस्तक को प्रकाशित करने में प्राथमिकता देते हैं। 'साहित्य प्रकाशक' के मालिक सतीश वर्मा ऐसे ही व्यक्तित्व के मालिक हैं जो पुस्तकों का प्रकाशन व्यापारिक लाभ की दृष्टि से करते हैं। इसके लिए उन्होंने बकायदा रेट तय किये हैं-

बी.ए. पास व्यक्ति के दस हजार रुपये
दसवीं पास व्यक्ति के पन्द्रह हजार रुपये
दसवीं फेल व्यक्ति के बीस हजार रुपये
पाँचवीं पास व्यक्ति के पच्चीस हजार रुपये।
अनपढ़ व्यक्ति से चालीस हजार रूपये[11]

इससे स्पष्ट है कि आज अनपढ़ व्यक्ति के भी लेखक बनने के चाँस हैं। अपने तथ्य को स्पष्ट करने के लिए वर्मा जी का कहना है कि- 'ज्ञान का पढ़ाई-लिखाई और डिग्रियों से क्या लेना देना। कबीर, रहीम आदि के पास कौन-सी युनिवर्सिटी की डिग्रियां थी पर उन पर आज पीएच.डी. और डी.लिट्. कर रहे हैं विद्वान लोग।'[12] इस प्रकार पत्रकारिता के नाम पर दुकानदारी करने वाले, जोड़-तोड़ के तंत्र से सत्ता का दुरुपयोग करने वाले यह लोग साहित्य के प्रतिष्ठत केन्द्रों पर भी अपनी पैठ जमा रहे हैं। विशुद्धता उनके लिए कोई अर्थ नहीं रखती है बल्कि विशुद्धता को तो वे मिथ या भ्रम कहते हैं।

वहीं दूसरी ओर पुस्तक छपाई के उपरान्त पुस्तक समीक्षा के लिए भी पत्रकारों से सांठगाठ की जाती है। समीक्षा की ऐवज में पत्रकार मोटी कमाई करता है। इस भ्रष्टाचार के तार शिक्षा क्षेत्र से भी जुड़े हैं। प्रकाशक कई विश्वविद्यालयों में सैटिंग कर किसी भी टॉपिक पर किसी भी गाईड से अपने विद्यार्थी की थीसिस असेम्बल करवा लेते हैं। इस संदर्भ में रूपकिशोर शोधार्थी से कहता है- 'आपको पता होना चाहिए कि यही थीसिस हम अपने जान-पहचान के एक प्रोफेसर से दस हजार रुपये में लिखवा सकते हैं और अपने ही लोगों का पैनल के नाम डलवा कर डिग्री भी अवार्ड करवा देंगे।'[13] शिक्षा

क्षेत्र में पनपी इस धूर्तता, हेराफेरी, भ्रष्टाचार की पोल रचनाकार ने पत्रकार 1 के कथन से कुछ इस प्रकार स्पष्ट की है- 'भाई हम सब पत्रकार हैं। हमारा नॉलेज इतना अपडेट है कि हमें यह पता रहता है कि किस विषय की थीसिस किस पुस्तकालय में मिलेगी और वहां का लाईब्रेरियन किस प्रकार से दबता है। वह हमें थीसिस लाकर दे देता है। हम ऊपर नीचे के पन्ने बदलकर बाईण्डिंग करा देते हैं, बस हो गया सस्ते में काम।'[14] अत: कहना न होगा कि आज क्या बिकता है, कैसे बिकता है, कौन पाठक है, कौन प्रकाशक है। भाषा, साहित्य, मीडिया और सांस्कृतिक धरोहर को बाजार कहाँ तक कैसे मिलेगा, अब यह महत्त्वपूर्ण हो गया है।

पत्रकार वही हो सकता है जो संसार का नेत्र और कान हो सके, जो सबके लिए सुन सके और देख सके, जीवन को प्रभावित करने वाली दिन-प्रतिदिन की घटनाओं की दौड़ में जो उसके साथ रह सके तथा देश की जनता के हृदय और मन को आन्दोलित कर सके और सब भावों को प्रतिबिम्बित करने के लिए स्वयं दर्पण बन सके। परन्तु 'देख जात के ठाठ' में तो इसके ठीक विपरीत का दृश्य साकार हुआ है। पत्रकारों द्वारा लोगों से पैसा बटोरने के तरीके (ढंग) से भी लेखक ने पर्दा उठाया है। पत्रकार संघ 'जात' के नाम पर लोगों को आजीवन सदस्यता देने के नाम पर पैसे ऐंठते हैं। इस सम्बन्धी पत्रकार 1 कहता है- 'अजी हम तो हजारों रुपये महीना कमा लेते हैं इस तरह।'[15]

आज पत्रकारिता के साधन और स्वरूप तो असीमित हैं लेकिन आदर्श अस्पष्ट, पत्रकारिता में हो रहे निरन्तर विकास ने पत्रकारिता को एक व्यवसाय बना दिया है। जहां पुरानी पत्रकारिता के लिए अनेक पत्रकारों ने कष्ट एवं यातनाओं को सहने के बावजूद अपने हौंसले बुलन्द रखे एवं अपने कर्त्तव्य से डिगे नहीं क्योंकि धन एवं नाम कमाना उनका मकसद नहीं था। आदर्श पत्रकारिता को अपनाना और समाज को नयी दिशा देना उनका उद्देश्य था। परन्तु वर्तमान में ऐसा भाव धुंधला प्रतीत हो रहा है। इस संदर्भ में लक्ष्मी नारायण गर्दे कहते हैं- 'हमारे समय के अधिकांश हिन्दी पत्रकार इस क्षेत्र में केवल इसलिए आये कि वे देश के लिए कुछ करना चाहते थे। आज के युवाओं में 'चलो कोई नौकरी नहीं मिल रही तो पत्रकारिता ही सही' की बात उस समय

कम थी।'[16] नाटक के तीसरे दृश्य में पत्रकारिता के नाम पर 'जात' संगठन की सदस्यता लेने पर इससे मिलने वाले फायदों के बारे में बताया है कि- 'यदि आपके घर में गैस खत्म हो जाय तो गैस एजेन्सी में जाओ और बिना बुकिंग कराये ही सिलेण्डर ले जाओ। ..... किसी भी बस में यात्रा करो सीट तुरन्त मिलेगी.... किसी भी सरकारी या गैर-सरकारी विभाग में जाओ आपका काम प्राथमिकता से होगा।'[17]

दलबन्दी और गुटबाजी के चलते भी आज कहीं न कहीं पत्रकारिता प्रतिष्ठा खो रही है। स्वार्थ, अर्थलिप्सा से रंगा ये पत्रकार वर्ग देश के कानून और व्यवस्थाओं को अपने इशाओं पर नचाने का दम रखता है। नाटक के अंत में पत्रकार 1 का कहना है कि- 'हमारे रंग में दुनिया रंगेगी और पत्रकार को सतरंगी होना चाहिए तभी तो पत्र कामयाब होगा।

ना माने छैल छबीली, ये जात है रंग रंगीली
तिगदादिगदिग थै तिगदादिगदिग थै
तिगदादिगदिग ता।'[18]

अत: स्पष्ट है कि इस जात के ठाठ रंग रंगीले हैं। अर्थ तंत्र के इस कुचक्र में पत्रकारिता की कूटनीति पर से रचनाकर ने पर्दा उठाया है।

हिन्दी पत्रकारिता के 175 वर्ष से भी पुराने इतिहास में आज व्यापक परिवर्तन हुआ है। समय और बदलने मूल्यों और प्रतिमानों को ध्यान में रखकर वर्तमान पत्रकार/पत्रिकाएं अपनी विषय-वस्तु को पाठकों तक पहुंचाने का कार्य नि:सन्देह कर रही है। जिस उद्देश्य को लेकर यह वर्ग चला था उसे प्राप्त किया भी और बहुत कुछ प्राप्त करने की दौड़ में अग्रसर भी है। परन्तु जैसे सभी उंगलियां एक समान नहीं होती ठीक वैसे ही कुछ एक पत्रकार वर्ग अर्थ हेतु अपने नैतिक मूल्यों को तार-तार कर पत्रकारिता को अपने व्यापार का माध्यम बना रहा है। यही प्रश्न लेखक ने 'देख जात के ठाठ' में उठाया है। आज पत्रकारिता के क्षेत्र में और अधिक समानता लाने की जरूरत है ताकि ग्लोब के सभी देशों के सभी लोग न्यायपूर्ण तरीके से लोकतान्त्रिक लाभ लेने की स्थिति में आ सके। एक न्यायपूर्ण सूचना व्यवस्था वही कही जाएगी जिसमें किसी भी प्रकार का सूचन असन्तुलन न हो।

अंत में अग्र प्रस्तुत कथन द्वारा अपनी बात को विराम दूंगी कि-

'साधक के लिए साधना का, त्यागी के लिए उत्सर्ग का, तपस्वी के लिए काया-कष्ट तथा अनासक्ति का, योद्धा के लिए संघर्ष और रण का, कवि के लिए अनुभूति की अभिव्यक्ति का, कलाकार के लिए संस्कृति के गूढ़ और रहस्य चित्रण का, आलोचक के लिए जीवन की स्थूल और सूक्ष्म धारा के विवेचन का, साहित्यिक के लिए लौकिक और अलौकिक, यथार्थ और भावुक जगत् को प्रकाश में लाने का प्रशस्त मार्ग एक साथ प्रस्तुत कर देने में पत्रकारिता के अलावा और कौन इतना समर्थ है?'[19] आवश्यकता है तो सिर्फ पत्रकार वर्ग द्वारा इस कथन को अपने जीवन में व्यावहारिक रूप से अपनाने की है। तभी पत्रकारिता जीवन के सर्वांगीण विकास की मूल निर्मीति कही जा सकती है।

संदर्भ

1) हिन्दी नाटक और रंगमंच : डॉ. राजेश्वर प्रसाद सिंह, डॉ. वेणुराय, पृष्ठ-433, जागृति संस्थान मुजफ्फरपुर, संस्करण 2002
2) भारतीय पत्रकार कला : संपादक, रोलैंड ईबंल्स ले, पृष्ठ 348
3) डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का नाट्य साहित्य : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा साहित्य, पृष्ठ-371, त्रिवेणी कला संगम, जयपुर, संस्करण 2012
4) वही, पृष्ठ-374 5) वही, पृष्ठ-377 6) वही, पृष्ठ-378
7) पत्रकारिता का इतिहास : एन.सी. पंत, तक्षशिला प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ 263
8) सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खण्ड 26
9) डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का नाट्य साहित्य : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा साहित्य, पृष्ठ-381, त्रिवेणी कला संगम, जयपुर, संस्करण 2012
10) वही, पृष्ठ-383 11) वही, पृष्ठ-387-88 12) वही, पृष्ठ-388
13) वही, पृष्ठ-391 14) वही, पृष्ठ-393 15) वही, पृष्ठ-395
16) हिन्दी पत्रकारिता : सिद्धान्त और स्वरूप, सविता चड्ढा, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली।
17) डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का नाट्य साहित्य : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा साहित्य, पृष्ठ-395, त्रिवेणी कला संगम, जयपुर, संस्करण 2012
18) वही, पृष्ठ-397-98
19) पत्रकार निराला: डॉ. रमशचन्द्र त्रिपाठी, बाल विनोद ग्रथ माला, लखनऊ

❑❑❑

11

ऐतिहासिक नाटक: पृथ्वीराज चौहान

डॉ. परमेश्वरी शर्मा, कु. सपना देवी

कैलाश चन्द्र शर्मा के नाटक 'पृथ्वीराज चौहान' में यद्यपि भारत की वीर भूमि राजस्थान के चौहान वंश के प्रसिद्ध, प्रतापी और अन्तिम हिन्दू राजा पृथ्वीराज चैहान की वीरता, देशभक्ति व धर्मप्रियता को चित्रित किया गया है तथापि प्रत्येक स्थिति में यह ऐतिहासिक नाटक एक ऐसे दर्पण की भूमिका निभाता है जिसमें वर्तमान दौर स्वत: प्रतिबिम्बित हो जाता हैं। पृथ्वीराज चौहान की वीरता, गजनी के बादशाह शाहबुद्दीन गौरी के साथ युद्ध, राजा जयचन्द की देशद्रोही प्रवृत्ति के कारण पृथ्वीराज की हार आदि अनेक पहलुओं को सामने रखा गया है। देशी राजाओं की आपसी फूट का लाभ सदैव विदेशी शक्तियाँ उठाती रही हैं। यही कारण है कि भारत जैसे विशाल देश को सदियों तक गुलामी की जंजीरों में रहना पड़ा। प्रस्तुत नाटक के माध्यम से न केवल आज की युवा पीढ़ी को देशद्रोहियों के प्रति सचेत किया गया है अपितु राष्ट्रीय एकता की ओर देशवासियों का ध्यान भी आकर्षित किया गया है। नाटक लिखने के उद्देश्य को नाटककार ने भूमिका में ही स्पष्ट कर दिया है -' इस नाटक में मैंने वीर शिरोमणि के रूप में पृथ्वीराज चौहान को प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति प्रदान कर राजपूतों की वीरता, क्षमाशीलता, क्षात्र धर्म के पालनार्थ वीरों की युद्ध में आहूत होने की तीव्र उत्कण्ठा, वीर माताओं द्वारा इस हेतु अपने पुत्रों को दिया गया प्रोत्साहन, देश और कौम के लिए सांस्कृतिक मूल्यों की विद्यमानता, वीर-पुत्रियों द्वारा वीरता का वरण, चाकरों की भक्ति एवं देशद्रोहियों की राष्ट्र विरोधी भावना आदि से वर्तमान पीढ़ी को साक्षात्कार कराने का प्रयास किया है।'

यह नाटक 'तमाशा शैली' में लिखित है। यह शैली जयपुर की संस्कृति

* प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

** हिन्दी विभाग, हिन्दी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

का हिस्सा है। तमाशे में नुक्कड़ नाटक की शैली में कलाकार अपने पारम्परिक हुनर के साथ प्रदर्शन करते हैं। प्राय: पौराणिक कहानियां या चरित्र ही इसकी विषयवस्तु हुआ करते हैं। जिनके माध्यम से सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था पर भी चुटकी ली जाती है। डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा के प्रस्तुत नाटक में भी संगीत, गायकी और तालबद्धता के साथ लोकनाटकों के नट-नटी की तरह उस्ताद, जमूरा और कजरी मंच पर आ कर कथा क्रम को गति प्रदान करते हैं। पहला ही दृश्य अत्यन्त रोचक हरकत से पूर्ण और नाटककार के प्रतिपाद्य को दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। उस्ताद ऐतिहासिक युग पुरुषों से अपरिचित युवा वर्ग के साथ सम्पूर्ण समाज को सम्बोधित होता है - 'अरे अपने देश के इतिहास को नहीं जानते। ऐसे प्रतापी राजा को नहीं जानते जिसके लिए राजस्थान का इतिहास गर्व से सीना ताने विश्व में अपना अस्तित्व रखता है।[1] आज के युग में जीवनधारा बिल्कुल बदल कर रह गई है। आज का युवावर्ग अपने पूर्वजों का इतिहास भूलता जा रहा है। व्यक्ति के पास अपने देश का इतिहास पढ़ने का समय तक नहीं है। वह भारतीय संस्कृति को बिल्कुल भुला चुका है। ऐसे में उस्ताद मंच पर प्रस्तुत होकर चौहान वंश के शूरवीर पृथ्वीराज चौहान से युवा पीढ़ी का परिचय करवाता है। अजमेर के चौहान वंश के शासक सोमेश्वर के बाद उनका पुत्र पृथ्वीराज चौहान अजमेर के साम्राज्य का शासक बना। पृथ्वीराज अपने समय का सर्वोच वीर पुरुष था। उसने सिंहासन पर बैठते ही दिग्विजय करना आरम्भ कर दिया। पृथ्वीराज ने अपने विजित राज्यों को संगठित कर उत्तर भारत में एक विशाल राज्य की स्थापना की। उसकी सेना, पुलिस और न्याय व्यवस्था पूर्ण रूप से व्यवस्थित थी। वह अपने छोटे से जीवन काल में हमेशा युद्ध में व्यस्त रहा। इसके बावजूद वह प्रजा के संरक्षण और शासन व्यवस्था के प्रति कभी उदासीन नहीं रहा। उसका छोटा सा जीवन उसके लिए एक युग में बदल गया। यह उसकी प्रशासनिक योग्यता का प्रमाण था। समस्त राजस्थान को एक सूत्र में बांधने वाला पृथ्वीराज अपने समय का एक कुशल प्रशासक था। वही नाना श्री अनंगपाल के आग्रह पर दिल्ली की भी राजसत्ता संभालने लगा और अजमेर के साथ-साथ दिल्ली का भी शासक बन गया। पृथ्वीराज चौहान ही नहीं बल्कि उसके दरबार के सभी योद्धा देश व प्रजा की सेवा और अपने कर्तव्यों के प्रति पूरे वफादार थे। तुर्की ने शाहबुद्दीन गौरी के नेतृत्व में कई बार भारत में प्रवेश पाने हेतु आक्रमण किये किन्तु पृथ्वीराज व उसकी सैन्य शक्ति सफलतापूर्वक उनके इस प्रयोजन को विफल करती रही।

पृथ्वीराज अपने वीर योद्धाओं को सम्बोधित करते हुए कहता है - 'यह सही है कि आप सभी ने अपनी बहादुरी व कर्तव्य निष्ठा से दिल्ली राज्य की नींव पाताल लोक तक पहुँचा दी है। मेरे बहादुर शेरो! तुम लोगों ने अपनी वीरता से चारों दिशाओं में हमारी धाक जमा दी है और युद्ध में मुहम्मद गौरी को पछाड़कर उसके अभिमान को चकनाचूर कर दिया है। वह इस कदर मुँह दबाये भागा है कि दुबारा कभी दिल्ली की ओर देखने का साहस भी न करेगा।'[2] कुशल प्रशासक के नेतृत्व व केन्द्रीय शक्तियों के सबल रहने पर विदेशियों को सदैव मुँह की खानी पड़ी। युद्ध में जीत का श्रेय स्वयं न लेकर सैन्य बलों को देना भी एक कुशल नेता का वांछनीय गुण होता है जिससे उसके सैनिकों का मनोबल बढ़ता है। वह दुगुनी ताकत से पुन: शत्रुओं से भिड़ने को तैय्यार हो जाते हैं। पृथ्वीराज के पास यह गुण था वह स्वयं ही युद्ध की अगुआई भी करते थे। शत्रु को पीठ दिखाना अथवा युद्ध में कोई अनैतिक काम करना इनके स्वभाव के खिलाफ था। शरणागत शत्रु के साथ भी दयापूर्ण बर्ताव करते थे। यह पृथ्वीराज की दयालुता ही थी कि हर बार गौरी को बन्दी बनाकर रिहा कर दिया गया। एक वीर राजपूत योद्धा क्षमादान से ही कीर्ति पाता है। नाटककार पृथ्वीराज की दयालुता, धर्मप्रियता आदि चारित्रिक विषशेषताओं को कुशलतापूर्वक उघाड़ता चलता है।

प्रत्येक देश/राज्य में किसी की बढ़ती को देख कर प्रसन्न न होने वाले लोगों की कमी नहीं रहती। कन्नौज का शासक जयचंद जो रिश्ते में पृथ्वीराज का मौसेरा भाई था , स्वयं वीर एवं प्रतापी शासक होते हुए भी पृथ्वीराज की बढ़ती कीर्ति से ईर्ष्या करता था। उसने अपनी विजयों की कीर्ति के स्मारक स्वरूप राजसूय यज्ञ किया। अपनी पुत्री संयोगिता का स्वयंवर भी रचा। स्वयंवर में पृथ्वीराज को आंमत्रित नहीं किया जाता क्योंकि दोनों में शत्रुता है। देष-विदेश से वीर योद्धा, राजा-महाराज स्वयंवर में भाग लेते हैं। किन्तु पृथ्वीराज को अपमानित करने के लिए उसकी मूर्ति बनाकर दरवाजे पर द्वारपाल की जगह लगवा दी गई है। संयोगिता सभा में उपस्थित राजाओं को छोड़कर द्वारपाल की प्रतिमा को माला पहनाकर अपना वर चुनती है। उसे वह पत्थर की मूर्ति समस्त शूरवीरों से श्रेष्ठ लगती है। इस घटना से क्षुब्ध पिता (जयचन्द) उसे फटकारते हुए कहते हैं - 'मूर्ख लड़की! यह तूने क्या किया? क्या तेरा विवेक नष्ट हो गया है? क्या तू अपने कुल और मर्यादा को बिल्कुल भूल गई है? तू यह भी भूल गई है कि यह तो ऐसे कायर की प्रतिमा है जो हमारे द्वारपाल के काबिल है।'[3] जयचन्द जैसे

महत्वाकांक्षी पिताओं की भी कमी नहीं जो अपनी महत्वाकाक्षाओं के कारण बेटी की इच्छा/आकांक्षाओं की बलि चढ़ाने में भी पीछे नहीं हटते। उस समय में जब स्वयंवर प्रथा प्रचलित थी उसमें भी लड़की को इच्छानुसार वर चुनने की स्वतन्त्रता तो दी जाती थी किन्तु कहीं न कहीं पुरुष द्वारा उसके सपनों को कुचलने में भी कोई कमी नहीं रखी जाती थी। जयचन्द तो संयोगिता के वध के लिए उतारू हो जाते हैं क्योंकि उसने स्वयंवर की मर्यादा के अनुसार अपना इच्छित वर जो चुन लिया। पुरुष सत्ता के द्वारा बनाए गये नियमों-कानूनों में भी स्त्री के लिए तनिक भी प्रेम नहीं, छूट नहीं। वह हर सम्भव प्रयास से उसे अपना निर्णय बदलने पर बाध्य करता है - 'जा और यह माला इस द्वारपाल की प्रतिमा से निकाल ले अन्यथा मैं अपने ही हाथों तेरा वध कर दूंगा।' पितृ सत्ता का क्रूर चेहरा तब और भी भयावह हो जाता है, जब संयोगिता के पक्ष में आई धाय मां को इन अपशब्दों का सामना करना पड़ता है -' चुपकर बुढ़िया! तू यदि इस की धाय न होती तो इस से पहले मैं तेरा वध कर देता। तू इसे समझाने की बजाय हमें ही नसीहत दे रही है।'[4] भले ही नाटक पृथ्वीराज चौहान की वीर गाथा क्यों न हो किन्तु नाटककार वर्तमान के ज्वलंत प्रश्नों से भी अपरिचित नहीं है। कन्नौज में घटित घटना की पल-पल की सूचना पृथ्वीराज चौहान को मिल रही थी। गुप्तचर सूचना देता है कि संयोगिता ने वर रूप में उन्हें चुना है और आततायी पिता के पास मृत्यु के साये में इन्तजार कर रही है कि कब पृथ्वीराज उसे कन्नौज से आकर ले जाएंगे। पृथ्वीराज चौहान व कवि चंद छद्मवेश में अपने सौ सामन्तों और छह शूरमाओं के साथ कन्नौज राज्य की ओर प्रस्थान करता है। छद्मवेश में महल में अपने सहयोगियों के साथ छिपा रहता है और उचित समय देखकर लाखों सैनिकों के घेरे को चीरता हुआ संयोगिता को महल से भगा ले जाता है।

संयोगिता स्वयंवर के बाद पृथ्वीराज और जयचंद की शत्रुता अत्यन्त कटुतापूर्ण हो गई। व्यक्तिगत स्वार्थों के समक्ष देश की बलि चढ़ा देना एक स्वार्थी शासक के लिए भले ही छोटी बात हो किन्तु देश भक्त के लिए उसकी आन-बान और शान का प्रश्न ही देश रक्षा है। जब जयचन्द अपने शत्रु को पराजित नहीं कर सका तो विदेशी ताकतों का सहारा लेकर उसका सर्वनाश करने की ठानता है। 'पृथ्वीराज, मेरे सबसे बड़े दुश्मन! मैं तेरे कुल का नामो निशान मिटा दूंगा। देख अब मैं भी क्या मायाजाल रचाता हूँ। तेरे खून के प्यासे शाहबुद्दीन गौरी को अभी बुलाता हूँ और उसे सैनिक सहायता देकर अभी दिल्ली पर चढ़ाई कराकर तेरा

सर्वनाश कराता हूँ।'[5] केवल अपने स्वार्थों की खातिर देश को विदेशियों के हाथों बेचने वाले जयचन्द जैसे लोग तो हैं हीं साथ ही देशभक्त भी हैं जो इसके घातक परिणामों से मूर्ख शासकों को अवगत करवाते रहते हैं कि विदेशी शक्तियों को भारत में निमंत्रण देना देशनीति व धर्मनीति के विरुद्ध है। रामसिंह और जोधमल जैसे देशभक्त जयचन्द और पृथ्वीराज की शत्रुता को आपसी विवाद बताकर देश को दूसरों के हवाले करने की बात में भारी तबाही की भूमिका मान रहे हैं। जबकि स्वार्थी शासक अपने अपमान का बदला लेने पर अड़ा हुआ है - 'मैं शाहबुद्दीन को सैनिक सहायता देकर दिल्ली की ईंट से ईंट बजवाना चाहता हूँ।'[6] ऐसे शासक वीरता के नाम पर धब्बा होते हैं और मातृभूमि के लिए कलंक। जयचन्द का वफ़ादार सैनिक जोधमल उसकी नीतियों के कारण दरबार छोड़कर पृथ्वीराज चौहान की शरण में जाता है और देश के शत्रु शाहबुद्दीन गौरी के खिलाफ लड़ने के लिए पृथ्वीराज चौहान को अपनी सेना में शामिल करने का निवेदन करता है। उसकी मातृभूमि के प्रति वफ़ादरी देखकर पृथ्वीराज उसे अपनी सेना में शामिल कर लेता है। जोधमल अपनी माँ को बीमार देख कर भी जन्मभूमि को जननी से ऊँचा मानते हुए युद्ध में शामिल रहने पर अड़िग रहता है। उसकी मां भी प्रसन्न होती है कि जब उसकी भारत माता बहुत सारे दुश्मनों से अक्रांत है तो उसके पुत्र ने इस संकट की घड़ी में मातृभूमि की रक्षा को प्राथमिकता दी। 'जाओ पुत्र आज तुम्हारी परीक्षा का समय है। आज तुम्हारा धर्म अपनी माता से अधिक भारत माता की रक्षा करने का है'।[7] धन्य हैं ऐसी माताएँ जिन्होंने ऐसे वीर शूरमाओं को जन्म दिया, जिन्होंने भारत का मस्तक अन्य देशों के सामने कभी झुकने नहीं दिया और अपने प्राणों की आहूति देकर देश को सदैव गौरवान्वित किया।

भारत की धन-सम्पदा ने विदेशियों को सदैव आकर्षित किया है। अपार धन सम्पदा की खातिर उन्हें हर बार मुंह की खानी पड़ी । पृथ्वीराज के साथ युद्ध में बार-बार हारने वाला शाहबुद्दीन गौरी भी इसकी असीम धन सम्पत्ति को प्राप्त करना चाहता था वह कहता है - 'हिन्दुस्तान सोने की चिड़िया है और मैं उसका मोह क्यों कर छोड़ सकता हूँ। उसके नूर के दीदार की चाह ने मुझ पर नशा सा कर दिया है।'8 उसके मन में हिन्दोस्तान की सम्पन्नता और वैभव बसे हुए थे। तुर्क ने अपनी कुशल गुप्तचर व्यवस्था से राजपूतों की शक्ति व कमजोरियों का पता लगाया कि 'पृथ्वीराज चैहान संयोगिता के प्रेम में इतना लिप्त हो गया है कि उसे शासन के किसी काम की सुध-बुध नहीं रही। उसके दरबारी, सिपहसलार,

थानेदार, चौकीदार भी राग-रंग में मस्त हो गए हैं। राज्य के सब कार्यों में गड़बड़ मच चुकी है। पृथ्वीराज की सेना पहले की अपेक्षा अब की बार कम है।' [9] जयचंद ने गौरी को पृथ्वीराज से युद्ध करने के लिए पुन: एक बार निमन्त्रण भेजा। गुप्तचर-व्यवस्था का अभाव व पृथ्वीराज का विलासपूर्ण जीवन तथा दूरदर्शिता के अभाव के कारण पृथ्वीराज की हार होती है। सबसे बड़ी बात यह कि उन्हें युद्ध का अंदेशा भी नहीं था। ऐसे में हार का सामना करना स्वाभाविक था। विजयश्री तुर्कों के हाथ लगी और भारत की सत्ता हाथ से निकल गई। तराइन के द्वितीय युद्ध में पृथ्वीराज की पराजय ने न केवल चौहानों की राजशक्ति को समाप्त कर दिया वरन् भारत की दुर्दशा का कारण भी बनी। देश की आर्थिक स्थिति निरन्तर सोचनीय होती गयी । इस पराजय से सार्वभौमिक शक्ति का विध्वंस हो गया। सम्पूर्ण भारत पर संकट के बादल छा गए। राजा और जनता का नैतिक बल भंग हो गया और सम्पूर्ण देश पर आतंक छा गया। देशद्रोही जयचन्द के षड्यन्त्र के परिणामस्वरूप हुए इस युद्ध का वर्णन नाटक में गायन से किया गया है -

'जयचन्द द्रोही देश का, था साथ गौरी का दिया।
लड़कर मिटे चौहान योद्धा, साथ स्वामी का दिया।।
पृथ्वीराज चौहान तो भी, युद्ध करता ही रहा।
नि:शस्त्र होकर भी वह, उत्साह से लड़ता रहा।।' [10]

शत्रु से सदैव सावधान रहना ही एक कुशल राजनीतिज्ञ का दायित्व होता है किन्तु बार-बार गौरी को हराने वाले पृथ्वीराज चूक गये। जिसका परिणाम यह हुआ कि शाहबुद्दीन मुहम्मद गौरी पृथ्वीराज को अन्धा बनाकर गजनी ले गया। कवि चंद वेश व नाम बदलकर गजनी आता है और राज्य में ऐसा प्रचार करता है कि पृथ्वीराज चौहान शब्दबेधी बाण चलाने में सिद्धहस्त हैं। गौरी को पृथ्वीराज का यह जौहर देखने के लिए कार्यक्रम रखवाने के लिए राजी करता है। नेत्रहीन और धनुर्विद्या कौशल में निपुण पृथ्वीराज अपने इस कौशल से गौरी का अंत करने में सफल रहता है। इसमें उसकी मदद चेतानन्द बना कविचंद करता है। वह पृथ्वीराज को शत्रु के बैठने की सही जगह की जानकारी देता है -

'ऊँच नीच का मैं तुम्हें देऊं ठीक प्रमाण।
शत्रु तेरा है जहाँ सुन ले ठीक निशान।।
चार बाँस चैबीस गज, अंगुल अष्ट प्रमाण
ता ऊपर सुल्तान है, मत चूके चौहान।।11

वीर शिरोमणि पृथ्वीराज के लिए उक्त संकेत ही काफी था। गौरी का अंत कर दोनों वीर (कविचन्द और पृथ्वीराज) एक दूसरे को कटार मार कर देश और धर्म की रक्षा के लिये बलिदान हो जाते हैं। पृथ्वीराज न केवल वीर योद्धा था अपितु अपने समय का एक महान शासक था, जिसने अनेक युद्ध लड़े और विजय प्राप्त कर एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। राजनीतिज्ञ के रूप में उसने ऐसी भयंकर भूलें की, जिन्होंने उसकी सफलताओं पर पानी फेर दिया। यदि वह अपने शत्रु को बार-बार छोड़ने की भूल नहीं करता, तो शायद भारतवर्ष का इतिहास ही कुछ और होता। कन्नौज के राजा (जयचन्द) ने मुहम्मद गौरी के साथ मिलकर हिन्दुस्तान के लिये ऐसे कांटे बोये जो देश की दुर्दशा का कारण बने और ऐसे देश गुलाम हो गया। भावी पीढ़ी के लिए भी यह घातक सिद्ध हुआ कि उन्हें अगली कई शताब्दियों तक गुलामी का मुँह देखना पड़ा। देश, धर्म और भारतीय संस्कृति की समृद्धि के लिए सच्चे देश भक्त की आवश्यकता होती है न कि छोटे-छोटे स्वार्थों की पूर्ति हेतु विदेशी ताकतों के हाथों बिकने वाले स्वार्थी कायरों की। नाटक प्रसाद के 'स्कन्दगुप्त' के निकट ठहरता है। कई स्थानों पर तो भाषा हूबहू प्रसादीय है। सत्ता के लोभी वहां भी विदेशियों के साथ मिलकर स्कन्दगुप्त को कमज़ोर करने की साजिश रचते हैं पर सच्ची देश-हित-भावना के समक्ष उनकी एक नहीं चलती। आकस्मिक घटनाओं का घटना प्रसाद के नाटकों की याद दिलाता है । कई प्रसंग पूरी तरह से वर्तमान संदर्भों से जुड़ जाते हैं। 17 दृश्यों में विभक्त इस नाटक में रंग संकेतों की भी कमी नहीं है। उस पर भी लोकनाट्य शैली में होने के कारण रोचक बन गया है। तमाशा शैली के जाने माने निर्देशक श्री दिलीप भट्ट के निर्देशन में इसका मंचन भी हो चुका है। इस शैली में कथा अभिनय से कम बल्कि गायन और वादन से अधिक प्रस्तुत की जाती है। प्रस्तुत नाटक की कथा भी बहुत कुछ गीतों से कह दी गई है। यही इस नाटक की विशेषता है। नाटककार ने इस ऐतिहासिक कृति द्वारा शूरमाओं के त्याग, बलिदान, तपस्या तथा धैर्य को वर्तमान पीढ़ी तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया है। भूतकाल में जो गलतियाँ हुई हैं उनसे सीख लेकर वर्तमान को समृद्ध बनाने का आग्रह भावी पीढ़ी से किया गया है।

सन्दर्भ :

1. कैलाश चन्द्र शर्मा :पृथ्वीराज चौहान, पृ. 27
2. वही, पृ. 31
3. वही, पृ. 39
4. वही, पृ. 40
5. वही, पृ. 54
6. वही, पृ. 55
7. वही, पृ. 61
8. वही, पृ. 69
9. वही, पृ. 71
10. वही, पृ. 74
11. वही, पृ. 78

❑❑❑

12

कैलाशचन्द्र शर्मा के नाटकों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

रीना कुमारी

कैलाशचन्द्र शर्मा द्वारा लिखित नाटक 'कार्यवाहक हलवाई' में पूरे नाटक को तीन दृश्यों में विभाजित किया है। पहले दृश्य में आपसी लड़ाई करते बच्चों को गली से गुजरने वाला ग्रामीण हटा देता है और आपस में मिलकर रहने की शिक्षा देता है। तभी गली में नाक कान बींधने वाले सरदार की आवाज आती है। वह कुंडल पहनाते हुए लड़की के सौंदर्य पर मंत्रमुग्ध होकर लडकी की माँ से पिट जाता है तभी एक राहगीर क्रोधित औरत को उसे क्षमा करने की बात करता है तो औरत उसे यथार्थ से परिचित करवाती हुई राहगीर को भी उसके जैसा चरित्रहीन करार देती है। राहगीर और सरदार की आपसी बातचीत से उसे ज्ञात होता है कि सरदार एक बहरूपिया है वह राजा-महाराजाओं के राज्याश्रय में रहकर उनका मनोरंजन करता था पर देश के बहुमुखी विकास और प्रजातंत्र की दस्तक के कारण उसकी कला दम तोड़ गयी। कला के आधुनिक सिखलाई केन्द्र, एकेडिमयां तो स्थापित हुई लेकिन कलाकार की स्थिति में परिवर्तन न आकर वह निर्धनता का शिकार हो गया। देश में कला की परख करने वालों का अभाव होने के कारण कलाकारों को निकृष्ट और प्रताड़ित होकर जीना पड़ता है। नाटककार ने लोगों की स्वार्थी प्रवृत्ति को भी इस नाटक के माध्यम से दर्शाया है कि लोग कैसे मजबूर इन्सान का इस्तेमाल अपने मतंव्य को पूरा करने के लिए करते हैं और मूर्ख तथा अज्ञानी होने का परिचय देते हैं। फिर राहगीर सरदार को अपने स्वार्थ

* सहायक प्रोफेसर,हिन्दी विभाग, दसमेश गर्ल्स कॉलेज , चक्क अल्ला बख्श, मुकेरियाँ (पंजाब)

के लिए इस्तेमाल करने की बात करता है जिससे कि उसे काम मिल सके और राहगीर का मतंव्य भी पूरा हो जाए। वह उसे अपने भाई की हलवाई की दुकान संभालने की जिम्मेवारी देता है क्योंकि उसका भाई मिट्ठन अपनी पत्नी के साथ तीर्थ यात्रा पर गया है और दुकान की संभाल करने के लिए राहगीर को जिम्मेवारी देता हैं। मंदिर में भजन करने के कारण राहगीर इस कार्य को सकुशलतापूर्वक निभाने में असमर्थ होता है। वह कलाकार (सरदार) को हलवाई की दुकान का कार्यभार सौंपता है, जब उसी समय कलाकार जलेबी और दूध गरम का स्वर अलापता है तो एक भिखारी वहाँ धोखा खा कर आ जाता है। बहरूपिया (कलाकार) उसे भगाता है तभी राहगीर को विश्वास हो जाता है कि हलवाई की दुकान ठीक व्यक्ति के हाथ में गयी है। जनता भी नकली मिठाईयों को बड़ी खुशी से खाती है। नाटक के माध्यम से नकली वस्तुओं के व्यापार पर भी व्यंग्य किया गया है। एक महीने की अगाऊ पगार देकर हाथ में पत्र थमाकर राहगीर कलाकार को दुकान का परिचय देकर दुकान चला रहे बदलू नौकर के पास भेज देता है। बदलू नौकर को मिट्ठन हलवाई के भाई के रूप में अपना परिचय देने को कहता है। दोनों चले जाते है। पहला दृश्य समाप्ति पर है और द्वितीय शुरू हो जाता है। चौराहे पर खड़ा कलाकार दुकान का पता पूछने के लिए देखता है तभी एक लड़का बोझा उठाए वहाँ से गुजरता है और उसे रास्ता बतलाने का झांसा देकर अपना बोझा उससे उठवाकर भटकाव में डाले रखता है। बातों-बातों में बदलू अपने मालिक मिट्ठन हलवाई के गंगा तट पर तीर्थ यात्रा पर जाने की बात का रहस्य खोलता है और दुकान का मालिक अपने आप को बताता है। तभी कलाकार उसे पत्र थमाकर दुकान का कार्यवाहक हलवाई अपने आप को बताकर खुश होता है, कलाकार की बात सुनते ही बदलू बेहोश होकर गिर जाता है। तीसरा दृश्य प्रारंभ होता है। कलाकार अर्थात् कार्यवाहक हलवाई दो महीने की पड़ी बर्फी लाने के लिए इशारा करता है और उसे पुरानी कड़ाई में घोटे जा रहे दूध में डालने के लिए कहता है कि इससे बर्फी ताजी हो जाएगी। मिलावटी मिठाई करने के सारे गुण सिखाते हुए और अपनी मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकारी बनाने के लिए कहता है और फूड इंस्पेक्टर से इस झूठ को छिपाए रखने के लिए कहता है। सरकारी अफसरों की रिश्वतखोरी और अपने पेशे के प्रति धोखा करने की बुरी नीति का भी इसमे पर्दाफाश किया गया है। फूड इंस्पेक्टर प्रतिमाह 500

रू. तथा मिठाई का डिब्बा फ्री में निरीक्षण करने आकर ले जाता है। बदलू कार्यवाहक हलवाई से कहता है-' बदलू - तो क्या वह सरकार से तनख्वाह नहीं लेता? (फिर दर्शकों की ओर देखते हुए) अच्छा! समझ आ गई बात। सरकार से बेचारा लेगा भी कैसे! अपनी ड्यूटी के चक्कर में दिन भर तो फील्ड में मारा-मारा फिरता है। (फिर उंगलियो पर गिनकर उछलते हुए मिट्ठन की ओर देखते हुए) वाह मालिक वाह! बड़ी अच्छी तनख्वाह है इंस्पैक्टर साहिब की तो।

हलवाई:- कैसे भाई?

बदलू: 500×30=15,000 रू. प्रतिमाह।

हलवाई बदलू को लोगों की मंदबुद्धि और मूर्खवृत्ति के विषय में कहता है कि दीपावली के अवसर पर या त्यौंहार के दिनों में मिठाईयाँ जल्दी बिक जाती हैं क्योंकि लोग रिश्तेदारी निभाने के लिए मिठाईयां खरीदते हैं। कुछ मंदिर में भगवान की प्रतिमा के सामने रखी जाती हैं और शेष घरों में मेहमानवाजी के लिए फ्रीज में स्टोर करके रखी जाती हैं। मेहमान फोकट की मिठाई खाकर डायबेटीज के शिकार होकर डॉक्टरों पर पैसा लुटाते है और बीमारी के मूल कारण की पहचान भी नहीं हो पाती कि मिठाई ही मूल जड़ है। हलवाई का बेटा एम.बी.ए. की पढ़ाई जारी रखने के कारण दुकान संभालने में असमर्थ रहता है जो बात हलवाई को दिन-रात खटकती है। बातों-बातों में हलवाई को बदलू नौकर के पढ़े-लिखे होने की बात पता चलती है तो वह उसे दुकान पर काम करने का कारण पूछता है। तभी बदलू अपने परिवार की मजबूरी का बताकर चुप हो जाता है। नाटककार ने बदलू नौकर को पढ़ी-लिखी नौजवान पीढ़ी की बेरोजगारी का प्रतीक बनाकर पेश किया है कि देश की युवा पीढ़ी जनसंख्या वृद्धि के कारण बेरोजगारी में मजदूरी करके अपने परिवार का भरण-पोषण करती है और लाचार है। अफसर का कुत्ता दुकान के सामने भौंकता है तो हलवाई बदलू को कुत्ते को मारने से मना कर देता है और कहता है कि यह कुत्ता न होकर टॉमी या टाईगर है, इन्हें भाषा के चमत्कार से ही भगाया जा सकता है। कुत्ता लालची अफसरों का प्रतीक है क्योंकि इस देश में लोगों की स्थिति ऐसी है कि वह गरीबी रेखा से नीचे अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं, खाने को दो टूक रोटी नहीं मिलती और यहाँ अफसरों के कुत्ते खुलेआम घूमते हैं । ऐशो-आराम का जीवन जीते हैं और जानवर होकर

भी इंसान से ज्यादा मूल्यवान समझे जाते हैं। हलवाई जनता को मिलावटी मिठाई देता है लेकिन अफसरों की खातिर-दारी बरनी में पड़ी मिठाई देकर करता है। तभी किसी ग्राहक के दूध मांगने पर जब हलवाई से पूछता है तो हलवाई उसे बिल्ली का झूठा दूध देने को कहता है कि ग्राहक भगवान का रूप होता है और उसे खाली हाथ नहीं लौटाना चाहिए, इससे ग्राहकी खराब होती है। तभी हलवाई फूड इंस्पैक्टर को पैसे देकर कहता है -

हलवाई - 'हाँ हुजूर क्यों नहीं। कानून की मदद करना व सरकारी काम में सहयोग देना (पाँच सौ रुपये का नोट व एक मिठाई का डिब्बा देता है) तो हमारा धर्म है, कर्त्तव्य है।'

इंस्पैक्टर मंगलमय पूर्व की शुभकामनाएं देकर चला जाता है और बदलू बेहोश होकर गिर पड़ता है। नाटक में व्यंग्य लाने के लिए नाटककार हलवाई के मुंह से कहलवाता है:-

'हलवाई:- लगता है, लड़के ने ग्राहकों वाली मिठाई खा ली है।'

हलवाई स्वयं ढूँढाड़ गीतमाला के गीत सुनने लगता है। तभी मंच पर दो लड़कियों का प्रवेश होता है। एक लड़की दूसरी लड़की से मिट्ठन हलवाई की दुकान की रौनक नये हलवाई के आने से बढ़ जाने की बात करती है और बताती है कि अब हलवाई ने दुकान पर बच्चों का सामान, लेडीज सामान रखना शुरू कर दिया है। नाक की लौंग कानों के कुंडल लाने गई लड़की को पहली लड़की जल्दी वापिस आने को कहती है और दही लाने को कहती है। वहां फरमाईशी नगमों का प्रोग्राम रेडियो पर चल रहा होता है। नाटककार व्यंग्यमयी फरमाईश करने वाले कल्पित श्रोताओं के नाम बताकर 'जूतों की बरसात' नामक ''पेटी लिय्यां आयो सरदार .....'' गीत प्रस्तुत करता है।

हलवाई गद्दी से उतरकर लड़की को कुंडल पहनाते समय उसका मुंह ताक रहा होता है कि लड़की की माँ दुकान पर आकर सरदार को पहचान लेती है और चप्पल लेकर पिटाई करने जाती है । एक साँड भी उसके पीछे पड़ जाता है। नाटक समाप्त हो जाता है। इस तीन भागों में बँटे नाटक में नाटककार ने समाज में व्याप्त बुराईयों का तो पर्दाफाश किया ही है साथ ही साथ बहरूपिए के माध्यम से देश में कलाकार वर्ग की दयनीय स्थिति, सरकारी अफसरों की रिश्वतखोरी और मनुष्यों की जगह जानवरों की मूल्यवत्ता तथा

मिलावटी सामान की बिक्री और खरीददारी पर व्यंग्य कसा गया है।

'बदले का अभिशाप' नामक पांच भागों में बंटे नाटक की पात्रा शैला को द्रोणचार्य की प्रतीक तथा उसकी बेटी कणिका को आधुनिक अश्वत्थामी के रूप में प्रस्तुत करके तथा मुख्य सभाग्रह में मंचित किये जा रहे नाटक 'अश्वत्थामा' में द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा के माध्यम से नाटककार ने प्रतिशोध की भावना से उपजी त्रासदी का रोमांचकारी वर्णन किया है।

नाटक के प्रथम दृश्य में सभाग्रह में मंचित किए जा रहे नाटक 'अश्वत्थामा' के लिए सभी सीटें फुल है। वहां पर श्रीमती शीला भी अपनी बेटी कणिका को लेकर अपने असफल फिल्मी सफर के पश्चाताप हेतु प्रायश्चित करने के लिए बैठी है क्योंकि श्रीमती शीला अपने निर्देशकों के कुछ अस्पष्ट प्रस्तावों को नहीं मान पायी इसीलिए वह रोमा और आभा की भाँति सफल नहीं हो सकी। दूसरे दृश्य में नाटककार ने प्राचीन पात्र अश्वत्थामा और आधुनिक जीवन की पात्रा अश्वत्थामी के जीवन का विश्लेषण किया है।

तीसरे दृश्य में द्रोणाचार्य के आवास, पत्नी और पुत्र से आपसी वार्तालाप का वर्णन है। अश्वत्थामा दुर्योधन के साथ जंगल मे जाने की अनुमति पिता से लेना चाहता है लेकिन पिता उसे हवन की तैयारी की जिम्मेदारी सौंप देते हैं। द्रोणाचार्य अश्वत्थामा को श्रेष्ठ धनुर्धारी बनाना चाहते हैं लेकिन साथ ही अपनी पत्नी कृपी से अपना आश्रम छोड़ कर भीष्म पितामह के आश्रम में रहकर राजकुमारों की धनुर्विद्या और अस्त्रविद्या सिखाने के कर्त्तव्य से बंधे होने की बात कहते हैं। राजकुमारों की शिक्षा-दीक्षा के कारण वे अपने पुत्र को समय नहीं दे पाते, यही उनकी चिंता का विषय है। अगर वे ऐसा न कर पाए तो उनका प्रतिशोध पूरा नहीं हो सकेगा। जैसे, द्रोणाचार्य:- हाँ, उसे श्रेष्ठ धनुर्विद्या तो ग्रहण करनी ही है। मेरा जो अपमान किया था द्रुपुद ने उसका प्रतिशोध तो मुझे लेना ही है। बस, अब मेरा एक ही लक्ष्य है - प्रतिशोध, द्रुपुद से प्रतिशोध। उसने मेरी भावनाओं के साथ ही साथ मेरी धनुर्विद्या को भी ललकारा है। नाटककार ने नाटक के माध्यम से प्रतिशोध की धधकती अग्नि में अपनी संतान को धकेल कर उसका जीवन नष्ट करने की ओर संकेत दिया है और यही प्रतिशोध पीढ़ी दर पीढ़ी चलकर विराट विध्वंस का

कराल रूप धारण कर लेता है।

अश्वत्थामा दुर्योधन से मिलकर इस बात का आभास कर लेता है कि जो चमक पाण्डवों को देखकर दुर्योधन की आँखों में आती है, वही द्रोणाचार्य की आँखों में द्रुपुद का नाम सुनकर आती है। कृपी अश्वत्थामा को राजवंशियों से दूर रहकर अपना जीवन बिताने को कहती है और द्रोणाचार्य को भी कहती है कि कहीं आपकी महत्वाकांक्षा बेटे के भविष्य को नष्ट न कर दे। जैसे,

कृपी:- आपके लिए वह निश्चित पराक्रमी है। पर मेरे लिए? नहीं - मुझे डर है कि पिता की महत्वाकांक्षा बेटे के भविष्य को नष्ट न कर दे।

कृपी अपने पुत्र की चिंता करती हुई अपने पति को तर्कों के आधार पर मना करती है और दुर्योधन की ईर्ष्यालु बातें सुनकर पुत्र में आए बदलाव के विषय में बताकर द्रोणाचार्य और द्रुपुद की दुश्मनी का आभास होने का भी रहस्य भी अपने पति को बताती है। तृतीय दृश्य से युद्ध की अनिवार्यता ज्ञात होती है। युद्ध अचानक ही नहीं आरंभ होते। ईर्ष्या, क्रोध आदि पंच विषय विकार तथा परिस्थितियां मिलकर इसकी पृष्ठभूमि तैयार करती है और अंत में ज्वालामुखी के विस्फोट की भांति विनाश अनिवार्य हो जाता है।

चौथे दृश्य में अश्वत्थामा का वार्तालाप आता है जिसमें दुर्योधन द्वारा कर्ण को सेनापति पद देना, अश्वत्थामा की पश्चाताप की भावना तथा उसकी पिता की मृत्यु का शोक परिलक्षित होता है। केवल पिता की आत्मिक शांति के लिए कर्त्तव्य भावना से मंडित होकर युद्ध में शामिल होने की बात अश्वत्थामा के मुख से कहलायी है। मित्र प्रेम में फंसकर अर्थात् दुर्योधन के बहकावे में आकर पाण्डवों से युद्ध करते समय नारायण अस्त्र का प्रयोग करके अर्जुन का विश्वास गंवाया। महाकाव्य शक्ति का साक्षात्कार करके इच्छापूर्ति हेतु ईर्ष्या में जलता हुआ पांडवों के शिविर में पहुंचकर सोये हुए धृष्टद्युम्न को मार देता है। छल से द्रौपदी के पांच पुत्रों प्रतिविंध्य, सुतसोम, ज्ञातानिक, श्रुतकर्मा, श्रुतकर्मों को मार देता है और शिखण्डी के भी दो टुकड़े कर देता है। अर्जुन को अश्वत्थामा के हाथों से श्रीकृष्ण बचाते हैं और अपने सुदर्शन चक्र के प्रहार से अश्वत्थामा की मणि को काट दिया क्योंकि अश्वत्थामा ने अज्ञानतावश ब्रह्मशिरस् और ब्रह्मास्त्र चलाकर अग्नि का ताण्डव मचा दिया

था। इसका परिणाम उसे मस्तक मणि से विहीन होकर भुगतना पड़ा। माथे की जलन से निजात पाने के लिए वह गंगा मैया में विलुप्त हो गए। पौराणिक कथा का अश्वत्थामा तो गंगा में विलीन हो गया लेकिन कल्पित नाटक का पात्र अंत में दर्शकों से दर्द से कराहता हुआ हल्दी-तेल की मांग करता है। नाटककार प्रतिशोध की भावना से विखण्डित हुए पराक्रमी तपस्वी की स्थिति से संसार को अवगत करवाते हैं।

पांचवा दृश्य आधुनिक अश्वत्थामी शैला की पुत्री कणिका के जीवन पर दृष्टिपात करते हुए आरंभ होता है। नाटककार ने पौराणिक कथा के माध्यम से आधुनिक समाज में आधुनिक परिवेश की परिस्थितियों से अवगत करवाते हुए कणिका (आधुनिक अश्वत्थामी) की ज़िंदगी का प्रतिशोध की भावना से हुई विनाशता का तुलनात्मक विश्लेषण किया है और आधुनिक समाज में पुराने मूल्यों की प्रासंगिकता को प्रतिपादित किया है। कणिका और शैला (माँ) दोनों दिनचर्या की शुरूआत करते हुए आपसी वार्तालाप रंगहमल में देखे गए नाटक से शुरू करती हैं और शैला अपने आप को द्रोणाचार्य तथा पुत्री कणिका को अश्वत्थामा के रूप में कल्पित करती है और अपनी असफल फिल्मी सफर का प्रतिशोध निर्देशकों और सहेलियों से पुत्री को हीरोईन बनाकर लेना चाहती है। वह स्वीकार करती है कि समाज में नारी को पुरुषों द्वारा प्रताड़ित किया जाता है लेकिन नारी को सफल होने के लिए किसी भी हद तक चले जाना चाहिए। असफलता उसे उसके नैतिक आदर्शों से बहुत दूर गंदगी के दलदल में अपनी पुत्री को धकेलने के लिए मजबूर कर देती है। उसे लगता है कि अगर उसने ऐसा जीवन में किया होता तो वह भी सफल अभिनत्रियों में होती। पुत्री कणिका जो कि आधुनिक अश्वत्थामी के रूप में नाटक में कल्पित की गई है उसका असलम नाम के मुसलमान लड़के से प्रेम संबंध होता है और वह उसके साथ पेटिंग्स का बिजनैस शुरू करना चाहती है लेकिन कणिका की माँ उसे ऐसा करने से मना कर देती है और जाति भेद की दीवार का वास्ता देकर उसे चुप करवाकर अपनी बात मनवाने के लिए तैयार कर लेती है। वह जीवन के कड़वे अनुभवों से उसे अवगत करवाती है और समाज की यथार्थ तस्वीर दिखाने के लिए सुरेश खरे द्वारा लिखित मराठी नाटक 'मला उत्तर हवय' उसे पढ़ने के लिए देती है और अपनी बेटी के कोरे मन के ऊपर समाज की भयावहता को अंकित करके अपनी ईर्ष्या से पैदा हुए प्रतिशोध

को लेने के लिए उसे मना लेती है। घर पर आए असलम को भी वह जली कटी सुनाकर बेटी की जिंदगी से दूर जाने के लिए कहती है और बेटी भी माँ की आधुनिक विचारों वाली अश्वत्थामी बनकर असलम को ठुकरा देती है और शोकमग्न हो जाती है। निर्देशक (चक्रवर्ती) से फिल्म ऑडीशन के पूर्व अपनी बेटी से संबंधित सभी शर्तें बताने के लिए वह जब घर से जाती है तो रास्ते में गाड़ी के नीचे आ जाने से उसकी मृत्यु हो जाती है। जब दूरभाष के माध्यम से यह सूचना कणिका को मिलती है तो उसकी आत्मा कांप उठती है और वह मां और असलम दोनों के जीवन से चले जाने पर शोक प्रकट करती है और अपनी बर्बादी का मंजर सामने देखती है। नाटककार ने इस नाटक के माध्यम से बताया है कि मां-बाप अपने बच्चों को प्रतिशोध की अग्नि में फेंक देते है क्योंकि उनकी अपनी महत्त्वाकांक्षाएं अधूरी रह जाती हैं। उनका विचार है कि ईष्या मनुष्य को इंसान से हैवान बना देती है, चाहे युग कोई भी हो, प्रतिशोध की भावना से ज्वलित मनुष्य का परिणाम अंत में दयनीय और भयावहकारी ही होता है और पौराणिक कथाएं प्रत्येक युग में प्रासंगिक रहती है क्योंकि यह कालजयत्य की सीमा को पार कर लेती है। अंत में नाटककार ने पौराणिक कथा के अश्वत्थामा और आधुनिक अश्वत्थामी कणिका का प्रवेश करवाया है। अश्वत्थामी फिल्म के लिए रोल मांगती है और अश्वत्थामा मस्तक की मणि कट जाने के दर्द से निजात दिलाने के लिए दर्शकों से हल्दी-तेल की मांग कर रहा है। पूरे नाटक में प्रतीकात्मकता का प्रयोग करके समाज को प्रतिशोध की भावना में जलकर विनाशकारी परिणामों के बारे में बताने का भरसक प्रयास किया गया है। भाषा-शैली तथा शिल्प की दृष्टि से इसे सफल नाटक होने का गौरव प्राप्त है। दुहरा कथानक संपूर्ण कथा को रोमांचकता तथा कलात्मकता प्रदान करता है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि नाटककार अपने मंतव्य को पूरा करने में सफल रहा है।

❑❑❑

13

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के एकांकी 'अफ़सर का कुत्ता' एवं 'पेड़ हमारे मित्र' का चिन्तन-मूल्यांकन

डॉ. सपना शर्मा

कैलाशचन्द्र शर्मा जी ने कहानी, उपन्यास, नाटक, जीवनी, काव्य, गीत आदि साहित्य की अनेक विधाओं पर अपनी लेखनी चलायी है। नाटक एवं संगीत में इनकी विशेष रूचि रही है इसलिए ये संगीत एवं रंगकर्म के शिक्षण-प्रशिक्षण में संलग्न रहे और वर्ष 1995 में इन्होंने त्रिवेणी कला संगम तथा 2001 में त्रिवेणी संगीत महाविद्यालय, जयपुर की स्थापना की। इनके एकांकियों में समकालीन समस्याओं को उधृत किया गया है। इनकी एकांकियों में समकालीन जीवन के विभिन्न कोण विवेचित हैं।

प्रस्तुत आलेख में कैलाशचन्द्र शर्मा द्वारा रचित एकांकी 'अफ़सर का कुत्ता' एवं 'पेड़ हमारे मित्र' का चिन्तन-मूल्यांकन किया गया है-

1. 'अफ़सर का कुत्ता' एकांकी का चिन्तन-मूल्यांकन

'अफ़सर का कुत्ता' एकांकी का कथासार इस प्रकार है-किसी बैंक के एक चापलूस अधिकारी का इन्टरव्यू होने वाला है जिसे कुत्तों से नफरत है। पर उसे लगता है कि अगर वह साहब के कुत्ते का मन जीत ले तो साहब उसकी रिपोर्ट 'सी' से 'ए' कर देंगे और वह मैनेजर बन जाएगा। वह साहब के घर पहुंचकर उनके कुत्ते को सहलाता है, पर डरता है कि कहीं कुत्ता काट न ले। फिर वह सोचता है कि 14 इन्जेक्शन में प्रोमोशन तो हो जाएगा। टाईगर इस अधिकारी पर गुर्राता है, इतने में साहब आकर कुत्ते को रोकते हैं। वह अधिकारी उनके सामने उनके कुत्ते की प्रशंसा करता है कि सारे शहर में इस जैसा कुत्ता नहीं देखा।

* 17 बी, मजीठा रोड, अमृतसर-143001

साहब खुश हो जाते हैं। अधिकारी उन्हें बताता है कि परसों उसका इन्टरव्यू है। वह उनके पैरों में गिरकर उनसे आशीर्वाद मांगता है। साहब उसकी ग्रेड 'ए' कराने का आश्वासन देते हैं। अधिकारी जैसे ही वहां से प्रस्थान करता है तो उसके मोबाइल की घण्टी बजती है। उसके ऑफिस का चपरासी उसे बताता है कि बड़े साहब का कुत्ता मर गया जिसके तीये की बैठक कल ही है। फिर वह अधिकारी अपने आपसे बात करता है कि कल तो चाचाजी का तीया भी है। पर वह बड़े साहब के कुत्ते की तीये की बैठक में जाने का निर्णय करता है। वह अधिकारी बड़े साहब के घर पहुंचकर उन्हें बताता है कि उसे कल ही इस दु:खद घटना का पता चला और वह हवाईजहाज से यहां आ गया। कल उसका इन्टरव्यू भी है पर इस दु:ख में आये बिना उससे रहा न गया और इन्टरव्यू का क्या वह तो अगले वर्ष दुबारा भी हो जाएगा। उसकी बात सुनकर बड़े साहब उससे कहते हैं कि कल की उस इन्टरव्यू कमेटी के हैड तो वे ही हैं अत: उन्हें भी इन्टरव्यू लेने जाना है। वे उसे इस ओर से चिन्ता न करने का आश्वासन देते हैं । वह अधिकारी उनके पैरों में गिरकर कहता है कि वे अपना ख्याल रखें और उनके बंगले से बाहर आकर मारे खुशी के चिल्लाता है- 'मैं बना मैनेजर'।

पात्र

प्रस्तुत एकांकी में कुल पाँच पात्र हैं। एकांकी का मुख्य पात्र अधिकारी 'मैं' है, जो चापलूस, स्वार्थी और कुत्तों से नफरत करने वाला है। बड़े साहब खुशामद पसन्द हैं। चौथा पात्र चपरासी है जो मात्र मोबाइल पर बड़े साहब के कुत्ते के तीये की बैठक की सूचना अधिकारी को देता है। नाटक में कुत्ता टाइगर भी थोडी देर के लिए आता है। नाटक की सारी कथा अधिकारी 'मैं' के इर्द-गिर्द ही घूमती है।

समस्याएं :

वर्तमान व्यवस्था की समस्या

प्रस्तुत एकांकी में एकांकीकार ने वर्तमान व्यवस्था की समस्या का यथारूप वर्णन किया है। वर्तमान व्यवस्था में 'सी' ग्रेड को 'ए' ग्रेड करके तरक्की दे दी जाती है। 'सी' ग्रेड को 'ए' ग्रेड करवाने के लिए चापलूसी करनी ही पड़ती है पर 'ए' ग्रेड वाले भी बिना चापलूसी के तरक्की नहीं पा सकते। यही हमारी व्यवस्था है।

एकांकी में अधिकारी 'मैं' का 'सी' ग्रेड है जो चापलूसी करके अपना

ग्रेड 'ए' करवाना चाहता है ताकि उसकी तरक्की हो सके। इसके लिए यदि अफ़सर का कुत्ता उसे काट ले और उसे चौदह इन्जेक्शन भी लगवाने पड़े तो भी उसे परवाह नहीं। अधिकारी 'मैं' का स्वगत कथन इस सन्दर्भ में इस प्रकार है-

'अरे अरे टाईगर । कैसे हो । अरे बस बस बस बस । ले बेटा काजू खा। बहुत अच्छे काजू हैं ।

अब इसे प्यार से सहलाऊं और गले लगाकर मिल लूं इससे। पर यदि काट खाया तो । तो कोई बात नहीं बेटे। 14 इन्जेक्शन में प्रामोशन तो हो जायेगा न । ' [1]

यह हमारी व्यवस्था है जहां तरक्की के लिए इतना जोखिम तो उठाना ही पड़ता है नहीं तो इस व्यवस्था में तरक्की संभव नहीं।

अफसरशाही की समस्या

वर्तमान अफसर साहब भी चापलूसी ही पसन्द करते हैं। जो उनसे मिलता जुलता है उसका काम झट से हो जाता है और दूसरे लोग कतार में रहते हैं। नाटक में नाटककार ने इसी विषय पर व्यंग्य किया है कि अफसर के कुत्ते का दोस्त होने पर 'सी' ग्रेड 'ए' ग्रेड में तबदील हो सकती है। एकांकी में अधिकारी अफसर के कुत्ते की तारीफ के बाद अफसर से कहता है कि परसों उसका इन्टरव्यू है और उसकी ग्रेड 'सी' है लेकिन अफसर उसे आश्वस्त करता है कि वह उसके कुत्ते का मित्र है इसलिए वह उसकी ग्रेड 'ए' करवा देगा। अफसर कहता है-

'**अफसर** : ख़ैर, अब तुम हमारे टाईगर के दोस्त हो तो कुछ तो करना ही पड़ेगा न । मैं कल ही महाजन से कहकर चुपचाप तुम्हारी सी आर 'ए' करा दूंगा। हैड ऑफिस लिस्ट ही तो जायेगी उसे रिवाईज करा देंगें। और बाकी मैं सब इन्टरव्यू में देख लूंगा।' [2]

इस प्रकार इस एकांकी में अफ़सरों के असल रूप से प्रत्यक्ष साक्षात करवाया गया है।

नैतिक मूल्यों की समस्या

वर्तमान व्यवस्था में नैतिक मूल्य यहां तक गिर गये हैं कि मनुष्य की मृत्यु की वह कीमत नहीं जो कुत्तों की मृत्यु की है।। एकांकी में 'मैं' अधिकारी के चाचाजी की मृत्यु हो चुकी है। उधर से चपरासरी का फोन आता है कि बड़े साहब का कुत्ता मर गया है और कल उसका तीया है। चाचाजी और कुत्ते का

तीया एक ही दिन है। पर 'मैं' अधिकारी बड़े साहब के कुत्ते की तीये की बैठक में जाने का निर्णय करता है क्योंकि बड़े साहब को प्रसन्न न करने से उसकी तरक्की में बाधा पड़ सकती है। वह मन ही मन कहता है कि चाचाजी के तीये की बैठक में तो घर के कई लोग होंगे जो बात को संभाल लेंगे। अधिकारी 'मैं' का स्वगत कथन-

'फिर स्वगत : यार राँची तो ब्होळी दूर छै : काल ही खन्ना साहब का कुत्ता की तीया की बैठक छै अर काल सुबेरे ही चाचाजी का तीया की बैठक भी छै कांई करूं । चाचाजी की बैठक मैं तो ब्होत सारा घर का आदमी व्हींगा संभाळ लींगा।' [3]

कैलाशचन्द्र शर्मा ने इस एकांकी में वर्तमान व्यवस्था में गिरते हुए नैतिक मूल्यों को यथातथ्य प्रस्तुत किया है। आज वर्तमान व्यवस्था में हमारे नैतिक मूल्यों का पतन होता जा रहा है। स्वार्थ के आगे व्यक्ति के लिए कुछ बड़ा नहीं।

ढोंग एवं चापलूसी

एकांकीकार ने वर्तमान व्यवस्था में चल रहे ढोंग एवं चापलूसी पर भी व्यंग्य किया है। अधिकारी 'मैं' बड़े साहब के घर उनके कुत्ते की मृत्यु का शोक प्रकट करने जाता है तो बड़े साहब प्रसन्न हो जाते हैं। अधिकारी 'मैं' कुत्ते की पर्सनैलिटी की तारीफ करते हुए कहता है कि वह पिछली बार जो कुत्ते की तस्वीर लेकर गया था उसे उसने अपने घर के ड्राईंग रूम में लगा रखा है। वह यह भी बताता है कि लॉन में वे दोनों इकट्ठे खेला करते थे और फिर रोने लगता है। वह बड़े साहब को बताता है कि जैसे ही उसने यह दु:खद घटना सुनी तो यहां हवाईजहाज से चला आया और इन्टरव्यू का क्या वह तो अगले वर्ष भी आ जाएगा। यह सुनकर बड़े साहब कहते हैं-

'अफसर: अरे तुम्हारी बात से याद आया हमें भी तो तुम्हारे वहीं आना है इन्टरव्यू लेने । कैसा संयोग है भाई हमें तो जाना ही पड़ेगा। अब तुम इन्टरव्यू की चिन्ता मत करो हम सब देख लेंगे।' [4]

एकांकीकार ने यहां दिखाने का प्रयत्न किया है कि यहां अधिकारी के ढोंग और चापलूसी का फल उसके पक्ष में जाता है और यही हमारी व्यवस्था है। इस एकांकी में कैलाशचन्द्र शर्मा ने अप्रत्यक्ष एवं व्यंग्यात्मक रूप से वर्तमान परिस्थितियों को बड़ी सूक्ष्मता से निर्दिष्ट किया है।

संदेश

प्रस्तुत एकांकी में एकांकीकार ने वर्तमान व्यवस्था पर व्यंग्यात्मकता के माध्यम से कटाक्ष किया है। वर्तमान व्यवस्था ऐसी हो गई है जो व्यक्ति को ढोंग और चापलूसी की ओर धकेल रही है। जब तक व्यवस्था में सुधार नहीं होगा तब तक स्थितियों में बदलाव की आशा नहीं की जा सकती।

भाषा एवं शिल्प

एकांकी में एकांकीकार ने हिन्दी के साथ-साथ राजस्थानी एवं आस-पास के क्षेत्र की भाषा का प्रयोग भी किया है। भाषा में आंचलिकता का पुट भी दृष्टिगोचर होता है। भाषा सरल, स्पष्ट एवं रोचक है पर जहां आंचलिक वाक्यों का प्रयोग किया गया है वहां भाषा में क्लिष्टता भी परिलक्षित होती है। व्यंग्यात्मक भाषा के माध्यम से नाट्य एकांकी में रोचकता एवं हास्य का समावेश किया गया है। व्यंग्यात्मकता का निदर्शन इस प्रकार है-

'फिर स्वागत : भाग लै... बेटा कदे अईयां न व्है अक इन्टरब्यू और ही कोई दे अर तू चौदा इंजेक्शन खाबै....अस्पताल मैं पड्यो रह। (दबड़क दबड़क भागता है, साहब के बंगले पर पहुंचता है कुत्ता भौंकता है)' [5]

मुहावरों के प्रयोग से भी भाषा में व्यंग्यात्मकता दृष्टिगोचर होती है जैसे, पशुवां मैं सबसूं नीची कौम, देखो साळा मैं नै सुर छै न ताळ, सैंयां भये कोतवाल अब डर काहे का आदि।

शिल्प

प्रस्तुत एकांकी में अन्तरपाठीय शिल्प का प्रयोग किया गया है। हिन्दी के साथ-साथ राजस्थानी की आंचलिक भाषा के अनुच्छेद अनेक स्थानों पर आए हैं। एक उदाहरण देखें-

'फिर स्वगत : अ..रै यार या पल्ला की बात सूं याद आई। मैं भी राँची पोंछ अर पल्ला की स्टाईल मैं ही कोई लटको कर द्यूं तो। पण यार पल्लो तो केवल लुगांयां ही लीं छीं। अ...र... भलांई घूंघटा मैं आंसू आंवीं ही नै, पण जोर जोर सूं धाड़ मार मार अर रोबा को नाटक करलीं छीं। (सोचता है) मैं भी कर ही ल्यूं या नाटिक।' [6]

इसी प्रकार अंग्रेज़ी पाठ भी एकांकी में यथा स्थान प्रयुक्त हुए हैं जैसे, साईलेंट, टाइगर आदि।

निष्कर्ष

प्रस्तुत एकांकी कैलाशचन्द्र शर्मा का प्रहसन है जिसमें बड़े रोचक, प्रभावी एवं व्यंग्यात्मक रूप से वर्तमान व्यवस्था को केन्द्र बिन्दु बनाया गया है। एकांकीकार ने बड़े ही हल्के-फुल्के ढंग से नैतिक मूल्यों के पतन को निर्दिष्ट किया है जिससे एकांकी की वर्तमान व्यवस्था के प्रति जागरूकता का ज्ञान होता है साथ ही उनकी लेखन क्षमता की वरीयता भी परिलक्षित होती है।

2. 'पेड़ हमारे मित्र' एकांकी का चिन्तन एवं मूल्यांकन

'पेड़ हमारे मित्र' सात दृश्यों में विभाजित एकांकी है। पहले दृश्य में भीखू अपने खेतों में खुदाई कर रहा है। चिड़ियों को उड़ाने के लिए मिट्टी का ढेला फेंकता है, जो हवेली के नये मालिक की लड़की सिमरन के आगे जाकर गिरता है। लड़की भीखू को भला बुरा कहती है और घोषणा करती है कि वह हवेली के पेड़ों को कटवाकर उसकी जगह एक स्वीमिंग पूल बनवाएगी। दूसरे दृश्य में सिमरन अपनी सहेलियों के साथ कॉफी पी रही है। कॉफी में शक्कर कम होने की वजह से वह अपने नौकर पीटर को डांटती है और जनरेटर चलाने के लिए कहती है। तीसरे दृश्य में भीखू अपने सिर पर फलों से भरा टोकरा रखे फल बेचने के लिए गाँव के रास्ते जा रहा है। एक बालिका अनाज के बदले अपनी बीमार माँ के लिए भीखू से फल लेती है। भीखू उसे अपनी तरफ से उसकी माँ के लिए एक सेब देता है और कहता है कि यह सेब अम्मा को देना जल्दी ठीक हो जाएगी। चौथे दृश्य में भीखू फल बेचने हवेली जाता है। सिमरन भीखू को उसकी ज़मीन बेचने के लिए कहती है ताकि उसके पिताजी वहां पर रेसकोर्स का मैदान बनवा सकें। भीखू कहता है कि ज़मीन पर लगे पेड़ों का फायदा वह नहीं जानती। पाँचवें दृश्य में सिमरन बीमार है। डॉक्टर भीखू को कहता है कि सिमरन को टी.बी. है तथा वह यह भी जानकारी देता है कि सिमरन पेड़ों की ताजी हवा और ताजे फल-सब्जियां खाने से जल्दी ठीक हो सकती है। भीखू फिर से हवेली के बगीचे को हरा-भरा करता है। छठे दृश्य में सिमरन ठीक हो जाती है। उसकी सहेली रीमा बताती है कि भीखू के पेड़ों के ताजे फलों और उसकी माँ की दुआओं से वह जल्दी ठीक हो गई। सिमरन अपनी सहेलियों से कहती है कि मुझे भीखू से माफी मांगनी चाहिए। सातवें दृश्य में भीखू हवेली के कम्पाउण्ड में ढेले फेंक-फेंक कर चिड़िया उडा रहा है। सिमरन अपनी सहेलियों के साथ उसके पास जाती है और माफी मांगती है। भीखू सिमरन से कहता है कि आपकी रक्षा इन पेड़ों ने की

है। यह आपके मित्र हैं, हम सबके मित्र हैं।

पात्र

प्रस्तुत एकांकी में कुल ग्यारह पात्र हैं। भीखू और सिमरन प्रधान पात्र हैं। भीखू मेहनती लड़का है। वह पेड़ों की उपयोगिता से भली भाँति परिचित है, सिमरन अमीर बाप की नकचढी बेटी है। पीटर सिमरन का नौकर तथा रीमा और सोनिया उसकी सहेलियां हैं। भीखू की बूढ़ी माँ एकांकी के आरम्भ तथा मध्य में आती है। फल खरीदने वाली लड़की तथा उसके साथ की स्त्री, डॉक्टर, कम्पाउण्डर, बहादुर आदि गौण पात्र हैं।

समस्याएं :

पेड़ों को काटने की समस्या

इस एकांकी में एकांकीकार ने आजकल पेड़ों को काटकर कारखाने या पैसा कमाने के अन्य साधनों में लगाने की समस्या को दृष्टिगत किया है। पेड़ों को काटने से प्रदूषण बढता है जिससे वायु में ऑक्सीजन की मात्रा में कमी आती है और मनुष्य जाने कितनी ही घातक बीमारियों का शिकार हो सकता है। एकांकी में इसी समस्या की ओर संकेत किया गया है। एकांकी की नायिका सिमरन टी.बी. की शिकार होती है जिसका कारण पेड़ों को कटवाना तथा जनरेटर से लगातार निकलता धुआँ है।

शहरी वतावरण को गाँव में लाने की समस्या

एकांकीकार ने शहरी वातावरण को गाँव में लाने की समस्या को भी नाटक में उधृत किया है। सिमरन गाँव से शहर में आती है। आते ही अपनी हवेली के पेड़ों को कटवा देती है और वहां पर स्वीमिंग पूल बनवा देती है। रोशनी के लिए जनरेटर चलाती है। एकांकीकार से एक निदर्शन इस प्रकार है-

'सिमरन : (पीटर से)—अरे पीटर। जा तो जनरेटर चला दे। (फिर सबकी ओर मुखातिब होकर)—अरे अब कितनी सुविधा हो गई है। पहले इस हवेली में जंगली लोग रहा करते थे शायद। रोशनी के लिए हवेली में मोमबत्ती व लालटेन (हाथों से लालेन का इशारा करके) जलाते थे। कहीं कहीं तो तेल के दीपक जालकर कम्बख्तों ने हवेली की दीवारें तक काली कर ड़ाली थी। वो तो उन पर दो-दो बार डिस्टेम्बर कराया तब कहीं उनका कालापन खत्म हुआ है।

(पीटर जनरेटर व स्वीमिंग पूल का डीजल इन्जन दोनों चला देता है। सहसा हवेली की ट्यूब लाइटें व बल्ब रोशनी से चमक उठते हैं।)' [7]

इस प्रकार सिमरन गाँव में शहरी वातावरण लाकर ग्राम के प्राकृतिक वातावरण को समाप्त करना चाहती है। यह समस्या भी आज के युग से ही सम्बन्धित है।

धन के अभिमान की समस्या

सिमरन हवेली के नये मालिक चरणदास की बेटी है। आधुनिकता एवं अमीरी ने उसका दिमाग खराब कर दिया है। एकांकी के आरम्भ में ही उसका अभिमानात्मक रूप प्रत्यक्ष होता है। भीखू चिड़ियों को अपने खेत से उड़ाने के लिए गोफन से मिट्टी के ढेले फेंक रहा है। एक ढेला सिमरन के आगे जाकर गिर जाता है तो वह भीखू पर नाराज होती है। सिमरन उसे कहती है कि वह यहां के पेड़ों को कटवाकर यहां पर एक स्वीमिंग पूल बनवाएगी। भीखू उसके आगे गिडगिडाता है कि हवेली के पेड़ों को मत काटो। सिमरन उसका उपहास उड़ाती हुई कहती है कि मरने के बाद भी तुम्हारी आत्मा इन पेड़ों पर रहेगी इसलिए पेड़ कटवाने पडेंगे। वह अपने नौकर पीटर को छोटी-छोटी बातों पर झिडकती है और भीखू का मजाक उडाते हुए अपनी सहेलियों से कहती है-

सिमरन : कितना ढ़ीठ निकला वो गँवार। उस दिन जब मैं नौकरों से पेड़ों को कटवा रही थी तो उस बुढ़िया को लेकर हवेली में घुस आया और मेरे पैरों से लिपटकर कहने लगा (मुँह चिढ़ाकर उसकी नकल करते हुए)—बीबीजी। इन हरे भरे पेड़ों पर दया करो। ये हमें फल देते हैं, ताजी हवा देते हैं और इनको देखने से आँखों की ज्योति बढ़ती है।

रीमा : अच्छा ..... ? फिर तुमने क्या किया?

सिमरन : करना क्या था री। उससे कहा कि भैया अपना ज्ञान अपने पास संभालकर रखो। अपनी और इस बुढ़िया की सेहत बनाने के काम में लेना। '[8]

एकांकी की सोद्येश्यता

प्रस्तुत नाटक में पेड़ों की बहुमूल्यता एवं उपयोगिता पर बल दिया गया है। शहरी वातावरण जहां मनुष्यों के लिए हानिकारक है वहीं पेड़ मनुष्य के लिए वरदान हैं। ये न केवल हमें फल देते हैं बल्कि साँस लेने के लिए ताजी वायु भी देते हैं। एकांकी के नायक भीखू के माध्यम से पेड़ों की उपयोगिता पर बल दिया गया है। भीखू एकांकी के आरम्भ से लेकर अन्त तक पेड़ों के महत्व पर प्रकाश डालता है। एकांकी के अन्त में जब सिमरन टी.बी. की शिकार होती है तो भीखू

हवेली के बगीचे में पेड़ लगाता है और सिमरन को अपने खेतों की ताजी सब्जियां और फल खिलाता है जिससे सिमरन जल्दी ठीक हो जाती है। सिमरन भीखू के प्रति अपने व्यवहार को लेकर शर्मिन्दा है। तब भीखू कहता है-

'**भीखू :** बीबीजी। मैंने आपको ठीक नहीं किया। आपको ठीक किया है इन पेड़ों ने, यहाँ की ताजी हवा ने, और मेरी बूढ़ी माँ की दुआओं ने। ..... आपकी रक्षा मैंने नहीं इन पेड़ों ने की है। अत: ये ही आपके मित्र हैं, हम सबके मित्र हैं। '1

प्रदूषण फैलाने वाले यंत्रों के प्रयोग की रोकथाम पर बल

एकांकी में जहां पेड़ों की उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है, वहीं प्रदूषण पैलाने वाले यंत्रों के प्रयोग की रोकथाम पर भी बल दिया गया है। सिमरन जब टी.बी. की शिकार होती है तो डॉक्टर कहता है कि आस-पास पेड़ लगाने चाहिएं, साथ ही साथ प्रदूषण फैलाने वाले यंत्रों को भी हटाना चाहिएं। एकांकीकार ने डॉक्टर के माध्यम से प्रदूषण फैलाने वाले यंत्रों को आस-पास से हटाने पर बल दिया है। डॉक्टर के शब्दों में-

'**डॉक्टर :** हाँ मेरे बच्चो। पेड़ों में बहुत बड़ी शक्ति होती है। परन्तु तुम्हें इस बगीचे में पुन: पेड़ लगाने होंगे। धुआँ और शोर से प्रदूषण फैलाने वाले इन बड़े-बड़े यंत्रों को यहाँ से हटाना होगा।'[10]

आज के युग में प्रदूषण की समस्या मानव जाति के लिए बढ़ता हुआ महाविनाश है। एकांकीकार ने एकांकी में इसी समस्या को उधृत कर उसके समाधान को प्रस्तुत किया है।

कर्मण्यता

एकांकी के आरम्भ में भीखू गीत गा रहा है, जो व्यक्ति की कर्मण्यता पर बल देता है। एकांकीकार ने भीखू के माध्यम से आम व्यक्ति को सम्बोधित किया है कि कहीं समय बीत न जाए इसलिए उसे शीतल छाया छोड़कर मरूभूमि की ओर चल देना चाहीए। कहने का तात्पर्य है कि सुख-सुविधाओं और आराम को त्यागकर कर्मण्यता की ओर प्रेरित होना चाहिए। उस गीत की कुछेक पंक्तियां इस प्रकार हैं-

'छोड शीतल छांव तू मरूभूमि को चल दे,
कस कमर चल दे अभी क्यों देर करता रे,

बीत जायें छण (क्षण) नहीं कुछ उठ अभी चल दे।' [11]

संदेश

एकांकी में मुख्य रूप से पेड़ों की उपयोगिता को वरीयता दी गई है। पेड़ों के महत्व के साथ-साथ प्रदूषण फैलाने वाले यंत्रों को आस-पास से हटाने का संदेश है , ऐसा करने पर ही मनुष्य स्वस्थ रह सकता है। साथ ही एकांकीकार ने भीखू के माध्यम से मनुष्य की कर्मण्यता को भी दृष्टिगत किया है।

भाषा एवं शिल्प

प्रस्तुत एकांकी की भाषा सरल, स्पष्ट एवं प्रसंगानुकूल है। अन्तरपाठीय शिल्प का प्रयोग किया गया है। जनरेटर, डीज़ल, ट्यूब लाइट, स्वीमिंग पूल, इंजन आदि अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष

कैलाशचन्द्र शर्मा जी ने इस एकांकी में आज के युग की समस्याओं को प्रस्तुत किया है। आज प्रदूषण के कारण विश्व का अस्तित्व खतरे में है। पेड़ों के काटे जाने के कारण मनुष्य अनेक बीमारियों का शिकार हो रहा है। इस एकांकी में एकांकीकार ने जहां आज के युग की भीषण समस्याओं को उभारा है, वहीं उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है। कैलाशचन्द्र शर्मा का यह एकांकी पठनीय, रोचक एवं तत्कालीन समस्याओं से सम्बन्धित है, जिससे एकांकीकार की लेखन प्रतिभा एवं दूरदृष्टि का ज्ञान होता है। उनकी एकांकी समकालीन भयावह समस्याओं को इंगित करते हुए उसके दुष्परिणामों से अवगत करवाती है। कैलाशचन्द्र शर्मा ने अपनी समकालीन अनुभूतियों को इस पर्यावरणपरक एकांकी में प्रस्तुत कर समाज को जागरूक करने का प्रयास किया है।

सन्दर्भ :

1) डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का नाट्य साहित्य : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा साहित्य, पृष्ठ-416, त्रिवेणी कला संगम, जयपुर, संस्करण 2012
2) वही, पृष्ठ 416 3) वही, पृष्ठ 417 4) वही, पृष्ठ 418
5) वही, पृष्ठ 415 6) वही, पृष्ठ 415 7) वही, पृष्ठ 425
8) वही, पृष्ठ 424 9) वही, पृष्ठ 428 10) वही, पृष्ठ 420
11) वही, पृष्ठ 420

❑❑❑

14

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के नाटकों में समकालीन यथार्थ

डॉ. जोगेश

कैलाशचन्द्र शर्मा का रचना-संसार बहुतों के लिए अपरिचित जैसा है। उनकी कलम मशहूर न होकर भी मौलिक है। यही कारण है कि उनके सृजन और चिन्तन में विविधता के साथ-साथ युग की नब्ज़ टटोलने का कौशल है।

उनकी रचना-यात्रा कई विधाओं से गुज़रती हुई एक समर्थ और जीवन्त रचनाकर्मी के बारे में आश्वस्त करती है। उपन्यास, कहानी, कविता, समीक्षा, शोध, डायरी, साक्षात्कार जैसी कई विधाओं का स्पर्श करती हुई शर्मा जी की प्रतिभा ने नाटकों के क्षेत्र में सर्वाधिक विशिष्ट पहचान बनाई है। उन्होंने सृजन से लेकर मंचन तक, संयोजन से लेकर निर्देशन तक अपनी क्षमता का परिचय नाटक विधा के क्षेत्र में दिया है।

'..... उन्होंने काल्पनिक जगत् की कथा को प्रस्तुत न करके अपनी रचनाओं में वास्तविक विश्व के मानव-जीवन को यथार्थ रूप में चित्रित किया है। वे व्यक्ति, समाज, संस्कृति, राजनीति आदि किसी को नहीं भूले हैं और सभी को उन्होंने अपने कथानकों में यथेष्ठ स्थान प्रदान किया है।

.....डॉ. शर्मा के दोनों उपन्यासों, दोनों कहानी संकलनों और सभी नाटकों में जीवन सत्य अपनी सम्पूर्णता में उपस्थित है। इन सभी रचनाओं का आधारफलक वह समकालीन जीवन ही है, जिसमें हमारे समय की वास्तविकताएं और समस्याएं एकत्र हैं।'

* हिन्दी विभाग,चौधरी धज्जा राम जनता महाविद्यालय, बुटाना (सोनीपत)

(कर्मपथ : सम्पादक रेणुका इसरानी,प्रकाशक त्रिवेणी कला संगम जयपुर, पृष्ठ 15-16, *डॉ. जंगबहादुर पाण्डेय 'तारेश'* का आलेख-'एक बहुआयामी रचना प्रस्थान का नाम है यह')

'...नाटककार बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं । युगबोध में बड़े प्रवीण हैं। वे अपनी कल्पना के माध्यम से प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक कालीन देशीय और सामाजिक समस्याओं का यथार्थ रूप दर्शकों के सम्मुख रंगमंच के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। वे स्वदेश के बड़े प्रेमी हैं और नाट्यकला के माध्यम से सामाजिक समस्याओं को प्रस्तुत कर उनका समाधान भी दर्शकों के सम्मुख रखते हैं। वे केवल उच्चकोटि के नाटककार ही नहीं अपितु कुशल अभिनेता और अनुभवी तथा प्रतिभाशाली रंगकर्मी भी हैं।'

(कर्मपथ : सम्पादक रेणुका इसरानी,प्रकाशक त्रिवेणी कला संगम जयपुर, पृष्ठ 36, *डॉ. बाबूराम* का आलेख-'नाटककार डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा')

संभवत: कैलाशचन्द्र शर्मा जी के व्यक्तित्व की इन्हीं विशेषताओं के परिणामस्वरूप उनके नाटक इतने प्रभावी बन पाये हैं।

'.....ठेठ ग्रामीण परिवेश से आये और अपनी पहचान बनाने वाले डॉ. शर्मा एक दृढ़-इच्छा शक्ति वाले व्यक्ति हैं। वे उपन्यासकार, नाटककार, कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनका समूचा साहित्य, ग्रामीण परिवेश से लेकर आज के भौतिकवादी जीवन के पड़ाव में उन्हें जो अनुभव हुआ है उनका समग्र चित्र, उनके साहित्य में देखने को मिलता है। '

(कर्मपथ : सम्पादक रेणुका इसरानी, प्रकाशक त्रिवेणी कला संगम जयपुर, पृष्ठ 89, *डॉ. विजय बहादुर सिंह* का आलेख-'अभिव्यक्ति: समीक्षा के आईने में')

डॉ. विजय बहादुर सिंह की कैलाशचन्द्र शर्मा के नाटकों के बारे में की गई उपरोक्त टिप्पणी उनके नाटकों की यथार्थ स्थिति का उद्‌घाटन करती है। डॉ. नन्दलाल कल्ला द्वारा कैलाश जी के काव्य संग्रह तरुणाई पर की गई टिप्पणी उनके नाटकों में प्रयुक्त समकालीन यथार्थ पर खरी उतरती है-

'.....श्री कैलाश का रचना संसार द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता का सामिप्य दिखलाता है और अभिव्यक्ति कौशल, प्रगतिवाद का यथार्थ तथा प्रयोगधर्मिता समकालीन कवियों की पंक्ति में उन्हें ससम्मान प्रतिष्ठित करती

है। उनका बहुज्ञ कवि कर्म पाठकीय भावों का विरेचन करता है तो आज के भ्रष्ट, विसंगति, विद्रूप तथा विडम्बनाओं से आक्रान्त 'मनु' को श्रद्धा का उदात्त जीवन-दर्शन भी प्रदान करता है। उनके रचना-सँसार में परम्पराओं के प्रति आस्था है लेकिन रूढ़ियों के प्रति वे मोहान्ध नहीं हैं, नूतन जीवन पद्धति और प्रगतिशीलता के प्रति तीव्र आकर्षण है लेकिन दूसरी ओर उनमें किसी भी प्रकार दुराग्रह भी नहीं है। '

(कर्मपथ : सम्पादक रेणुका इसरानी, प्रकाशक त्रिवेणी कला संगम जयपुर, पृष्ठ 192, *डॉ. नन्द लाल कल्ला* का आलेख-''तरुणाई' के अरुणिम कवि : कैलाश')

कहानीकार डॉ. ऋता शुक्ल द्वारा कैलाश जी के उपन्यास 'अभिव्यक्ति' पर की गई समीक्षा उनके नाटकों के सम्बन्ध में भी ज्यों की त्यों लागू होती है-

'डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा एक संवेदनशील रचनाकार हैं। उन्होंने अपने जीवन के दैनन्दिन अनुभव सत्य को अपनी रचनाओं में समेटने का प्रयास किया है।'

(कर्मपथ : सम्पादक रेणुका इसरानी, प्रकाशक त्रिवेणी कला संगम जयपुर, पृष्ठ 87, *डॉ. ऋता शुक्ल* का आलेख-'अभिव्यक्ति एक सार्थक प्रयास')

डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा के नाटकों में समकालीन यथार्थ

कैलाश जी के सम्पूर्ण साहित्य में उनके द्वारा जीवन में भोगे हुए, देखे गये या अनुभूत किये गए सत्य की स्पष्ट झलक परिलक्षित होती है जो उनके कहानीकार व्यक्तित्व पर कु. सुखविन्द्र द्वारा किये गये कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के एम.फिल. शोध प्रबन्ध की निम्न पंक्तियों से स्पष्ट होती है-

'कैलाशचन्द्र शर्मा जी ने अपने जीवन में कड़वे-मीठे अनुभवों को आत्मसात् किया और यही उनकी रचनाधर्मिता का आधार है जो उन्हें यथार्थवादी साहित्यकार की श्रेणी में ले जा खड़ा करता है। कैलाशचन्द्र शर्मा जी के सर्जनात्मक व्यक्तित्व की तहें उधेड़ने पर कु छ ऐसी मौलिक स्थितियों से साक्षात्कार होता है, जो उनकी रचना-यात्रा की पहचान कराने में विशेष महत्व की है। अपने जीवन के यथार्थ का चित्रण जो उन्होंने जीवन जीते हुए अनुभव किया है,उसमें से होकर गुजरे हैं और जिसे आत्मसात् करते हुए आगे बढ़ते

ही चले गये।' [6]

(कहानीकार कैलाशचन्द्र शर्मा : एम.फिल शोध प्रबन्ध, पृष्ठ (4.3.2) कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, वर्ष 2009, शोधकर्त्री-सुश्री सुखविन्द्र)

उपरोक्त उद्धरणों से स्वत: स्पष्ट है कि कैलाशचन्द्र शर्मा जी ने अपने नाटकों के माध्यम से सामाजिक यथार्थ को जीवन्त रूप में उभारा है जिसका नाटकवार प्रस्तुतीकरण यहाँ पर किया जा रहा है।

*** आधुनिक यमलोक**

कैलाश जी का यह नाटक नाट्य-जगत में काफी चर्चित रहा है। यह नाटक उनके 'अबला की मंज़िल कहानी संग्रह' की सबसे छोटी कहानी 'भटकती आत्मा' से पगेरित होकर लिखा गया है जिसका प्रथम प्रस्तुतीकरण वर्ष 1997 में रचीन्द्र मंच, जयपुर के मुख्य सभागृह में किया गया।

इस सम्बन्ध में मराठी रंगमंच के वयोवृद्ध व्यावसायिक कलाकार जयन्त सावरकर कहते हैं-

' 'आधुनिक यमलोक' में आपने भ्रष्टाचार की कथा लिखी है। एक बड़ी अच्छी कलाकृति है। अगर ये नाटक के प्रयोग हर प्रमुख शहर में किये गये, तो मानवी मूल्यों का नाश, रिश्वतखोरी, नीचता वगैरह तथा अपने देश के नेताओं का सत्यस्वरूप समाज के सामने आ सकेगा।'

(कर्मपथ : सम्पादक रेणुका इसरानी, प्रकाशक त्रिवेणी कला संगम जयपुर, पृष्ठ 42, *'उद्‌गार' जयन्त सावरकर, मराठी रंगकर्मी मुम्बई*)

कैलाश जी के नाटककार स्वरूप पर सर्वप्रथम डॉ. बाबूराम ने कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में श्री जोगेश को एम.फिल हेतु शोधकार्य कराया। आगे चलकर उन्होंने 'कर्मपथ' पुस्तक हेतु अपना आलेख प्रस्तुत किया जिसमें कैलाश जी के नाटकों की यथार्थ स्थिति पर अपने विचार प्रस्तुत किये गये -

' 'आधुनिक यमलोक' एक व्यंग्य नाटक है, जिसमें आधुनिक समाज की विकृतियों और विद्रूपताओं पर करारी चोट की गई है। वर्तमान राजनेता या न्यायाधीश यमराज के प्रतीक हैं। इस नाटक के माध्यम से यह भी बताने का प्रयास किया गया है कि वर्तमान न्याय-व्यवस्था में चोर, डाकू, जेबकतरे आदि किस प्रकार पनप रहे हैं और देश को विषैले नाग की भाँति डस रहे हैं।' [8]

(कर्मपथ : सम्पादक रेणुका इसरानी,प्रकाशक त्रिवेणी कला संगम जयपुर, पृष्ठ 35, *डॉ. बाबूराम* का आलेख-'नाटककार डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा')

रंगकर्मी एवं अभिनेत्री रेणुका इसरानी ने जब कैलाशचन्द्र शर्मा के सम्पूर्ण सृजन पर आधारित पुस्तक 'कर्मपथ' का सम्पादन किया तो उन्हें कैलाश जी की हर रचना से होकर गुजरना पड़ा। इस सम्बन्ध में उनके विचार हैं-

'...जहाँ तक सवाल उठता है 'आधुनिक यमलोक' कृति का तो डॉ. साहब ने आज के सत्य पर एक कटाक्ष किया है जो कि हास्य के रूप में उभरा है। इसे पढ़कर या नाटक के रूप में देखकर मानव जाति को अपने कर्मों के प्रति कहीं न कहीं सचेत होना पड़ेगा जिससे कि हम एक अच्छे समाज का निर्माण कर सकें।'

(कर्मपथ : सम्पादक रेणुका इसरानी,प्रकाशक त्रिवेणी कला संगम जयपुर, पृष्ठ 88, *रेणुका इसरानी* का आलेख-''अभिव्यक्ति' ने साहित्य पढ़ने की रुचि लौटा दी')

*** कंस**

संयुक्त राज्य अमेरिका में विज्ञान की प्रोफेसर रही डॉ. इला नरेन हिन्दी साहित्य की एक जानी मानी रचनाकार हैं जिन पर कैलाश जी के नाटक 'कंस' ने एक अमिट छाप छोड़ी है। इस नाटक की यथार्थता के बारे में वे कहती हैं-

'....पौराणिक कहानियों पर नाटक लिखे गये हैं, मंचित भी हुए हैं किन्तु पुराणों से कोई ऐसा चरित्र उठा लेना जो सर्वत्र घृणा का पात्र रहा हो और फिर उस खलनायक को नायक के रूप में प्रस्तुत करना, उसके सद्‌गुणों की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करना बड़े साहस का काम है। 'कंस' नाटक द्वारा यह महत् कार्य श्री कैलाशचन्द्र शर्मा जी ने कर दिखाया है।

कंस के जीवन पर विशद् दृष्टि डालें, जैसा कि इस नाटक में वर्णित है, तो वह एक कमजोर मनुष्य है, जिसे राजा होने के नाते कुछ विशिष्ट अधिकार प्राप्त हैं और जिनका वह दुरूपयोग करता है। उसमें बहिन के प्रति सहज स्नेह भाव हैं किन्तु उसकी सन्तान के हाथों मृत्यु की भविष्यवाणी उसे इस कदर कायर बना देती है कि वह उचित अनुचित के भेद का विवेक खो बैठता है। स्वभावगत क्रूरता उसे नवजात शिशुओं की हत्या को प्रेरित करती है। नाटक

के अन्तिम दृश्य में कंस का पश्चाताप पुन: उसे परिस्थितियों के शिकार कमजोर मानव के रूप में ही प्रस्तुत करता है, अत्याचारी राक्षस के रूप में नहीं। '

(कर्मपथ : सम्पादक रेणुका इसरानी,प्रकाशक त्रिवेणी कला संगम जयपुर, पृष्ठ 51-52, *डॉ. इला नरेन* का आलेख-''कंस'')

इस सम्बन्ध में वृन्दावन शोध संस्थान, वृन्दावन के अधिकारी एवं भगवतकथावचक डॉ. पुनीत गोस्वामी कहते हैं-'.....कंस भी आकाशवाणी होने के पूर्व तक देवकी से अपार स्नेह रखता था परन्तु जब उसे अपनी बहन के आठवें गर्भ से अपने जीवन की असुरक्षा का भय हुआ तभी से उसके मन में खलनायिकी भावों का उदय हुआ जो कोई असामान्य बात नहीं थी क्योंकि कंस के स्थान पर यदि और कोई व्यक्ति भी होता तो संभवत: वह भी ऐसा ही करता।'

(कर्मपथ : सम्पादक रेणुका इसरानी,प्रकाशक त्रिवेणी कला संगम जयपुर, पृष्ठ 53-54, *डॉ. पुनीत गोस्वामी* का आलेख-'खलनायक से नायक')

कंस की कार्यस्थली मथुरा-वृन्दावन के समीप स्थित राजस्थान के भरतपुर शहर के वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. रामकृष्ण शर्मा का नाटक 'कंस' के बारे में निम्न अभिमत इस नाटक की यथार्थता को दर्शाता है-

'.... डॉ. शर्मा द्वारा लिखित कंस नाटक उनके मौलिक चिन्तन व उनकी सकारात्मक सोच का उत्कृष्ट निदर्शन है। किसी पौराणिक पात्र की युग-युगों से नि:सृत एवं निर्मित-स्थापित छवि को बदलने का प्रयास बहुत कठिन काम है। जन-मानस पर रावण, हिरण्यकश्यप, बाली एवं कंस की छवियां खलनायकों के रूप में ही अंकित हैं। किन्तु यह भी निर्विवाद है कि इनमें से प्रत्येक में कुछ अच्छाइयाँ भी थीं। उन अच्छाइयों को सामने लाकर किसी कुख्यात पौराणिक पात्र को विख्यात बना देना तथा जन-हृदय में दृढ़ीकृत जुगुप्सा को सहानुभूति और प्रशंसा में परिवर्तित कर देना बहुत बड़ी बात है जो लेखकीय कौशल एवं मौलिक सूझ-बूझ से ही संभव है। '

(कर्मपथ : सम्पादक रेणुका इसरानी,प्रकाशक त्रिवेणी कला संगम जयपुर, पृष्ठ 56, *डॉ. रामकृष्ण शर्मा* का आलेख-'खलनायक से नायक')

*** तुक्के का बादशाह (पाँच नाटक)**

देश के जाने माने हास्य कवि श्री बालकवि बैरागी ने कैलाश जी के

इस नाट्य संग्रह की भूमिका में इन नाटकों की यथार्थता को स्पष्ट किया है-

'नाटककार ने इन नाटकों के माध्यम से सकारात्मक सन्देश दिया है। सादी सी मँच सज्जा और सामान्य सी वेशभूषा में इन नाटकों को खेला जा सकता है। सबसे बड़ी जोखिम यह है कि ये नाटक किशोरवय तक के आयु समूह को ध्यान में रखकर लिखे गये हैं, इस आयु तक बच्चे सहज, सरल एवं जिज्ञासु रहते हैं। वे स्वयं भी अपने जीवन के लिये आदर्श तलाशने के मोड़ पर होते हैं। अपने पूरे जीवन उन्हें याद रहता है कि इन नाटकों को खेलते समय उन्होंने समाज को अपने पात्रों के माध्यम से क्या सन्देश दिया था।'

(तुक्के का बादशाह : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा ,प्रकाशक बाणगंगा प्रकाशन, बी-177 नित्यानन्द नगर, जयपुर, श्री बालकवि बैरागी-'पर्दे के पीछे से')

रंगकर्मी एवं अभिनेत्री नीना गुप्ता जी ने 'कर्मपथ' पुस्तक में कैलाश जी के इस नाट्य संग्रह पर अपना समीक्षात्मक आलेख लिखा है जो इस पुस्तक के नाटकों के यथार्थ स्वरूप को दर्शाता है-

' शीर्ष नाटक 'तुक्के का बादशाह' लोककथाओं पर आधारित एक सशक्त कथानक वाला हास्य नाटक है। .....आज टी.वी. और कम्प्यूटर के इर्द-गिर्द घूमती बच्चों की ज़िन्दगी में इस तरह का नाटक रोचकता के साथ सकारात्मक संदेश देता है। इस नाटक के सभी पात्र सामान्यजन में से लिए गये जान पड़ते हैं।

.....नाटक 'छोटा बेगारी' भी ग्रामीण पृष्ठभूमि के कैनवास पर हमारे ग्राम्य जीवन की सही तस्वीर उपस्थित करता है। हमारे देश में प्राचीन काल से ही वर्ण व्यवस्था तथा जातिगत एवं वर्गगत विभाजन देखने को मिलता है।

कैलाशचन्द्र शर्मा ने अपने इस नाटक में नायक बालक गोपी के माध्यम से उच्च वर्ग की प्रताड़नाओं से प्रेरित होकर निम्न वर्ग के जीवन में आगे बढने के यथार्थ को चित्रित किया है जो आज के युग में हर कहीं देखा जा सकता है। .....

ये सभी नाटक बच्चों को तो प्रभावित करते ही हैं साथ ही इनसे अन्य आयुवर्ग के लोगों को भी आनन्द मिलता है। किसी भी नाटक में बनावटीपन दिखायी नहीं देता है बल्कि इनमें हमारे समाज की जीवन्त तस्वीर देखने को

मिलती है और सबसे बड़ी बात यह कि बच्चे इन्हें मन से स्वीकार करते हैं।'

(कर्मपथ : सम्पादक रेणुका इसरानी, प्रकाशक त्रिवेणी कला संगम जयपुर, पृष्ठ 46-48, *अभिनेत्री नीना गुप्ता* का आलेख-''तुक्के का बादशाह' : सहजता का दर्पण')

*** मोती मैड़ के**

राजस्थान के जयपुर जिले का गाँव मैड़ कैलाश जी का जन्म स्थान है। वे अपने अब तक के जीवन में रही जन्मभूमि के की पृष्ठभूमि अब को महत्वपूर्ण भूमिका मानते हैं। गाँवों में प्रचलित कहावतों, उक्तियों, प्रथाओं, रीति-रिवाज़ों, जोशी की पाठशाला में दी जाने वाली शिक्षा-विधि, सामाजिक पर्वों, हाट-बाज़ार, मेलों आदि का इस नाटक में इतना सजीव चित्रण किया गया है कि एक बार तो पाठकगण अपने अतीत के यथार्थवादी धरातल पर अपने आपको खड़ा पाते हैं। इस नाटक का लेखन उनके द्वारा 'जोशी जी की पाठशाला' के नाम से किया गया था परन्तु अपनी संस्कृति एवं प्राचीन थातियों को नाट्य मंचन के द्वारा एक साथ उजागर करने के उद्येश्य से उन्होंने नाटक का नाम 'मोती मैड़ के' किया। इस नाटक के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया गया है कि आज जिस प्रकार मैड़ गाँव की बाणगँगा नदी का पानी सूख गया है उसी प्रकार मनुष्य की आँखों का पानी भी सूख गया है। इस नाटक में मैड़ गाँव की प्राकृतिक छटा का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है। दृष्टव्य है एक उद्धरण-

'.....जयपुर-अलवर-दिल्ली राजमार्ग के बीलवाड़ी नामक गाँव से दाहिनी ओर यह सड़क जा रही है जिस पर आगे चलकर लगभग तीन कोस की दूरी पर है मैड़ गाँव। हम पहाड़ों की हरियाली के बीच बनी इस लहराती-बलखाती सड़क पर चले जा रहे हैं। अगल-बगल में पके हुए डांसरियों की झाड़ियां ऐसी लग रही हैं मानो कोई नई नवेली दुल्हन रंग बिरंगी चूँदड़ी ओढ़े अपने प्रियतम की बाट निहार रही है। सड़क के दाहिनी ओर बरगद के विशाल वृक्ष के इर्द गिर्द बने गोल गट्टे के पास खरगोश किल्लोलें कर रहे हैं। पास ही में पहाड़ के साथ साथ चले जा रहे गहरे नाले के बीच बीच में चट्टानों से टकराता हुआ पानी छों छों की ध्वनि से मन को आन्दोलित कर रहा है। इस बलखाती राह पर आगे चलकर दाहिने हाथ को हनुमान जी के एक प्राचीन

मन्दिर पर टंगी ध्वजाओं का आन्दोलन हृदय में हलचल सी पैदा कर रहा है। '

यहाँ कैलाश जी द्वारा अपने गाँव के भौगोलिक एवं प्राकृतिक वातावरण का सजीव चित्रण किया गया है। परन्तु आगे उन्होंने कला एवं कलाकार के वर्तमान यथार्थ को भी उकेरा है-

' मदारी : तुम्हारे पिताजी वाकई कोई बडे आदमी थे। क्या काम करते थे?

डुगडुगी : एक कलाकार थे। परन्तु ज़िन्दगी भर अभावों में ही पिसते रहे।

मदारी : अच्छा।

डुगडुगी : हां। उन्होंने भारतीय कला को विश्व भर में सम्मान दिलाया। बडे बडे पुरस्कार और सम्मान मिले उन्हें। पर जीवन के अन्तिम क्षणों में दवा दारू तक के पैसे न थे उनके पास।

मदारी : ऐसी स्थिति?

डुगडुगी : हां, हिन्दुस्तान में कला साधकों की ऐसी ही स्थिति होती है। उन्होंने मदारी के माध्यम से आज के यथार्थ से क्षुब्ध होकर ही शायद मन की पीड़ा को यों अभिव्यक्त किया है-

मदारी : कोई नहीं पूछता क्यों? लो मैं ही बताये देता हूं। मेरा बन्दर कहता है कि तुम्हारे पास मुझे क्या मिलेगा। न खाने को, न पहनने को और न ही आधुनिक सुख सुविधाएं, जैसे सैर सपाटे, गाडियों में घूमना, बड़े-बड़े लोगों से मिलने का मौका आदि आदि। छोड भागा मुझे। कहने लगा कि आजकल विदेशी लोग इन्सान के बारे में रिसर्च कर रहे हैं और हम बन्दरों के वारे-न्यारे हो गये। ए.सी. कमरों में रहने को मिलता है, कार और हवाईजहाज में सैर करने और काजू किशमिश खाने को मिलते हैं।

मैंने सोचा कि यह पगला गया क्योंकि वह मुझे भी अपने साथ चलने को कह रहा था। पर मैं न गया। मैंने सोचा कि मैं एक साधारण सा मदारी हूं और ये विलासिता की चीजें मुझे तिल तिल कर मार देंगी। तब से बिना बन्दर के ही तमाशा

दिखा रहा हूं। मर्जी का मालिक हूं। जब चाहा, जहां चाहा दिखाना शुरू कर दिया तमाशा।

और डुगडुगी। आजकल मौसम का कोई पता नहीं रहता। ऋतुओं की परिभाषा ही बदल गई है। सर्दी के दिनों में गर्मी, गर्मी में बरसात और बरसात के मौसम में सूखा। कई बार डुगडुगी का चमडा फट गया जिसकी मरम्मत करने वाले ही न रहे। और जो करने वाले हैं वे कहते हैं कि इन पुरानी चीजों का आज चलन ही कहां रहा। आजकल सब इलेक्ट्रॉनिक हो गया है।

.....लडकी : अरे, तुम्हारा यह स्थान तो बहुत ही गौरवशाली रहा है।

एक बच्चा : अच्छा।

दूसरा बच्चा : परन्तु हमारे यहां पर तो खूब लडाई झगड़े होते हैं।

तीसरा बच्चा : लोगबाग सारे दिन निठल्ले बैठे चाय की थडियों पर गप्पें हांकते रहते हैं और बेचारी उनकी औरतें घर और खेती दोनों का काम संभालती हैं।

पहला बच्चा : हमारे यहां के अधिकांश लोग मदिरा, गांजा-भांग, पोस्त-डोडा आदि पीने लगे हैं।

दूसरा बच्चा : भाई भाई के खून का प्यासा हो गया है।

तीसरा बच्चा : आदमी आदमी का हक़ मारना चाहता है।

पहला बच्चा : और तुम हमारे यहां की धरती को पवित्र और गौरवशाली कह रही हो।

लडकी : अरे भाई। जोशी गणेश दास जी जैसे लोग अभी मौजूद हैं तुम्हारे यहां जो उस परम्परा का निर्वहन कर रहे हैं। हो सकता है आज उनकी बातों को मानने वाले कम लोग रह गये हों, परन्तु तम लोग उनसे यहां के इतिहास के बारे में अवश्य जानना।'

इस प्रकार आगे जोशी जी की पाठशाला के माध्यम से उन्होंने पुरानी शिक्षा प्रणाली के डूबते कगारों को उबारने

का प्रयास किया है जो उनका नाट्य जगत् का एक मौलिक एवं प्रशंसनीय प्रयास है।

*** लड़ी मैड़ की**

इस नाटक के माध्यम से भी नाटककार ने अपनी प्राचीन परम्पराओं के परिप्रेक्ष्य में आज के यथार्थ को प्रस्तुत करके पाठकों को हमारे मूल अस्तित्व की उपादेयता की जानकारी दी गई है। इस नाटक का देश के विभिन्न स्थानों पर प्रस्तुतीकरण किया जा चुका है जिसमें संगीत एवं नृत्य का भरपूर समावेश करके नाटककार-निर्देशक कैलाश शर्मा जी ने समकालीन यथार्थ को प्रस्तुत किया है।

*** मेरी लाड़ो पढेगी**

कैलाश जी इस नाटक में नारी जाति की पीड़ा एवं समकालीन यर्था का सटीक चित्रण किया गया है -

'माँ : बेटी तुम्हारी दादी ने कोई नई बात नहीं कही है। सदियों से बेटियों को जन्म लेते ही मार देने की प्रथा प्रचलित रही है हमारे देश में कहीं-कहीं तो।

बच्ची : क्या कह रही हो माँ?

माँ : हाँ बेटी। पुराने समय में तो कई-कई परिवारों में बेटियों को जन्मते ही मिट्टी के घड़े में बन्द करके जिन्दा ही मिट्टी में दफन कर दिया जाता था। '

आज देश में भले ही लड़कियों की शिक्षा एवं नारी-उत्थान की बढ़ चढ़कर पैरवी की जाय परन्तु यथार्थ स्थिति वैसी ही है जैसी कि नाटककार ने इस नाटक में प्रस्तुत की है-

'दादी : (बहू को क्रोधाग्नि से देखते हुए) अबे मुँहजली, क्या इन छिपकलियों को चिपेटे मौज मस्ती करके आ रही है। घर में काम सारा बाकी पड़ा है। गोबर से घर लीपना है, भैंस को बांट देना है। कौन करेगा ये सब।

बहू : माँ जी मैं ...

दादी : क्या माँ जी मैं, माँ जी मैं। अरे इन लड़कियों से काम

नहीं कराओगी तो शादी-ब्याह कैसे होंगे इनके। कौन ढोएगा इन ठीकरियों को अपने सिर पर।

दादी : (उसके चांटा लगाते हुए) बड़ी आई पढ़ाई करने वाली। अरे जितने रुपये तेरी पढ़ाई में खर्च होंगे उतने में तो तुम तीनों बहनों के हाथ पीले हो जायेंगे।'

*** देख जात के ठाठ**

कैलाश जी का यह नाटक आज के सामाजिक यथार्थ का एक करारा दस्तावेज है जिसके माध्यम से उन्होंने समाज के हर क्षेत्र में व्याप्त रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार और सरकारी तंत्र की खामियों को तार-तार करके उधेड़ दिया है। कुछ महत्वपूर्ण उद्धरण यहाँ दिये जा रहे हैं-

नौकरशाही की यथार्थपरक व्यंग्यात्मक प्रस्तुति

पत्रकार 1 : भाईसाहब, अब सब लोग आप जैसे बेरोजगार तो हैं नहीं जो चलें आयें यहां पर नाटक देखने। आजकल सरकारी नौकरियां भी नहीं मिलती जो तीन बजे सीट छोड़कर घर चले जायं और घर से पाँच बजे रवाना होकर टहलते- टहलते यहाँ आ जायं नाटक देखने।

पत्रकारिता की यथार्थपरक व्यंग्यात्मक प्रस्तुति

नवयुवक : पर साहब, पहले ही इतने अख़बार निकल रहे हैं कि अब आगे कोई गुंजाईश ही नहीं बची। गली-गली, मोहल्ले-मोहल्ले में पान-बीड़ी का सामान तक बेचने वालों ने किसी न किसी अख़बार का रजिस्ट्रेशन करा रखा है।

.....पत्रकार 2 : देखो, अख़बार निकालना तो तुम्हारा एक दिखावटी काम होगा। तुम क्या समझते हो कि अख़बार बेचकर और उससे मुनाफा कमाकर अख़बार वाले अपने परिवार का पेट पाल सकते हैं?

पत्रकार 1 : अख़बार की आड़ में अन्य कई प्रकार के कार्यों से तुम्हारी कमाई होगी।

.....पत्रकार 1 : भाई आज के युग में पत्रकारिता का हर जगह बोलबाला है। राशन की दुकान, गैस एजेन्सी, पैट्रोल एजेन्सी, एज्यूकेशन फील्ड़, बैंकिंग फील्ड़, थाना, तहसील, कचहरी । अरे भाई कहीं पर भी और किसी भी प्रकार का कार्य हो..

पत्रकार 2 : हम पत्रकारों का काम प्रायरटी पर होता है जिसका लेंगे हम सेवा शुल्क और उसका पचास प्रतिशत मिलेगा तुमको। बोलो आई कि नहीं बात समझ में?

व्यवसाय एवं व्यापार की यथार्थपरक व्यंग्यात्मक प्रस्तुति

पत्रकार 1 : भाई ग्राहक अपने आप खिंचे चले आते हैं बड़ी-बड़ी दुकानों में, और वहां पर लोग बाग भाव ताव भी कम करते हैं। सामान की भी पहले से ही पैकिंग कर ली गई होती है। ग्राहक आया पैसे दिये और पैक किया हुआ सामान ले गया , बस। आज तो मिट्टी भी पहले से ही पैक करके रखी रहती है बड़े-बड़े एयरकन्डीसन्ड शो रूमों में।

पुलिस विभाग की यथार्थपरक व्यंग्यात्मक प्रस्तुति

रूपकिशोर : अजी पुलिस में भर्ती होने में ग़लती काहे की, यह तो बहुत ही समझदारी का काम किया उसने। आज तो पुलिस की नौकरी में नित्य सोना- चाँदी बरसता है। अच्छे-अच्छे थानों में पोस्टिंग के लिये तो ऊंची ऊंची बोलियां लगती हैं और लोगबाग लाखों रूपये तक देने को तैयार रहते हैं।

सामान्यजन की विवशता की यथार्थपरक व्यंग्यात्मक प्रस्तुति

रूपकिशोर : छुटकारा तो मिलता है जी, परन्तु वास्तविक अपराधियों को। ये पत्रकार लोग अपने कवरेज से लॉकअप में बन्द इन शरीफ़ लोगों को अपराधी सिद्ध कर देते हैं और अपराधी साफ़ बच निकलते हैं। यही व्यावहारिकता भी है रीना जी, क्योंकि प्रतिभाओं का जेल में बन्द रहना उचित थोड़े ही है। और ये साधारण से शरीफ़ आदमी जेल के बाहर रहकर भी क्या कर लेंगे। दो वक्त की रोटी का जुगाड़ करते-करते ही अपना जीवन बर्बाद कर देंगे। फिर समाज और देश के लिये क्या कर पायेंगे, देश का विकास कैसे होगा?

कला के विकास में संलग्न सरकारी तन्त्र की यथार्थपरक व्यंग्यात्मक प्रस्तुति

पत्रकार 1 : और सुनो। कर्टेन गिराने के पचास रूपये पवन जी को देने पड़ेंगे, फ्लेट्स लेने के तीन सौ रू. रामपाल जी लिये बिना आपको

ऐसे गले हुए फ्लेट देंगे जिनको मंच पर रखते हुए भी शर्म आयेगी।

पत्रकार 2 : और उस दृश्य की फोटो किसी को दिखाने के काबिल न रहेंगी।

पत्रकार 1 : और वीड़ियोग्राफी करनी होगी तो पता है टाउन हॉल वाले क्या कहेंगे ?

रीना जी : क्या कहेंगे ?

पत्रकार 2 : यही कि यहां पर वीड़ियोग्राफी करना अलाउ नहीं है।

पत्रकार 1 : (रूपकिशोर जी की ओर देखते हुए)- परन्तु शीशपाल जी को चुपके से एक हजार रू. दे दोगे तो आराम से करो वीड़ियोग्राफी, चाहे चलते शो में मंच पर चढ़ जाओ कोई एतराज नहीं करेगा।

साहित्य-क्षेत्र की यथार्थपरक व्यंग्यात्मक प्रस्तुति

रूपकिशोर : अजी मेरे घर पर आये थे दो महिने पहले। कहने लगे कि भाई प्रकाशन का धंधा मंदा चल रहा है इसलिए तुम किताबें छपवाने को लालायित कुछ नये लोगों को लेकर आओ। हम पन्द्रह हजार रूपये लेकर उनकी सौ-सौ किताबें छपवा देंगे और आपको उस राशि का पच्चीस प्रतिशत कमीशन के रूप में देंगे।

शैक्षिक जगत् की यथार्थपरक व्यंग्यात्मक प्रस्तुति

रूपकिशोर : पीएच.ड़ी. अवार्ड कराने के पैकेज में कुल पच्चीस हजार रूपये देने होंगे। पचास प्रतिशत अग्रिम अभी और शेष राशि अन्तिम मौखिकी होने से से पूर्व उसी दिन। और मौखिकी के लिये आने वाले बाहरी परीक्षक के आने-जाने का किराया, ठहरने खाने एवं जाते समय पैक की जाने वाली मिठाई आदि का सारा खर्चा आपको देना होगा।

*** मानवता की पुकार**

हमारा देश भाईचारे, कौमी एकता और धर्मनिरपेक्षता की अनोखी मिसाल रहा है। इस यथार्थपरक स्थिति को कैलाश जी ने अपने इस नाटक के माध्यम से बड़े ही आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया है-

नटी : (सामने शहर की ओर इशारा करते हुए प्रसन्नता से)- कैसा शान्त और मनोरम दृश्य है यहाँ का।

नट : हाँ, चारों ओर हरियाली ही हरियाली।

नटी : आसमान में विचरण करते पक्षियों की रंग बिरंगी कतारें।

नट : और इनका संगीतमय गान।

नटी : मन को कैसे लुभा रहे हैं।

नट : हाँ भाग्यवान, हिन्दुस्तान का हाल यही है। चारों ओर शान्ति ही शान्ति। देखो तो, लोग बाग आपस में कैसे हिलमिलकर रह रहे हैं। चारों ओर खुशहाली ही खुशहाली। भाईचारा, कौमी एकता और धर्मनिरपेक्षता (फिर आसमान में जाते हुए पक्षियों की ओर देखकर)- हां भाई, ये पंछी भी राजस्थान की इस रंगबिरंगी छटा से मंत्रमुग्ध हो अपने देश को वापस लौटते हुए भी यहीं पर रह जाने को लालायित हैं।

मेले और हाट-बाज़ार बने एकता के आधार
नहीं यहां कोई हिन्दू-मुस्लिम सिक्ख-ईसाई का अलगाव
आओ सब मिल नाचें-गायें जीवन का मिल लें आनन्द
जीवन का मिल लें आनन्द जीवन का मिल लें आनन्द
रहँट करे चरमर चरमर यहाँ बैलों के घुँघरू बाजें
गैंती से महिलाएं देखो कैसे चट्टानें काटें
नई राह सब खोज रहे जहाँ अमन-चैन-संतोष मिले
पानी की धारा रेतीले धोरों में देखो फूटे

परन्तु आज इन्सानियत के मायने बदल गये हैं और अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु देशवासी अनैतिक कार्य करने में भी पीछे नहीं रहे हैं। इस नाटक में इस यथार्थ को बहुत ही प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया गया है-

नट : आज युग-परिवर्तन हो रहा है।

नटी : युग परिवर्तन ?

नट : हाँ युग-परिवर्तन। लो सुनो तुम भी । (रेडियो से प्रसारण)

गाँव और ढाणियाँ बदली पगडण्डी अब नहीं रही,
पटरी के पहियों से देखो शहर बने मैट्रो भाई।
चीलगाडियाँ मँडराती है जाम लगा अड्डे पर,
देखो अब युग बदला है.. भाई भाई का दुश्मन।
दौलत के पलड़ों में कैसे हल्के रिश्ते-नाते,

नये ख़ून को राह दिखाते आतंकवादी संगठन
आतंकवादी संगठन आतंकवादी संगठन

कुछ वर्षो पूर्व जयपुर में हुए सिलसिलेवार बम ब्लास्ट का नाटक के माध्यम से चित्रण करके कैलाश जी ने जनता को ऐसी विषम परिस्थिति से निपटने की जो विभिन्न घटनाएं बतायी हैं वह समाज की एक यथार्थवादी तस्वीर है-

एक मुस्लिम महिला: डॉक्टर साहब, पहले मेरा ख़ून लीजिए परन्तु खुदा के इन नेक बन्दों को ज़िन्दगी बख़्शिए।

समूह की आवाज़ : डॉक्टर साहब, आप ख़ून की चिन्ता न करें। पूरा शहर उमड़ पड़ा है घायलों को ख़ून देने।

निष्कर्ष

साहित्य एक ऐसा अस्त्र है जिसके माध्यम से एक रचनाकार समकालीन परिस्थितियों को अपनी लेखनी से उजागर कर वर्तमान पीढ़ी को सही दिशा दिखाकर सामाजिक बदलाव के परिप्रेक्ष्य में उन्हें सभ्यता, संस्कृति, नैतिकता आदि की उपादेयता से परिचय कराते हुए उन्हे मार्ग में भटकाव के प्रति आगाह कर सकता है। अपने नाट्यलेखन के माध्यम से इस उद्येश्य की पूर्ति में डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा जी पूर्णत: सफल रहे हैं। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि शर्मा जी का लेखन सामाजिक यथार्थ का दर्पण है।

❑❑❑

15

कैलाशचन्द्रशर्मा के नाट्यसाहित्य में व्यंग्य

(विशेष सन्दर्भ :'जैसे को तैसा', 'महावत एवं मन चंगा तो कठौती में गंगा')

डॉ. स्नेहलता भारद्वाज

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का व्यक्तित्व उनके कृतित्व से ध्वनित होता है। आधुनिक काल में नाट्य विधा लघु एकांकियों एवं नाटिकाओं के रूप में विशेष प्रचिलत हो रही है स्वयं रंगनिर्देशन एवं कलाकार के रूप में कार्य कर रहे कैलाश जी अपनी नाट्य रचनाओं में रंगमंच की बारीकियों का बखूबी ध्यान रखते हैं। इनके शब्द स्वयं बोलते है कहीं हास्य की फुहार तो कहीं व्यंग्य की मर्मभेदक धार इनकी रचनाओं को लोकप्रिय बनाती है। जन-जीवन से जुड़े प्रसंगों का मनोवैज्ञानिक चित्रण एवं लोक नाट्य शैली का अत्यन्त प्रभावशाली उपयोग इन्होंने अपनी रचनाओं में किया है।

महावत एवं मन चंगा तो कठौती में गंगा, जैसे को तैसा कैलाशचन्द्र शर्मा की महत्वपूर्ण कृतियाँ है।

महावत एवं मन चंगा तो कठौती में गंगा, लोक नाट्य शैली में रचे गये प्रतीकात्मक एंकाकी है। लोकनाट्य शैली ने हिन्दी नाट्य विधा में अपनी विशेष पहचान बनाई है जिससे न केवल दर्शकों लुभाने में सरलता रहती है अपितु अनेक प्रसंगों को व्यंग्यात्मक भाषा का सहारा लेकर प्रतीकात्मक ढंग से इस लोक नाट्य शैली में प्रस्तुत किया है। संवेदनशील सामाजिक और राजनितिक विषयों पर लेखक प्राय: सीधे बात कहने के स्थान पर व्यंजना का सहारा लेते हैं। लोक नाट्य में हास परिहास एवं चुटीले संवादों के माध्यम से

* हिन्दी विभाग, हिमाचल आदर्श संस्कृत विद्यालय, जांगला, रोहरू (शिमला)

ऐसे में विषयों की प्रस्तुति की दीर्घ परम्परा रही है। इसी विशेषता ने नाटककारों का ध्यान आकृष्ट किया है। डॉ. शेखर शर्मा लिखते हैं – 'पिछले दो दशकों में लिखे गये नाटकों में लोकनाट्य, पारम्परिक रंगमंच तथा लोक कथाओं को अपनाने की प्रवृति तेजी बढ़ी है राजस्थान के लोकमंच का अपनी नाट्य रचना में सर्जनात्मक उपयोग करके मणिमधुकर के हिन्दी नाटक के अवतरण की दिशा खोली है।'[1]

नाटककार कैलाशचन्द्र शर्मा मणिमधुकर की इसी परम्परा के सशक्त हस्ताक्षर बन कर आये हैं। महावत एकांकी में महाराज एवं छबीली प्रतीक पात्रों के द्वारा शासकीय व्यवस्था को व्यंग्यात्मक शैली में प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। इन प्रतीक नाटकों के माध्यम से शासकीय,एवं व्यवस्था को अधिक सहजता से अभिव्यक्ति दी गई है। रमेश चन्द्र के अनुसार 'प्रतीकों द्वारा सूक्ष्म अर्थ की व्यंजना, सूक्ष्म अनुभूतियों की मार्मिकता ध्वन्यात्मक पद्धति द्वारा अभिव्यक्ति तथा संगीतात्मकता प्रतीकवादी आन्दोलन की प्रमुख विशेषता है।'[2]

महाराज के मन में गंगा स्नान का प्रवित्र विचार आता है जिस विषय में निकटस्थ कर्मी छबीली से विविधआयामी वार्तालाप करते हैं। वास्तव में तीर्थाटन का ख्याल ही किसी गम्भीर विचार की उपज नहीं थी। यात्रा के लिए विभिन्न साधनों पर विचार किया जाता है किन्तु प्रत्येक साधन के व्यावहारिक उपयोग में कठिनाई को देखते ही उसे अपनाने का विचार त्याग दिया जाता है यहाँ तक कि अन्त में महाराज यात्रा को ही गैरमहत्व की साबित कर देते हैं। सलाहकार शासक का उचित मार्गदर्शन करने के स्थान पर उनकी जी हजूरी को अधिमान देते हैं। अधीनस्थकर्मी के लिए शासक के किसी निर्णय को असंगत ठहरा कर उन्हें अप्रसन्न करने का साहस करना सहज नहीं इसलिए वे उन्हीं की बात को मुँह छूटते ही लपक लेते हैं जैसे वे भी यही सलाह देने वाले हों।

महावत एंकांकी में शासक महाराज अपनी निजी सहायिका छबीली के सम्मुख गंगा स्नान की अपनी इच्छा व्यक्त करते हैं जो शिष्ट चाटुकार सलाहकार की भांति गंगा स्नान के महत्व को स्थापित करने की भरपूर कोशिश करती है। वह कहती है–'... और महाराज सच कहती हूं कि यदि आप गंगा

स्नान कर आये तो आप तो आप आपके पुरखे भी तर जायेंगे।[3]

इसी प्रकार शासक अनेक आकर्षक योजनाओं पर विचार विमर्श करते हैं जिसके औचित्य –अनौचित्य पर सोचे बिना शासकीय इच्छा को महत्व देने के लिए उनके सचिव या सहायक इसी तरह प्रशंसा करते दिखाई देते हैं। फिर क्रियान्वयन के तरीकों पर विचार विमर्श होता है। यथा इस नाटक में सर्वप्रथम ऊँट की सवारी का विचार प्रकट करते छबीली ऊँट की सवारी के लाभ का वर्णन पूरे मनोयोग से करती है। परन्तु ऊँट की सवारी से उतरते समय गिरने का भय छबीली को स्मरण आता है तो महाराज भी विचार बदल देते। नयी सवारी के रूप में हाथी की सवारी पर विस्तृत चर्चा आरम्भ हो जाती है। इस बार भी छबीली जम कर तारीफ करती है परन्तु सुझाव भी देती है कि शाही सवारी हाथी खाने के हाथियों की सवारी महाराज को नहीं रूच पाती क्योंकि वे मदमस्त होते हैं। यश प्राप्ति के जनरूचि की योजनाओं की भांति छबीली महाराज को ऐसे हाथी की सवारी का सुझाव देती है जो सामान्य लोगों के बीच का हो। परन्तु ऐसा हाथी खोजने के लिए महाराज को स्वयं गांवों में जाना पड़ता है। कभी–कभी जोश में शासक स्वयं पड़ताल करने का साहस कर देते हैं, ऐसे में कुछ वास्तविक तथ्यों से सामना हो जाता है। नाटक में हाथी की खोज के लिए गाँव देखने का अवसर मिलता है इसी बहाने ग्रामीण परिवेश की एक झलक भी प्रसंगत: हुई है। पूर्व दीप्ति अर्थात फ्लैश बैक विधि का प्रयोग भी किया गया है– महाराज दिमाग पर और जोर डालिए और सोचिए और क्या याद आ रहा है। महाराज को गांव के दृश्य दिखाई देने लगते हैं– छबीली वहाँ सामने के रास्ते की डोलियों पर खड़े हुए पूळे हमें धुँधले– धुँधले से दिखाई दे रहे हैं और हमारे कानों में चर्रच्यूं की हल्की–हल्की सी आवाज उभर रही है।' [4] कथानक को गति देने के लिए स्थान–स्थान पर प्रचलित लोक गीतों का संकेत भी दिया गया है। हाथी की स्वारी भी अन्तत: पसन्द नहीं आती इसके बाद छबीली किसी अन्य सवारी के बारे में विचार करने को प्रस्तुत होती है तो महाराज भी भयभीत हो जाते कि अब न जाने किस सवारी का सुझाव देगी वे मन ही मन व्यंग्य करते हैं– 'इस बार कौन सा ख्याल आया है इस चुड़ैल के मन में। कहीं जरख –बघेरे का तो नहीं।'[5] इस बार भैल की स्वारी का सुझाव दिया जाता है । महाराज भी ललचा जाते हैं और

उनका मन पत्नी के बिना अकेले भैल की सवारी से गंगा स्नान का हो आता है। परन्तु जब यह बाल छबीली ठकुराइन को बताने की धमकी देती है तो महाराज पत्नी के भय से त्रस्त हो भैल की सवारी के विचार को ही त्याग देते हैं। इसके बाद पालकी की सवारी पर चर्चा होती है, परन्तु दुल्हनों की सवारी होने के कारण बात नहीं जंच पाती। सरकारी तन्त्र में जनोपयोगी योजनाओं का हश्र भी यही होता आया है। किन्तु और परन्तु में उलझ कर वे सिरे ही नहीं चढ़ पाती। ऐसे मनमोहक स्वप्न दिखाकर जनता को प्राय: लुभाया जाता है किन्तु उनके क्रियान्वयन में आने वाली परेशानियों का बहाना बना कर कार्यालयों की फाइलें अनेक सलाहकारों की टिप्पणियों का पुलिन्दा मात्र बन कर रह जाती है। और फाइल बन्द की दी जाती है। यथा, महाराज कहते हैं कुशल सलाहकार की भांति छबीली महाराज को यह तर्क दे कर सन्तुष्ट कर देती है –'महाराज कौन से आपके पुरखे यह कह कर मरे हैं कि आपको गंगा स्नान करना जरूरी ही है।[6] चाटुकार प्रत्येक परिस्थिति के अनुसार सहजता से अपने विचार बदल लेते हैं। इस वृति पर गहरा व्यंग्य इस कृति में किया गया है। गंगा स्नान की योजना जिस उत्साह के साथ आरम्भ की गई इच्छा शक्ति के अभाव में मनपसन्द साधन के बहाने के आगे दम तोड़ देती है। इस पलायनवादी प्रवृति को उजागर करते हुए डॉ. नरेन्द्र नाथ त्रिपाठी कहते हैं आज का मानव समस्याओं से आँखें मूंद कर भागना ही श्रेयस्कर समझता है।[7]

'महावत' एकांकी का ही संशोधित संस्करण प्रतीत होते हुए भी मन चंगा तो कठौती में गंगा एकांकी इसी लोक नाट्य परम्परा की एक अन्य सशक्त रचना है जिसमें कुछ अंश पूर्व वर्णित नाटिका से यथावत लिए गये हैं किन्तु अनेक नये सन्दर्भ इसे नयापन देते हैं। यह रचना भी राजकीय व्यवस्था की खामियों पर गहरे कटाक्ष करने में समर्थ रही है।

विभिन्न कार्यालयों द्वारा समय-समय पर नियुक्तियों के लिए ज्ञापन दिये जाते हैं जिसमें बेरोजगार युवक युवतियॉ साक्षात्कार हेतु पहुँचते हैं परन्तु रिक्तियां सीमित होने के कारण प्राय: पहचान या अन्य साधन समर्थ लोगों के लिए मौखिक रूप से वे पद आरक्षित हो जाते है ऐसे में साक्षात्कार महज औपचारिकता मात्र बन कर रह जाते हैं इस बात को अब आवेदक भी महसूस करने लगे हैं, इस कारण उनमें साक्षात्कार के प्रति उत्साह नहीं दिखाई देता।

इस लघु नाटिका के आरम्भ में विक्रमसिंह को मौकापरस्त उम्मीदवार के रूप में चित्रित कर यह बताने की चेष्टा की गई की अवसर साधने के लिए परिचय का लाभ किस तरह उठाया जा सकता है। वह दरबार की एक महिला के प्रति प्रेम का प्रर्दशन करने तक से नहीं चूकता– ' सच कहता हूं चुलबुल, जब तुम नहीं दिखती हो न तो बैचैन हो उठता हूँ। '[8] नारी की कोमल भावनाओं का लाभ उठा कर वह सलाहकार के पद तक पहुँचना चाहता है। चुलबुल भी अवसर का लाभ उठाने में कम न थी ज्यों ही उसे साक्षात्कार का पता चला अपने गांव के इस प्रेमी युवक को बुला लेती है, क्योंकि शासक की परिचित होने का अर्थ वह जानती है।

दूसरे दृश्य में साक्षात्कारों के प्रति उम्मीदवारों की उदसीनता पर व्यंग्य करते हुए राज कर्मचारी होशियार सिंह कहता है क्षमा करें महाराज निर्धारित समय पर पहुंचने की बात हमारे देश में पुरानी हो गई है।[9]

साक्षात्कार औपचारिकता मात्र बन कर रह गये हैं जिस कारण यह उदासीनता पनपी है इस सच्चाई पर भी व्यंग्यात्मक टिप्पणी करते हुए होशियार सिंह महाराज को आगाह करते हैं – महाराज आजकल सरकारी महकमों में रिक्त पदों पर बड़े-बड़े अधिकरियों के रिश्तेदारों को पहले ही रख लिया जाता है।'[10] अथवा वह कहता है– 'परन्तु स्थायी चयन तो उन्हीं का होता है जो सैटिंग करके पहले से ही घुसे होते हैं। महाराज शायद हमारे राज्य के नौजवान इस बात को समझ कर ही इन्टरव्यू देने नहीं पहुँचे।' इस पर महाराज अचम्भित होते दिखाये गये हैं। यह बात और भी अधिक हैरान कर देती है कि शासक ही शासन तन्त्र की विसंगतियों से बेखबर है।

इस भाई भतीजेवादपूर्ण आवंटन की रीत के मध्य योग्य व्यक्ति तक को किसी न किसी तरह की सैटिंग का सहारा लेना पड़ता है। इस नाटिका में सोचे समझे नाटक के माध्यम से चुलबल अपने परिचित की ओर महाराज का ध्यान खींचती है और नाटकीय अन्दाज में महाराज के पास आकर शिकायत करती है कि सैनिक अपने महाराज के श्रेष्ठ तीरन्दाज होने की शेखी बघार रहा है। महाराज अपने समक्ष किसी और की तारीफ भला कैसे सुनते। वह उस सैनिक को पूरी घटना ब्यान करने को कहते है वह कहता है कि उनके महाराज ने ऐसा तीर चलाया कि वह हिरण के पैर को बेधता उसके कान को

छेदता हुआ उसकी खोपड़ी में घुस गया जिससे हिरण मर गया। यह असम्भव सा था सैनिक ने यह प्रसंग ही बड़ी चालाकी से वर्णित किया था जो उसके बुद्धि कौशल को प्रकट कर गया सैनिक उलझन का परिहार करते हुए बताता है –'महाराज। जब हमारे महाराज ने तीर चलाया तो वह अपना कान खुजा रहा था।'[11] चुलबुल ने अपने बुद्धि कौशल से उस सैनिक को अवसर दिलाया और उस अवसर का उचित लाभ उठा कर वह महाराज पर अपनी योग्यता सिद्ध करने में सफल रहा और चयन ऐसा निष्पक्ष दिखा जैसे सब ठीक हुआ। इसी प्रकार अधिकांश चयनित उम्मीदवार अपना कोई न कोई दांव खेल कर सफल हो जाते हैं और बाकि ठगे से रह जाते हैं। इस तरह इस नाटिका में साक्षात्कार मेले की सच्चाई को व्यंग्यात्मक ढंग से व्यक्त किया गया है। चौथे दृश्य में गंगा स्नान की तैयारी और उसके लिए साधन चयन को महाराज और ननुवा पात्रों के माध्यम से वर्णित किया गया है जिसमें ऊंट घोड़े व पालकी की सवारी पर विचार कर फिर उनकी कमियों को दर्शा कर पूर्व एकांकी की भांति ही महाराज अपने विचार बदलते हुए अपने अस्थिर चित एवं योजना क्रियान्वयन के प्रति अपनी अरूचि का परिचय देते दिखाये गये हैं। शासकीय वर्ग की इस पलायन वृति को उद्घाटित करते हुए नरेन्द्र नाथ त्रिपाठी लिखते हैं- 'वह संघर्ष से दूर बचने की चेष्टा करता है किन्तु दिखने के लिए अपनी इस पलायनवृति को साहसिकता और सचेष्टन के आवरण में ढ़केलने का असफल प्रयास करता है।[12] रंगमचीय प्रस्तुति की दृष्टि से यह नाटिका दर्शकों में रोचकता पैदा करने में सफल रही है और महाराज के अनेक वाक्य परिहास की स्थिति पैदा करते हैं 'लेकिन ननुवा एक राज की बात बताऊं? (फिर इधर उधर देखते हुए) वह यह कि मुझे घोड़े पर बैठने का अधिक अनुभव नहीं और सुनते है कि ऐड़ लगाते ही घोड़ा काफी तेजी सरपट दौड़ने लगता है। मैं कहीं गिर तो नहीं जाऊंगा।'[13] इसी प्रकार शासक वर्ग भी कोई कार्य करने से पूर्व यह अच्छी तरह जांच लेना चाहता है कि उन पर कोई आंच तो नहीं आएगी साथ ही अपनी अयोग्यता के कारण भयभीत भी रहता है इस दुविधा में वे उचित कार्य या योजना के क्रियान्वयन के प्रति उदासीन हो जाते हैं इसी तथ्य को व्यंजनात्मक ढंग से यहाँ भी कहने का प्रयास किया गया है। रमेश चन्द्र कहते है ' प्रतीक नाटकों में उद्देश्य का स्थान सर्वोपरि है।'[14]

'जैसे को तैसा' हास्य रस पूर्ण बालनाटिका है जिसकी रचना ही बालरंगमंच के लिए की गई है। इसमें मेरी, पीटर, पड़ौसी और पीटर के दोस्तों के संवादों माध्यम से हास-परिहास का वातावरण खड़ा किया गया गया साथ मध्यमवर्ग मे मांगने की प्रवृति और पड़ौसी की वस्तु बेझिझक लेने और न लौटाने की मनोवृति पर कटाक्ष किया है। मेरी के पड़ौसी भी इसी आदत के शिकार हैं वह उनसे बचने का हर सम्भव प्रयास करती और इसी कोशिश हास्य व्यंग्य की फुहारें छूटती हैं। मेरी अपने बेटे पीटर को बहाने सिखाती है कि किस तरह उसे पडौसियों से पीछा छुडाना चाहिए परन्तु वह उन बहानों से मुसीबत से पीछा तो नहीं छुड़ा पाता परन्तु हास्यास्पद स्थिति पैदा कर देता है। पड़ौसन ताला उठा कर ले जाती है। मेरी पीटर को बहाना सिखाती है परन्तु इस बार पड़ौसी सामान नहीं अपितु उसके पिता को बुलाने आता है। पीटर ताले के लिए समझा बहाना दोहरा देता है। 'हमारे पास पहले दो थे पर कुछ समय पहले पता नहीं एक कहाँ चला गया अब एक ही बचा है हमारे घर में जो कभी काम करता है कभी नहीं।'[15] दूसरे दृश्य में पता चलता है कि पीटर को दूसरों की नकल करने में मजा आता है। इसका मनोवैज्ञानिक कारण मेरी द्वारा सिखाये गये बहानों का परीणाम प्रतीत होता है। वह अपने दोस्तों से लेकर चने बेचने वाले तक को उनकी कही बात तोते की भांति अक्षरश: दोहरा कर परेशान कर आनन्द लेता है। उसके परेशान दोस्त जब उसे सबक सिखाते हैं तो मनोवैज्ञानिक स्तर पर स्वयं कारण रह चुकी उसकी माँ नसीहत देती दिखती है अपनी भूल पर अफसोस करती नहीं। इस रचना में व्यंग्य के स्थान पर हास्य की प्रधानता है। सारांशत: डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा विवेचित रचनाओं में सामाजिक जीवन एवं शासकीय कार्यशैली पर करारे व्यंग्य भी किये गये हैं।

❑❑❑

16

कैलाशचन्द्र शर्मा के नाटकों में युग एवं कालबोध

डॉ. अनीता शर्मा

कैलाशचन्द्र शर्मा हिन्दी नाट्य साहित्य में किसी परिचय के मोहताज नहीं है। उन्होंने अपनी प्रतिभा से हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने में विशिष्ट योगदान दिया है। इस आलेख में उनके दो नाटकों 'और मंजिल मिल गई' तथा 'दुश्मन दोस्त' पर विचार करना अपेक्षित है।

युग एवं काल बोध की दृष्टि से 'और मंजिल मिल गई' एक महत्वपूर्ण कृति है। यह नाट्य रचना पंडित हरिशंकर और उसके परिवार के संघर्षों की मार्मिक कथा है। हरिशंकर के पुत्र करण और सोहन बड़े भाई कन्हैया की भाँति भटकी हुई युवा पीढ़ी के प्रतिनिधि न होकर परिवार, समाज एवं राष्ट्र के प्रति पूर्णत: समर्पित युवाओं के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। नाटक के प्रारम्भ में पं. हरिशंकर की पत्नी सुलक्षणा अपने नाम के विपरीत कर्म करती हुई दृष्टिगोचर होती है। वह कन्हैया को उसकी कर्त्तव्यविमुखता के लिए कहीं भी टोकती नहीं है, अपितु उसे सोहन और करण की अपेक्षा अधिक सुविधाएँ देकर पथभ्रष्ट करने में सहयोग देती है। पिता हरिशंकर उसके क्रिया कलापों को लेकर चिन्ता में डूबे रहते हैं और अक्सर उस पर खीझते हैं – 'जब देखो दड़ी खेलना, मटरगस्ती करना और आवारा लड़कों के साथ घूमना। न तेरा पढ़ाई लिखाई में मन है और न खेत खलिहान के काम में। नालायक कहीं का।' [1] पर पिता के समझाने का कन्हैया पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। यह कृति कन्हैया जैसे युवाओं के माध्यम से यह संदेश देना चाहती है कि आज

* अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, जनता कॉलेज, करतारपुर

जीव की रफ्तार बहुत तेज हो चुकी है। जो युवा समय का मूल्य नहीं समझते, उन्हें कभी भी मंजिल नहीं मिल सकती। इसी के साथ ही जो महिलाएं पारिवारिक सदस्यों में भेदभाव करती हैं उनका उचित मार्गदर्शन करने की अपेक्षा पथभ्रष्ट करने में सहयोग देती हैं, उन्हें अन्तत: पछताना ही पड़ता है।

प्रस्तुत नाट्य कृति में पारिवारिक मुद्दों के साथ-साथ सामाजिक मुद्दों को भी उठाया गया है। आज महानगरों में प्रतिदिन हजारों व्यक्ति रोजी-रोटी की व्यवस्था के लिए गांवों से पलायन करके आते हैं, किन्तु यहाँ आकर कठोर यथार्थ से टकराकर उनके सपने चूर-चूर हो जाते हैं। सोहन और करण अपने पिता की सहायता करने के लिए, परिवार की आर्थिक सुदृढ़ता के लिए पढ़ाई छोड़कर महानगर कलकत्ता में आकर कैंटीन में नौकरी करने का निश्चय करते हैं। किन्तु उनका मालिक उनसे अमानवीय व्यवहार करते हुए उन्हें पल-पल अपमानित करने में गर्व अनुभव करता है। परिस्थितियों की गंभीरता को अनुभव करते हुए सोहन करण को सुझाव देता है कि वह अपनी शिक्षा पुन: आरम्भ करे तथा स्वयं गांव जाकर मेहनत मजदूरी करने का निश्चय करता है। करण उसके सुझाव पर तुरन्त सहमति व्यक्त करता है – 'इस महानगर में तुम्हारी ही तरह मैं भी घुटन महसूस कर रहा हूँ और अब यहाँ पर नौकरी करने का मेरा भी मन नहीं है।' [2]

सोहन अपने भाई करण के लिए अपने जीवन की खुशियों का त्याग करता है तो करण भी अपने भाई के सपनों को पूरा करने के लिए जी-जान से परिश्रम करता है। दोनों भाइयों का संयुक्त प्रयास अन्तत: रंग लाता है तथा करण सफलता की सीढ़ियाँ लांघता हुआ स्वयं को बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न युवक के रूप में स्थापित करता है। एम.ए. में अध्ययनरत करण कॉलेज के वार्षिकोत्सव के दौरान मौलिक चिन्तन प्रतियोगिता में अपने आलेख द्वारा महारानी पिंपलगढ़ द्वारा न केवल पुरस्कृत किया जाता है, अपितु उसके भाग्य के द्वार भी खुल जाते हैं। महारानी करण सिंह को अपने राज्य के दीवान पद का प्रस्ताव देती है और करण सिंह के जीवन का एक नया अध्याय प्रारम्भ हो जाता है।

करण के माध्यम से लेखक कहना चाहता है कि परिश्रम का फल अवश्य मिलता है तथा प्रतिभा एक दिन अवश्य पहचानी जाती है, लेखक की यह मान्यता है। नैतिक मूल्य प्रत्येक युग, प्रत्येक काल, प्रत्येक वर्ग एवं समुदाय

की रीढ़ हैं। 'कौन कहता है कि हमारा देश आधुनिकता की चपेट में आ गया। आज न हमारी संस्कृति कमजोर हुई है, न सिद्धान्त टूटे हैं और न नैतिकता का ह्रास हुआ है। हमारा देश आज भी अपने निवासियों की 'स्वजन हिताय' की भावनाओं से ओतप्रोत है। त्याग और बलिदान की अनोखी मिसाल है, हमारा देश।' [3] करण सिंह का यह कथन राष्ट्रनिर्माण में नैतिकता की भूमिका पर भली भान्ति प्रकाश डालता है।

'और मंजिल मिल गई' न्यायप्रिय शासन व्यवस्था की आवश्यकता को भली भाँति रेखांकित करने में पूर्णत: सक्षम है।

करण सिंह राज्य के दीवान के रूप में सूझबूझ एवं न्यायप्रियता का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करता है। निर्धन किसान के खेत में घोड़े दौड़ाने वाली 11 सैनिकों को नौकरी से बर्खास्त करके वह उनके परिवारों को अप्रत्यक्ष दण्ड का भागी नहीं बनाना चाहता, अपितु उन पर आर्थिक दण्ड का निर्णय सुनाता है – 'इस किसान को दी जाने वाली क्षतिपूर्ति की राशि इन ग्यारह घुड़सवारों के वेतन से काटकर राजकोष में जमा करा दी जाये और अभी इस किसान को राजकोष से दस हजार की क्षतिपूर्ति राशि दे दी जाए। इस प्रकार दोषियों से राजकोष को भी एक हजार रुपए मिल जायेंगे।' [4] लेखक यह कामना करता है कि न्याय व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिससे दोषी का सुधार हो तथा किसी भी पक्ष से अन्याय न हो। ऐसी न्याय व्यवस्था से ही समाज का सर्वांगीण विकास संभव है।

प्रस्तुत कृति में नारी शिक्षा और उसके समान अधिकारों का प्रबल समर्थन किया गया है। राज दरबार के कर्मचारी श्यामलाल की सुपुत्री नन्दिनी ससुराल परिवार के समर्थन के अभाव में उच्च शिक्षा ग्रहण करने का स्वप्न पूरा नहीं कर पाती। ऐसी स्थिति में करण सिंह उसे राजमाता के आदेश से घर जाकर पढ़ाता है। वार्षिक परीक्षा के दौरान उसके रहने की व्यवस्था अपनी बहन के घर में कर देता है। किन्हीं समस्याओं के कारण नन्दिनी परीक्षा के अन्तिम दिन करण से कहीं और रहने की व्यवस्था करने का अनुरोध करती है। राजमाता की सुपुत्री राजकुमारी रोहिणी के ऑपरेशन के कारण करण जल्दी उससे मिलने का वचन देता है पर करण सिंह को अस्पताल में रुकना पड़ता है और वह नन्दिनी को दिये वचन को निभाने में समर्थ नहीं हो पाता। रोहिणी स्वस्थ हो जाती है और नन्दिनी भी योग्यता सूची में स्थान प्राप्त कर लेती है।

वह करण को अपनी सफलता का श्रेय देती है तथा यह भी बताती है कि करण के भानजे ने अपने दोस्तों के साथ मिलकर उसे हवस का शिकार बनाया। करण उसकी दुर्दशा के लिए अत्यन्त लज्जित होता है तथा उसके साथ हुई दुर्घटना के लिए स्वयं को उत्तरदायी मानते हुए परित्यक्ता नन्दिनी से विवाह करने का निश्चय करता है। राजमाता करण सिंह को अपना दामाद बनाना चाहती है किन्तु उसकी इच्छाओं का सम्मान करते हुए उसे अपना सुपुत्र एवं राज्य का युवराज घोषित करती है। वह उसका विवाह भी शाही शानो-शौकत से करने का ऐलान करती है – 'यह शादी एक राजघराने की शादी होगी। परन्तु करण सिंह, रिश्ता तो हम आपसे बनाना ही चाहेंगे। आज से राहिणी आपकी बहिन होंगी और आप होंगे इस रियासत के युवराज।' [5]

नन्दिनी के जीवन को सकारात्मक दिशा प्रदान करके लेखक ने सिद्ध किया है कि यदि समाज चाहे तो नारी को अबला की संज्ञा से सहज ही मुक्ति मिल सकती है। नारी शक्ति के उत्थान से ही समाज और राष्ट्र प्रगति के नवीन शिखरों को स्पर्श कर सकता हैं यहाँ राजमाता भी नारी शक्ति की प्रतीक बनकर उभरी है।

'दुश्मन दोस्त' कैलाशचन्द्र शर्मा कृत लघु नाटक है। इसमें मानवीय संवेदनाओं की मुखर अभिव्यक्ति है। लेखक ने हिन्दू-मुस्लिम विवाद जैसे संवेदनशील मुद्दे को बड़ी कुशलता के साथ प्रस्तुत किया है। बीस वर्षीय हिन्दू सैनिक एवम् कैदखाने में मजदूरी करने वाले मुसलमान कैदी के मध्य होने वाला वार्तालाप जीवन एवं जगत के कई शाश्वत् सत्यों को अभिव्यक्त करता है। सैनिक मुसलमान कैदी से बात करने में रुचि नहीं रखता किन्तु कैदी पहल करके धीरे-धीरे उसकी गलतफहमियों को दूर करने में सफल हो जाता है। दोनों में वार्तालाप आरम्भ होता है तो सैनिक को पता चलता है कि कैदी के भीतर भी उसी की भाँति कोमल भावनाओं से भरा हुआ एक पावन मन है, जो मानवीयता के प्रति पूर्णत निष्ठावान है। वह केवल कलुषित राजनीति का शिकर हुआ है। कैदी अत्यन्त भावुक होकर अपने जीवन सत्य का उद्घाटन करते हुए कहता है – 'अब तुम बताओ दोस्त, ना तुमने मेरी जागीर लूटी और ना ही मैंने तुम्हारी। फिर भी मैं तुम्हारा गुनहगार हूँ क्योंकि मेरी ही कौम के गुनहगार जत्थे ने अपना जुर्म मुझ पर मढ़कर मुझे गुनहगार साबित कर दिया।' [6]

लेखक के अनुसार मानवीयता ही सबसे बड़ा धर्म है। विश्व में मजहब के नाम पर सदियों से व्यापक रक्तपात होता रहा है। आज भी स्थिति में कोई परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। इस नाट्य रचना में केन्द्रीय पात्र कैदी और सैनिक भी अनुभव करते है कि हिन्दू मुसलमान के नाम पर जो शत्रुता उनके मन में बसी थी, वह आभासी शत्रुता थी। उस शत्रुता रुपी बादल के छँटते ही मानवीय सहानुभूति का सूर्य स्वत: ही प्रत्यक्ष हो गया। लेखक उपरोक्त पात्रों के माध्यम से संदेश देना चाहता है कि अब धर्मांधता की नहीं, विकास की बात होनी चाहिए।

कैलाशचन्द्र शर्मा की यह कृति न्यायपालिक की भूमिका पर भी प्रश्नचिह्न खड़ा करती हैं। कैदी जैसा निरपराध व्यक्ति राजनीतिक षड्यन्त्र के कारण ही तिल-तिल करके मर रहा है। इस षड्यन्त्र की अति आतंकवाद के रूप में देखने को मिलती है। कैदी सैनिक के बताता है - 'असली गुनहगार राजनेताओं को अपने गद्दी पर जमाए रखने हेतु दौलत का ढेर लगा देते हैं। राजनेता जनाक्रोश फैलाकर अपनी नेतागिरी की दुकान चलाने हेतु बारूद का कारोबार करते हैं। बेवजह फँसे हैं हम जैसे दो इन्सान और पनप रहा है सोचा समझा आतंक।' [7]

आतंकवाद कैदी के भाई असलम जैसे लोगों की वहज से भी पनप रहा है। असलम जैसे युवा जल्दी धनवान बनने के लिए देशद्रोही बन जाते हैं और उनके कर्मो का फल बेगुनाह परिवार को भोगना पड़ता है। असलम के भाई को जेल जाना पड़ता है। पीछे से भाभी को समाज के सफेदपोश भेड़िये उठा ले जाते हैं।

प्रस्तुत नाटक में सैनिकों के त्यागमय जीवन की मार्मिक झलक देखने को मिलती है। आतंकवादी हमले के कारण नवविवाहित सैनिक को विवाह के दो दिन बाद ही ड्यूटी पर लौटना पड़ता है। घर में वह अकेला पुरुष है। अन्य सभी देश के लिए शहीद हो चुके हैं पर उसकी माता भी अपनी ममता का बलिदान देते हुए उसे फौज में भेज देती है। भारतीय नारी के इस साहस और गौरव को लेखक ने बड़ी कुशलता से शब्दों में पिरोया है।

नाटक के अन्त में आतंकवादी अपने साथियों को छुड़ाने के लिए जेल पर हमला कर देते हैं। कैदी और सैनिक मिलकर उसका मुकाबला करते हैं। कैदी अपनी जान पर खेलकर आतंकवादी को गिरफ्तार करवा देते हैं और

स्वयं पर लगे देशद्रोही के कलंक को मिटाने में सफल हो जाता है। इस प्रकार यह नाट्य रचना सुखान्त के साथ अपने चरम शिखर तक पहुँचती है।

निष्कर्षत: यही कहना उचित होगा कि 'और मंजिल मिल गई' तथा 'दुश्मन दोस्त' में लेखक ने युगीन संदर्भों को बड़ी कुशलता के साथ रेखांकित करते हुए उनके यथायोग्य उचित समाधान भी प्रस्तुत किये हैं। कथ्य के संदर्भ में उन्होंने गागर में सागर करने का सफल प्रयास किया है। अनुभूति से अभिव्यक्ति तक की यात्रा में उन्होंने अपनी लेखकीय प्रतिभा की जो अद्‌भुत प्रस्तुत की है, वह निश्चय ही स्तुत्य है।

सन्दर्भ

1) डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का नाट्य साहित्य : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा साहित्य, पृष्ठ-19, त्रिवेणी कला संगम, जयपुर, संस्करण 2012
2) वही, पृष्ठ 324
3) वही, पृष्ठ 327
4) वही, पृष्ठ 330
5) वही, पृष्ठ 340
6) वही, पृष्ठ 50
7) वही, पृष्ठ 51

❑❑❑

17

कंस

डॉ. इला प्रसाद

बहुआयामी प्रतिभा के धनी डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के लेखन और कृतित्व से परिचित होने का अवसर मिला। कभी पढ़ा था 'प्रतिभा किसी की क्रीतदासी नहीं होती, न कला पर किसी का एकाधिकार होता है।' कैलाश चन्द्र शर्मा जी का जीवन और लेखन दोनों ही इस बात की पुष्टि करते से प्रतीत होते हैं।

लेखन की तमाम विधाओं में नाटक-लेखन सबसे कठिन है, ऐसा मैं मानती हूँ। आम तौर पर लेखक का दायित्व उसके लेखन के साथ ही समाप्त हो जाता है किन्तु नाट्य-लेखन की सफलता उस नाटक के रंगमंचीय प्रस्तुतीकरण से जुड़ी होती है। डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा जी स्थापित कलाकार हैं और रंगमंच की अपनी समझ उनके द्वारा लिखे गए नाटकों में भी परिलक्षित होती है।

पौराणिक कहानियों पर नाटक लिखे गये हैं, मंचित भी हुए हैं किन्तु पुराणों से कोई ऐसा चरित्र उठा लेना जो सर्वत्र घृणा का पात्र रहा हो और फिर उस खलनायक को नायक के रूप में प्रस्तुत करना, उसके सद्गुणों की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करना बड़े साहस का काम है। 'कंस' नाटक द्वारा यह महत् कार्य श्री कैलाशचन्द्र शर्मा जी ने कर दिखाया है। प्रमुख धार्मिक गन्थों - श्रीमद्भागवत् महापुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, सत्यार्थ प्रकाश आदि के गहन अध्ययन तथा भारत के प्रमुख भागवत् कथा वाचकों से विचार विमर्श करने के बाद लिखा गया यह नाटक पाठक/ दर्शक को कई नई जानकारियां

*Chaney 12934, Meadowrn Houstan Texas-77066 U.S.A.

देगा और कंस जैसे चरित्र के प्रति उसके एकांगी दृष्टिकोण में परिवर्तन भी कंस को पुराणों में बार-बार एक अत्याचारी शासक और क्रूर मनुष्य, जिसमें मानवीयता का नितांत अभाव है, के रूप में चित्रित किया गया है। हम कृष्ण जन्म की कहानी पढ़ते हुए सहज ही उसके प्रति घृणा से भर जाते हैं किन्तु उस वक्त हम यह भूल जाते हैं कि यह मृत्युपाश में पड़े हुए व्यक्ति की असफ़ल जीने की चेष्टा है। अपने जीवन पर होने वाले भावी प्रहार से आत्मरक्षा का प्रयास है।

कंस के जीवन पर विशद् दृष्टि डालें, जैसा कि इस नाटक में वर्णित है, तो वह एक कमजोर मनुष्य है, जिसे राजा होने के नाते कुछ विशिष्ट अधिकार प्राप्त हैं और जिनका वह दुरूपयोग करता है। उसमें बहन के प्रति सहज ाेह भाव हैं किन्तु उसकी सन्तान के हाथों मृत्यु की भविष्यवाणी उसे इस कदर कायर बना देती है कि वह उचित अनुचित के भेद का विवेक खो बैठता है। स्वभावगत क्रूरता उसे नवजात शिशुओं की हत्या को प्रेरित करती है। नाटक के अन्तिम दृश्य में कंस का पश्चाताप पुनः उसे परिस्थितियों के शिकार कमजोर मानव के रूप में ही प्रस्तुत करता है, अत्याचारी राक्षस के रूप में नहीं।

लोकनाट्य शैली में लिखा गया यह नाटक दर्शकों का पर्याप्त मनोरंजन करने में सक्षम है। नाटक में जिस तरह से दृश्य योजना की गई है और कलाकारों से संवाद बुलवाये गये हैं वे सहज ही दर्शकों को विषयवस्तु की जानकारी देते हुए चलते हैं और साथ ही उस काल का भी बोध कराते हुए चलते हैं जिस कालखण्ड में ये घटनाएं घटित हुई थीं। पाठक/ दर्शक सहज ही कथानक में डूब जाता है और अतीत का हिस्सा बनकर उसे जीने-समझने को प्रस्तुत हो जाता है। मैं समझती हूं 'कंस' नाटक को दर्शकों एवं पाठकों की पर्याप्त स्वीकृति मिलेगी।

❑❑❑

18

उद्‌गार

जयन्त सावरकर

प्रिय डॉ. साहब,

आपके 31 मार्च को लिखे गये ख़त के लिये और साथ में भेजे गये नाटकों के लिये धन्यवाद। आपने समीक्षा के बारे में लिखा है, लेकिन मेरी इतनी काबिलियत नहीं कि मैं अपने आपको साहित्य का अभ्यासक कहूँ। मैं एक सीधा साधा कलाकार हूं और बरसों से रंगमंच पर काम करता आया हूँ। इस सत्यता के बावजूद भी आपने मुझे अपनी किताबें भेजकर जो सम्मानित किया है, इसके लिए मैं आपका शुक्रगुजार हूँ।

एक कलाकार के नाते मेरे मन में जो विचार आये, उन विचारों को ही आप समीक्षा समझें, ये मेरी आपसे प्रार्थना है।

आपके भेजे हुए नाटकों को मैंने गौर से पढ़ लिया है। आपकी हर कलाकृति में राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रीय भावनाओं का प्रकटीकरण है। ऐसे महत्त्वपूर्ण विचारों से भरी हुई कलाकृति रंगमंच पर लोकप्रिय करना बहुत कठिन हो जाता है। 'वीरशिरोमणि पृथ्वीराज चौहान' जैसा नाटक उस्ताद, जमूरा और कजरी के रंगमंच पर आने से बहोत ही आकर्षक (Intersting) हुआ है। पृथ्वीराज जैसे शूरवीर राजा के जीवन पर मैंने ये एक ही नाटक आज तक पढा है। रंगमंच पर जिसका सादरीकरण जितना सुलभ है, उतना ही कठिन है।

'आधुनिक यमलोक' में आपने भ्रष्टाचार की कथा लिखी है। एक बड़ी अच्छी कलाकृति है। अगर ये नाटक के प्रयोग हर प्रमुख शहर में किये गये, तो मानवी मूल्यों का नाश, रिश्वतखोरी, नीचता वगैरह तथा अपने देश

*12 ए केनेडी ब्रिज के पास, ऑपेरा हाउस मुम्बई - 400002

के नेताओं का सत्यस्वरूप समाज के सामने आ सकेगा।

बच्चों के लिये लिखे हुए पाँच नाटक मैंने पढ लिये हैं। खास तौर पर बच्चों के मनोरंजन के लिये अंग्रेजी सिनेमा आते हैं। लेकिन सत्य, ईमानदारी आदि जिन चीजों की बच्चों को पहचान होनी चाहिए, ऐसे अच्छे प्रोग्राम्स बहोत कम हैं। शालाओं में जाकर उनके सभागृह में ऐसे नाटकों के प्रयोग करना उचित रहेगा। ऐसे प्रयोग करने के लिये सेटिंग्ज, लाइटिंग आदि Minimum होनी चाहिये।

'मानवता की पुकार' और 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' ये भी अच्छे नाटक हैं। अगर मेरी उम्र मुझे ना रोकती तो मैं बडे शौक से जयपुर में आकर त्रिवेणी कला संगम के कार्यक्रमों में शामिल हो जाता। लेकिन जब आप जैसे बहुशिक्षित लोग रंगमंच से जुडे हुए रहते हैं तो ऐसे अच्छे नाटक हमेशा रंगमंच पर आते ही रहेंगे और देश की ओर प्रेम बढता रहेगा।

मैं एक Full time व्यावसायिक कलाकार हूं। रंगमंच से 55 वर्षों से सम्बन्धित हूँ- अर्थात् सिर्फ मराठी थियेटर। फिर भी आपने मुझे जो सम्मान दिया है, आपका मैं आभारी हूँ। राष्ट्रभाषा मैं जानता हूँ, लिखता हूँ थोड़ा सा, पढता हूँ, बोल लेता हूँ। लेकिन जितनी ज़रुरत पड़ती है उतना ही।

अगर लिखने में, विचार प्रकट करने में कहीं कोई ग़लती हुई हो तो क्षमा चाहता हूँ।

आपका

29 जून 2009 जयन्त सावरकर

❑❑❑

19

'विरह का इन्द्रधनुष' में चित्रित जीवन-संघर्ष

डॉ. अंजू थापा

कैलाश चन्द्र एक संवेदनशील रचनाकार हैं जिन्होंने अपने जीवन के अनुभवों को अपनी रचनाओं में समेटने का प्रयास किया है। 'विरह का इन्द्रधनुष' एक औपन्यासिक कृति है जिसके माध्यम से लेखक ने मध्यवर्गीय परिवार के जीवन-संघर्ष को बड़ी गम्भीरता के साथ उठाया है। लेखक की मान्यता है कि 'यह कथा नहीं है अपितु जीवन की यथार्थता का दर्पण है जिसमें मानवीय भावनाओं को उकेरा गया है। [1] यह उपन्यास अपने छोटे से कलेवर में एक बड़े कथाक्रम की अनेक घटनाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति देता है। उपन्यासकार नारी की आंतरिक दशा को व्यक्त करता है तो दूसरी ओर इसमें व्यक्ति का मानसिक एवं सामाजिक द्वन्द है, पर इन सबसे बढ़कर है लेखक का सामाजिक रूढ़ियों एवं बन्दिशों को बड़ी सच्चाई के साथ स्वीकार करना और उनसे जूझने के लिए व्यक्ति का मनोबल जुटाते हुए दिखाई देना।

उपन्यास के केन्द्र में विभिन्न पात्र हैं जो जीवन में संघर्ष करते हुए आगे बढ़ते हैं। वे सभी पात्र जीवन में आशावादी दृष्टिकोण अपनाए हुए हैं न कि निराशा के अन्धकार में जीना उन्हें स्वीकार्य है। मुख्य रूप से कथा विश्वास के इर्द-गिर्द घूमती है लेखक के शब्दों में, 'मेरी इस कृति की नियोजना छह खण्डों में की गई है परन्तु कथा का प्रवाह खण्डों में बंधकर रह पाना संभव नहीं शायद, क्योंकि इनमें केवल शब्द ही नहीं विभिन्न पात्रों की भावनाएँ समाहित हैं। इनका शिल्प श्री नरेश मेहता के उपन्यास 'धूमकेतु: एक श्रुति' से मिलता जुलता है जिसके सम्बन्ध में थोड़ा स्पष्टीकरण आवश्यक है। एक तो यह कि इसमें प्रथम पुरुष शैली प्रयुक्त हुई है। जीवनी का भ्रम हो सकता

* को-ऑर्डीनेटर, पी.जी. (हिन्दी) , पत्राचार विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

है परन्तु यह उपन्यास है। 'मैं' व्यक्ति है लेखक नहीं। भावनाओं की तीव्रता के लिए यह शैली अपनाई गई है। मुझे विश्वास है कि इससे आपको राग-बोध में अपनत्वपन का अनुभव होगा।' [2]

उपन्यास का कलेवर मध्यवर्गीय जीवन है जो आर्थिक विषमता में छटपटाता है और उस जीवन संघर्ष से जूझता हुआ आगे बढ़ने की चाह लिए हुए है जिसमें वह सफल भी रहता है। सभी पात्र मध्यवर्गीय एवं निम्नमध्यवर्गीय हैं और वे व्यक्तिगत जीवन की समस्याएं लेकर प्रस्तुत हुए हैं। उनके सामने आर्थिक कठिनाई बनी रहती है परन्तु जीवन में वे इनसे संघर्ष करते हुए आगे बढ़ते हैं।

वर्तमान युग में अर्थ जीवन का महत्वपूर्ण विधायक तत्व स्वीकार किया गया है। अर्थ ही समाज की शिराओं मे बहने वाला रक्त है जो सम्पूर्ण समाज का जीवन संचालित करता है। इसी आर्थिक विषमता ने संयुक्त परिवारों को भी तोड़ा है। भारतीय समाज-व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण अंग संयुक्त परिवार रहा है। यह संयुक्त परिवार-प्रणाली प्राचीन काल से सामाजिक संगठन का एकमात्र आधार रही है। इससे परिवार में सहयोग सद्भाव, स्नेह एवं समानता की भावना बनी रहती है। सपत्नी-विद्वेष, सास बहू, ननद भौजाई, देवर भौजाई, देवरानी-जेठानी आदि की कलह एवं संघर्ष की कहानी इस देश में नई नहीं है परन्तु आर्थिक ढांचा इतना परम्परापेक्षी था, पारिवारिक एकता के आदर्श एवं संस्कार इतने दृढ़ थे कि कटुता एवं वैमनस्य उसके समक्ष मिथ्या हो जाया करते थे। इस प्रकार संयुक्त परिवार अपने अस्तित्व को अक्षुण्ण बनाये रहा। परन्तु आज के वैज्ञानिक तथा औद्योगिक प्रगति के युग में व्यावहारिक दृष्टि से अनुपयोगी है। उपन्यास में संयुक्त परिवार के विघटन का कारण लेखक ने अर्थ के धरातल पर पारिवारिक स्पर्धा बताया है। पात्र विश्वास के अनुसार- 'गांव में हमारी भी हवेली थी ... पहले हमारा संयुक्त परिवार था चाचा ताउओं के साथ का। परन्तु एक दिन किसी बात पर मेरी चाची ने मेरी माँ को ताना मारा कि ऐसी महारानी है तो अपना मकान क्यों नहीं बनवा लेती। बस चाची की बात माँ के मन में बैठ गई और वे पिताजी के पीछे इस कदर हाथ धोकर पड़ीं कि तुरत फुरत में दो मंजिली हवेली की मालकिन बन गई मेरी माँ।' 3

अपने बचपन में भोगी हुई आर्थिक विषमता को उकरेता हुआ वह

बताता है कि हमारे घर के शादी-ब्याह, जलवा दशोटन आदि सामाजिक पर्वों के अवसर पर ही इस हवेली में इसलिए चला जाया करता कि शादी-ब्याह् या जलवा दशोटन जैसे अवसरों पर बनाये जाने वाले व्यंजनों की खुशबू मस्तिष्क में तैर रही होती थी परन्तु वहां पर मुझे जंगलों-आलों और रोशनदानों पर जाले और फंफूद लगे पूड़ियों के टुकड़ों के अलावा कुछ न मिलता और तब उन्हीं पूड़ियों के टुकड़ों को चबा-चबा कर रस लेता। क्षुधा शान्त होती और भाग कर स्कूल पहुँच जाया करता। स्पष्ट है उसका बचपन इसी तरह के संघर्ष से जूझता हुआ जीवन पथ पर अग्रसर रहता है। विश्वास के पिता उसके जीवन के एकमात्र आधार एवं प्रेरक थे और पिताजी द्वारा कही गई बातें ही उसे आगे बढ़ने की प्रेरणा देतीं। अक्सर पिताजी की बातें उसे स्मरण हो आतीं, 'तुम पढ़ लिख कर कोई नौकरी कर लेना, यह मत सोचना कि मैं काई खास नौकरी मिलने पर ही करूंगा। तुम अच्छी नौकरी मिलने पर पहले वाली को छोड़ देना और इसी तरह जीवन में आगे बढ़ते रहना। ऐसा अक्सर कहा जाता है कि विषम परिस्थितियों एवं जीवन के अवरोधों में मानव की प्रगति रुक जाया करती है और उसके हौंसले ठण्डे पड़ जाते हैं परन्तु उपन्यास में विश्वास के जीवन में सब कुछ इसके विपरीत था। गरीबी विषमताओं एवं जीवन के अवरोधों से उसे आगे बढ़ने का सबल मिला था। विषमताएं उसकी प्रेरणा थीं। उसके अनुसार 'यदि व्यक्ति किसी चक्रव्यूह से निकलना चाहता है तो उसे अपनी इच्छा शक्ति को बल देना होगा। यही वह अमोध अस्त्र है जिससे वह गरीबी एवं विषमताओं के चक्रव्यूह को भी काटकर बाहर आ सकता है।' [4]

मध्यवर्गीय समाज में पिता के कई रूपों का चित्रण मिलता है। ऐसे पिता भी हैं जो इतने कर्तव्यनिष्ठ हैं कि अपनी आवश्यकता की चिन्ता न करते हुए अपनी इच्छाओं और कामनाओं की उपेक्षा करते हुए कठिन से कठिन परिश्रम करके अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलाना चाहते हैं और उनके उज्जवल भविष्य के लिए सब प्रयास करते हैं, जिस तरह विश्वास के पिता आर्थिक विषमता को भोगते हुए बेटे के उज्जवल भविष्य के लिए संघर्ष करते हैं। उसके पिता का आधा वेतन तो अग्रिम लिए गये वेतन, कर्जों आदि में कट जाया करता और शेष राशि से बड़ी मुश्किल से परिवार का गुजर बसर

हो पाता था क्योंकि पिता गांव के एक जमींदार के एक मामूली नौकर थे और गृहस्थी की गाड़ी खींचते-खींचते अंदर ही अंदर टूट से गये थे। इंटर पास करने के बाद उसे प्राईवेट नौकरी करनी पड़ती है। परन्तु न पढ़ने के कारण उसका मन व्यथित हो उठता, 'जहाँ पिताजी को इससे राहत मिली, वहीं मुझे जीवन में आगे बढ़ने की इच्छा अन्दर ही अन्दर पीड़ित करती जिसे मैं अभिव्यक्त न कर पाता परन्तु मन ही मन कुछ निश्चय करके अपनी साधना में लग जाया करता।' [5]

हर वर्ष की तरह विश्वास ने इन्जीनियरिंग की प्रवेश परीक्षा दी थी उसके अनुसार, 'शायद किसी को सपने में भी विश्वास न था कि इन्जीनियरिंग की पढ़ाई कर सकूंगा। उसकी पढ़ाई का खर्च भी तो वहन जो करना था, जो न पिता जी की सीमा में था और न ही प्राइवेट नौकरी से उस लायक धन जुटा पाना मेरे वश में था।'[6] वह जैसे-तैसे करके इन्जीनियरिंग में दाखिला लेता है। इससे पहले कि विश्वास अपना सपना पूरा कर पाता, पिता की मृत्यु उसके सपने पर पानी फे र देती है, अपनी आर्थिक सीमाओं से परे इन्जीनियरिंग कॉलेज में पढ़ाई कर पाना उसके वश की बात नहीं थी उसे पढ़ाई बीच में ही छोड़नी पड़ती है। अपनी व्यथा को व्यक्त करते हुए वह कहता है 'सिर पर बाबा का साया न था, फिर पढ़ाई को जारी रखने में सहायता करने वाला कोई मित्र, हितैषी या रिश्तेदार भी नहीं था मेरा, अत: मैंने यही उचित समझा कि पास ही के शहर में नौकरी करते हुए आगे पढ़ाई की जाये। इन्जीनियरिंग की पढ़ाई बीच में ही छोड़कर मैं वापस अपने गांव की ओर चल दिया।'[7] परन्तु अपने इस जीवन-संघर्ष से विश्वास हार नहीं मानता अपितु अनेक कठिनाईयाँ सह कर कालिज में दाखिला ले लेता है। और सोचा करता 'मैं भी कठिन परिश्रम करूंगा, इन सबसे अच्छे अंक मिलें और मैं भी जीवन में अच्छी नौकरी प्राप्त कर सकूं अपने परिश्रम के बल पर कभी न कभी यह सब प्राप्त करूंगा, अवश्य प्राप्त करूंगा।'[8] उसकी यही आशावादी सोच उसे अपने जीवन में संघर्ष करते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त करने को प्रेरित करती है और वह सफल भी होता है।

इसी तरह से विश्वास के बहन-बहनोई बड़े शहर में जीवन में आर्थिक विषमता से जूझते हुए आगे बढ़ते हैं। विश्वास के शब्दों में, 'बहनोई सरकारी

विभाग में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी थे। दीदी गरीब थी और अपने परिवार का भरण-पोषण करने हेतु पकौड़ियाँ बेचने का काम भी करती थी। दीदी के अपने तीन बच्चे थे जिनकी पढ़ाई का भी खर्चा था और पति की सामान्य सी नौकरी। परन्तु दीदी ने मेरी किसी भी आवश्यकता को अनदेखा न किया था।'[9]

जहाँ उपन्यासकार ने अपने इस उपन्यास में विश्वास और अन्य पात्रों के माध्यम से युवा वर्ग के जीवन संघर्ष का चित्रण किया है वहीं नारी जीवन में व्याप्त संघर्ष का चित्रण बड़ी मार्मिकता से किया है। उपन्यास में एक नारी वह है जो विधवा है और अपने परिवार के भरण-पोषण हेतु जीवन में संघर्ष करती है तो दूसरी ओर वह नारी है जो अपने ही विभाग के अधिकारियों की लोलुपवृत्ति से तंग आकर नौकरी से त्यागपत्र देते हुए अपनी इच्छानुसार जीवन जीते हुए अपना जीवन संगीत को समर्पित कर देती है। परन्तु इसमें उपन्यासकार उस नारी का भी चित्रण करता है जो आर्थिक विषमता से जूझते हुए जीवन भर समझौता किये जीती है।

उपन्यास में चित्रित मध्यवर्गीय विधवा नारी के जीवन से यह स्पष्ट है कि अब केवल वही विधवा नारी स्वयं को असहाय समझती है जो शिक्षित नहीं, जिसमें समाज में खड़े होने के लिए आत्मविश्वास नहीं। परन्तु उपन्यास में योगेश की मृत्यु के उपरान्त उसकी पत्नी को ससुराल में प्रताडित किया गया है, जिसको लेखक ने बड़ी मार्मिकता से उपन्यास में उकेरा है। 'योगेश का निधन होने के लगभग दो माह पश्चात ही उसकी माँ ने अपनी इस विधवा पुत्रवधू को अपशकुनी मानते हुए घर से अलग कर दिया और उस पर तरह-तरह से अत्याचार करने शुरू कर दिये। उसे घर से बाहर निकलने या किसी बाहरी व्यक्ति से बात करने के प्रति प्रतिबन्धित कर दिया गया यहाँ तक कि झरोखे की सभी खिड़कियों को बन्द करके उन पर इसलिए ताले लगा दिये गये ताकि भाभी बाहर के किसी भी व्यक्ति से बात न कर सके।'[10] वह बेचारी अपने दोनों बच्चों का पालन पोषण करने हेतु आस-पास की औरतों के कपड़ों की सिलाई किया करती परन्तु वह भी घर के अन्दर ही, ऐसे में उसके पिता जी पुत्री का हौंसला बढ़ाते। पिता के सहयोग से दसवीं कक्षा का प्राईवेट फार्म भरती है परन्तु इसका पता जब सास को चलता है तो व आसमान सिर पर उठा लेती है और लांछन लगाते हुए कहती है, 'राँड, पहले तो मेरे बेटे को खा

गई और अब चली खसम करने।'[11] परन्तु यह विधवा हार नहीं मानती, पिता की प्रेरणा और अपने बच्चों के भविष्य की चिन्ता करके सब सहती है। दिन में सिलाई करती और रात में पढ़ाई। नीचता की पराकाष्ठा को साकार करते हुए उसके कमरे की बिजली यह कहते हुए कटवा दी 'अब देख रण्डी तुझे कैसे कराती हूँ बी.ए. पास।'[12] परन्तु योगेश की पत्नी अपना विश्वास डगमगाने नहीं देती अपितु 'पेट भरने के लिए सिलाई तथा जीवन में आगे बढ़ने के लिए पढ़ाई करती रही।'[13] विश्वास के शब्दों में 'अब भाभी के हौंसले भी बुलन्द हो चुके थे और उसने जीवन में आगे बढ़ने की ठान ली तथा अपने पिता के सहयोग से आगे चलकर बारहवीं कक्षा का प्राईवेट फार्म भर दिया ... सरकार की एक योजना में उसे स्कूल अध्यापिका की नौकरी मिल गई और वह अपना गाँव छोड़ कर अपने पीहर के पास के एक स्कूल में पढ़ाने लग गई तथा अपने बच्चों को भी काम पर लगा दिया।'[14]

जहाँ तक हो सकता है विधवा नारी अपने पर होने वाले अत्याचार सहन करती है परन्तु जब बात चरित्र पर आती है तो उस पर लगे लांछन उसे गवारा नहीं। तब वह सभी सीमाओं को तोड़ उनका मुँहतोड़ जवाब देती है। इसी विधवा नारी के चरित्र पर जब चरित्रहीन होने का लांछन लगाया जाता है तो वह चुपचाप सहन नहीं करती अपितु विद्रोहणी हो उठती है। उपन्यास का एक वक्तव्य इस प्रकार है? 'जब योगेश की पत्नी का सम्बन्ध उसे अंग्रेजी पढ़ाने वाले मास्टर से जोड़ा जाता है तो चुपचाप सहन नहीं करती है अपितु गुस्से में बेकाबू हो गई और सीधे उस संस्कृत वाले मास्टर की बहू के पास पहुँची। बिना कुछ बोले ही पहले तो उसको तड़ातड़ थप्पड़ जड़ दिये और फिर उसकी चोटी पकड़कर ऐसा घुमाया कि जब तक वह अधमरी न हो गई उसे न छोड़ा। वहाँ से सीधे वह अपने घर पहुँची और एक लट्ठ उठाकर पहले तो सास की धुनई की, फिर जेठ की और उसके बाद सबको ठेलकर कमरे में बन्द कर दिया।'[15]

इसी तरह उपन्यास में एक अन्य विधवा नारी जीवन में संघर्ष करते हुए अपने तथा अपने बच्चों का भरण-पोषण मजदूरी करके करती है, 'विश्वास को भाभी से पता चला कि उसकी छोटी बहन का विवाह हो गया था परन्तु कालान्तर में उसके दो छोटे-छोटे बच्चों को छोड़कर इसका पति आकस्मिक

दुर्घटना में इस संसार से चल बसा था और उसकी बहन सड़क पर मजदूरी करके, पहाड़ी पर पत्थर तोड़ने का कार्य करके अपने बच्चों का भरण-पोषण कर रही है।'[16]

जहाँ उपन्यासकार ने विधवा नारी के जीवन संघर्ष का चित्रण किया है वहीं दूसरी ओर ऐसी नारी का चित्रण भी किया है जो निर्धन परिवार से है और जो विक्षिप्त पति के साथ रहने के लिए विवश है। इसी विवशता के कारण जीवन जीने के लिए वह पारिवारिक सदस्यों द्वारा शोषित होती है। 'मंजू मौसी भी तो गरीब घर की ही थी जिससे जीवन भर अनैतिक सम्बन्ध बनाये रखने के उद्देश्य से उसके बहनोई ने उसका विवाह धनाढ्य परिवार के एक अर्धविक्षिप्त युवक से करवा दिया था। ससुराल में भी उसके देवर उससे अनैतिक समबन्ध बनाये रखना चाहते थे क्योंकि वह एक गरीब बाप की बेटी एवं पागल की पत्नी थी। अपने पति एवं पुत्र को लेकर अपने संयुक्त परिवार से अलग भी हो गई थी परन्तु कुछ समय पश्चात पता नहीं क्या हुआ और वह अपने पति एवं बेटे को साथ लेकर अपने विधुर नन्दोई के साथ जाकर रहने लगी। यहाँ उसके देवरों का स्थान उसके नन्दोई ने ले लिया था।'[17] अब प्रश्न यह उठता है कि 'यह फँसना था या उसकी विवशता? विवशता किसी भी प्रकार की हो सकती है मनुष्य के सामने और विवश हो जाना व्यक्ति विशेष की परिस्थिति पर निर्भर करता है।'[18] स्पष्ट है कि यह उसकी आर्थिक विषमता थी एवं विक्षिप्त पति का साथ जो उसे ऐसा करने पर विवश करता है।

उपन्यास में रोनू नामक नारी अपने जीवन से व्यथित है। वह खुफिया पुलिस की एक अधिकारी है परन्तु अपने ही विभाग की गतिविधियों से त्रस्त है। वह बताती है कि उसके विभाग के बड़े-बड़े अधिकारी प्रत्यक्ष में तो अपने आपको अपराधियों को पकड़ने में संलग्न दर्शाते हैं परन्तु वास्तव में वे स्वयं एक ऐसे छद्मवेशी भेड़िये हैं जो स्वयं अपराधों में लिप्त हैं और बेबस महिलाओं तक को नोच-नोच कर अपने घिनौने कार्यों में वे आनन्द की अनुभूति करते हैं। रोनू अपनी पीड़ा को व्यक्त करते हुए विश्वास से कहती है, 'सर मेरे ही विभाग में मुझ पर अत्याचार किये गये। मेरे उच्चाधिकारियों द्वारा मुझे बदनीयती से देखा गया परन्तु मैंने साहस के साथ उन दरिन्दों का मुकाबला किया जिससे

क्रुद्ध होकर उन्होंने मुझ पर मनगढ़ंत आरोप लगाये और असमय ही जगह-जगह मेरे तबादले होते रहे। एक-दो बार तो मुझे नौकरी से निलम्बित भी किया गया।'[19] परन्तु यही रोनू परिस्थितियों के आगे झुकती नहीं निरन्तर संघर्ष करती है। अत्याचारियों से घिरी यह युवती कला एवं संस्कृति के प्रति अभिरुचि रखती है और नौकरी से इस्तीफा देकर 'सरस्वती शिक्षण संस्थान' को सम्भालने हेतु अपना जीवन अर्पित करती है जिसकी पुष्टि विश्वास इस प्रकार करता है 'अपनी नौकरी से इस्तीफा देकर चली गई बालेश्वर की पहाडियों के मध्य स्थित मेरे 'सरस्वती शिक्षण संस्थान' को संभालने।'[20]

स्पष्ट है कि उपन्यास में विभिन्न पात्रों के माध्यम से लेखक ने उनके जीवन संघर्ष का चित्रण बड़ी सजीवता से किया है। उपन्यास में जहाँ गंभीर वैचारिक भाव हैं, जहां पलायन है वहीं विपरीत परिस्थितियों में गहरे आत्मविश्वास का एक भाव भी है। उपन्यास अपने कलेवर में एक संदेश को समेटे हुए है, 'बढ़ना ही जीवन है और मनुष्य को जीवन के अन्तिम क्षणों तक आगे बढ़ने हेतु प्रयासरत रहना चाहिए।'[20]

सन्दर्भ :

1) विरह का इन्द्रधनुष(उपन्यास): डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 5, प्रकाशक, देवनागर प्रकाशन, जयपुर।

2) वही, पृष्ठ 5 3) वही, पृष्ठ 22 4) वही, पृष्ठ 61
5) वही, पृष्ठ 59 6) वही, पृष्ठ 59 7) वही, पृष्ठ 66
8) वही, पृष्ठ 69 9) वही, पृष्ठ 70 10) वही, पृष्ठ 41
11) वही, पृष्ठ 41 12) वही, पृष्ठ 43 13) वही, पृष्ठ 43
14) वही, पृष्ठ 43 15) वही, पृष्ठ 43 16) वही, पृष्ठ 55
17) वही, पृष्ठ 32 18) वही, पृष्ठ 109 19) वही, पृष्ठ 112
20) वही, पृष्ठ 166

❑❑❑

20

हिंदी उपन्यास में सामाजिक जीवन का तानाबाना और 'विरह का इन्द्रधनुष'

डॉ. राजेन्द्र कुमार सेन

हिंदी उपन्यास का आरंभ सामाजिक जीवन के चित्रण की प्रवृति के साथ हुआ। परीक्षा गुरु और भाग्यवती उपन्यास सामाजिक आदर्शों को स्थापित करने का कार्य करते हैं। पूर्व प्रेमचंद हिंदी उपन्यास भावमूलक सामाजिकता के इर्द गिर्द घूमता रहा। तिलिस्मी और जासूसी उपन्यासों की शृँखला ने सामाजिकता को यथार्थ की अनुभूति से कोसों दूर कर दिया। प्रेमचंद के प्रादुर्भाव के साथ ही हिंदी उपन्यास में सामाजिकता अपने नए रूपों में सामने आने लगी। प्रेमचंद का कथा साहित्य आदर्शवाद से यथार्थवाद का सफर करते हुए समाज के अलग अलग रूपों को सामने रखता है। प्रेमचंदोत्तर साहित्य में सामाजिकता अनेक परिप्रेक्षयों में विभाजित होकर सामने आने लगी। ग्राम्यता, आंचलिकता, प्रतीकात्मकता, मनोविश्लेषणवाद एवं यथार्थवाद आदि रूपों में सामाजिक तानाबाना सामने आने लगा। समकालीन कथा लेखकों में कैलाशचन्द्र शर्मा का उपन्यास लेखन सामाजिकता को नवीन प्रकार के दृष्टिकोण से देखता, परखता, समझता और प्रस्तुत करता है।

कैलाशचन्द्र शर्मा का उपन्यास 'विरह का इन्द्रधनुष' व्यक्तिपरक सामाजिकता का दस्तावेज है। इस उपन्यास में लेखक ने व्यक्ति को केन्द्र में रखकर सामाजिक जीवन को चित्रित करने का प्रयास किया है। उपन्यास अनेक प्रकार की शैलियों और शिल्पों का समावेश लिए हुए है। अनेक प्रकार की विधाओं का समावेश इस उपन्यास की एक अन्यत्र विशेषता है। कहीं आत्मकथा, कहीं जीवनी, कहीं संस्मरण तो कहीं उपन्यास आदि का विलक्षण

* सहायक प्रोफ़ेसर, तुलनात्मक साहित्य केन्द्र, पंजाब केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बठिण्डा

प्रयोग रचनाकार की विशेषता स्वीकार की जा सकती है।

विवेच्य रचना की विशेषताओं पर प्रकार डालने के क्रम में सर्वप्रथम इसकी विधागत स्थिति को स्पष्ट करना परमावश्यक लगता है। रचना के शीर्षक के साथ रचनाकार ने सामाजिक उपन्यास लिखा है। यह इस ओर संकेत करता है कि रचना को पढ़ने के उपरांत इसकी विधात्मकता प्रश्न के घेरे में आ जाती है। आरंभ से अंत तक इसमें औपन्यासिकता की अपेक्षा जीवनी तत्त्वों का अधिक समावेश दिखायी देता है। इसमें 'मैं' शैली का प्रयोग किया गया है इसलिए इसके आत्मकथा होने का भ्रम भी लगातार बना रहता है। परंतु लेखक ने इस संदर्भ में इस भ्रांति का उन्मूलन प्राक्कथन में किया है-''...इसमें प्रथम-पुरुष शैली प्रयुक्त हुई है। जीवनी का भ्रम हो सकता है परंतु यह उपन्यास है।'मैं' व्यक्ति है लेखक नहीं। भावनाओं की तीव्रता के लिए यह शैली अपनायी गयी है।'' [1] अत: स्पष्टत: कहा जा सकता है कि विवेच्य रचना परंपरागत औपन्यासिक तत्त्वों के अतिक्रमण के साथ-साथ नवीन ततत्त्वों को आत्मसात करती है। अत: यह केवल उपन्यास न होकर जीवनीपरक उपन्यास कहा जा सकता है।

रचनाकार ने रचना के आरंभ में ही अपने कथाकेन्द्र का उल्लेख कर दिया है। कथा का केन्द्रीय स्थल बालेश्वर ग्राम है। ''नदी के किनारे स्थित बालेश्वर एक छोटा सा गाँव है जहां पर खजूरों का घना जंगल है। इस जंगल की शोभा यत्र-तत्र बिखरे जामुन, आम और विशाल बरगद के वृक्षों से और भी बढ़ जाती है। जहां गर्मी के दिनों में सूर्य की आग से जनजीवन व्यथित हो उठता है वहीं बालेश्वर का क्षेत्र दिन में भी ठण्डा रहता है और रात्रि को तो यहां इतनी ठण्ड पड़ती है कि ठिठुरन के मारे रजाई या कंबल का सहारा लेना पड़ता है।'' [2] लेखक ने गांव के भूगोल को स्पष्ट करते हुए यहां के प्राकृतिक सौन्दर्य को कलमबद्ध किया है। यहां के मौसम का सुहावनापन, यहां के प्राकृतिक उपादान जो मन को बरबस ही अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं को रचनाकार ने विस्तृत रूप से चित्रित किया है-''बारिश के दिनों में तो मौसम इतना सुहावना हो जाता है कि नाचते हुए मोर के पंखों के साथ-साथ मन भी हिलोरें खाने लगता है। बहती हुई नदी का कल-कल करता नाद वीणा के तारों के आन्दोलन का आभास कराता है। यत्र तत्र भागते हुए हिरण और

खरगोश के पीछे-पीछे मन भी फिसलने लगता है परंतु तब तक वे कुलांचे भरते हुए खजूरों के झुण्ड में न जाने कहां आंखों से ओझल हो गये और जैसे ही उनके विलुप्त होने का भान हुआ तो दूसरी ओर नेवला साँप को मुँह में पकड़े हुए चला जा है। यह बारह फीट लम्बा साँप नेवले के शरीर से लिपटा घिसटता हुआ चला जा रहा है। जिसकी स्मृति मात्र से आज भी मन रोमांचित हो उठता है।'' [3] लेखक ने प्राकृतिक वातावरण को आत्मीयता के रंग में रंगकर प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि लेखक को यहां का वातावरण आंदोलित व उद्वेलित करता है। उसे अपने अंचल की मिट्टी की खुशबू अनुपम दिखायी पड़ती है। लेखक ने विवेच्य कृति में आंचलिक मापदण्डों का प्रयोग किया है, इसलिए 'मैं' शैली होने के बावजूद विवेच्य उपन्यास के आंचलिक उपन्यास होने का भ्रम भी होता है। ''बालेश्वर की सुरम्य पहाड़ियां दूर से ही किसी के भी मन को आकर्षित कर लेती हैं। ऊंची-ऊंची पहाड़ियों पर बन लोक देवताओं के छोटे-छोटे मंदिर देखकर मन दृष्टि के रथ पर सवार हो उधर ही प्रवाहित होने लगता है, परंतु वहां पहुंचना आसान नहीं है। इन मंदिरों पर लगभग 151 सीढ़ियां चढ़कर पहुंचा जा सकता है जिनमें भोम्याजी, तेजाजी, बालाजी आदि के मंदिर प्रमुख हैं जहां पर सप्ताह में एक बार या किन्हीं विषेश अवसरों पर लोगबाग पूजा-अर्चना आदि के लिए जाते हैं और अपनी मनोकामना पूरी होने पर सवामणि भी चढ़ाते हैं। यहां के निवासियों का सीधा सादा जीवन है। आज की भौतिक सुविधाओं की चकाचौंध, भागमभागी और आपाधापी के जीवन से परे यहां के निवासी अपनी संतोषी प्रवृति के साथ-साथ पूर्ण रूप से सुखी जीवन व्यतीत करते हैं।'' [4]

जाति-व्यवस्था भारतीय ग्रामीण जीवन का आधार है। इस संबंध में डा. विमल शंकर नागर ने विस्तार से स्पष्ट किया है कि-''भारतीय ग्रामीण समाज का आधार जाति-व्यवस्था है। 'जाति' से अभिप्राय (अ) भारतवर्ष में सुलभ एक ऐसे सामाजिक संगठन से है जो विवाह एवं व्यवसाय के प्रतिबंधों, जन्मानुसार सुदृढ़ स्तरों एवं ब्राह्मणों की सर्वोच्चता में धार्मिक विश्वासों पर आधारित है (ब) भारतीय सामाजिक व्यवस्था के वंश परंपरागत समूहों में से एक है (स) वंश परंपरागत एवं निषेधात्मक वर्ग है (सामान्यत: अनुचित विशेषाधिकार अथवा भ्रष्ट करने वाले अर्थ के साथ समाविष्ट)। भारतीय समाज

में जाति, व्यक्ति के कार्य, जीवन स्तर एवं उसके लिए सुलभ अवसरों को सुनिश्चित करती है। जातिगत वैभिन्य पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन की पद्धतियों, सांस्कृतिक स्वरूपों एवं गृहों की बनावट तक को निर्धारित करता है। भूमि का स्वामित्व भी प्राय: जाति प्रथा के आधार पर ही प्रतीत होता है। इसने ग्रामीण जगत के अनेकों सामाजिक समूहों की मन:स्थिति को निर्धारित कर दिया है और सामाजिक संबंधों की ऊँचाई-नीचाई सामीप्य अथवा दूरी के क्रमानुसार स्तर निर्धारित कर दिए हैं।'' [5] विवेच्य कृति में लेखक ने ग्रामीण परिवेश की कुछ जातियों का उल्लेख किया है। लेखक का यह उल्लेख भारतीय समाज की जाति आधारित संरचना पर प्रकाश डालता है। 'अरे भाई कुम्हार है तो गधे ही हाँकता होगा। मैं इतराने लगता मानो गाँव की जातियों के बारे में भी मुझे जानकारी है। ... अबे गधे, परभात कुम्हार गधे नहीं हाँकता। गधे तो हम ब्राह्मण हाँकेंगे आगे चलकर।'' [6] इसके अतिरिक्त लेखक ने नाई, अहीर, मणियार, राजपूत, रैगर, बढ़ई आदि अन्य जातियों का उल्लेख किया है। जाति के आधार पर किए जाने वाले निर्णय को भी प्रकट किया है। एक ही अपराध के लिए ब्राह्मण युवक को कोई सज़ा अथवा जुर्माना नहीं लगाना तथा उसी अपराध के लिए निम्न जाति के युवक को जुर्माना लगाया जाता है। ''सभी के सभी को अपराध के लिए स्कूल में पेश किया गया। स्कूल प्रशासन ने इस अपराध हेतु सूरज खाती पर स्कूल के दफ्तर के किवाड़ों की चेहरी (किवाड़ों की चूलें) उतारकर चोरी में सहयोग देने के अपराध में पाँच रू जुर्माना किया गया जबकि इस दल के नेता योगेश को साफ बरी कर दिया गया। ज़माने की इन व्यावहारिक व्यवस्थाओं को मैं तय नहीं समझ पाया था और इनसे आज भी संगत बैठाल पाने में अपने आपको असमर्थ ही पाता हूँ।[7]

ग्रामीण जीवन में अनेक प्रकार के प्रेम प्रसंग होते हैं। कहानी का नायक अपने जीवन की इन्हीं स्मृतियों को याद करता है।''होली के दिनों में हम चौहट्टा बाज़ार में लुका छिपी का खेल खेला करते जिसे 'टीला' कहा जाता था। पास ही में लड़कियां भी 'टीला' खेला करती। उन लड़कियों में आशाराम नाई की भी लड़की थी जिसका नाम नैना था। वह बेहद खूबसूरत थी। हमारे दल में एक तेज तर्रार लड़का भी थ जिसका नाम दुर्गा था। उसने अपने कुछ साथियों से कहा था कि जैसे-कैसे भी मुझे नैना को पटाना है।... उस समय

मैं नहीं जानता था कि किसी लड़की को पटाने का मतलब क्या होता है।'' [8] भारतीय समाज में विधवा की स्थिति बड़ी ही संकटपूर्ण रहती है। ग्रामीण जीवन में विधवा को अभिशप्त जीवन जीने के लिए बाध्य होना पड़ता है। विधवा पुनर्विवाह की अनुमति नहीं होने के कारण समाज में विधवाओं को उपेक्षित एवं तिरस्कृत जीवन जीने के लिए बाध्य होना पड़ता है। दैहिक एवं भौतिक दोनों ही प्रकार के कल्याण के लिए वह पुरुष पर निर्भर रहती है। ''भारतीय समाज की यह विडम्बना है कि पुरुष चाहे कितने ही विवाह कर सकता है किन्तु स्त्री के लिए दूसरा विवाह अनैतिक माना गया है। विधवाओं की दु:खी स्थिति का मुख्य कारण यही है कि यदि वे पुनर्विवाह कर भी लेती थीं तो समाज उसे बहिष्कृत कर देता था।''[9] विवेच्य कृति में लेखक ने विधवा स्त्री की विवशतापूर्ण स्थिति का यथार्थ चित्रण किया है।

उपन्यास में सुप्यार नामक विधवा स्त्री के भग्गू से संबंध को लेकर कहानी का नायक परेशान हो जाता है। अपने परम मित्र योगेश की पत्नी के संबंध में भी वह यही सोचने लगता है-''मेरे बालसखा योगेश की पत्नी भी तो सुप्यार की ही तरह विधवा हो गई थी। हो सकता है वह भी उसकी ही तरह किसी भग्गू के चंगुल में फँस गई हो। परंतु क्या यह फँसना था या उसकी विवशता? विवशता किसी भी प्रकार की हो सकती है मनुष्य के सामने, और विवश हो जाना व्यक्ति विषेश की परिस्थिति पर निर्भर करता है।'' [10]

मनुष्य के विकास के लिए शिक्षा सर्वाधिक सक्षम साधन है। शिक्षा द्वारा ही मनुष्य की चेतना का विकास होता है जिसके द्वारा वह अपने अर्जित ज्ञान को मानव कल्याण में प्रयोग कर सकता है। ''शिक्षा सामाजिक सेवाओं के विविध रूपों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। यह नागरिक की जनता के कार्यों में बुद्धिपूर्वक भाग लेने की क्षमता को बढ़ाती है। शिक्षा व्यक्तित्व के विकास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है, यह समाज के लिए उपयोगी अभ्यासनित योग्यताओं, मनोवृत्तियों, आदतों को उत्साहित एवं समृद्ध करने का एक यन्त्र है। शिक्षा के उच्च स्तर से समाज की इतर सेवाएं भी उच्च होती हैं।'' [11]

ग्रामीण जीवन में शिक्षा की स्थिति शहरी जीवन की अपेक्षा अधिक चुनौतिपूर्ण रही है। इस संबंध में डा. भोलानाथ का कथन है-''देहात के निवासी को विशेष पढ़ने-लिखने की आवश्यकता का अनुभव ही नहीं हो पाता था।

पढ़ाई नौकरी के लिए थी और देहात के आदमी को करवानी थी खेती। अधिकांशत: तो लोगों ने अक्षर ज्ञान भी नहीं प्राप्त किया। सदा अंगूठा लगाने को तैयार रहते थे। किसी-किसी गाँव में प्राइमरी स्कूल अवश्य थे जिनमें दो-तीन मील दूर से लड़के पढ़ने के लिए आया करते थे।'' [12]

विवेच्य कृति में लेखक ने शिक्षा की इसी कल्याणपरक भूमिका को रेखांकित किया है। ग्राम में शिक्षा की उचित व्यवस्था नहीं होने के बावजूद उपन्यास का नायक स्वयं शिक्षा के बल पर ही समाज में सम्मानजनक पद पर आसीन होता है। नायक के अतिरिक्त उसके कुछ मित्र जो शिक्षा से वंचित रहे तथा जो शिक्षित हुए उनके जीवन में अंतर दिखाया गया है। लेखक ने उपन्यास में नायक के मित्र योगेश की पत्नी को शिक्षा प्राप्ति के लिए संघर्षरत दिखाया है। वह सिलाई करके अपने परिवार का भरण पोषण भी करती है तथा साथ-साथ पढ़ाई भी करती है। जब एक शिक्षक उससे यह प्रश्न पूछता है कि वह सिलाई करती है या पढ़ाई ? तो उसके प्रत्युत्तर में वह कहती है-''भाईसाहब, पेट भरने के लिए सिलाई तथा जीवन में आगे बढ़ने के लिए पढ़ाई करती हूँ।'' [13]

लेखक ने तत्कालीन समाज की एक भयंकर समस्या नशे की समस्या का जीवन पर दुष्प्रभाव दिखाया है। समाज का युवावर्ग नशों के गहरे कूप में गिरकर अपना और अपने परिवार का जीवन बर्बाद करता है। विवेच्य कृति में योगेश नामक मेधावी युवक नशे की बुरी आदत का शिकार हो जाता है। ''मेरा सबसे घनिष्ठ मित्र योगेश अब इस दुनिया में न रहा था। ... उसे नशे के इन्जेक्शन लेने की आदत पड़ गई थी और नित्य शराब पीना उसके लिए अनिवार्य सा हो गया था। एक कुलीन घर की कन्या से उसका विवाह भी हुआ जिससे उसके दो बेटे हुए परंतु लगभग आठ वर्ष का ग्रहस्थ सुख भोगकर वह इस संसार से हमेशा हमेशा के लिए विदा ले गया।'' [24]

आज के समाज का एक कड़वा सत्य यह है कि बड़े बड़े शहरों में डाक्टर मरीजों का बिना वजह ऑपरेशन करके उनके गुर्दे निकालकर बेच देते हैं। मानवीय अंगों के क्रय-विक्रय के इस व्यवसाय के यथार्थ को लेखक ने अपने विवेच्य उपन्यास में चित्रित किया है-''बेटा आज खूब फँसा। अब तेरे यहां पर सुन्न का इन्जेक्शन लगाया जायेगा और फिर बलात तेरा मुँह बाँधकर

उस पर्दे के पीछे रखी टेबिल पर लिटाया जायेगा। फिर होगी तेरी चीरफाड़। पता नहीं क्या क्या निकाला जायेगा- गुर्दा? आजकल यही तो हो रहा है बड़े बड़े शहरों में। किसी अस्पताल में इलाज़ के लिये भर्ती हो जाओ, बस गया गुर्दा आपका। और मुझ जैसे आदमी को तो यह भी नहीं पता कि गुर्दा होता किधर है। और मैं डर के मारे अपने पेट पर हाथ फेरने लगा।'' [15]

भूमण्डलीकरण के परिणामस्वरूप सामाजिक जीवन में परिवर्तन आया है। भौतिक विकास का प्रभाव सामाजिक जीवन पर दिखायी देता है। विवेच्य रचना में रचनाकार ने दूरस्थ अंचलों पर भूमण्डलीकरण के प्रभाव को परिलक्षित किया है-''बस स्टैण्ड बदल सा गया था। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मैं किसी और गाँव में आ गया हूं।... हुकमचंद खटीक की साईकिलों की दूकान की जगह एक आलीशान शोरूम खुल गया है और उसके आगे जीपों का इतना जमावड़ा है कि पँचायत घर पूरी तरह से ढंक सा गया है। ... मैं हुकम चन्द खटीक की दूकान से आगे निकल गया। दोनों ओर अत्याधुनिक दूकानों की मानों प्रतिस्पर्धा हो रही हो। कहीं मणियारी सामान की दूकान पर औरतों की भीड़ भाड़, कहीं दर्जी की दूकान पर ढ़ाणी की औरते ब्लाउज का कपड़ा सीने को दे रही हैं तो बायीं ओर कृषकों की सहकारी समिति के कार्यालय के बाहर किसानों का जमावड़ा है।'' [16]

विवेच्य रचना मे अनेक ऐसे प्रसंग हैं जो कथात्मकता में बाधा उत्पन्न करते हैं। सरला का प्रसंग रचना में कहीं स्टीक नहीं बैठता। स्वयं लेखक सरला के विषय में स्पष्ट नहीं हो पाते इसलिए अपने नायक को अत्यधिक आदर्शवादी दिखाने का प्रयास किया है। इसी प्रकार योगेश की पत्नी अंजू का प्रसंग भी रचना के कथाप्रवाह में उचित प्रतीत नहीं होता। योगेश की पत्नी अंजू का संघर्षमय जीवन एक बार तो उसके उपन्यास की नायिका होने का भ्रम उत्पन्न करता है। परंतु उस चरित्र का अचानक पतन दिखाकर लेखक ने कथात्मकता को बाधित कर दिया। इसके साथ ही रोनू, सानिया और भारती के संदर्भ में भी ऐसे ही प्रसंग आदर्शवादी विचारधारा को थोपने के लिए जोड़ दिए हैं जो कहीं भी स्टीक नहीं बैठते।

विवेच्य उपन्यास पर समग्र रूप से दृष्टिपात करने के उपरांत कहा जा सकता है कि रचना अपने कलेवर में सामाजिक जीवन से संबंधित अनेक

तथ्यों को यथार्थ रूप में चित्रित करती है। तत्कालीन परिवेश की अनेक समस्याओं को लेखक ने चित्रित किया है। पारिवारिक जीवन से लेकर सामाजिक जीवन तक का तानाबाना इस उपन्यास में देखने को मिलता है। अनेक प्रकार की विधाओं का संक्रमण इस रचना की सीमा न होकर एक अन्यत्र विशेषता है। शिल्प की दृष्टि से कुछ सीमाओं के बावजूद कथ्य के साथ पूर्णत: न्याय करने के लिए लेखक ने प्रयास किया है। अत: सीमाओं के बावजूद विवेच्य रचना सामाजिक जीवन के यथार्थ को प्रकट करने में सक्षम है।

सन्दर्भ :

1) विरह का इन्द्रधनुष(उपन्यास): डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, (दो शब्द), प्रकाशक, देवनागर प्रकाशन, जयपुर।
2) वही, पृष्ठ 60 3) वही, पृष्ठ 8 4) वही, पृष्ठ 8
5) हिन्दी के आँचलिक उपन्यास, सामाजिक सांस्कृतिक सन्दर्भ : डॉ. विमल शंकर नागर।
6) विरह का इन्द्रधनुष(उपन्यास): डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 17, प्रकाशक, देवनागर प्रकाशन, जयपुर।
7) वही, पृष्ठ 41 6) वही, पृष्ठ 31
9) रामदरश मिश्र के कथा साहित्य में ग्राम्य जीवन, पृष्ठ 76 : डॉ. वी.पी. चौहान।
10) विरह का इन्द्रधनुष(उपन्यास): डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 32, प्रकाशक, देवनागर प्रकाशन, जयपुर।
11) Nanavati M.B. and Anjaria J.J., 'The Indian Rural Problem', Page 125
12) हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिकम पृष्ठभूमि, पृष्ठ 261 : डॉ. भोलानाथ।
13) विरह का इन्द्रधनुष(उपन्यास): डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 43, प्रकाशक, देवनागर प्रकाशन, जयपुर।
14) वही, पृष्ठ 28 15) वही, पृष्ठ 101 16) वही, पृष्ठ 34-35

❑❑❑

21

'विरह का इन्द्रधनुष' में प्रेम और सौन्दर्य

डॉ. संजीव कुमार

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा द्वारा रचित 'विरह का इन्द्रधनुष' विरह-जनित वेदनाओं का बहुरंगी प्रकाशन है और यही इस औपन्यासिक कृति के शीर्षक का आधार है। उपन्यास जहाँ एक ओर विरह की मार्मिक अभिव्यक्ति करता है, वहीं दूसरी ओर अनेक समसामयिक सामाजिक विकृतियों से टकराने की अदम्य शक्ति भी रखता है। लेखक का स्वयं मानना है, 'यह कथा नहीं है अपितु जीवन की यथार्थता का दर्पण है जिसमें मानवीय भावनाओं को उकेरा गया है।' [1] डॉ. ऋता शुक्ल के अनुसार, 'यह एक औपन्यासिक कृति है, जिसके माध्यम से उन्होंने मध्यमवर्गीय परिवार के जीवन-संघर्ष को बड़ी गम्भीरता के साथ उठाया है।' [2] लेखक स्वीकार करता है कि विरह मनुष्य को लाचार और पंगु नहीं बनाता अपितु उसमें ऊर्जा और ऊष्मा का संचार करता है, 'इस विछोह की स्मृतियाँ मनुष्य को नवसंचार प्रदान करती हैं और शायद इसीलिए मनुष्य इन्हें अपने अतीत की धरोहर मानते हुए उन्हें सुरक्षित रखना चाहता है।' [3]

डॉ. कैलाशचन्द शर्मा ने नारी सौन्दर्य के सात्विक और मांसल दोनों रूपों को व्यक्त किया है। जहाँ नायक निर्मल सरला, संध्या, सावो, नैना आदि के शारीरिक सौन्दर्य से प्रभावित था वहीं वह सरला को अपनी जीवनी शक्ति भी मानता था, 'जीवन की राहों पर चलते-चलते एक लड़की मिली, जिसका नाम था सरला, उसने मेरी प्रेरणा बनकर मुझे जीवन में सफलताओं के उस सर्वोच्च शिखर पर स्थापना दी जिसके बारे में मैं शायद सोच भी नहीं सकता था।' [4] सौन्दर्य भेदभाव, सम्प्रदाय, धर्म आदि की संकीर्णताओं में आबद्ध नहीं होता। मुस्लिम महिलाओं के एक झुण्ड को देखकर उपन्यास का नायक उनके सौन्दर्य से बरबस सम्मोहित हो

* प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

जाता है, 'उस झुण्ड में मुझे एक अद्वितीय सुन्दर बाला दिखलायी दी। सफेद झक चेहरा जो मन को बरबस ही अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। काले रेशमी बाल सूर्य की किरणों में चमककर आँखों को चुंधिया रहे थे।' [5] मांसल सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में उपन्यासकार ने पूर्ण संयम का परिचय दिया है – 'मेरे साथ एक लड़की पढ़ती थी, गोरी चिट्टी मासूम सी और सुन्दरता की अनुपम छवि' [6], 'मानो स्वर्ग की कोई अप्सरा उस पठार पर उतर आयी हो।' [7]

नारी सौन्दर्य और प्रेम में आकण्ठ निमग्न लेखक का मन उस समय विद्रोह और विरोध से भर जाता है जहाँ वह नारियों के ऊपर हो रहे अमानुषिक अत्याचारों को प्रत्यक्ष देखता है। नायक जब समाज में देखता है कि कहीं अपने जीवन संघर्षों से पार पाने के लिये कटिबद्ध महिला पर अवैध सम्बन्धों का आरोप लगाया जाता है, कहीं किसी विधवा को प्रताड़ित करके घर से निकाल दिया जाता है, कहीं किसी नारी पर पुरुष अपने पौरुष का प्रदर्शन मात्र करने के लिए अत्याचार करता है, कहीं किसी सुन्दर लेकिन गरीब स्त्री की किसी बड़ी उमर के कुरूप व्यक्ति से शादी करवा दी जाती है, कहीं किसी आश्रय प्राप्त महिला का आश्रयदाता द्वारा यौन शोषण किया जाता है, कहीं समाज की दरिन्दगी का शिकार कोई नारी कठोर श्रम करके अपना और अपने नवजात शिशु का भरण-पोषण करती है, तो उसका सौन्दर्य प्रेमी मन आक्रोश से मर जाता है। विधवा की दयनीय स्थिति से आहत नायक कहता है, 'हमारे समाज में विधवा औरत की स्थिति बड़ी ही कष्टप्रद हुआ करती है।' [8]नारी भी नारी की दयनीय स्थिति के लिए बराबर की अधिकारिणी है। सास अपनी विधवा बहु पर लांछन लगाते हुए कहती है, 'राँड, पहले तो मेरे बेटे को खा गई और अब चली खसम करने।' [9]

उपन्यासकार ने विभिन्न नारी और पुरुष पात्रों के माध्यम से प्रेम के स्वाभाविक रूप का चित्रण किया है। इसी प्रेमानुभूति में अन्तरवर्ती धारा की तरह प्रवाहित कामानुभूति का लेखक ने सूक्ष्म चित्रण किया है। अनेक स्थलों पर लड़कियाँ नायक की ओर आकर्षित होती हैं और अपनी कामानुभूति को भी प्रकट करती हैं। अन्यत्र अनेक स्थलों पर नायक अनेक लड़कियों के प्रति प्रेमानुभूति से ओतप्रोत है और इस प्रेमानुभूति के मूल में है सहज कामानुभूति। जब नायक निर्मल योगेश के साथ उसके घर जाता है तो वहाँ उसकी बहन संध्या भी है। स्थिति इस प्रकार बनती है कि निर्मल और संध्या कमरे में अकेले हैं, 'मैं जब पलंग के एक तरफ से उसे दूसरी तरफनिवार पकड़ाता तो वह एक क्षण के

लिए जानबूझकर साशय मेरे हाथ को पकड़ लेती थी।' [10] नायक निर्मल सरला के अन्दर छिपी कामानुभूति मिश्रित प्रेमानुभूति को व्यक्त करता हुआ कहता है, 'तब मैं उसे गोद में उठाकर उसके कमरे की ओर चल दिया था। उस समय उसने साशय अपने वक्षों के दवाब को मेरी छाती में सम्प्रेषित कर अपने मन की भावनाओं को अनुभव कराने का प्रयास किया था।' [11] कुछ स्थलों पर यह प्रेमानुभूति पूरी तरह कामानुभूति में परिवर्तित होकर सामाजिक सम्बन्धों पर भी प्रश्न चिह्न बनकर खड़ी हो जाती है। नायक निर्मल अपने पुराने मित्र जिसकी मृत्यु हो चुकी है कि पत्नी से मिलता है तो उसका मन सामाजिक मर्यादाओं का अतिक्रमण करने के लिये आतुर हो जाता है, 'एक बारगी तो मेरे मन में भी यह भाव प्रकट हुआ कि मैं भी इन सम्बन्धों को मूर्त रूप प्रदान कर भाभी के अन्तर्मन से निकली पीड़ा को सहला दूँ।' [12] उपन्यास के अनेक युवा पात्र प्रेमानुभूति, सौन्दर्यानुभूति और कामानुभूति की त्रिवेणी में फँसे दिखलायी पड़ते हैं।

उपन्यासकार का प्रखर सौन्दर्य-बोध गाँव के विवाहोत्सवों, तीज-त्यौंहारों, मेलों, खेलों तथा अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रमों में खूब रमा है। अनेक स्थलों पर नायक को सांस्कृतिक कार्यक्रम, सत्संग आदि, धार्मिक और साम्प्रदायिक वैमनस्य पर कुठाराघात करते हुए दिखलायी पड़ते हैं, 'इस अँचल के मंदिरों में आज भी प्रत्येक शनिवार और मंगलवार को सत्संग होते हैं जिनमें गाँव के प्रत्येक वर्ग एवं समुदाय के व्यक्ति सहभागिता करते हैं।' [13] अन्य स्थल पर एक मुसलमान शिक्षक जीवन-संघर्षों से लोहा लेती संत्रस्त और संतप्त हिन्दू महिला को अंग्रेजी भाषा का ज्ञान प्रदान करने का स्वत: निमन्त्रण देता है, जिससे वह महिला अपने दु:खों से पार पा सके, 'बहन, आज से मुझे अपना भाई समझो और यदि अंग्रेजी में मुझसे कुछ पूछना हो तो मैं पास में ही रहता हूँ मुझसे घर आकर पूछ लिया करो।' [14]

चारों ओर हो रहे भौतिक विकास से गाँवों की स्वच्छ और मुक्त संस्कृति लुप्त होती जा रही है। वैश्वीकरण की इस होड़ में अगर किसी चीज को सबसे अधिक हानि हुई है तो वह हैं हमारे गाँव। उपन्यासकार भौतिक विकास के नाम पर विलुप्त होते गाँवों और ग्राम्य संस्कृति से आहत है, 'क्या यही हमारे देश का विकास है जहां हमारा अतीत लुप्त होता जा रहा है।' [15] भौतिकतावाद की इस अन्ध दौड़ ने गाँवों के स्वरूप को खण्डित कर दिया है। गाँव में नौकरी की तलाश में बाहर के लोग आकर रहने लगे हैं और गाँव के मूल निवासी रोजी-रोटी के चक्कर में अन्यत्र चले गये हैं। अनेक वर्षों बाद जब नायक अपने गाँव आता है तो उसे

वहां कोई भी परिचित नहीं मिलता। वहां रह रहे लोग आपस में नायक के विषय में बात करते हुए कहते हैं, 'नया आदमी है कोई। गांव में चलना भी नहीं आता।'16 भौतिकता के अन्धकार में विलीन होने गांवों में अपनी शहरीकरण की प्रवृति ने वहां के बच्चों को आनन्द, उल्लास, उत्सास और आत्मविश्वास प्रदान करने वाले, बिना धन का व्यय किये खेले जाने वाले छोटे-छोटे खेलों को भी समाप्त कर दिया। एक ऐसे ही आनन्द प्रदान करने वाले खेल की चर्चा करता हुआ नायक कहता है, 'उसी पानी में चार-पाँच भैंसें भी नहा रही हैं। हम उनकी पूँछ पकड़ लेते। भैंस पानी में चक्कर काटने लगती और हम चहक उठते।' [17]

उपन्यासकार का प्रबल सौन्दर्य-बोध ही उसके प्रकृति सौन्दर्य के प्रति आकर्षण का सबल आधार है। उपन्यास के नायक निर्मल को गांव के कण-कण में सौन्दर्य का आभास होता है। चारों ओर फैली वृक्षावली से प्रभावित नायक कहता है, 'नदी के किनारे स्थित बालेश्वर एक छोटा सा गांव है जहाँ पर खजूरों का घना जंगल है। इस जंगल की शोभा यत्र-तत्र बिखरे जामुन, आम और विशाल बरगद के वृक्षों से ओर भी बढ़ जाती है।' [18] उपन्यास में अनेक स्थलों पर मानव प्रकृति और बाह्य प्रकृति को एकाकार होते दिखलाया गया है, 'बारिश के दिनों में तो मौसम इतना सुहाना हो जाता है कि नाचते हुए मोर के पंखों के साथ-साथ मन भी हिलोरें खाने लगता है।' [19]

यहाँ उपन्यास के कला-पक्ष पर भी विचार करना प्रासंगिक होगा। रचनाकार की भाषा सहज और सरल है। रचनाकार ने पछेवड़ा [20], भांकफेरी [21], चेहरी [22], दैड़े[23] कोर[24] आदि अनेक आंचलिक शब्दों का प्रयोग किया है और पाठकों की सुविधा के लिए अर्थ भी दिये हैं। इससे उपन्यास की भाषा समृद्ध हुई है। प्रभावशाली शिल्प-विधान ने पाठकों को बाँधकर रखने में सफलता प्राप्त की है। अनेक स्थलों पर लेखक ने मानवीकरण अलंकार का प्रयोग किया है - 'लोक देवताओं के छोटे-छोटे मन्दिर देखकर मन दृष्टि के रथ पर सवार हो उधर ही प्रभावित होने लगता है।'[25] उत्प्रेक्षा अलंकार में लेखक की विशेष रुचि है, 'मानो स्वर्ग की कोई अप्सरा उस पठार पर उतर आयी है।'[26] मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग द्वारा उपन्यासकार ने भाषा को सहज संवेद्य बनाया है - 'जमीन आसमान एक कर देंगे[27], मिट्टी का माधो28, नौ दो ग्यारह[29], भगवान के घर में देर है अंधेर नहीं[30] आदि।

जिस कृतिकार का अन्तर्मन संस्कृत और संस्कृति से जितना अधिक प्रभावित

होगा उसकी रचना में सूक्तिमयता का गुण उतना ही अधिक होगा। यहाँ कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

1.'यह सत्य है कि यदि व्यक्ति किसी चक्रव्यूह से निकलना चाहता है तो उसे अपनी इच्छा शक्ति को बल देना होगा। यही वह अमोघ अस्त्र है जिससे वह गरीबी एवं विषमताओं के चक्रव्यूह को भी काटकर बाहर आ सकता है।'[31]

2. 'हमारे भाग्य के सहयोगी जितने हम स्वयं हो सके हैं उससे अच्छा सहयोग न तो कोई हितैषी ही दे सकता है और न ही भगवान अनायास कोई आशीर्वाद दे जायेंगे। '[32]

किसी अनुभूति और विचार को सन्दर्भों से जोड़कर मूर्त रूप प्रदान करना ही 'बिम्ब-विधान' कहलाता है। लेखक ने अनेक स्थलों पर विधवा का, समाज से पीड़ित और प्रताड़ित नारी का, दैहिक शोषण से आहत स्त्री के सार्थक बिम्ब निर्मित किये हैं। यहां एक श्रमिक महिला का बिम्ब द्रष्टव्य है, 'मजदूरिन ने पेड़ की छाँव में एक गूदड़ी बिछाकर उस पर अपने बच्चे को लिटा दिया और चटनी रोटी खाने लगी। मैं भी उसके साथ चटनी रोटी खा रहा हूँ। उसमें मुझे ऐसा स्वाद आ रहा था कि मन भरता ही न था परन्तु जब बीच-बीच में गूदड़ी पर लेटे हुए बच्चे को देखता तो मन पीड़ा से कराह उठता और जब मैं मजदूरिन की ओर देखता तो वह विवशता की प्रतिमूर्ति बनी अपनी नजरें नीचे को झुका लेती।'[33]

उपर्युक्त विवेचन के आलोक में हम कह सकते हैं डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा विरचित 'विरह का इन्द्रधनुष' न केवल मानवीय वेदना और संवेदना की प्रबल अभिव्यक्ति है, अपितु विषम सामाजिक समस्याओं से जूझने वाले अनेक पात्रों के द्वन्द्व की मार्मिक गाथा भी है। व्यथा, कथा के साँचे में ढलकर पाठक तक पहुँची है। सहज, सरल, सुबोध शैली में रचे गये इस उपन्यास का गम्भीर प्रभाव पाठक को देर तक सोचने के लिए विवश करेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. विरह का इन्द्रधनुष, पृ. दो शब्द
2. वही, पृ. आवरण 3. वही, पृ.25 4. वही, पृ. 10
5. वही, पृ. 53 6.वही, पृ. 10 7.वही, पृ. 12
8. वही, पृ. 31 9.वही, पृ.41 10.वही, पृ. 24
11. वही, पृ. 25 12.वही, पृ. 40 13.वही, पृ. 9
14. वही, पृ.43 15. वही, पृ. 36 16.वही, पृ. 36

17. वही, पृ. 26 18.वही, पृ. 8 19.वही, पृ. 8
20. वही, पृ. 20 21. वही, पृ. 22 22.वही, पृ. 24
23. वही, पृ. 27 24. वही, पृ. 26 25.वही, पृ. 8
26. वही, पृ. 12 27. वही, पृ. 16 28.वही, पृ. 17
29. वही, पृ. 27 30. वही, पृ. 33 31.वही, पृ. 61
32. वही, पृ. 61 33.वही, पृ. 51

❑❑❑

22

कैलाशचन्द्र शर्मा कृत उपन्यास 'विरह का इन्द्रधनुष' में वर्णित समस्याए

पिंकी शर्मा

साहित्य, साहित्यकार की जीवन पर प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति है। साहित्य की दो विधायें हैं गद्य और पद्य। गद्य में कविता और पद्य में नाटक, कहानी, उपन्यास, एकांकी आदि आते हैं। 'उपन्यास शब्द की रचना 'उप' तथा 'न्यास' के योग से हुई हैं जिनका अर्थ क्रमशः समीप तथा वस्तु है। इसके अनुसार उपन्यास एक ऐसी रचना है जो जीवन को कथाबद्ध करके पाठक के निकट रखे।' [1]

'विरह का इन्द्रधनुष' कैलाशचन्द्र शर्मा कृत उपन्यास है। यह उपन्यास देवनागर प्रकाशन, जयपुर से वर्ष 2009 में प्रकाशित हुआ। 'विरह का इन्द्रधनुष' उपन्यास एक ऐसी कृति है जो दिखाती है कि आधुनिक समाज में पश्चिमी जीवन शैली का अंधानुकरण हो रहा है। सुख-भोग को ही जीवन का उद्देश्य समझा जाता है और जिसके फलस्वरूप समाज में अनेक प्रकार की कुरीतियां जन्म लेती हैं। उपन्यास को पढ़ने के बाद सामाजिक रूप से पाठक यह सोचने पर विवश हो जाता है कि उसका समाज, उसका परिवार, उसके सम्बन्धी किस दिशा में जा रहे हैं, उसका परिणाम कितना भयानक है? संयुक्त परिवारों के टूटने से, रिश्तों के बंधनों को नकारने से, मर्यादाओं और जीवन मूल्यों की अवहेलना से, अतृप्त भोग-लिप्सा के कारण परस्पर सम्बन्धों में तनाव, कटुता, अनैतिकता, हिंसा बढ़ रही है। भाई-भाई के रिश्ते में कटुता आ रही है, बड़े-

* द्वारा डॉ. सुनील कुमार, ग्राम-पोस्ट- छिछड़ाना, तह.- गोहाना, ज़िला- सोनीपत (हरियाणा), पिन-131301

बूढ़ों, माँ-बाप को अपमानित किया जा रहा है। उन्हें वृद्धाश्रमों में रहने के लिए विवश कर रहे हैं, ऐसे परिवारों की इस प्रकार की और ऐसी ही कुछ अन्य घटनाओं का वर्णन उपन्यासकार ने अपने उपन्यास में किया है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि कैलाशचन्द्र शर्मा प्रत्येक घटना के स्वयं साक्षी हैं। 'विरह का इंद्रधनुष' में वर्णित समस्याएँ इस प्रकार हैं-

पारिवारिक रिश्तों में तनाव एवं बिखराव

पारिवारिक रिश्तों में तनाव एवं बिखराव आज की एक ज्वलंत समस्या है। 'दादा बड़ा न भैया, सबसे बड़ा रूपया' वाली कहावत ने पवित्र रिश्तों को जैसे झकझोर डाला है। 'विरह का इंद्रधनुष' में नायक अपनी पारिवारिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हुए लिखता है- 'मेरे घर में सदैव ही पारिवारिक कलह सा रहता था। मेरे बड़े भाई चोर आवारा और बागी थे और अपने दुष्कर्मों से आये दिन बेचारे पिताजी को परेशान किये रहते थे। माँ अधिकांशतः तो अपने पीहर में ही रहती थी परन्तु कई-कई दिनों के लिये वह हमारे पास आया करती थी। वह भी तब जब उन्हें पिताजी से खर्चे के रुपये लेने होते। मैंने अपने पिताजी को सदैव ही श्रद्धा एवं तल्लीनता से भगवान की पूजा करते देखा और जब मेरी माँ या कोई सा बड़ा भाई उन्हें अपने किसी आचरण से दुःख देता तो वे यह कहकर अपने काम में लग जाया करते-' तुम्हें राम देखेगा।' [2]

अपने संयुक्त परिवार के एकल परिवार में तबदील होने की घटना को नायक व्यंग्यात्मक रूप में इस प्रकार प्रस्तुत करता है- 'गाँव में हमारी भी हवेली थी। थी क्या, मेरी माँ बताती है कि पहले हमारा एक संयुक्त मकान था चाचा ताउओं के साथ का, परन्तु एक दिन किसी बात पर मेरी चाची ने मेरी माँ को ताना मारा कि- ऐसी महारानी है तो अपना अलग मकान क्यों नहीं बनवा लेती। बस चाची की बात माँ के मन में बैठ गई और वे पिताजी के पीछे इस कदर हाथ धोकर पड़ी कि तुरत फुरत में दो मंज़िली हवेली की मालकिन बन गई मेरी माँ। मेरी चाची के सामने मेरी माँ की कितनी इज्जत बढ़ गई होगी तब, इसका अन्दाज मैं लगा सकता था क्योंकि यह बात सुनाते-सुनाते मेरी माँ की आँखें खुशी से चमक उठती थी। यह बात अलग है कि इस उपक्रम में माँ ने अपने गहने-गूंठी सब बेच डाले थे। परन्तु सामाजिक प्रतिष्ठा तो अमूल्य होती है और वह भी चाचा ताउओं और देवरानी जिठानियों

के समक्ष क्या कहने।' [3] नायक की माँ और बड़ा भाई भीमा पिता जी को पैसे के लिए तंग करते थे। इस घटना का नायक व उसकी बहन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। नायक अपनी बहन मीता दीदी को प्रेरणा स्वरूप पिता जी की वेदना को कम करने का निश्चय करता है। नायक इस घटना पर प्रकाश डालते हुए कहता है-'अम्माजी ने भी गाँव से आकर मीता दीदी के घर से थोड़ा दूर कच्ची बस्ती में एक झोंपड़ी बाँध ली थी जिसमें वे मेरे बड़े भाई भीमा के साथ रहती थी। उन्होंने किसी से कह सुनकर रोड़वेज में ड्राईवर की नौकरी के लिये बड़े भाई का फार्म भरवा दिया था और वह बहनोई श्रीलाल जी की सिफारिश पर नौकरी लग भी गया था। अम्माजी गाँव तो कभी-कभी ही जाया करती और वह भी तब, जब उनके पास खर्चे के लिये रुपये कम रह जाते। वह गाँव जाकर अक्सर मेरे पिताजी से लड़ाई-झगड़ा किया करती। वह उन्हें मेरे बड़े भाई भीमा के खर्चे के लिये पर्याप्त रुपये न भेजने हेतु कोसती और जितने दिन तक गाँव रहती बेचारे पिताजी का खाना-पीना हराम किये देती। पिताजी सीधे सादे एवं सरल स्वभाव के नेक इन्सान थे। अत: शान्ति बनाये रखने के उद्देश्य से अम्माजी को खर्चा पानी देकर अपना पीछा छुड़ाते।'[4]

जब कभी भीमा अम्माजी के साथ गाँव जाता तो उसे माँ की ओर से शह मिल जाती और वह पिताजी तक से अभद्रता कर बैठता। एक दिन तो आसपास के किसान यह देखकर हैरान रह गये कि पैसे न मिलने पर क्रुद्ध होकर उसने खेत में हल चला रहे पिताजी का हाथ पकड़कर अपशबद कहना शुरू कर दिया था- 'साले पण्डित के बच्चे, मुझे बेवकूफ समझ रखा है क्या। जब तक मुझे खर्चे के लिये एक हजार रुपये न देगा इस ज़मीन पर हल नहीं चलाने दूंगा, इस पर मेरा हक है। और आस-पास के किसानों द्वारा बीच बचाव करने पर उसने हाथ छोड़ा था पिताजी का।' [5] लेखक पारिवारिक रिश्तों में तनाव का कारण- पैसा, स्वार्थ, अहं, भौतिकतावाद व सांस्कृतिक मूल्यों से पलायन को मानते हैं।

उपेक्षा/विवशता

उपन्यास में जब नायक अंजू भाभी और संध्या से मिलने योगेश के घर अपने गाँव जाता है तो उसे वहां सब कुछ बदला-बदला नज़र आता है। स्वयं नायक के शब्दों में- 'बस स्टैण्ड बदल सा गया था। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मैं किसी और गाँव में आ गया हूं। आज से तीस-पैंतीस वर्ष पूर्व

जब हम किराये की साईकिल चलाया करते तो बस स्टैण्ड पर वाहनों की भीड़ भाड़ न हुआ करती थी और प्राय: सड़क खाली पड़ी रहती थी। परन्तु आज देखता हूं तो पाता हूं कि गाँव में यहां के व्यक्ति कम हैं और बाहर के अधिक हैं। और जो इस गाँव के हैं भी तो वे मेरे लिये अपरिचित से ही हैं। नई पीढ़ी के वे लोग यत्र-तत्र नज़र आते हैं जो मुझे नहीं पहचानते और पुरानी पीढ़ी के जो लोग मुझे जानते हैं वे असहाय से हुए या नई पीढ़ी के उपेक्षा भाव से आहत हो अपने आपको समेटे हुए अपने-अपने घरों में दुबके पड़े हैं।' [6] नायक अपने ही विचारों मे डूबा चला जा रहा है तभी नायक सामने से आ रही ऊंटगाड़ी से टकराने से बच जाता है। गाड़ीवान द्वारा यह कहने पर कि लगता है कोई नया आदमी है, गाँव में चलना भी नहीं आता तो नायक अपनी जन्मभूमि में भी पराया समझे जाने से अत्यंत दुखी हो जाता है, वह वहां की राह, राह के किनारे पड़े बड़े-बड़े पत्थरों से, सेढ़ माता के चबूतरे पर खड़े विशाल नीम के वृक्ष से और वहां की पुरानी इमारतों में लगे बूढ़े पत्थरों से चीख-चीखकर पूछता है- 'आप सब ही बताइये क्या मैं कोई पराया हूं, क्या मुझे राह में चलना नहीं आता। मैं ही तो था वह जो टीला खेलते समय कई बार सामने की इस भूतों की हवेली में अपने मित्र योगेश के साथ छुपा करता था। अपने घर से स्कूल जाते समय राह के इन पत्थरों का न जाने कितनी बार मेरे पैरों ने स्पर्श किया होगा। और सामने सेढ़ माता का वह चबूतरा। उस दिन जब शाहजहाँपुर के एक चोर को नीमड़ी के पेड़ के बाँधकर गाँव वालों ने पीटा था तो मैं, शफात, योगेश और मेरी क्लास के एक दो और विद्यार्थी यहीं चबूतरे के नीचे के टीबड़े पर तो खड़े थे। क्या मैं झूठ बोल रहा हूं। मैंने नज़रें घुमाकर देखा तो वहां टीबड़ा न था और मैं पीड़ा से कराह उठा- क्या यही हमारे देश का विकास है जहां हमारा अतीत लुप्त होता जा रहा है।'[7] विवशता और लाचारी से आहत नायक सोचता है- 'जीवन नश्वर है, फिर व्यक्ति क्यों इतने उपक्रम करता है। क्या वह नहीं जानता कि एक दिन उसे संसार से चले जाना है।' [8]

नायक की यही विवशता अनेक स्थलों पर प्रकट हुई है। लेकिन नायक ने कभी विवशताओं से समझौता नहीं किया व निरंतर उनसे जूझते हुए, संघर्ष करते हुए हौंसले के साथ आगे बढ़ता रहा।

विधवा नारी की दुर्दशा

समाज में विधवा की दशा सदा से शोचनीय रही है और आज भी अमूनन यही स्थिति है। समाज में एक विधवा को अपने पति की मौत का दोषी माना जाता है, उसे अपशकुनी माना जाता है, उससे मार-पीट और गाली-गलौच की जाती है, यहाँ तक की उसे घर से भी निकाल दिया जाता है। समाज की कुत्सित एवं बुरी नज़रें सदैव उस पर लगी रहती हैं। उसका अनेक तरह से शोषण किया जाता है। विवेच्य उपन्यास में भी विधवा की दुर्दशा को अनेक घटनाओं एवं उदाहरणों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है। नायक ने सुप्यार विधवा का चित्रण इस प्रकार किया है- 'हमारे गाँव के मुहाने पर रणसिंह नाम का राजपूतों का एक लड़का था जिसके एक विधवा बहिन थी सुप्यार। हमारे समाज में एक विधवा औरत की स्थिति बड़ी ही कष्टप्रद हुआ करती है। वह अपने भाई के खेत पर काम किया करती थी। मैं जब अपने घर से गाँव के स्कूल में पढ़ने जाया करता तो उनका खेत रास्ते के किनारे पर ही पड़ता था...।' [9] नायक अपने मित्र योगेश की पत्नी की तुलना सुप्यार से करते हुए सोचता है- 'मेरे बालसखा योगेश की पत्नी भी तो सुप्यार की ही तरह विधवा हो गई थी। हो सकता है वह भी उसकी ही तरह किसी भग्गू के चुंगल में फँस गई हो। परन्तु क्या यह फँसना था या उसकी विवशता? विवशता किसी भी प्रकार की हो सकती है मनुष्य के सामने, और विवश हो जाना व्यक्ति विशेष की परिस्थिति पर निर्भर करता है।' [10] योगेश की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी पर तरह-तरह के लांछन लगाकर उसे अपमानित किया जाता है और उस पर अत्याचार किये जाते हैं। 'वह बेचारी अपने दोनों बच्चों का पालन पोषण करने के लिए आस-पड़ौस की औरतों के कपड़ों की सिलाई किया करती परन्तु वह भी घर के अन्दर ही। उसके पिताजी ने ऐसी कठिन परिस्थितियों में अपनी पुत्री का हौसला बढ़ाते हुए यह सलाह दी कि भले ही उसके सास-ससुर एवं जेठ-जेठानी कितने ही अत्याचार करें या अमानुषिक यातनाएं दें परन्तु वह अपना घर न छोड़े। अपने पिता के सहयोग से भाभी ने उस वर्ष चोरी छिपे दसवीं कक्षा का प्राईवेट फार्म भरा और उसके पिताजी ने उसकी फीस के रुपयों की व्यवस्था की। जब सास को इस बात का पता चला तो उसने आसमान सिर पर उठा लिया और उस पर लांछन लगाने का प्रयास किया- 'राँड, पहले तो मेरे बेटे को खा गई और अब चली खसम

करने।' अपने पिता की प्रेरणा और अपने बच्चों के भविष्य की चिन्ता करके वह बेचारी सब सहती रही। वह दिन में सिलाई करती और रात में पढ़ाई। सास को इतने अत्याचार करने पर भी चैन न मिला और उसने नीचता की पराकाष्ठा को साकार करते हुए भाभी के कमरे की बिजली यह करते हुए कटवा दी- 'अब देख रण्डी तुझे कैसे कराती हूं बी.ए. पास।' [11] नायक को उसकी भाभी अपनी छोटी बहिन के बारे में बताती है- 'मेरी भाभी से पता चला कि उसकी छोटी बहन का कहीं और विवाह हो गया था परन्तु कालान्तर में उसके दो छोटे-छोटे बच्चों को छोड़कर उसका पति एक आकस्मिक दुर्घटना में इस संसार से चल बसा था। और उसकी बहिन सड़क पर मजदूरी करके, पहाड़ी पर पत्थर तोड़ने का कार्य करके अपने बच्चों का भरण-पोषण कर रही है।'[12] इस प्रकार 'विरह का इन्द्रधनुष' में विधवा नारी की दयनीय अवस्था का मार्मिक चित्रांकन किया गया है।

कामवासना एवं अनैतिक संबंधों की समस्या

'विरह का इंद्रधनुष' में कामवासना एवं अनैतिक संबंधों की समस्या को उजागर किया गया है। उपन्यास में योगेश की मृत्यु के बाद उसकी विधवा पत्नी का शोषण एक पुलिस वाले द्वारा किया जाता है। विधवा भाभी नायक को इस घटना के बारे में बताती है- 'प्रथम बार की बात है जब मुझे विधवा कोटे में सरकारी स्कूल में शिक्षिका की नौकरी मिली थी। कुछ दिनों बाद मेरा चयन शिक्षक प्रशिक्षण कोर्स हेतु हो गया और मुझे एकवर्षीय प्रशिक्षण प्रास करने पास ही के शहर में जाना पड़ा। हॉस्टल में जगह न मिली जिसके कारण मुझे प्रशिक्षण संस्थान के पास में ही किराये का कमरा लेकर रहना पड़ा जहां मेरा परिचय एक पुलिस वाले से हुआ। एक रात अवसर का लाभ उठाते हुए वह मेरे कमरे पर आया और देर रात तक वहां रहा। मेरी मति भ्रमित हो गई और परिस्थितिवश मैंने अपने आपको उसे समर्पित कर दिया।' [12] दूसरी बर उसका शोषण उसके स्वर्गीय पति के एक मित्र के द्वारा किया जाता है। भारती नामक लड़की का उसके रिश्तेदार द्वारा शोषण होता है। सुप्यार पर बुरी नज़र भग्गू अहीर रखता है। नायक ने मंजू मौसी का उदाहरण भी दिया है। नायक के अनुसार- 'मंजू मौसी भी तो गरीब घर की ही थी जिससे जीवन भर अनैतिक सम्बन्ध बनाये रखने के उद्देश्य से उसके बहनोई ने उसका विवाह धनाढ्य परिवार के एक अर्धविक्षिप्त युवक से करवा दिया था। ससुराल में

भी उसके देवर उससे अनैतिक सम्बन्ध बनाये रखना चाहते थे क्योंकि वह एक गरीब बाप की बेटी एवं पागल की पत्नी थी।' [14] आगे नायक बताता है- 'मैंने मौसी के रूप में जब अपनी सरला को चक्रव्यूह में फंसा देखा तो उसे बाहर निकलने का रास्ता भी सुझाया था और वह मेरी बात मानकर अपने पति एवं पुत्र को लेकर अपने संयुक्त परिवार से अलग भी हो गई थी परन्तु कुछ समय पश्चात् पता नहीं क्या हुआ और वह अपने पति एवं बेटे को साथ लेकर अपने विधुर नन्दोई के साथ जाकर रहने लगी। यहां उसके देवरों का स्थान उसके नन्दोई ने ले लिया था। जब मुझे इस समस्त घटनाक्रम का पता चला तो मन पीड़ा से कराह उठा और फिर मैं अपनी सरला के लिये कुछ न कर सका।' [15] आज बलात्कार, छेड़खानी जैसे घटनाएँ समाज में निरंतर बढ़ती जा रही हैं। लड़की पर तेजाब फेंके जाने के मामले हर रोज़ पढ़े, सुने या देखे जाते हैं। नायक का हृदय चीत्कार कर उठता है- 'अंजू भाभी भी तो ऐसी ही पीड़िता रही, ठीक सरला की तरह जिसके साथ अपने ही लोगों ने बलात्कार किया और मेरे मुँह से एक वेदना भरी नि:श्वास निकल पड़ी।' [16] यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि इस प्रकार के अधिकतर मामलों में न केवल पुरुष बल्कि स्त्री भी समान दोषी होती हैं। नारी स्वातंत्र्य के नाम पर फूहड़ता व स्वच्छंदता का दुरुपयोग नारी को शोभा नहीं देता। भारतीय नारी सहनशीलता, प्रेम और मर्यादा पालन की प्रतीक है।

भ्रष्टाचार

विवेच्य उपन्यास में उपन्यासकार ने व्यवस्था में आई खामियों व भ्रष्टाचार की ओर भी संकेत किया है। जब नायक अपने मित्र महेश के साथ महालक्ष्मी टेंपल के सामने दर्शनार्थियों की लम्बी कतार देखता है तो उसे ये सब औपचारिकताएँ लगती हैं। वह महेश को कहता है- 'महेश, हमारे देश में औपचारिकताओं पर अधिक ध्यान दिया जाता है न कि कर्त्तव्य पर। और यदि व्यक्ति अपना कर्त्तव्य करता रहे तो उसे और कुछ करने हेतु विवश न होना पड़ेगा।' [17] जब नायक की बहन ने उसके लिए खादी भण्डार से एक शर्ट लाकर दी तो उसके मन में कोई संकोच न हो, यह मानकर कहती है- 'खादी के कपड़े सबसे उत्तम होते हैं निर्मल, बड़े-बड़े अफ़सर और मंत्री भी तो इसीलिए खादी ही पहनते हैं।' [18] एक तरफ खादी के कपड़ों के प्रति

कैसे पवित्र भावों की सृष्टि यहां पर देखने को मिलती है, वहीं आजकल के नेताओं ने इसी खादी को कलंकित कर दिया है। इंटरव्यू में पूछे जाने वाले कल्पित सवालों से भी नायक असहज महसूस करता है जो एक प्रकार से व्यवस्था पर ही प्रश्नचिह्न लगाते हैं। शायरी के लिए चर्चित रज्जाक साहब से जब नायक मिलने जाता है तो वहां चिकित्सा व्यवस्था में आए भ्रष्टाचार की पोल खुलती है। नायक को जब अस्पताल की महिलाकर्मी द्वारा बैठने के लिए कहा जाता है तो नायक के मन में उधेड़बुन शुरू हो जाती है- 'मुझसे डर के मारे बैठा नहीं जा रहा था और मैं मन ही मन सोच रहा था, बेटा आज खूब फँसा। अब तेरे यहां पर सुन्न का इंजेक्शन लगाया जायेगा और फिर बलात तेरा मुँह बाँधकर उस पर्दे के पीछे रखी टेबिल पर लिटाया जायेगा। और फिर होगी तेरी चीरफाड़। पता नहीं क्या-क्या निकाला जायेगा- गुर्दा? आजकल यही तो हो रहा है बड़े-बड़े शहरों में। किसी अस्पताल में इलाज़ के लिये भर्ती हो जाओ, बस गया एक गुर्दा आपका। और मुझ जैसे आदमी को तो यह भी नहीं पता कि गुर्दा होता किधर है। और मैं डर के मारे अपने पेट पर हाथ फेरने लगा।' [19]

रोनू नायक के सामने अपनी व्यथा प्रकट करती है जिससे पुलिस व्यवस्था में फैले भ्रष्टाचार का पर्दाफाश होता है- 'वह खुफिया पुलिस की एक अधिकारी थी परन्तु अपने ही विभाग की गतिविधियों से त्रस्त थी। उसने बताया कि उसके विभाग के बड़े-बड़े अधिकारी प्रत्यक्ष में तो अपने आपको अपराधियों को पकड़ने में संलग्न दर्शाते हैं परन्तु वास्तव में वे स्वयं एक ऐसे छद्मवेशी भेड़िये हैं जो स्वयं अपराधों में लिप्त हैं और बेबस महिलाओं तक को नोच-नोच कर अपने घिनौने कृत्यों में वे आनन्द की अनुभूति करते हैं। मुझे रोनू की बात में छिपी हुई पीड़ा का आभास हुआ और इसी सन्दर्भ में कुरेदने पर उसने बताया था- 'सर, मेरे ही विभाग में मुझ पर अत्याचार किये गये। मेरे उच्चाधिकारियों द्वारा मुझे बदनीयती से देखा गया परन्तु मैंने साहस के साथ उन दरिन्दों का मुकाबला किया जिससे क्रुद्ध होकर उन्होंने मुझ पर मनगढ़न्त आरोप लगाये और असमय ही जगह-जगह मेरे तबादले होते रहे। एक-दो बाद तो मुझे नौकरी से निलम्बित भी किया गया।' [20]

रक्षक ही भक्षक बन बैठे हैं। एक पुलिस वाले द्वारा योगेश की विधवा अंजू का शोषण किया जाता है। इसके अतिरिक्त योग्यता होते हुए भी नायक

को कैण्टीन में अपमानित होना पड़ता है। इस प्रकार उपन्यास व्यवस्था से जुड़ी खामियों व उसमें फैले भ्रष्टाचार की भी पोल खोलता है।

नशाखोरी

नायक ने तत्कालीन समाज की एक भयंकर समस्या 'नशे की समस्या' का जीवन पर दुष्प्रभाव दिखाया है। प्रस्तुत कृति में योगेश नामक मेधावी युवक नशे की बुरी लत का शिकार हो जाता है। नायक के शब्दों में 'मेरा सबसे घनिष्ठ मित्र योगेश अब इस दुनिया में न रहा था। ... उसे नशे के इन्जेक्शन लेने की आदत पड़ गई थी और नित्य शराब पीना उसके लिए अनिवार्य सा हो गया था। एक कुलीन घर की कन्या से उसका विवाह भी हुआ जिससे उसके दो बेटे हुए परंतु लगभग आठ वर्ष का ग्रहस्थ सुख भोगकर वह इस संसार से हमेशा हमेशा के लिए विदा ले गया।' [21] युवा वर्ग द्वारा नशे आदि व्यवसनों का आदी होना सचमुच जवलंत समस्या है।

निष्कर्ष

अत: कहा जा सकता है कि कैलाशचन्द्र शर्मा ने 'विरह का इन्द्रधनुष' में युगीन विसंगतियों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। उपन्यास में व्यक्ति की कुंठा, मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, चेहरे पर मुखौटों की प्रवृत्ति, स्वार्थीपन, संत्रास, व्यंग्य, आदमी की बेबसी और लाचारी का चित्रण किया गया है। उपन्यासकार ने वर्तमान आदमी की दयनीय स्थिति का चित्रण करके एक नई सोच लाने की प्रेरणा दी है। पारिवारिक रिश्तों में टूटन, आधुनिकता का अंधानुकरण, समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, गरीबी तथा बेरोजगारी का वर्णन कर वास्तविक स्वतंत्रता पर प्रश्न चिह्न लगा दिया है। वर्तमान व्यवस्था के भ्रष्ट चरित्र को जन साधारण के आगे लाकर रख दिया है। नायक ने परंपरागत रीति-रिवाजों द्वारा देश की संस्कृति का उद्घाटन किया है। इस प्रकार उपन्यासकार ने इस उपन्यास में युगीन समाज की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत की है।

संदर्भ :

1. दिलीप मेहरा, धर्मवीर भारती, प्रकाशक : क्लासिक पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ. 46)
2. 'विरह का इन्द्रधनुष', डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, देवनागर प्रकाशन, जयपुर, संस्करण 2009, पृ. 46
3. वही, पृ. 22
4. वही, पृ. 73
5. वही, पृ. 73
6. वही, पृ. 34
7. वही, पृ. 36
8. वही, पृ. 62
9. वही, पृ. 31
10. वही, पृ. 32
11. वही, पृ. 41-42
12. वही, पृ. 51
13. वही, पृ. 45
14. वही, पृ. 54
15. वही, पृ. 55
16. वही, पृ. 47
17. वही, पृ. 61
18. वही, पृ. 68
19. वही, पृ. 101
20. वही, पृ. 109
21. वही, पृ. 28

❑❑❑

23

अभिव्यक्ति एवं विरह का इन्द्रधनुष का कथा शिल्प

सौ. पद्मश्री

भारतीय कथा साहित्य अपनी प्रकृति में आवृत्तपरक रहा है और आख्यान की परम्परा मूलत: आवृत्ति ही है। इसे विश्व साहित्य में भारत की विशिष्ट देन माना गया है। जहाँ से कथा का आवर्तन होता है और कथा अन्त में फिर वहीं लौट आती है। इस वृत्त में कथाओं के और भी वृत्त बनते जाते हैं। कथाओं के भीतर कई-कई कथाओं का विकास होता है। 'कथा सरित सागर' और 'पंचतन्त्र' का कथा-शिल्प भी यही है। हमारे पुराणों में आख्यान इसी तरह कथा-शृंखलाओं में मिलते हैं।

यही कथा-शिल्प डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के उपन्यासों में है। कथाओं में कथाएँ। एक-दूसरे से गुँथी हुई कथाओं का सिलसिला निरन्तर चलता रहता है। इस चक्रीय गति में चूँकि अन्त नहीं है इसलिए समाप्त हो जाने पर रिक्तता का बोध भी नहीं होता और न ही कुछ खो देने का विषाद। भारतीय चिन्तन में इसीलिए मृत्यु को केवल देहान्तरण माना है। जहाँ मृत्यु होती है वहाँ अस्थाई समय के लिए विषाद होना स्वाभाविक है परन्तु फिर उसी बिन्दु पर पुनर्जन्म होता है। कैलाश जी के उपन्यास 'अभिव्यक्ति' का आरम्भ भी ऐसा ही है। उपन्यास की कथा विस्वास एवं सरला के केन्द्रीय पात्रों के मिलन से आरम्भ होती हुई आगे बढ़ती है जो उनके जीवन को विकसित करती है और अन्त

*बिल्डिंग नं. एन 2 ए, फ्लैट सं. 34, कामां पार्क, कामां रोड, अँधेरी स्टेशन के सामने, मुम्बई-400058

में उनका पुनर्मिलन होता है। यह विशुद्ध भारतीय दृष्टि ही नहीं अपितु भारतीय आवृत्त-कथा शिल्प का सफल प्रयोग भी है। 'अभिव्यक्ति' में विस्वास के बाल्यकाल, सुलभा भाभी, सुशीला दीदी, मिसेज घोष, आभा आदि के इर्द-गिर्द निर्मित कई स्वतन्त्र वृत्त हैं। इसी प्रकार 'विरह का इन्द्रधनुष' उपन्यास नायिका रोनू की स्मृतियों से प्रारम्भ होकर नायक के बाल्यकाल, किशोरावस्था एवं युवाकाल के दौरान उसके साथी योगेश, मीता दीदी, विधवा अंजू, मीनाक्षी, झाबुआ वाले हैडमास्टर जी और सानिया के इर्द-गिर्द कई स्वतन्त्र वृत्तों का निर्माण कर एक ऐसे महावृत्त का निर्माण करता है जिसके मध्य में 'अभिव्यक्ति' की सरला पुन: अपने जीवन्त रूप में प्रकट होकर केन्द्र बिन्दु बन जाती है। 'विरह का इन्द्रधनुष' की सरला अभिव्यक्ति से चलकर यहाँ पर पुन: प्रकट होती है और अन्त में रोनू में एकाकार हो जाती है। कैलाश जी के इन दोनों ही उपन्यासों में इस महावृत्त की केन्द्रीय नायिका सरला है और वही इन उपन्यासों की आत्मा भी है।

कैलाश जी के इन उपन्यासों को पढ़ने पर लगता है कि वे एक ही रचना हैं। देखा जाए तो 'अभिव्यक्ति' एवं 'विरह का इन्द्रधनुष' दोनों उपन्यासों को मिलाकर कैलाश जी के कथा साहित्य का एक महावृत्त पूरा हो जाता है। वैसे इन दोनों उपन्यासों का आरम्भ बिन्दु भी समय की दृष्टि से एक ही है। नाम चाहे वे पात्रों के हों या स्थानों के, थोड़े उलट-पुलट के साथ वे एक जैसे ही हैं। 'अभिव्यक्ति' की मंजरी 'विरह का इन्द्रधनुष' की विद्या और दोनों ही उपन्यासों की सरला इनमें किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं है। एक पूरे रचाव का नाम है 'सरला' जिसके इर्द-गिर्द इन उपन्यासों का जाल बुना गया है। 'अभिव्यक्ति' प्रारिम्भक अवस्थाकाल है और 'विरह का इन्द्रधनुष' उसका विकास, परन्तु इनमें अन्त कहीं नहीं है। 'अभिव्यक्ति' में विस्वास को सरला मिल जाती है। उपन्यासकार ने इसे नायक-नायिका का मिलन बताया है परन्तु वास्तव में यह प्रेम के रंग में रंगे दो प्रेमियों के मिलन का विस्वास है जिसके जादुई मोहबन्ध में पक्षकारों को अपने प्रेमी से मिलने की भ्रान्ति होती है। ऐसा नहीं होता तो 'विरह का इन्द्रधनुष' उपन्यास का सृजन ही नहीं हो पाता। सत्य तो यह है कि विस्वास को उसकी सरला मिली ही नहीं। तभी तो विस्वास ने निर्मल का आवरण ओढ़कर 'विरह का इन्द्रधनुष' के विभिन्न

पात्रों के मध्य अपनी सरला को तलाशना प्रारम्भ किया और उसे आगे चलकर रोनू में उसका प्रतिरूप दिखलायी दिया। पर क्या उसे सरला मिल सकी? यह एक अन्तहीन यात्रा है विस्वास की, उसके जन्म-जन्मान्तरों की कहानी। सरला एवं विस्वास की आत्माओं की मिलन हेतु छटपटाहट है यह। यही डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा जी की रचनाधर्मिता है और उनके लेखन की विशिष्टता भी जो उन्हें अन्य उपन्यासकारों से अलग पंक्ति में ले जा खड़ा करती है जीवन के यथार्थ का चित्रण करने वाले एक सुयोग्य शिल्पकार के रूप में।

दोनों ही उपन्यासों में ऐतिहासिकता का भी चित्रण है जिसमें पात्रों की भूमिका का अन्त भी होता है परन्तु उसका स्थान नये पात्र ले लेते हैं । परन्तु विस्वास, निर्मल तथा सरला ऐसे पात्र हैं जो अन्तहीन हैं और एक-दूसरे से गुंथे रहते हैं। इन पात्रों एवं उनके समय को ही कैलाश जी ने अपने उपन्यासों के कथन के लिए चुना है। दोनों ही उपन्यासों के विभिन्न पात्रों पर आधुनिकता का प्रभाव भी है जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य आत्मकेन्द्रित हो जाता है। वह विभाजित हो जाता है । तब इस विभाजन और विभाजित दृष्टि से कई-कई समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। जैसे-जैसे आधुनिकता का प्रभाव गहरा होता जाता है, समस्याएँ विकराल होती जाती हैं। संघर्ष तीव्रतर हो जाते हैं और समाज में कई-कई परिवर्तन हो जाते हैं। तब उपन्यास का कथा-प्रवाह इन सबको साथ लेकर घटित का बखान करते हुए आगे बढ़ता है।

कैलाश जी के दोनों ही उपन्यासों की पृष्ठभूमि राजस्थान का ढूंढाड़ रहा है परन्तु अपने गाँव के प्रति आसक्ति होते हुए भी उन्होंने आज के मैड़-विराट अँचल को उपन्यास का विषय नहीं बनाया है क्योंकि आज के ढूंढाड़ में वह परिचित गन्ध नहीं है। स्वयं कैलाश जी के ही शब्दों में—

'मैं अपने जन्म स्थान की यादें एवं विद्यार्थी जीवन की घटनाओं को अपने अन्तर में समाये लगभग तीस वर्ष तक वहाँ से दूर रहा और इस अवधि में मैंने साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से इन स्मृतियों को जीवित रखा । इस प्रकार स्वत: ही साहित्य-सृजन हो गया। परन्तु एक दीर्घकालखण्ड के उपरान्त जब दृष्टि उठाकर देखा तो मेरा जन्म स्थान बदल सा गया था। मेरी स्मृतियाँ छिन्न-भिन्न सी होती प्रतीत हुई। न वहाँ पर पुराने लोग रहे थे, न वह सोच, प्रेम, अपनत्वपन और एक-दूसरे में समर्पण की भावना। मेरे

साहित्य के पात्र एक-एक करके इस दुनियाँ से प्रस्थान कर गये थे। श्योलाल के चबूतरे एवं उनकी छतरी का नामोनिशान न था। उस स्थान पर सड़क के किनारे एक छोटी सी मूर्ति ज़मीन में धँसी एक-दो हाथ का कपड़ा ओढ़े अपने भाग्य को कोस रही थी। मुझे तो तब ही पता लगा कि उस चबूतरे में कोई मूर्ति भी थी। बचपन में मैं उस चबूतरे के पास अधिक देर न रुका था पर आज वहाँ खड़ा-खड़ा सोच रहा था कि श्योलाल कौन था? पर कौन बताये। आज तो लोगों को यह भी पता न था कि वहाँ कभी कोई चबूतरा भी था। बोड़ी की ढाणी के कच्चे घरों के स्थान पर पक्के मकान बन गये थे। परन्तु मन को ठेस पहुँची यह सब देखकर। जब मैं स्कूल जाने हेतु इधर से गुज़रता था तो वहाँ कच्चे घरों के सामने सड़क के किनारे एक भूरा कुत्ता बैठा रहता और मैं डर के मारे अपनी चाल धीमी करे एवं कनखियों से कुत्ते को देखते हुए सड़क पार करने लगता। पर आज ये सब खो गये थे। यदि इस स्थान पर मैं एक-दो दशक पहले आ जाता तो मिट्टी के कच्चे घड़े में बन्द स्मृतियाँ आधुनिकता एवं विकास की ठेस लगते ही घड़े को तोड़ देती और तब क्या यह साहित्य-सर्जना हो पाती? कभी नहीं।'(कुछ-कुछ यादें : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा से)

इस प्रकार स्पष्ट है कि इस युग के ढूंढाड़ में उनके बाबा, योगेश, तोलाराम-भोमाराम धानका, नन्छा दर्जी, विद्या, विस्वास, सरला, सुशीला दीदी, राजेश्वरी जीजी, लाडली वैद्यजी जैसे भरे-पूरे पात्र आज इस युग में तो मिलना असम्भव है। दूसरा कारण यह भी रहा कि जिस ढूंढाड़ को उन्होंने इतना डूबकर रचा उसे सम्भवत: अस्सी के दशक में छोड़ देना उनकी विवशता थी। मैड़ गाँव उनकी जन्मस्थली थी। पिता के निधन के बाद सन् अस्सी से गाँव छूट सा गया था। फिर वे जयपुर, श्रीगंगानगर, नांगल, सिरोही, जयपुर होते हुए समूची (जिला अलवर), अजीतगढ़, नीम का थाना (जिला सीकर), श्रीगंगानगर होते हुए पुन: जयपुर आए। फिर जोधपुर, भरतपुर होते हुए अलवर जिले के शाहजहांपुर गाँव में आए। यहाँ आकर ही उन्हें युग परिवर्तन का बोध हुआ। वह भी तब जब उन्होंने गाँव जाकर अपने घर-बार एवं अपने हिस्से के खेतों की सुध ली। तब उनके लेखन का प्रवाह मुड़ा और युग परिवर्तन को उन्होंने अपने गीतों, कहानियों, कविताओं एवं उपन्यासों में उकेरना प्रारम्भ किया।

परन्तु शाहजहांपुर आने से पूर्व तक वे जहाँ-जहाँ भी रहे उनका वह ढूंढाड़ और उसमें भी विशेषकर उनकी जन्मस्थली गाँव मैड़ सदा उनके साथा रहा। बल्कि किशोरवय का उनका देखा और जाना मैड़ उन्हें समय बीतने के साथ-साथ अपनी ओर ज्यादा आकर्षित करने लगा। यह दूरागत आसक्ति उनके अपने उपन्यासों में ढूंढ़ाड़ के मैड़ गाँव को रचने का प्रमुख कारण बनी। उन्होंने दोनों ही उपन्यासों की सरला को मैड़ गाँव की पृष्ठभूमि से ही देखा है जबकि सरला नाम की पात्र उनकी जयपुर शहर की खोज है और उन्होंने चाहकर भी विस्वास द्वारा लिये गये उस मकान की कोठरी में उसे ढूंढने का साहस नहीं किया। इस बारे में वे स्वयं बताते हैं—

'सरला का मकान, विस्वास द्वारा किराए पर ली गई कोठरी, ये सब आज भी ज्यों के त्यों मेरी स्मृतियों में जीवन्त हैं। मैं कई बार उस इलाके से गुजरा भी परन्तु रुककर उस गली की ओर देखने का साहस भी न कर पाया। अपनी इस दुविधा का जिक्र मैंने अपनी एक सहकर्मी श्रीमती मीना श्रीवास्तव से किया तो उन्होंने सब कुछ देख आने का मशविरा दिया परन्तु मैं वह सब कुछ न कर सका। हाँ मीना जी की प्रेरणा से वर्ष 2001 में 'बन्धन' कविता जरूर लिखी गई जिसके बारे में जब मैंने उन्हें दूरभाष पर बताया तो उन्होंने प्रसन्नता व्यक्त की। तब 'बन्धन' पर मैंने अपनी शिष्याओं को कई बार कथक नृत्य प्रस्तुत कराया।' (कुछ-कुछ यादें : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा से)

इससे यह स्पष्ट है कि जयपुर की बजाय मैड़ ही उनके उपन्यासों एवं गीतों का प्रमुख केन्द्र बना वरना जयपुर में भी वे कम न रहे। अध्ययनकाल से लेकर सेवाकाल तक का लम्बा समय उन्होंने जयपुर में व्यतीत किया और अब वहाँ पर अपना स्थायी निवास भी बना लिया है पर उनकी रचनात्मकता का वाहक मैड़ ही बन पाया। परन्तु अब उनका मन वहाँ के बदलाव से पीड़ित है अत: सम्भवत: आगामी रचनाओं में उनका मन विस्थापित हो जाए।

❑❑❑

24

अनाभिव्यक्त की 'अभिव्यक्ति'

डॉ. शैली जग्गी

बहुमुखी प्रतिभा संपन्न कैलाश चन्द्र जी शर्मा का 'अभिव्यक्ति' उपन्यास मनोविश्लेषण की एक अनुपम कृति बन पड़ी है। यूँ भी जिस कृति में सर्जक का व्यक्तित्व और यथार्थ झलकता हो वह स्वयमेव मर्मस्पर्शी बन जाती है। लेखक ने इस तथ्य को पूरी ईमानदारी से अभिव्यक्ति किया है। उपन्यास के प्राक्कथन में वे लिखते हैं-''मेरी साहित्य सर्जना कल्पना मात्र न होकर यथार्थवादी है और यही मेरे लेखन की सीमा भी है।''[1] आगे लिखते हैं-''इस उपन्यास का आधार मनुष्य का भावनात्मक पक्ष है, अत: इसे वही पाठक ठीक से समझ पायेगा जो इसके हर पक्ष का अपने जीवन के भावनात्मक एवं यथार्थपरक धरातल पर विश्लेषण कर पायेगा।''[2] स्पष्ट है कि अभिव्यक्ति एक मनोविश्लेषणवादी उपन्यास है। मानव मन का सूक्ष्माध्ययन कैलाश जी ने यहां किया है। उपन्यास वस्तुत: कल्पनाजीवी पात्रों पर आधारित है। यह प्राकृतिक सत्य है कि मन में गहरे तक उतरने वाले पात्र कल्पनाओं में जीने लगते हैं। उनका अन्तर्मुखी व्यक्तित्व बाह्य यथार्थ पर हावी हो जाता है। कथानायक विस्वास भी ऐसा ही पात्र है। जीवन के अभावों की भट्टी ने उसे कुन्दन तो बनाया ही साथ ही अप्राप्य की लिप्सा उसे कहीं न कहीं भटकती रही है। पूर्वदीप्ति शिल्प में लिखित उपन्यास का नायक विस्वास जो प्रखर है, इंजीनियर बनना चाहता है परन्तु आर्थिक अभावों के चलते पढ़ाई छोड़कर बच्चों को ट्यूशन्स पढ़ाने की विसंगति झेल रहा है। चाहे इंजीनियरिंग की पढ़ाई छोड़ चुका है परन्तु पढ़ाई उसने छोड़ी नहीं कॉलेज में प्रयोगशाला सहायक के पद

* असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग , बी.बी.के डी.ए.वी कालेज फॉर विमेन, अमृतसर।

पर कार्य करते हुए अध्ययन की लौ जगाये रखे है। अत्यन्त निश्छल, भोला विस्वास जिसने किताबों की दुनिया से सिर उठाकर ही नहीं देखा विपरीताकर्षण का उसे बोध ही नहीं यन्त्रचालित सा अपने कार्य, अध्यापन आदि में व्यस्त। यह मानव प्रकृति है कि अप्राप्त हमें आकृष्ट करता है उपन्यास के विभिन्न स्त्री प्राप्त चाहे अबोध किशोरी (सरला) हो या प्रौढ़ा, प्रत्येक विस्वास का संसर्ग चाहती है। मौनामन्त्रण ही नहीं मुक्त आमन्त्रण देती हैं परन्तु विस्वास शायद तब भी अबोध ही था। यह वैज्ञानिक तथ्य भी है कि लड़कियां लड़कों से जल्दी परिपक्व हो जाती हैं। शायद इसीलिए विस्वास अपने जीवन के प्रथमाकर्षण सरला के मौनामन्त्रण को पहचान ही न सका और ऐसी ही परिस्थितियों से जब पुन: किसी और परिप्रेक्ष्य में सामना हुआ तो विस्वास को सरला की अनुभूतियों का बोध होता है तब तक बहुत देर हो चुकी है। वह सरला को पाना चाहता है परन्तु वह कहीं नहीं है। सरला को पाने की उत्कंठा विस्वास को न जाने कितने पड़ावों से गुजारती है। अपने संसर्ग में आने वाली प्रत्येक सत्री में वह सरला को खोज रहा है। सरला उसका प्रथम प्रेम-ऐसा प्रेम जो कभी भुलाया नहीं जा सकता। फ्रॉयडियन मनोविज्ञान पर आधारित प्रस्तुत कृति में प्रेम के मूल में भौतिक क्षुधा मुख्य है। उदाहरण प्रस्तुत है- ''परन्तु हर पुरुष एवं हर स्त्री को कहीं न कहीं शारीरिक क्षुधा भी व्यथित किये देती ही रहती है। व्यक्ति लाख चाहे अपने चारित्रिक अवरण में लिपटा ऐसी क्षुधा को नियन्त्रित करना, पर क्या वह ऐसा कर पाता है? और यदि कोई ऐसा कर सका तो निश्चय ही वह कोई देवपुरुष होगा, जिसकी विद्यमानता आज संदिग्ध है।''[3] उपन्यास की ये पंक्तियाँ उत्तराधुनिकतापूर्ण सच्चाई को भी सामने लाती हैं यह साहित्य जो है, जो घट रहा है-उसे कोई शिष्ट आवरण पहनाकर प्रस्तुत नहीं करता-पूरी बेबाकता से अपनी बात कहता है। 'अभिव्यक्ति' उपन्यास को आद्यान्त पढ़ने पर जानेंगे कि प्रत्येक पात्र मानसिक ग्रंथियों में उलझा अभिव्यक्ति के लिए छटपटा रहा है। जो चाहा था, वह मिल न पाया जो मिला वह चाहा न था परन्तु उसी विसंगत जीवन को झेलने की अभिशप्ति में पात्र कहीं न कहीं वांछित को ढूंढ रहे हैं। विस्वास और सरला की स्थिति तो स्वाति नक्षत्र की वर्षा के पिपासु पपीहे सी है जो भटकता रहता है परन्तु यह विशिष्ट वर्षा तो अपने समय पर ही होगी न।

आधुनिक कृतियां व्यष्टि के साथ समष्टि की कृतियां भी हैं

अर्थात् किसी एक वाद या भाव को न ले सभी का कोलार्ज अपने में समोहे हैं। एक श्रेष्ठ रचना के प्रत्येक अध्ययन पर नवीन दृष्टि मिलेगी। परन्तु कहीं न कहीं खुद को सीमित करना पड़ता है। अत: इस मनोविश्लेषणवादी कृति में मैं मनोविज्ञान और अस्तित्ववादी बिंदुओं पर ही चर्चा करूंगी शेष पर किसी अन्य लेख में बात करेंगे।

अस्तित्ववादी धरातल पर उपन्यास में अकेलापन-अजनबीपन, शून्यताबोध, संत्रास, क्षमताबोध, विसंगति, क्षणबोध तथा स्वातन्त्र्यबोध आदि बिंदु मिलते हैं। वस्तुत: भावनात्मक धरातल से हटकर विचार के स्तर पर जब व्यक्ति अपने अस्तित्व को प्रभावी बनाने के लिए प्रयत्नशील होता है तो जटिल यथार्थ से टकराता है और ऐसे में अपने अकेलेपन का बोध उसे अधिक होने लगता है। कथानायक विस्वास भी अकेलेपन में जीने वाला पात्र, ऐसा पात्र जो लोगों के बीच भी नितान्त अकेला। विस्वास ने विवाह नहीं किया-पहले पिता की मृत्यु, फिर आर्थिक अभाव और फिर सरला का उससे दूर चले जाना उसे अकेलापन दे गये। अकेलापन जन्य शून्यताबोध भी उपन्यास में दिखाई देता है। विस्वास के मन और व्यक्तित्व में एक बेचैनी सी है क्योंकि जैसे ही उसका अवचेतन हावी होकर सीमाएँ तोड़ने लगता है उसका नैतिक मन चेतन हो जाता है। दूसरों को मंजिल और दिशा देने वाला विस्वास भीतर से पुन: शून्यताबोध से भर उठता है कि-''कैसी विडम्बना है मनुष्य के सामने भी। कभी वह अपने मन के भावों को अभिव्यक्त करना चाहता है, पर संकोचवश वह ऐसा कर नहीं पाता और कभी वह जिस अभिव्यक्ति की कल्पना तक नहीं करता उससे उसका साक्षात् हो जाता है।''[4] यही अस्तित्ववादी विसंगति है जिसको विस्वास सहित अधिकांश पात्र झेलने को विवश हैं।

इसी प्रकार संत्रास भी अपने उत्स में अस्तित्ववादी विचारधारा की देन है। इसे भय का आन्तरिक पक्ष भी कह सकते हैं। वस्तुत: ''संत्रास निजी अनिष्ट की आशंका से घुमड़न, तनाव, भय और असंतोष को सहेजे है।''[5] विस्वास और उसके सम्पर्क में आने वाले नारी पात्रों को प्राय: संत्रास घेरे रहता है, वे सभी संत्रस्त हैं कि उसके सम्बन्धों का भान अन्यों को न हो जाये। ऐसा नहीं कि अभिव्यक्ति के पात्र भाव जगत में ही विरचण करते हैं। उनमें गजब का क्षमताबोध भी है। संघर्षमय परिस्थितियों में भी जीने की राह निकाल लेना क्षमताबोध है-''क्षमताबोध स्थिति को स्वीकारने की वह क्षमता है- जिसमें

यातना, मृत्यु, अन्तर्विरोध, भयावहता आदि को देख-सह पाने की यथार्थता सम्मिलित है।''[6] कथानायक विस्वास का प्रयोगशाला सहायक से लेकर विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर पद पर पहुँचना , पढ़ाई में औसत रही सरला का एयर होस्टेस बनने का स्वप्न पूर्ण करना, मास्टरनी जी का अनमेल विवाह को त्यागकर अकेले रहते हुए पुरुषों को संगीतादि की शिक्षा देना आदि क्षमताबोध के सशक्त उदाहरण बन पड़े हैं।

'अभिव्यक्ति' वस्तुत: विविधताओं का दर्पण है, विरोधाभासी स्थितियों का संगम है। एक तरफ पात्रों में क्षमताबोध की दीप्ति है तो दूसरी ओर क्षणों में जीने वाले व्यक्तिवादी, भौतिकवादी क्षुधित पात्र जो क्षणों में जीते हैं, भोगते हैं, भूल जाते हैं। उपन्यास से वर्णन प्रस्तुत है-''ऐसे विचार.. भले ही व्यक्ति को उसके दुष्प्रभावों एवं अपयश का पूर्वाभास हो जाये परन्तु उनमें मिल रहे आनन्द में वह डूबता ही चला जाता है और चाहते हुए भी उसका मन वहां से हटने को राजी ही नहीं होता। विस्वास भी श्रीमती घोष की छवि में उतरता ही चला गया। उसे रह-रहकर उनकी स्मृति संजीवनी प्रदान कर रही थी। वह पलंग पर लेट गया।''[7] विस्वास के व्यक्तित्व में ही स्वातन्त्र्यबोध के दर्शन भी होते हैं। वह किसी एक बन्धन या रिश्ते में बंध कर न रहा है न रहना चाहता है। जहाँ बंधन मजबूत होने लगे वहाँ से नौकरी से तबादला करवा लेता है।

अस्तित्ववादी बिन्दुओं पर चर्चा करने के बाद उपन्यास की मूल ध्वनि मनोविश्लेषण पर पुन: लौटना होगा। यह कृति मनोविश्लेषण को सूक्ष्मता से पकड़े हुए है। 'अभिव्यक्ति' अनुभूतियों की ही तो होती है। अनुभूतियाँ मन में उत्पन्न होती हैं और मन का सम्बन्ध मनोविज्ञान से ही है। उपन्यास में नारी मनोविज्ञान, फ्रॉयडियन मनोविज्ञान, लिबिडो(कामकुंठा), उन्मुक्त साहचर्य, औचित्यस्थापन, तादात्मयीकरण, दिवास्वप्न, अंतर्मुखी पात्र, कुंठित पात्र तथा कुंठा से मुक्त करने वाले पात्रों सहित क्षतिपूरक प्रतिक्रियाएं आदि स्थितियाँ मिलती हैं। प्रस्तुत कृति में विस्वास के जीवन में जितनी भी स्त्रियाँ आईं उनके व्यक्तित्व और मनोविश्लेषण के कारण ही वह उनको आकृष्ट कर सका। उपन्यास से उदाहरण प्रस्तुत है ''.. जब स्त्री में आन्तरिक परिवर्तन प्रारम्भ होते हैं तो उसे स्वयं को भी पता नहीं चलता पर उम्र के बढ़ने के साथ-साथ उसके आचरण, व्यवहार एवं आन्तरिक भावनाओं में परिवर्तन होना स्वाभाविक ही

है और फिर लड़कियों की पन्द्रह-सोलह की उम्र तो तीव्र परिवर्तन की अवस्था होती है।''[8]

उपन्यास में लिबिडो अर्थात कामकुंठाएं बिखरी पड़ी हैं। फ्रॉयड कहते हैं-''लिबिडो का अर्थ बहुत व्यापक है और वह स्थूल काम भावना तक ही सीमित नहीं है। इसकी सीमा के अन्दर मनुष्य के सारे आनन्द, उत्साहपूर्ण कार्यकलाप, मिथुन व्यापार, प्रेम, घृणा जैसी मानसिक पक्ष वाली सब बातें आ जाती हैं।''[9] उपन्यास के विस्वास और अन्य स्त्री पात्र काम कुंठित पात्र हैं। विशेषत: स्त्री पात्र विवाहित होते हुए भी विस्वास के साहचर्य में संतुष्टि पाते हैं। इसी प्रकार उपन्यास की पात्र मास्टरनी जी ने नौकरी की खातिर पति से विवाह के 5-6 माह बाद मुक्ति ले ली अब -''प्रात: से दोपहर तक स्कूल में पढ़ाना.. और रात को संगीत, नौटंकी आदि का आयोजन, यही थी उनकी दिनचर्या। अनेक मनचले युवक तो उनके भक्त हो गये थे। कोई संगीत सीखने आ जाता तो कोई नौटंकी में किसी भूमिका के बहाने मास्टरनी जी के समीप रहने को लालायित रहता।''[10] इन काम कुंठित पात्रों के लिए 'बहन जी' सम्बोधन भी मात्र अध्यापिका वर्ग के लिए है, बहन शब्द से इसका कोई नाता नहीं।

कैलाश जी ने आलोच्य उपन्यास में दो विरोधाभासी स्थितियों का अनुपम संयोग प्रस्तुत किया है। एक तरफ जो कुंठित पात्र है तो वही दूसरों को कुंठा से मुक्ति भी दिला रहा है। एक तरफ नारी स्वातन्त्र्य की स्थिति है तो दूसरी ओर भारतीय समाज में नारी जीवन की विवशता भी दिखाई देती है। ऐसा वर्णन मनोस्थितियों का सूक्ष्म अध्येता ही कर सकता था और लेखक ने यह बखूबी किया। विस्वास जो स्वयं काम कुंठित है क्योंकि वह सरला को पा न सका परन्तु दूसरी ओर वह अन्य पात्रों को कुंठा से मुक्त भी करा रहा है। स्त्री पात्रों की ग्रंथियाँ विस्वास के समक्ष खुलने लगती हैं। उपन्यास का आद्यान्त अध्ययन करने पर देखते हैं कि उपन्यास में सरला, सुलभा भाभी, मिसिज घोष, मंजरी, विद्या, नीलम, मनीषा, ट्रेन वाली लड़की, सुरेश दीदी, माला, आभा, मास्टरनी जी, लगभग ग्यारह स्त्री पात्र आये हैं और सभी का कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में विस्वास से सम्बन्ध रहा है। कहीं-कहीं शारीरिक भी। परन्तु इन सम्बन्धों की प्रतिक्रिया स्वरूप होने वाले अपराधबोध की प्रतीती किसी पात्र में नहीं क्योंकि विस्वास का व्यक्तित्व इतना निश्छल और सहज है कि किसी का मन उसके प्रति मलिन नहीं होता।

अन्य विरोधाभासी स्थिति है नारी स्वातन्त्र्य और नारी विवशता की। ये नारी पात्र सामाजिक बन्धनग्रस्त रूढ़ियों के बन्धन से ग्रस्त हैं परन्तु अवसर मिलते ही उन्मुक्त भी हो जाते हैं। –''भारतीय समाज में बेटियों के संकल्प सामाजिक रूढ़ियों और जात बिरादरी के चक्रव्यूह में फंसकर छटपटाते रह जाते हैं।''[11] सरला जो आगे बढ़ना चाहती है पढ़ लिखकर कुछ बनना चाहती है सामाजिक रूढ़ियों के समक्ष झुक जाती है और विवाह के लिए हाँ कर देती है। लेखक कहते हैं–''परन्तु क्या वास्तव में स्त्री अपनी इच्छाओं के अनुरूप कुछ कर पायी है? कभी नहीं। वह सदियों से परतन्त्र रही है और सच्चे मायने में आज भी परतन्त्र ही है।''[12] जीवन की कटु सच्चाई को उजागर करती पंक्तियां हैं। उपन्यास में यही विवश नारी पात्र विचारों में अत्यन्त उन्मुक्त भी हैं सामाजिक बन्धनों ने इन्हें रोका तो है परन्तु इनके व्यवहार की उन्मुक्तता इन रूढ़ियों की कलई खोल देती है। कथा पात्र नीलम जो विवाहित है परन्तु अब भी वह अपने प्रेमी रोहित को भूल नहीं पायी है। विस्वास से कहती है –' आपसे मिलकर मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो मेरा रोहित वापस आ गया है और ये क्षण मैं उसके साथ बिता रही हूँ। आज यदि रोहित होता और यदि मुझे पति रूप में न भी मिलता, तो उसके साथ बिताये गए ये क्षण मात्र ही मेरे दुखों पर मरहम का काम करते।''[13] वर्जना इन पात्रों को अनियंत्रित करती रहती है। ये विवश नारी पात्र अवसर मिलते ही उन्मुक्त साहचर्य के लिए लालायित हो उठते हैं। उनके संवेग विरेचित होने लगते हैं। शायद यही आधुनिक बौद्धिक नारी का नैतिकता बोध भी है। वह न स्वयं शुचिता के छलावे में रहना चाहती है न किसी को भुलावे में रखना चाहती है। नारी–उन्मुक्तता का अर्थ सदैव संबंधों की उन्मुक्तता ही नहीं होता। इस घटना से यही ध्वनित होता है–''विस्वास को आभा से इस प्रकार की कतई उम्मीद न थी। उसे तो यही प्रतीत हुआ था मानो आभा अपने आपको समर्पित करने के लिए उसे अवसर प्रदान करना चाह रही थी। परन्तु विरोधात्मक तरीके से उससे यह प्रश्न करना कि 'यह क्या कर रहे हैं मास्टरजी आप!' और फिर अपने आपको बन्धनमुक्त कराकर नीचे जाकर कमरे की कुंडी बन्द कर लेना, उसे अजीब सा लगा और इस घटना से वह भौंचक्का सा रह गया।''[14] लेखक ने यहां सामाजिक मूल्यों का सकारात्मक रूप दर्शाया है। अत्याधुनिकता की दौड़ में भी पाँव हमारी संस्कृति, हमारे मूल्यों पर ही स्थित हैं। बदलाव अस्थाई है, समय का

बहाव है जबकि संस्कृति शाश्वत।

मनोविश्लेषण का एक पक्ष औचित्यस्थापन(रेशनलाइजेशन)का है–''औचित्य स्थापन स्वाभिमान कायम रखने की इच्छा से प्रेरित दोषपूर्ण, आत्मरक्षात्मक चिन्तन है।''[15] इसमें व्यक्ति अपने असंगत व्यवहार के लिए न्यायानुमोदित, तर्कसंगत कारण देने की चेष्टा करता है। कथा–पात्रों विस्वास और सरला में यह ग्रंथि यत्र तत्र दीखती है। अविवाहित विस्वास के अवचेतन में कामकुंठा है, दैहिक क्षुधा है परन्तु वह इसे सरला के प्रेम का आवरण पहनाए हुए है उसका चेतन, उसका नैतिक मन अनुचित को उचित का जामा पहनाना चाहता है–''उसका मन मंजरी की ओर से व्याकुल होने लगा। वह उठा ओर धीरे–धीरे चलकर उसके कमरे में जाकर बिस्तर पर बैठ गया। मंजरी आंखें बन्द किये आनन्द की नींद ले रही थी। .. उसे लगा मानो नटखट सरला जानबूझकर लेटी है। .. वह एक लम्बे अन्तराल के पश्चात् अपनी भूल का प्रायश्चित करने हेतु अपनी सरला के और अधिक निकट जाना चाहता था।''[16] विस्वास को प्रत्येक विपरीताकर्षण सरला के प्रति समर्पण प्रतीत होता है।

दिवास्वप्न भी एक मनोग्रंथि है।'' यह स्वप्न का ही एक अंग होता है, वह अंग जिसे देखने के लिए निद्रा के आवरण की कोई आवश्यकता नहीं होती। दिवास्वप्न और स्वप्न में यही अंतर होता है कि स्वप्न में हमारी वृत्तियां स्पष्ट और नग्न रूप में प्रकट होती हैं जबकि दिवास्वप्न में ये वृत्तियाँ किसी सुन्दर आवरण में लिपटी हुई होती हैं।''[17] विस्वास और सरला कल्पनाजीवी और स्मृतिजीवी पात्र हैं। कल्पना और स्मृति का स्वप्नों से धनिष्ठ सम्बन्ध है। जीवन के प्रथम आकर्षण को दोनों ही भुला न सके, अतृप्ति इन्हें दिवास्वप्नों की यात्रा करवाती रही। विस्वास सरला की छवियाँ तलाशता नायिकाएँ बदलता गया तो दूसरी ओर सरला विस्वास के दिवास्वप्नों में खोई अपने ममेरे भाई आशीष को अपना सर्वस्व अर्पित कर बैठी। मोहभंग होते ही उसे यह समर्पण अपना दैहिक शोषण(बलात्कार)प्रतीत होता है। इसी प्रकार तादात्मयीकरण, क्षतिपूरक प्रतिक्रियाएँ, अन्तर्मुखी पात्र आदि मनोवैज्ञानिक पक्ष भी कथा में विद्यमान हैं। उपन्यास का प्रारम्भ जिस बेचैनी, भटकना, अजनबीपन के साथ हुआ है अन्त उतना ही पूर्णता देने वाला है। जहां अन्त में सरला और विस्वास पुनः मिलते हैं। सरला एयर होस्टेस बनकर विस्वास का स्वप्न

पूरा करती है और डॉ. विस्वास उसी के शहर के विश्वविद्यालय में वाइस चांसलर के पद पर नियुक्त हुआ है। दोनों की भटकन यहाँ आकर अवकाश पाती है। स्थायित्व पाती है। सरला के बलात्कार की घटना से विस्वास को अपने प्रेमपात्र में कोई मलिनता नहीं दीखती वह उसे पत्नी रूप में स्वीकार करने को लालायित है।

सारांशत: प्रस्तुत रचना उपन्यास साहित्य की एक श्रेष्ठ कृति है। अज्ञेय और यशपाल सा मनोविश्लेषण करते कैलाश चंद्र शर्मा इसे प्रेमचन्दीय आदर्श तक पहुँचा कर इति करते हैं। यही आधुनिक समय की मांग भी है। हमें यथार्थ के साथ पुन: आदर्शों की स्थापना भी करनी होगी। इस भौतिकतावादी वातावरण में जहाँ स्त्री-पुरुष एक दूसरे के लिए दैहिक पदार्थ बन कर रह गये हैं, इस सोच को बदलने के लिए 'प्रेय का श्रेय' दिखाना भी साहित्यकार का धर्म है जिसे लेखक ने पूरी निष्ठा से निभाते हुए चिन्तन के नवदृष्टि बिंदु दिये हैं।

संदर्भ ..

1. डॉ. कैलाशचंद्र शर्मा : अभिव्यक्ति, पृ. 6
2. वही 3. वही, पृ. 18 4. वही, पृ. 76
5. डॉ. शशिभूषण पांडेय 'शीतांशु' : नई कहानी के विविध प्रयोग, पृ. 42
6. वही, पृ. 64
7. अभिव्यक्ति, पृ. 21 8. वही, पृ. 26
9. डॉ. देवराज सिंह उपाध्याय : हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान, पृ. 47
10. अभिव्यक्ति, पृ. 113
11. वही, पृ. 34 12. वही, पृ. 46 13. वही, पृ. 92
14. वही, पृ. 100
15. नॉरमन एल.मन : साइकोलॉजी, पृ. 221
16. अभिव्यक्ति, पृ. 81
17. कैलाश कुमारी : आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में स्वप्न मनोविज्ञान, पृ. 4

❑❑❑

25

'मौन सम्बन्धों की 'अभिव्यक्ति' का उपन्यास'

डॉ. जय कौशल

'अभिव्यक्ति' विस्वास नामक युवक की कथा के माध्यम से पुरुष और स्त्री के यौन-मनोविज्ञान और उसकी वर्जनाओं की अभिव्यक्ति का उपन्यास है। इसका कथानायक विस्वास एक आर्थिक रूप से कमजोर पृष्ठभूमि का लड़का है, जो बेहद कठिन परिस्थितियों से जूझते हुए इंजीनियरिंग कॉलेज में एडमिशन पाता है। पर बीच में ही अपने पिता की मृत्यु और अन्य परेशानियों के चलते वह अपनी पढ़ाई छोड़कर एक कॉलेज में प्रयोगशाला सहायक बन जाता है। वह जिस मकान में कमरा किराए पर लेकर रहता है, उसके मकान मालिक की लड़की सरला उसे पसन्द करने लगती है, जबकि विस्वास के मन में वैसा कुछ नहीं है। यहां तक कि वह सरला को बहिन कहता है और सरला भी उसे प्रकटत: भैया ही पुकारती है, परन्तु इसे वय का उन्माद कहें या विस्वास के सरल एवं आकर्षक व्यक्तित्व की भूमिका मानें, सरला के मन में भी विस्वास को लेकर प्रेम का अंकुरण हो जाता है। वह अक्सर विस्वास से नजदीकी पाने के लिए गणित पढ़ने के बहाने उसके कमरे में आती है। उपन्यासकार लिखते हैं, 'स्त्री का चरित्र बड़ा ही जटिल विषय होता है। उसके किस कथन का कौनसा भाव है, इसे जानना बड़ा कठिन काम है। देखने में जो भाव कठिन लगता है, व्यवहार में जो सामाजिक दायरे में प्रतिबद्ध जान पड़ता है, वह अपने वास्तविक रूप में क्या है, इसे तो केवल स्त्री ही जान सकती है।' सरला विस्वास को लेकर बड़ी संवेदनशील हो चली है, पर विस्वास उसे पूरी तन्मयता से, बिना किसर राग-विराग के पढ़ता है। उसके

* सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, प्रेसीडेंसी विश्वविद्यालय, कोलकाता

दिमाग में तो अपने पिता द्वारा कहे गए कुछ शब्द प्रेरणा की तरह गूँजते रहते हैं, 'बेटा विस्वास, बढ़ना ही जीवन है और मनुष्य को जीवन के अन्तिम क्षणों तक आगे बढ़ने हेतु प्रयासरत रहना चाहिए।' वह सरला को भी अक्सर आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हुए कहता, 'अगर तुम हायर सेकेण्डरी में फर्स्ट डिवीजन ले आओ तो एयर हॉस्टेस के कोर्स में प्रवेश के लिए भाग्य आजमा सकती हो, क्योंकि तुम देखने में स्वस्थ, सुन्दर एवं लम्बी हो।' पर सरला को उस समय विस्वास के अलावा कुछ नहीं सूझता था बल्कि एक दिन तो वह सुबह जल्दी उठकर बाथरूम में अर्धनग्न अवस्था में जाकर खड़ी हो जाती है ताकि विस्वास जब नहाने आये तो उसे देखकर दोनों के बीच प्रेम सम्बन्ध अपनी परिणति पा जाएं। किन्तु विस्वास तब तक उसमें एक बहन की छवि ही देखा करता था। सरला के प्रेम-संकेतों को वह उसकी बाल-सुलभ चंचलता समझता था। सरला को उस अवस्था में बाथरूम में देखकर वह उसे प्यार से झिड़क देता है और दरवाज़ा खोलकर बाहर आ जाता है। बस उसी दिन वह अपनी नौकरी और वह शहर छोड़कर चल देता है। पर सरला के मन में विस्वास और विस्वास के मन में सरला हमेशा के लिए बस जाते हैं। विस्वास के जाने के बाद सदा हँसती-खिलती रहने वाली सरला गंभीरता की प्रतिमूर्ति बन जाती है। वह जी-जान से अपनी बारहवीं की परीक्षा की तैयारी में जुट जाती है ताकि प्रथम श्रेणी से पास होकर एयर हॉस्टेस की परीक्षा दे सके और विस्वास का सपना पूरा कर सके। यहां तक कि वह अच्छे अंकों से पास भी हो जाती है और एयर हॉस्टेस की प्रवेश परीक्षा की तैयारी में लग जाती है। किन्तु इस बीच उसके लिए लड़के वालों के रिश्ते आने लगते हैं। लेखक ने तत्कालीन संवेदनशील स्थिति का चित्रण अग्रलिखित शब्दों में किया है-'लड़की चाहे कितनी ही प्रतिभाशाली हो, वह अपने जीवन में बहुत कुछ आगे करना चाहे, अपने भविष्य-निर्माण के कितने ही सपने देखे और भले ही उसके माता-पिता भी उसकी कल्पनाओं को साकार करने में उसकी अपेक्षित सहायता करना चाहें, परन्तु भारतीय समाज में उन सभी के लिए यह सब कुछ कर पाना बड़ा ही कठिन होता है। और फ़िर सरला का परिवार तो ऐसी जगह रहता था जहाँ जातिवाद, लोकलाज,धर्मभीरुता आदि का पक्ष बड़ा ही प्रबल था।' इधर सरला अपनी तैयारी में लगी थी, तो उधर जात-बिरादरी के लोग उसके ब्याह की अटकलें लगाया करते। अपने भविष्य-निर्माण में जी-जान से जुटी सरला

जात-बिरादरी के आगे अपने माता-पिता की स्थिति देखकर अंतत: विवाह के लिए प्रतिकार नहीं कर पाती। वह यह सोचकर अपने मन को समझाती है कि 'संतान का माता-पिता के प्रति भी कोई कर्तव्य होता है। वे विवश होते हैं, अपनी संतान के हितार्थ ही कोई निर्णय लेने को। अत: संतान द्वारा उन्हें सहयोग देना ही श्रेयस्कर है। और फ़िर भारतीय समाज में स्त्री की अपेक्षाएं, उसका संकल्प आदि स्वीकारेगा भी कौन? माता-पिता इसे समझ सकते हैं, पर यह रूढ़िवादी समाज क्योंकर स्वीकारेगा स्त्री की स्वच्छन्दता को।' वह मन मारकर विवाह के लिए हामी भर देती है। इस बीच सरला का ममेरा भाई आशीष उसके लिए एक रिश्ता लेकर घर आता है। लड़का एयरफोर्स में पायलेट है। घर में माता-पिता के अलावा और कोई सदस्य नहीं है। हालांकि उनकी थोड़े दहेज की मांग थी, जिससे आशीष अपने स्तर से निपट लेता है। जल्दी ही सरला और अभय का विवाह हो जाता है। अपनी सहमति देने के बावजूद सरला लगातार मानसिक द्वन्द्व से गुजरती रहती है कि उसे बनना क्या था और अब होने क्या जा रहा है। कभी उसका मन होता कि साफ़-साफ़ कह दे, 'ये शादी उसने खुशी से नहीं की है। वह तो आगे पढ़कर एयर-होस्टेस बनना चाहती थी, पर विवशता के चलते इस बन्धन में बंध गई।' तो दूसरे ही पल उसके मन में इसके विरोधी विचार आने लगते हैं। वह सोचने लगती है, 'यह कैसी भूल कर रही है तू। क्या तेरा पति इसे स्वीकार लेगा और तुझे आगे पढ़ने की अनुमति देगा। और यदि वह भला आदमी भी हुआ तो क्या पति-पत्नी का रिश्ता समाप्त हो सकेगा? कभी नहीं। यदि तूने अपने विचारों की अभिव्यक्ति कर दी तो अनर्थ हो जाएगा। तेरा पति तुझे कुलटा, कुलच्छिनी और व्यभिचारिणी कहकर घर से बाहर निकाल देगा और माता-पिता की जिस इज्जत को बचाने के लिए तूने जो अनचाहा बन्धन स्वीकार किया है, वह चूर हो जाएगी।' आखिर सरला को अपनी इच्छा को वहीं दबाना पड़ता है। वस्तुत: सरला का यह द्वन्द्व पढ़-लिखकर अपना भविष्य सँवारने की दिशा में लगी हरेक भारतीय युवती का द्वन्द्व है। हमारा देश स्त्री-शिक्षा और हर मामले में स्त्री-पुरुष की समानता की बातें चाहे जितनी करे, पर जब भी कोई स्त्री यथार्थ के धरातल पर उतर कर अपना आधार तलाशने का प्रयास करती है तो उसका इतना विरोध किया जाता है कि हारकर उसे अपने सपनों को तिलांजली देकर पति, रिवार और समाज में ही जीवन न्यौछावर करना

पड़ता है।

बहरहाल, विवाह के कुछ दिन बाद ही सरला का पति अभय ड्यूटी पर चला जाता है। उसके जाने के कुछ दिन बाद ही सीमा पर युद्ध छिड़ जाता है। युद्ध में सेना का एक जहाज बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो जाता है, जिसके पायलेट खुद अभय थे। बुरी तरह जख़्मी अभय की मौत हो जाती है। विवाह के बाद तुरन्त बेटे की मौत का सदमा न तो अभय के माता-पिता झेल पा रहे थे, न ही सरला। बल्कि आस-पड़ौस की औरतों के कहने में आकर सासू माँ सरला को ही अपशकुनी और डायन कहने लगती है, यहां तक कि एक दिन उसे हमेशा के लिए मायके भेज दिया जाता है। मायके लौटकर सरला बहुत मुश्किल से अपने को संभाल पाती है और पुनः एयर-होस्टेस बनने के प्रयास में लग जाती है। संयोग से प्रवेश-परीक्षा में उसका नाम आ भी जाता है। जब से सरला मायके लौटी, आशीष का घर में आना जाना बढ़ गया था। असल में, सरला की शादी से पहले जब उसने कई सालों के बाद सरला को देखा, तभी से उसके मन का पुरुष जाग गया था। यही कारण था कि सरला की शादी से लेकर अब तक वह सरला और उसके परिवार पर कुछ ज्यादा ही मेहरबान हो गया था। अपने कटु वैवाहिक अनुभव के बावजूद भविष्य के निर्माण हेतु संकल्पित और विस्वास के प्रेम में डूबी सरला व उसका परिवार आशीष के एहसानों तले दब चुका था। किसी को उसके व्यवहार के प्रति शंका नहीं थी। पर जल्दी ही आशीष अपना असली चेहरा दिखा देता है। एक दिन सरला के माता-पिता कहीं गये हुए थे, घर में वह और आशीष ही थे। आशीष सरला से पूछता है, 'क्या तुम बिना ब्याह के अपना जीवन बिता सकोगी?' प्रश्न सुनकर सरला अपने अतीत में खो जाती है। उसे लगता है मानो उसके सामने उसका विस्वास उपस्थित है, जो उसे गणित का कोई सवाल समझा रहा है। वह पुरानी यादों में इस कदर डूब जाती है कि अपनी सुध ही भूल जाती है। वह समझती है कि उसके समक्ष कामांध ममेरा भाई आशीष नहीं, उसका प्रिय विस्वास है और आज बहुत लम्बे अन्तराल के बाद वह उसकी मौन अभिव्यक्ति समझा है। सरला की इस हालत को आशीष अपने लिए मौन सहमति समझ लेता है और वस्तुतः उसे अपनी हवस का शिकार बना डालता है। जब सरला की चेतना लौटती है तो उसे अपनी वस्तुस्थिति

समझ में आती है कि उसने स्वयं को विस्वास के भ्रम में आशीष को समर्पित कर दिया था। उसे बारम्बार लग रहा था कि आज फ़िर से उसकी अभिव्यक्ति का बलात्कार हो गया। अगर वह कहीं इसकी शिकायत भी करे तो इस बात पर कोई यकीन नहीं करेगा। अंततः वह चुप लगाना ही अपनी नियति मान लेती है। परन्तु अपने प्रयासों से वह एयर-होस्टेस जरूर बन जाती है। इस उपन्यास में सरला की कथा के माध्यम से उपन्यासकार ने समकालीन भारतीय परिस्थितियों में नारी की पीड़ा और पेशानियों का बेहद खूबसूरत और यथार्थपरक चित्रण किया है।

यह रचना कथ्य की दृष्टि से अच्छी बन पड़ी है। उपन्यास में पूर्व-दीप्ति (फ्लैश-बैक) पद्धति का सुन्दर प्रयोग हुआ है। किन्तु औपन्यासिक शिल्प के स्तर पर इसमें कुछ कमजोरियाँ देखी जा सकती हैं। एक तो भाषा में वह अपेक्षित प्रवाह नहीं है, दूसरे वर्तनी की अशुद्धियां बहुत हैं। इसके बावजूद पुरुष एवं स्त्री के मनोविज्ञान और समकालीन तथाकथित आधुनिक एवं सभ्य समाज में खुद मेहनत कर अपने लिए बेहतर भविष्य की तलाश में लगी महिलाओं के अन्तर्द्वन्द्व और चुनौतियों की गहराई से समझ के लिए इस उपन्यास को जरूर पढ़ा जाना चाहिए।

❑❑❑

26

डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा द्वारा लिखित उपन्यास 'अभिव्यक्ति' की मूल संवेदना

डॉ. सुरजीत कौर

कैलाश चन्द्र शर्मा विरचित उपन्यास 'अभिव्यक्ति' मनुष्य के भावनात्मक पक्ष पर आधारित है। इस उपन्यास के अतिरिक्त डॉ0 कैलाश चन्द्र शर्मा ने 'तुक्के का बादशाह' (पाँच नाटक) 1997, नरेश मेहता का गद्य साहित्य (शोध-प्रबन्ध)- 1998, 'अबला की मंज़िल' (कहानी-संग्रह)- 1999 हिन्दी साहित्य को दिये।

अधोलिखित शोध प्रपत्र 2001 में प्रकाशित उपन्यास 'अभिव्यक्ति' पर आधारित है। 125 पृष्ठों में सिमटे इस उपन्यास के प्राक्कथन में लेखक ने अपने उपन्यास के 'केन्द्र' को स्पष्ट करते हुए लिखा है- 'अभिव्यक्ति का प्रत्यक्ष सम्बन्ध मनुष्य की भावनाओं से होता है। कभी कोई व्यक्ति अपने मन के भावों को अभिव्यक्त कर देता है, परन्तु दूसरा पक्ष उसको समझ पाने में असमर्थ होता है। कभी-कभी किसी पक्ष द्वारा भावनाओं की स्पष्ट अभिव्यक्ति के बिना भी दूसरा पक्ष उसे समझ लेता है, और कभी-कभी दोनों ही पक्ष अपने मन के भावों की अभिव्यक्ति करना चाहते हैं, परन्तु वे स्वेच्छा या संकोचवश ऐसा नहीं कर पाते और एक दूसरे से परिचित होते हुए भी अपरिचित ही बने रहते हैं।'

विस्वास (उपन्यास का नायक) सरला की अस्पष्ट प्रेमाभिव्यक्ति को नहीं समझ पाता लेकिन जब स्वयं मिसिज़ घोष के सौन्दर्य पर मोहित होकर अपने भावों की अस्पष्ट अभिव्यक्ति को महसूस करता है, तब अतीत में घटित

* हिन्दी विभाग, खालसा कॉलेज, अमृतसर।

सरला की अस्पष्ट प्रेमाभिव्यक्ति उसे समझ आती है। सरला को समझने में हुई चूक उसे पश्चाताप के ऐसे गर्त में ले जाती है जहाँ वह मिसिज़ घोष, विद्या दीदी, सुरेश दीदी, माला, मास्टरनी जी में सरला के व्यक्तित्व और उसकी अस्पष्ट प्रेमाभिव्यक्ति को तलाशता रहता है। दूसरी तरफ सरला अपने पहले प्रेम के खो जाने का गम नहीं भुला पाती और विस्वास के प्रेम के उन्माद में अपने शील की रक्षा नहीं कर पाती। उन्माद की स्थिति में आशीष को विस्वास समझ नैतिकता की सभी मर्यादायें लांघ जाती है। जब तक होश आता है, तब तक वह मान-मर्यादा सब कुछ गंवा चुकी होती है। अपने पति 'अभय' को कभी मन से स्वीकार नहीं कर पाती। अभय की मृत्युपरांत सोचती है- 'मैंने अभय के समक्ष अपने मन के भावों की अभिव्यक्ति न की इसमें उसका क्या दोष। उसने मुझे मन से स्वीकार किया है और युद्ध के मैदान में भी उसे मेरी चिंता है, और मैं? मैंने उसे मन से पति के रूप में नहीं स्वीकारा, उससे सदा ही दूरी रखी है।' [1]

'वह उसे मन से चाहता रहा और वह उसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति को भी स्वीकार न कर सकी, उसके मन के भावों को सही मायने में नहीं समझ सकी।' [2]

भावों की अस्पष्ट अभिव्यक्ति या एक पक्ष की अभिव्यक्ति को समझ पाने में असमर्थ रहे दूसरे पक्ष को भविष्य में पश्चाताप की किस अग्नि में जलना पड़ता है, इसको बड़ी ही मार्मिकता के साथ इस उपन्यास में लेखक ने व्यक्त किया है। लेखक ने अपनी इस कृति में स्त्री जीवन खास कर भारतीय स्त्री के जीवन की विवशताओं को बहुत ही सहज रूप में पाठकों के समक्ष रखा है। हमारे समाज में शादी-विवाह के समय लड़की की इच्छा-अनिच्छा को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता। बड़े-बुजुर्गों द्वारा जहाँ शादी तय हो, वहीं लड़की को सिर झुकाये जाना पड़ता है। ससुराल में भी भावों की सहज अभिव्यक्ति पर पहले दिन से ही रोक लगा दी जाती है। आधुनिक समाज में पढ़ी-लिखी युवतियों को जब इस दौर में से गुजरना पड़ता है तो वे घुटन में जीना स्वीकार नहीं करती और अपने आक्रोश की खुलेआम अभिव्यक्ति करती हैं। उनकी इस अभिव्यक्ति का परिणाम यह निकला कि भारत में 'तलाक' की समस्यायें बढ़ गईं। अभय के साथ अनचाहे विवाह के बाद सरला सोचती है- ''हमारे देश में कितनी बेटियां ऐसी होंगी जिनकी अनभिव्यक्ति का बलात्कार

न हुआ होगा, जिन्होंने अनचाहे सम्बन्धों के बोझ के नीचे अपना जीवन मिटा दिया होगा। मैं अकेली ही ऐसी न हूँगी, असंख्य होंगी ऐसी, पर वे बेचारी कर ही क्या सकती हैं।'' [3]

नई नवेली दुल्हन के लिए ससुराल पक्ष में अधिकार कम, कर्त्तव्य अधिक होते हैं और उसे अपने हर कर्त्तव्य, हर आचरण पर पूरा जो उतरना होता है। एक बहू के लिए यही वह कसौटी है जिस पर खरी उतरकर वह अपने ससुराल पक्ष पर अपना प्रभुत्व जमा सकती है और उससे जरा भी विचलन उसे सामाजिक प्रताड़नाओं, स्वजनों के प्रहारों और अप्रत्याशित लांछनों में भी धकेल सकता है। ऐसी स्थिति में पति का सामीप्य पत्नी के लिए एक बहुत बड़ा अवलम्ब होता है। परन्तु जब पत्नी के लिए पति ही एक विवशता स्वरूप प्राप्त किया गया उपहार हो तो उस पर ऐसा विश्वास कठिनाई से ही उत्पन्न हो पाता है। [4]

विधवाओं की समाज में दशा को भी 'सरला' के माध्यम से लेखक ने अभिव्यक्त किया है। अपने पति 'अभय' की मृत्यु के पश्चात् विधवा हुई सरला को अपनी ही जाति (स्त्री जाति) द्वारा 'डायन', 'अपशकुनी' कह कर मायके भेज दिया जाता है। सरला की सास सोचती है – 'यह लड़की जरूर अपशकुनी है, तभी तो इतना बड़ा हादसा हुआ हमारे घर में। अब मेरे घर में इसके लिए कोई स्थान नहीं। कल ही मैं इसके घर कहला भेजूंगी कि इस डायन को कोई आकर ले जाय यहां से' [5]

लेखक के कथानुसार- 'हमारा समाज पुरुष प्रधान है, जहाँ पर स्त्री शिक्षा पर भले ही कितना ही जोर दिया जाय, उसके उत्थान हेतु कितने ही कानून बनाये जाएं और भले ही उन्हें लागू करने का कितना ही ढोंग किया जाय, परन्तु क्या वास्तव में स्त्री अपनी इच्छाओं के अनुरूप कुछ कर पायी है? कभी नहीं। वह सदियों से परतन्त्र रही है और सच्चे मायने में आज भी परतन्त्र ही है। ' [6]

लेखक ने इस उपन्यास में हमारे समाज के सबसे गम्भीर मुद्दे 'बलात्कार' व 'यौन उत्पीड़न' को भी अभिव्यक्त किया है। नारी मुक्ति, नारी सशक्तिकरण, नारी-आरक्षण, इत्यादि नारे एक तरफ और नारी के साथ होने वाला यह कुत्सित कृत्य एक तरफ 'अभिव्यक्ति' उपन्यास में लेखक द्वारा मन: स्थिति को केन्द्र में रखकर बलात्कार के मुद्दे पर बात की गई है। एक

मन: स्थिति सरला की है जो अपनी पहली प्रेमाभिव्यक्ति में असफल होकर मनोरोगी हो जाती है। फ्रायड जैसे मनोविश्लेषणवादी चेतन, अवचेतन और अचेतन मस्तिष्क के इन तीन वर्गों की बात करते हुए कहते हैं कि जो इच्छायें किसी कारणवश पूरी नहीं हो पाती, वे खत्म नहीं होती बल्कि अवचेतन में समा जाती हैं और ये दमित भावनायें बार-बार बाहर आने की कोशिश करती हैं लेकिन चेतनता इन्हें दबाती रहती है। बहुत बार हम सपनों में वे सब कुछ करते हैं जो जाग्रत अवस्था में सामाजिक प्रतिबंध या किसी अन्य अंकुश की वजह से नहीं कर पाते। बहुत बार दमित भावनाओं वाले व्यक्ति पागल हो जाते हैं। सरला ऐसे ही 'उन्माद' की स्थिति में हर जगह विस्वास को देखती है, और आशीष द्वारा बलात्कार की शिकार होती है। सरला विस्वास को अपने अतीत की घटनाओं के बारे में बताते हुए कहती है- ''रात्रि का समय था। बाबा पहले से ही घर में नहीं थे, और मैं माँ को पड़ोस में जाने के लिए बाहर छोड़कर आयी और किवाड़ बंद करके उस कोठरी में आ गयी जिसमें पहले तुम रहा करते थे। उस समय आशीष उसमें पहले से ही बैठा हुआ था। परन्तु मुझे तो उसमें तब भी केवल मात्र तुम्हारी ही छवि परिलक्षित हुई थी

तुम मुझे गणित के सवाल समझा रहे थे और शरारतवश मैं सो जाने का उपक्रम करते हुए तुम्हारी गोद में लुढ़क गई थी। परन्तु उस दिन मैं तुम्हारी छवि के भ्रम में प्रत्यक्ष रूप में निद्रा की गोद में चली गयी थी। मुझे उस अन्धकार में तुम्हें पा लेने का भ्रम हो गया और आशीष ने मुझे अपनी हवश का शिकार बना डाला।' [7]

दूसरी मन: स्थिति विस्वास की है जो सरला की अस्पष्ट प्रेमाभिव्यक्ति को समय रहते समझ न सका तथा इस नासमझी के पश्चाताप स्वरूप कई स्त्रियों में सरला की छवि ढूँढता हुआ अनैतिक आचरण करने को विवश होता है। उन्माद की स्थिति में सरला की भाँति विस्वास भी मिसेज घोष में सरला को देखता है – ''विस्वास को लगा, मानो उसे मिसेज घोष के रूप में सरला मिल गयी है। उसकी आँखों से अश्रुधारा फूट पड़ी और वह मिसेज घोष को बार-बार अपने अंक में भींचता हुआ प्रायश्चित करने लगा।' [8]

'विस्वास को लगा मानो उसने सरला की अभिव्यक्ति को स्वीकार करके अपनी भूल का प्रायश्चित कर लिया है। मिसेज घोष को अपने अंकपाश में पाकर उसे लगा मानो उसने सरला के रूप में संसार का सर्वस्व सुख प्राप्त

कर लिया है।' उस समय सरला अपने आपको समर्पित करना चाह रही थी, परन्तु अस्पष्ट अभिव्यक्ति को वह तब समझ नहीं पाया था। परन्तु आज सरला उसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति से अपने आपको पूर्णरूप से विस्वास को समर्पित कर चुकी थी।' [9]

सरला के माध्यम से लेखक ने समाज में होने वाले आधे से ज्यादा बलात्कारों व यौन उत्पीड़न का कारण मनोरोग व उन्माद को ही बताया है। विस्वास के भ्रम में आशीष द्वारा बलात्कार का शिकार होकर सरला सोचती है- ''ऐसा कितनी ही अबलाओं के साथ होता आया है जीवन में, जब वे अपनी अस्मत लुटाकर भी केवल मूक बनी चुप रह जाने को विवश होकर रह जाया करती हैं। ऐसी स्थिति में क्या वे इसे बलात्कार साबित कर सकती हैं? कभी नहीं। कौन मानेगा उनकी इस बात को, उन विषम परिस्थितियों को, जिनके कारण उनके साथ ऐसा दुष्कृत्य हुआ और यदि उनकी बात मान भी ली जाय, तो क्या हमारा समाज ऐसी स्त्री को भद्र महिला के रूप में स्वीकार करेगा? कदापि नहीं। उन पर इस सत्य के उजागर हो जाने के कारण और अधिक अत्याचार होंगे और समाज के तथाकथित भद्र और सफेदपोश लोग उन्हें संरक्षण देने की आड़ में सदैव नोचते रहेंगे। क्या पता हमारे देश में अकारण एवं अनिच्छापूर्वक कोठों और आधुनिक होटलों में कितनी ही माताएं और बहनें इसी उन्मादी रोग के चक्रव्यूह में फंसती चली गयी होंगी।' [10]

समग्र रूप में देखा जाए तो 'अभिव्यक्ति' उपन्यास मनोवैज्ञानिक समस्या को केन्द्र में रखे हुए है। दमित भावनाओं के कारण विस्वास और सरला दोनों ही मनोरोग से पीड़ित होते हुए अनैतिक कर्म करते हैं। दूसरी तरफ कुंठित मानसिकता वाले आशीष जैसे लोग उन्मादी रोग से पीड़ित व्यक्ति की मनोदशा का अपनी स्वार्थ-सिद्धि हेतु फायदा उठाते हुए बलात्कार करते हैं।

संदर्भ :

1. अभिव्यक्ति: डॉ. कैलाशचंद्र शर्मा, पृष्ठ 47 प्रकाशक, साहित्यागार, जयपुर
2. वही, पृष्ठ 48 3. वही, पृष्ठ 46 4. वही, पृष्ठ 43 5. वही, पृष्ठ 60
6. वही, पृष्ठ 46 7. वही, पृष्ठ 24 8. वही, पृष्ठ 60 9. वही, पृष्ठ 62
10.वही, पृष्ठ 70

❑❑❑

27

अभिव्यक्तिः समीक्षा के आईने में

डॉ. विजय बहादुर सिंह

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, निर्धन कृषक परिवार में जन्मे और निर्धनता के कारण माध्यमिक शिक्षा को बीच में छोड़कर कलकत्ता की एक कैण्टीन में बैरे की नौकरी की। उसके बाद वे पुनः अपने शहर जयपुर लौट आये। उन्होंने कच्ची बस्ती की झुग्गी झोंपड़ियों में रहकर दीपक एवं लालटेन की रोशनी में अध्ययन करके एम.कॉम. तक की शिक्षा ग्रहण की। 1982 में उन्होंने पंजाब नैशनल बैंक में लिपिक के रूप में स्थायी रूप से कार्य आरम्भ किया।

डॉ. शर्मा से मेरी मुलाकात राँची विश्वविद्यालय में प्रो. नागेश्वर सिंह (प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, राँची विश्वविद्यालय) के यहाँ हुई। डॉ. शर्मा ने राँची विश्वविद्यालय से डी.लिट्. की उपाधि प्राप्त की और मैं इनका परीक्षक था। उस समय मुझे इनके संघर्षपूर्ण जीवन का रंच मात्र भी आभास नहीं था। ठेठ ग्रामीण परिवेश से आये और अपनी पहचान बनाने वाले डॉ. शर्मा एक दृढ़-इच्छा शक्ति वाले व्यक्ति हैं। वे उपन्यासकार, नाटककार, कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनका समूचा साहित्य, ग्रामीण परिवेश से लेकर आज के भौतिकवादी जीवन के पड़ाव में उन्हें जो अनुभव हुआ है उनका समग्र चित्र, उनके साहित्य में देखने को मिलता है।

'अभिव्यक्ति' उपन्यास डॉ. शर्मा के निजी जीवन एवं उनके इर्द - गिर्द सामाजिक जीवन में घटने वाली घटनाओं का दस्तावेज है। यह उपन्यास मानव की मानसिक वृत्तियों की सही तस्वीर पेश करता है। कथा कहने की शैली और कथा सूत्रों को जोड़ने में उपन्यासकार को महारथ हासिल है। सम्पूर्ण

*प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)

कथा के केन्द्र में डॉ. विस्वास और सरला हैं। उपन्यास के अन्त में डॉ. विस्वास विश्वविद्यालय के कुलपति नियुक्त होते हैं और वहीं उनकी मुलाकाल सरला से होती है जहाँ उन्होंने सरला को पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया।

डॉ. विस्वास जिस किराये के मकान में रहते थे उस मकान मालिक की लड़की सरला थी। सरला की आयु सोलह वर्ष और विस्वास की आयु बीस वर्ष थी। विस्वास उसे पढ़ाता था और परिस्थितियों एवं उम्र के कारण सरला उसके निकट आ जाती है। वह अपने आपको विस्वास को समर्पित करना चाहती है क्योंकि वह विस्वास के सरल एवं आकर्षक व्यक्तित्व से प्रभावित थी। उसकी भावना विस्वास के व्यक्तित्व से सम्मोहित थी। उपन्यास में एक स्थल पर वह कहती है –'बड़ा अजीब व्यक्ति है यह, टस से मस नहीं होता, पता नहीं किस मिट्टी का बना है।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा पृष्ठ 28–29)

उपन्यास का बीज और बिन्दु और महत्वपूर्ण स्थल मेरी दृष्टि में है–

सरला द्वारा स्नानगृह में स्नान करना और अवसर का लाभ उठाते हुए विस्वास को अपनी बाहों में जकड़ लेना। यही बिन्दु है जिसका स्मरण विस्वास और सरला को सदैव रहता है और अन्त में विस्वास सरला को पत्नी के रूप में स्वीकार कर लेता है।

सरला सत्रह वर्ष की आयु में विधवा हो गयी। उसके सगे मामा का लड़का आशीष उसके साथ बलात्कार करता है और आशीष में विस्वास की छाया देखते वह परिस्थितियों के अनुसार समर्पण कर देती है और बाद में उसे पछतावा होता है। इसके बाद भी सरला को डॉ. विस्वास द्वारा पत्नी के रूप में स्वीकार कर लेना एक नयी सामाजिक दृष्टि है। इससे डॉ. विस्वास के चरित्र का मानवीय औदात्य प्रकट होता है। सरला द्वारा यह कहना कि – 'मैं तो आज तक तुम्हें न भुला पाई, बहुत पहले ही अपना चुकी थी तुम्हें तो।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा पृष्ठ 125)

उपन्यास का यह अन्तिम वाक्य सरला के स्नानगृह का दृश्य और उसके पूर्व के सम्बन्ध को पुष्ट करता है।

डॉ. विस्वास का मिसेज घोष के साथ सम्पर्क, पूना छात्रावास के संरक्षक की विधवा पुत्रवधू जिसे वह भाभी कहता था और जो आयु में उससे दस वर्ष बड़ी थी उसका खुला आमन्त्रण, शयन कक्ष में विस्वास और मिसेज घोष को आपत्तिजनक स्थिति में घोष की लड़की माला द्वारा देख लिया जाना, विस्वास का माला से सम्बन्ध, विस्वास और मनीषा का सम्बन्ध, आभा और विस्वास का सम्बन्ध, पूजाघर का प्रकरण, आभा द्वारा खुला आमंत्रण देना – 'सब कुछ वहीं मिल जायेगा।' ये सभी घटना चक्र डॉ. विस्वास के साथ घटित होते हैं और उसमें कहीं न कहीं वह सरला की छवि देखता है। आशीष और सरला का जो सम्बन्ध है वह भी समाज में देखने को मिलता है। उपन्यासकार ने बड़े ही बेबाक ढ़ंग से इनका यथार्थ चित्र खींचा है। कथा कहने की शैली और सूत्रों को जोड़ने की उनमें अद्भुत क्षमता है। भाषा बहुत पैनी है।

उपन्यास में मिसेज घोष, आभा, माला, पूना वाली भाभी का प्रसंग। इस सन्दर्भ में केवल इतना ही कहना चाहूंगा कि हवा को बदलते देर नहीं लगती और न ही औरत के लिये आदमी को बदलते । यह बात उपन्यासकार स्थापित करना चाहता है। लेखक के शब्दों में– 'व्यक्ति का मन उसकी भावनाओं का यथेष्ठ संवाहक है। यह तो एक वैदिक काल से ही चला आ रहा अनुकरणीय सत्य है कि आत्मा ईश्वर का प्रतीक है और स्वयं की आत्मसन्तुष्टि के लिये किया गया कोई कार्य कदापि दुष्कृत्य नहीं हो सकता।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा पृष्ठ 98)

प्रेमचन्द युग में पारिवारिक उपन्यासों के दौर में शिक्षक और छात्रा के सम्बन्ध को लेकर बहुत कुछ लिखा जा चुका है जिसमें उपन्यासकारों की दृष्टि आदर्शोन्मुख रही है। युवकोचित वासना की शक्ति को स्वीकार करते हुए उपन्यासकारों ने शिक्षक और शिक्षिकाओं के प्रेम की परिणति विवाह में कर सामाजिक मर्यादा की मुहर लगाने की बराबर चेष्टा की। स्वभावत: ऐसे उपन्यासों का क्षेत्र सपाट और सीमित रहा। न तो वे मन की गहराइयों में उतर सके और न कोई यथार्थ सामाजिक दृष्टि देने में सफल हुए। 'अभिव्यक्ति' उपन्यास कुछ इसी ज़मीन पर लिखे जाने के बावजूद एक नये सामाजिक आयाम की ओर संकेत करता है।

स्त्री और पुरूष के बीच संचित वासना शक्ति को नियन्त्रित कर पाना

बड़ा कठिन कार्य होता है जिसकी पुष्टि करने के निमित्त ही उपन्यासकार ने 'अभिव्यक्ति' की सृष्टि की है। आरम्भिक दौर में उपन्यास का नायक छात्र के रूप में जिस सरला को शिक्षा देता है उससे बराबर दूरी बनाकर एक आदर्श चरित्र का उदाहरण प्रस्तुत करता है। जिस वासना का सूत्रपात उसके मन में हुआ उसे वह अपने आगे आने वाले जीवन में दबा नहीं पाया। आगे जितनी भी लड़कियों के सम्पर्क में विस्वास आता है किसी न किसी रूप में वह उनसे प्रभावित ही नहीं होता बल्कि वह विचलित भी होता है। यह युवकोचित कुण्ठा है जिसे दिखाने के लिये उपन्यासकार ने ताना बाना बुना है पर अन्त में एक विचित्र स्थिति और अवस्था में विधवा सरला को पत्नी के रूप में स्वीकार कर जिस आदर्श की सृष्टि करता है वह सराहनीय और स्वागत योग्य है।

एक लम्बे दौर की जीवन गाथा को समेटने में उपन्यासकार को उपन्यास के शिल्प से कहीं न कहीं समझौता भी करना पड़ा है जो घटना प्रधान उपन्यास लेखन की औपन्यासिक असफलता है। उदाहरणस्वरूप सरला का स्नानगृह में रहना और उसी समय विस्वास का आ जाना एक घटना ही है जिसे स्वाभाविक नहीं कहा जा सकता है। इस तरह की शैलीगत विवशता को स्वीकार कर लेने के कारण उपन्यास की शिल्पगत औपन्यासिक मर्यादा धूमिल हुई है। उपन्यास के दो प्रमुख पात्र विस्वास और सरला के माध्यम से उपन्यासकार ने जो सन्देश देना चाहा है उसमें उसे पूर्ण सफलता मिली है। निश्चित रूप से इस दृष्टि से उपन्यासकार ने एक नयी ज़मीन तोड़ी है।

❑❑❑

28

मौन की मुखर अभिव्यक्ति के संवाहक : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा

(लेखक के उपन्यास 'अभिव्यक्ति' के संदर्भ में)

डॉ. किरण छाबडा

किसी भी साहित्यकार की सर्जना सदैव कल्पना मात्र न हो कर यथार्थवादी भी हुआ करती है। यही उस साहित्यकार के लेखन का उज्जवल पक्ष एवं सापेक्ष सीमा भी होती है। मध्यवर्ग में किन्तु सांस्कृतिक सुरूचियों से परिपूर्ण परिवार में जन्मे डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का संस्कृत, लोक संगीत, लोक सहित्य एवं साहित्य लेखन के प्रति झुकाव अपने पिता श्री गणेशदास शर्मा जी के साहचर्य से हुआ। डॉ. कैलाशचन्द्र का साहित्य भी यथार्थपरक साहित्य सर्जना का उत्कृष्ट उदाहरण है जिसमें आम आदमी की जीवन कथा की प्रतिच्छाया स्पष्ट लक्षित होती है। अपने उपन्यास भी भूमिका मे डॉ. शर्मा कहते हैं कि, 'जीवन के हर पड़ाव पर विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों का साहचर्य मिला । बाल्यकाल से ही अनेक ऐसी विभूतियों से साक्षात्कार होता रहा जो मुझे मन की गहराइयों तक प्रभावित कर गए। मानस पटल पर वह आज तक ज्यों के त्यों अंकित हैं और वे ही मेरी साहित्य सर्जना के मूलाधार हैं।' साहित्यकार ने जिन परिस्थितियों को समय की अंजलि में भर कर जिस प्रकार ग्रहण किया है बिल्कुल उसी प्रकार अनुभूतियों को अपनी कलम के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है।

पूर्व स्मृति पर आधारित इस उपन्यास में कैलाशचन्द्र ने अवचेतन मन

* डॉ. किरण छाबड़ा, हिन्दी विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, अमृतसर

के द्वंद्व का बखूबी चित्रण किया है। उपन्यास का मुख्य पात्र विस्वास फ्रायड की मानसिक ग्रंथि ईद से संचालित है और पुरुषजन्य अहं का वाहक भी है। वह सरला की मौन अभिव्यक्ति को समझने में असमर्थ है या जानबूझ कर नही समझना चाहता है इसी के दौरान की कथा विन्यास , कथा क्रम को उपन्यास कार ने घटनाओं के सूत्र में पिरोया है।

बड़ा व्यक्ति बनने की चाहत लेकर ग्रामीण क्षेत्र से निकला ग्रामीण युवक विश्वास उपन्यास के अंत में एक विश्वविद्यालय के उपकुलपति (वाइस चांसलर) जैसे दायित्वपूर्ण गरिमामय पद तक पहुंचता है पर उसके अवचेतन में बार-बार सरला हावी होती रहती है। इसी क्रम में फिर चाहे उसके मिसेज घोष, सुशीला दीदी, गांव वाली दीदी, नीलम, आभा, मंजरी, माला, विद्या दीदी, मास्टरनी इत्यादि कितनों से प्रणय सम्बन्ध बनते एवं बिखरते हैं । शायद उपन्यासकार यह सिद्ध करना चाहता है कि प्रथम प्रेम का बन्धन अटूट होता है फिर भले ही जीवन विविध पड़ावों से गुजरे या विविध प्रसंगो से, मंजिल तो पहला प्रेम ही होता है।

विस्वास से ट्यूशन पढ़ती सरला की अशाब्दिक प्रेम अभिव्यक्ति विस्वास को मात्र किशोरावया का आकर्षण लगती रही किन्तु सरला की प्रतिमूर्ति उस के अवचेतन में सदैव स्थापित रही और उसके चेतन को प्रभावित करती रही। दूसरी तरफ स्पष्ट अभिव्यक्ति का कायल विस्वास उसकी मौन अभिव्यक्ति को समझने में तो नाकाम है लेकिन उसी के भ्रम में उसे विविध वय की स्त्रियों-लड़कियों के रूप सौन्दर्य को भोगने मे कोई आपति नहीं । स्त्री पुरुष सम्बन्धों, नारी मवोभावना, मनोरूचि, यौन क्षुधा, नारी मनोविज्ञान, अतृप्त मन से उत्पन्न विकारों, भ्रम में भोग इत्यादि कितने ही पड़ावों से गुजरते दोनों विस्वास और सरला को परिस्थितियां बार-बार वहीं ला कर खड़ा कर देती हैं जहां से वह भागे और भागते रहे। सरला के प्रथम प्रेम में तो फिर भी निमंत्रण की अस्फुटित अभिव्यक्ति रही किन्तु विस्वास अंत तक न समझ पाया कि यदि उसे मिसेज घोष, मंजरी, माला इत्यादि को सरला समझ के ही भोगना था तो वह सरला से क्यों भागा ? उम्र में दुगनी मिसेज धोष की गोल-मटोल देह, गोरा वर्ण, संध्या की लालिमा युक्त सुन्दर मुख, कपोलों की रक्ताभ छटा, ये सब विस्वास के मन मे उद्वेलन पैदा करते हैं तो आभा के आंगिक उभार जो गीले कपड़ों में बाहर आ जाने को व्याकुल हैं उसके धैर्य को चुनौती दे

देते हैं, दीदी की चूड़ियों की खनखनाहट आज इतने वर्ष पश्चात भी उसे व्यथित करती है और विस्वास दीदी के सुन्दर मुख के आलोक में सरला का मुख जान भटक जाता है। न जाने कौन सी ऐसी तृप्ति थी जिसे विस्वास पाना चाहता था लेकिन वाइस चांसलर बनने थे लम्बे सफर तक नहीं पा पाया?

उपन्यास मे कई सन्दर्भों में अवचेतन मन विस्वास पर कितना हावी हो जाता है कि विविध स्त्री पात्रों से प्रणय सम्बन्ध स्थापित करते हुए भी उसे कहीं भी -यह अनुभव नही होता कि वह सरला के साथ नहीं है किसी और के साथ है। मंजरी, माला, मिसेज घोष के साथ वह स्वयं पलायन कर जाता है तो आभा द्वारा सम्बन्धों को नकार देने ने पर पुरुषोचित अहं का प्रकटाव करता है जो कि पाठक को रुचता नहीं।

सरला अभय के साथ शादी हो जाने पर भी अतृप्त रहती है विस्वास की तरह अभय के समक्ष भी मुखर नहीं पाती और पति का पूर्ण प्यार पाकर भी वंचिता बनी रहती है। वह पति मे तो प्रेमी को ढूंढ नही पाती पर हवाई जहाज क्रैश में पति की मृत्यु के बाद ममेरे भाई आशीष में विस्वास की छवि ढूँढती है और भ्रम में आशीष द्वारा भोगी जाती है। सरला विस्वास से भावनात्मक स्तर पर दूरी नहीं बना पाती और कई बार उसी की वजह से शारीरिक प्रताड़ना की शिकार बन अपराध बोध से भर जाती है। उपयान्स का सकारात्मक पक्ष है कि वक्त और हलात के इतने थपेड़े खाकर भी वह अंत मे एयर होस्टस बनने का सपना पूरा करती है। इन मौन मुखर अभिव्यक्तियों में कब नीलम, आशीष, मंजरी, सुशीला दीदी, आभा, इत्यादि पात्र उभरते व डूबते चले जाते हैं और पाठक इन में खो जाता है कि उपन्यास के समाप्त होने का पता ही नहीं चलता।

ग्रामीण परिवेश का चित्रण करके भी लेखक ने पाठकों को आंचलिक क्षेत्र की छटा के दर्शन करायें हैं। आरम्भिक दिनों के संघर्ष के साथ विस्वास की पितृ स्नेहिल यादें पाठकों कों भाव विभोर कर देती हैं। स्वयं घी न खाना विस्वास के लिए घी जोड़ना, शहर जाते हुए एक एक चीज के बारे पूछना, मीलों दूर जाती बस को रोकर शर्ट देकर आना, कहीं न कहीं पाठक खो सा जाता है। इस उपन्यास की भाषा सीधी मन पर चोट करने वाली है। सीधे सादे शब्दों से गागर में सागर भरने का प्रयास किया गया है जैसे ''मनुष्य का जीवन भी मृग मरीचिका के सदृश होता है। जो वस्तु उसे मिल जाती है उससे

सन्तुष्ट नहीं होता और वह उससे अन्यत्र पाने के भ्रम में दिशाविहीन एवं विवेकशून्य होकर अबाध गति से भागता रहता है।''

नारी विषयक अवधारणा की अभिव्यक्ति में उपन्यासकार बिन्दास और मुखर है। वह कहता है- ''हर स्त्री अपनी भावनात्मक आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने का हर संभव उपक्रम करती है। उस समय न वह आयु देखती है, न ही ऊँच नीच तथा ना ही अन्य किसी प्रकार का भेदभाव।'' लेखक ने भाषा के माध्यम से स्त्री सुलभ चंचलता एवं उसकी मनोस्थिति का भी सूक्ष्म चित्रण किया है। उपन्यास की स्त्रियां मर्यादित रिश्तों में बंधी शब्दों और क्रियाओं के माध्यम से वह आपनी भावनात्मक तृप्ति करती दिखती हैं। स्त्री हो या पुरुष अपनी अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए कोई न कोई साधन ढूँढते हैं। पुरुष स्पष्ट अभिव्यक्ति करता और चाहता है। जबकि स्त्री अस्पष्ट अभिव्यक्ति करती है।

उपन्यास के अन्त में अतीत की स्मृतियों में खोये विस्वास को सरला मिल जाती है। वह उससे उसके अतीत के सन्दर्भ में यह जानकर भी कि वह विधवा भी है और बलात्कार की शिकार भी, उसे अपनाने के लिए तैयार हो जाता है। लेखक की यह पहल पाठक को बढिया लगती है। समाज को एक नया संदेश देती है। पुरुष को विशाल हृदय दर्शाया है। पर अन्त में विश्वास सरला के मिलन को एक दो पृष्ठ में तथा कुछ वाक्यों में ही वर्णित कर उपन्यास का समाप्त हो जाना पाठक को कहीं कहीं खलता सा प्रतीत होता है।

समग्र विवेचन के आधार पर इस रचना के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि यह उपन्यास पाठकों को लुभाने वाला है। इसमें जीवन की विसंगतियों, संघर्षों, अतृप्त इच्छाओं, अतृप्त यौन इच्छाओं, पुरुष के मन में स्त्री के प्रति सहजाकर्षण का चित्रण बखूबी हुआ है। अपने मन की बात अनुभूति और भावनाओं की अभिव्यक्ति, ये सब मनुष्य के जीवन के अत्यन्त महत्वपूर्ण पहलू है, और यही मनुष्य-व्यक्तित्व का विविध पक्षों से परिचय भी देते हैं। लेखक के इस उपन्यास का आधार मनुष्य का भावनात्मक पक्ष है, अत: इसे वही पाठक ठीक से समझ पायेगा जो इसके हर पक्ष का अपने जीवन के भावनात्मक एवं यथार्थपरक धरातल पर विश्लेषण कर पायेगा।

❑❑❑

29

'अभिव्यक्ति' ने साहित्य पढ़ने की रुचि लौटा दी

रेणुका इसरानी

प्रथम बार डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा की दो लिखित कृतियाँ पढ़ने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ। बचपन में साहित्य पढ़ने व लिखने की रुचि जो मुझमें थी वो कहीं न कहीं धूमिल होती जा रही थी पर जब मैंने डॉ. साहब का उपन्यास 'अभिव्यक्ति' पढ़ा तो स्तब्ध रह गई।

मानव अपनी मौलिक भावनाओं की अभिव्यक्ति करने में अपने आप को शर्मसार महसूस करता है परन्तु इस कृति में किसी प्रकार का ओछापन न होकर मौलिक भावनाओं को प्रत्यक्ष रूप में लिखा गया है तथा उपन्यास को पढ़कर ऐसा नहीं लगता कि ये केवल कागज़ पर लिखे शब्द हैं, वरन् हम सिनेमा तक पहुँच जाते हैं जहाँ कि भूत से वर्तमान के सफर को बहुत ही ख़ूबसूरत तरीके से बार-बार जोड़ा गया है। ये कागज़ पर उतारना अत्यन्त कठिन है। सराहनीय है ये।

जहाँ तक सवाल उठता है 'आधुनिक यमलोक' कृति का तो डॉ. साहब ने आज के सत्य पर एक कटाक्ष किया है जो कि हास्य के रूप में उभरा है। इसे पढ़कर या नाटक के रूप में देखकर मानव जाति को अपने कर्मों के प्रति कहीं न कहीं सचेत होना पड़ेगा जिससे कि हम एक अच्छे समाज का निर्माण कर सकें।

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा जी इस योगदान के प्रति बधाई के पात्र हैं।

❑❑❑

*रंगकर्मी-अभिनेत्री, 101ए, पर्ल अपार्टमेन्ट, थर्ड क्रॉस लोखण्डवाला कॉम्पलैक्स, अंधेरी (पश्चिम), मुम्बई-400053

30

'अबला की मंज़िल' : स्थापत्य और शिल्प

डॉ. जितेन्द्र वत्स

परंपरा और इतिहास-बोध साहित्य के लिए प्रेरणा, दृष्टि और दिशा-निर्देश का काम करते हैं। कोई भी साहित्यिक रचना इससे विलग होकर न तो सार्थकता प्रमाणित कर पाती है और न कालजयी बन पाती है। जैसे कोई वृक्ष अपनी मूल भूमि से विलग होकर, आकाशजीवी होकर अपना अस्तित्व बनाए रखने में सक्षम नहीं हो सकता, वैसे ही कोई भी रचना परम्परागत पृष्ठभूमि के बगैर वायवीय सिद्ध होती है। डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का कहानी संग्रह 'अबला की मंज़िल' न केवल परंपरा, पुरातन मानवीय मूल्यों से संबद्ध है, अपितु इस तथ्य का पुख्ता प्रमाण है कि इतिहास अपने को दुहराता है। यह कहानी-संग्रह बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में सन 1999 ई. में प्रकाशित है। यह दशक समकालीनता के दौर के लिए प्रख्यात रहा है, जहां मानवीय मूल्यों में टूटन, संत्रास, विघटन, स्वार्थपरता, आत्मकेन्द्रित मानसिकता का रूपायन हुआ है तो दूसरी ओर मार्क्सवादी वैचारिकता को कहानी के साँचे में ढालने, सर्वहारा और सर्ववंचित की पीड़ा, आक्रोश को वर्ग-संघर्ष के रूप में प्रस्तुत करने की अतिवादिता भी रही है। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक तक आते-आते हिंदी-कहानी में जिन प्रवृत्तियों का सकारात्मक-नकारात्मक विकास हुआ है, उस प्रमुख धारा के विपरीत और सर्वथा विलग चंद कथाकारों ने अपनी रचनाधर्मिता का निर्वहन किया है। वैसे ही वादमुक्त और कहानियों की बाढ़ से सर्वथा पृथक डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का यह कहानी-संग्रह आश्चर्यचकित भी करता है और अपनी अलग पहचान भी बनाता है।

डॉ. शर्मा के उपर्युक्त कहानी-संग्रह में ग्यारह कहानियां- 'अबला की

*प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया (बिहार)

मंज़िल' , 'माधवी', 'साक्षात्कार' , 'मौन समर्पण', 'चेहरे असली-नकली', 'नवजीवन', 'कर्ज़', 'दीपक की रोशनी', 'पैमाना', 'भटकती आत्मा' और 'ताबीज़' प्रकाशित हैं। इनमें से 'अबला की मंज़िल' , 'माधवी' और 'ताबीज़' लंबी कहानियां हैं, शेष कहानियों का कलेवर मध्यम कोटि का है और कुछ कहानियां लघुकाय हैं। इनमें से अधिकांश कहानियों का स्वर , दृष्टि और स्थापत्य बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक की कहानियों के समरूप है। इन्हें पढ़ते वक्त प्रेमचंद की कतिपय आदर्शोन्मुख कहानियों का स्मरण हो जाता है या फिर जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' की कहानियों की कोमल भावुकता, रसमयता का आनंद प्राप्त होता है। लगभग अस्सी-नब्बे साल पूर्व की कथा-दृष्टि और स्थापत्य से साक्षात्कार कराने का यह कलात्मक प्रयास अचरज भरा किंतु सुखद अनुभूति है। पाठकों को प्रेमचंद, जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' और जयशंकर प्रसाद की कहानी-कला का समवेत रूप और नव्यावतार का दर्शन कराने में प्रस्तुत कहानी-संग्रह की कहानियां पूरे तौर पर सक्षम हैं, न केवल दृष्टि और स्थापत्य के स्तर पर, अपितु भाषा और शिल्प के स्तर पर भी।

मानव-जीवन में प्रेम तत्त्व का महत्वपूर्ण स्थान है। यह प्रेम तत्त्व लौकिक भी होता है और विस्तार पाकर अलौकिक भी हो जाता है। प्रेम व्यक्ति को सहिष्णु, उदारचेता और संवेदनशील बनाता है। यह व्यक्तित्व को उत्कर्ष प्रदान करता है, समष्टि से जोड़ता है। इसलिए साहित्य में आदिकाल से अब तक महत्त्वपूर्ण बना हुआ है, साहित्यकारों ने इसके विविध रूपों को महिमामंडित किया है। डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का कथा-संग्रह भी इसका अपवाद नहीं है। समीक्ष्य कहानी-संग्रह की ग्यारह कहानियों में छः कहानियां- 'अबला की मंज़िल' , 'माधवी', 'साक्षात्कार', 'मौन समर्पण', 'चेहरे असली-नकली' तथा 'नवजीवन' की कथावस्तु प्रेमाधारित हैं। यह बात और है कि इन कहानियों में प्रेम के अतिरिक्त अन्य समस्याओं का निरूपण भी विद्यमान है।

प्रस्तुत कहानी-संग्रह की पहली कहानी 'अबला की मंज़िल' है। इसी कहानी के शीर्षक पर इस कहानी-संग्रह को पहचान देने की लेखकीय चेष्ठा की गयी है। यह एक लम्बी कहानी है और लम्बी कहानी का अपना वैशिष्ट्य होता है तो उसकी सीमाएं भी होती हैं। कथानायक अमर एक ग्रामीण युवा है, लेकिन अपनी पढ़ाई पूरी करने के लिए पास के शहर में किराए का कमरा लेकर रहता है। मकान-मालिक के बड़े लड़के पंकज के साथ उसका आत्मीय संबंध है। वह

पंकज के पिता को भाई साहब और उसकी माँ को चाची कहकर संबोधित करता है। पंकज के समस्त रिश्तेदार अमर के रिश्तेदार हो जाते हैं और उसके समस्त दोस्त अमर के दोस्त बन जाते हैं। रिश्ता इतना प्रगाढ़ हो जाता है कि अमर उस परिवार का अभिन्न अंग बन जाता है। पंकज का विवाह तय हो जाता है और इस अवसर पर पंकज की उदयपुर वाली मौसी अपने आठ वर्षीय बालक के साथ आती हैं। अमर की उम्र लगभग पन्द्रह वर्ष की है और पंकज की मौसी की उम्र लगभग उससे दुगुनी। इस शादीशुदा औरत के रूप और लावण्य पर वह मोहित हो जाता है। कथाकार ने अमर की मन:स्थिति का वर्णन निम्न शब्दों में किया है- ' और वह पुन: कमरे की खिड़की से उस अलौकिक लावण्य को देखने लगा- उम्र 28 के लगभग, सिर से पैर तक जैसे साँचे में ढली हुई। गोल-गोल मासूम सा चेहरा, तिरछे कजरारे नैन, जो गोरे-गोरे चेहरे पर तेज धारदार कटारों सदृश दिल में अंदर तक उतर गये थे। बोझिल मदभरी पलकें जब खुलती थीं तो भँवरों को अनुराग तड़ाग में कसमसाती कलियों का रसपान करने का लालच हो आता था और वे पलकों के खुले कपाटों से अंदर तड़ाग की गहराइयों में समा जाते थे और बौराये से कलियों के रसपान में इतने मस्त हो जाते थे कि मदभरी पलकों की बेहोशी में बंद हो जाने का होश ही न रहता। पता नहीं इस सरोवर में कितने भँवरे कैद थे। मदभरी पलकों पर सदा मस्ती का आलम छाया रहता और जब कभी वे खुलतीं तभी नवीन भ्रमरों को ऐसा अवसर प्राप्त हो पाता था।' [1]

समीक्ष्य कहानी में कल्पनाशीलता और भाषिक विशिष्टता छायावादी रचनात्मकता का स्मरण ताजा कराती है। अमर यदि मौसी के रूपलावण्य पर आकर्षित होता है तो मौसी भी हल्की नि:श्वास भरकर मित्रता का मौन निमंत्रण देती है। अमर के मन में उथल-पुथल मचती है। वह जान बूझकर अंधेरी सीढ़ियों पर मौसी से टकराता है। मौसी उसे बाँहों में थामती हुई मदभरी निगाहों से देखती है, तेज नि:श्वास छोड़ती है। कातिलाना दृष्टि से देखती है और दबी आवाज में अंक में जकड़े अमर से कहती है- 'छोड़ो भाई! किसी ने देख लिया तो मारे जायेंगे।' उसकी आवाज में तीव्र प्रतिरोध नहीं, अपितु मधुर साहचर्य का भाव है। अमर पत्र के माध्यम से भी अपनी प्रेम-संवेदना की अभिव्यक्ति करता है। वह रात्रि के एकांत में मौसी अर्थात् नीलम को निमंत्रित करता है, लेकिन नीलम उस एकांत में उसे काम-सुख देने के बजाय अपने जीवन की व्यथा-कथा सुनाती है। कहानी इस मोड़ पर आकर अपनी स्वाभाविक परिणति से नई जमीन तलाशती

है। नीलम अपने अतीत का रहस्य खोलती है। उसके माता-पिता गरीब थे। अपेक्षित दान-दहेज की राशि दे पाने में असमर्थ थे। उसके बहनोई उसकी अप्रतिम सुंदरता पर मुग्ध थे। अपनी वासना की पूर्ति जारी रखने के लिए उसके बहनोई ने उसकी शादी एक अर्द्धविक्षिप्त युवक से करवा दी। वह अनैतिक संबंधों से मुक्ति चाहती है, पति से संबंध विच्छेद कर किसी के घर की नौकरानी बनकर सम्मान का जीवन जीना चाहती है, लेकिन सामाजिक बंधन,जड़ता, पुरुष-प्रधान समाज की वर्चस्विता के आगे वह निरूपाय है। उसके पति के पास इतनी सामर्थ्य और समझ नहीं कि वह उसकी रक्षा कर सके- 'उसके पति के पागलपन का अनुचित लाभ उठाकर उसके सभी जीजी लोग, उसके दोनों देवर और अन्य पुरुष वर्ग उसके साथ गलत संबंध स्थापित करना चाहते हैं। देवरानियाँ यह सब जानते हुए भी अपने पतियों को रोकती नहीं अपितु उसके साथ ही निर्दयतापूर्वक व्यवहार करती हैं।' [2]

अमर अल्पवयस्क और उम्र के हिसाब से प्रौढ़ नहीं है। उसे नीलम के प्रति दैहिक आकर्षण भी है, लेकिन उसकी व्यथा सुनकर उसे समस्या से निदान के लिए जो परामर्श देता है, उसमें प्रौढ़ता का चरम प्रतीत होता है। 'उसने मौसी को परिस्थितियों से मुकाबला करने एवं संपत्ति के बँटवारे से अपना हिस्सा लेकर अपना स्वयं का कोई कारोबार करने की सलाह दी। मौसी ने उसके सुझाव को निश्चय में बदलने का फैसला किया जो उसकी आँखों की चमक से स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा था।' [3] मौसी उसके परामर्श पर अमल करती है और 'शोषित महिला ग्रुप ऑफ इंडस्ट्रीज' की प्रबंध संचालिका बनकर न केवल स्वयं आत्मनिर्भर बनती है, अपितु शोषित महिला समाज को भी स्वावलंबी बनाने में समर्थ होती है। अमर और नीलम की प्रेम-कथा में विराम और पुनर्मिलन के कई मोड़ आते हैं। अमर अपने परामर्श देने के बाद उसके जीवन से अदृश्य हो जाता है। नीलम के स्वावलंबन की संघर्ष-कथा को कथाकार ने ज्यादा महत्त्व नहीं दिया है। छात्र-जीवन के बाद अमर अचानक जिलाधिकारी बनकर नीलम के शहर में आता है। 'शोषित महिला ग्रुप ऑफ इंडस्ट्रीज' की एक्सपोर्ट यूनिट के शुभारंभ के अवसर पर नीलम उसे मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित करती है। वह इस अवसर पर पहुँचता है और नीलम को देखकर अपने आपको भूल जाता है- 'बड़ी-बड़ी आँखें, सँवरी हुई भौंहें, युक्ति से बनाया गया बालों का जूड़ा, नुकीली चिबुक और कजरारे नैन।' इस सौंदर्य के सम्मोहन में वह इतना वशीभूत

हो जाता है कि नीलम की इंडस्ट्री का संचालक बनने का प्रस्ताव स्वीकृत कर लेता है और जिलाधिकारी के पद से त्यागपत्र दे देता है। इस कहानी का अंत अमर के त्यागपत्र से होता है। यह घटना वस्तुत: आश्चर्यजनक, प्रेरणादायक, प्रेमोत्सर्ग से संबद्ध और त्याग की पराकाष्ठा का प्रतीक है। शायद इस दृष्टि से इस कहानी का शीर्षक 'त्यागपत्र' होना ज्यादा बेहतर होता।

कथाकार ने इस कहानी के माध्यम से यह संदेश देने की कोशिश की है कि एक अबला नारी सशक्त होकर ही उत्पीड़न से मुक्ति पा सकती है। नारी सशक्तिकरण से संबद्ध यह कहानी सिद्ध करती है कि अबला नारी यदि सबला बनती है तो वह कई अबलाओं को सबला बनाने में सक्षम हो जाती है। इस कहानी का यही स्थापत्य इसका प्राण है।

'माधवी' कहानी भी प्रेमाश्रित है। कथानायक अरुण विवाहित पुरुष है। सीमा उसकी पत्नी है। उसके बच्चे भी हैं। दांपत्य जीवन सुखमय है, लेकिन अरुण के मन में उसकी एक शिष्या की छवि बस गयी है। वह कॉलेज में प्राध्यापक है और कथानायक भी, उसका मन कोमल है और संवेदनशील भी। उसकी तथाकथित शिष्या माधवी भावुक और संवेदनशील है। वह स्वयं कविताएं लिखती है और अरुण की रचनाओं की सुधी और सहृदय समीक्षिका भी। वह अपनी पत्नी से कहीं ज्यादा अपने जीवन के लिए माधवी को अनुकूल समझता है। अत: अरुण को उस समय सीमा के पतनीत्व के कर्त्तव्य निर्वहन से इतनी प्रसन्नता न होती थी जितनी कि किसी नई रचना की समीक्षा के रूप में माधवी की प्रसन्नतायुक्त एवं प्रेरणास्पद आंतरिक अभिव्यक्ति से।

वह माधवी को अपनी रचनाशीलता की निरंतर प्रगति में सहयोगी और साहित्य एवं कला जगत में उत्तरोतर विकास में अपनी प्रेरणा मानता है। वह उसे अपने जीवन में अपनाना चाहता है, लेकिन उसकी और समाज की सीमाएं हैं। माधवी को अपना पाना उसके लिए एक अनुत्तरित पहेली है। वह कहानी लिखकर माधवी के मन में पल रहे भाव की वास्तविकता जानना चाता है, कभी वह गीत लिखकर अपने प्रेम की अभिव्यक्ति करता है। इसके उत्तर में माधवी भी कविताओं के माध्यम से अपने प्रेम की अभिव्यक्ति करती है। वह अरुण के मन के अनुत्तरित प्रश्न का उत्तर भी देती है–वह विवाह के बंधनों से मुक्त रहकर स्वतंत्र जीवन जीने और आजीवन प्रेम-संबंध कायम रखने का प्रण करती है, लेकिन अरुण का मन द्वंद्व से परिचालित है। 'उसका मन कहता- यहाँ सीमा के साथ

रहकर माधवी से प्रेम-संबंधों को न तो सीमा ही स्वीकार करेगी और न ही यहाँ का सभ्य समाज। फिर माधवी की स्वीकारोक्ति का मेरे लिए कोई महत्त्व ही न रहेगा' [4]

अमर के अंतर्द्वंद्व और प्रेम-त्रिकोण से मुक्ति के लिए कथाकार ने कहानी में एक नया मोड़ लाया है। अमर विदेशी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर नियुक्त हो जाता है। अपनी नियुक्ति के बाद वह अपनी पत्नी सीमा और बच्चों के लिए विदेश से भरपूर राशि भेज देता है। वह आदर्श पति के रूप में अपनी छवि निर्मित करता है। माधवी से संपर्क करने की कोई कोशिश नहीं करता। वह सिर्फ अनुमान लगाता है कि माधवी का विवाह हो चुका होगा और इस लंबे अंतराल में उसे भूल गयी होगी। कहानी जब उलझ जाती है, जब कथाकार की कलम से फिसल जाती है और ऐसी विकट स्थिति में उसकी अंतिम परिणति तक पहुँचाने के लिए कथाकार को संयोग-सूत्र का दामन थामना पड़ता है।

विदेशी जमीन पर प्रेमी युग्म के मिलन से यह कहानी पूरी होती है। दो तड़पते प्राणी अंतत: एक हो जाते हैं। कथाकार ने कहानी को सुंखांत परिणति प्रदान की है, आदर्श प्रेम की ताकत की सार्थकता प्रमाणित की है, लेकिन इस सुखांत परिणति के क्रम में अरुण की आदर्श पति-छवि चकनाचूर हो जाती है।

'साक्षात्कार' कहानी में भी प्रेम का त्रिकोण रूपायित है। डॉ. बादल और अलका चौधरी में पुराना प्रेम है। यहां प्रेम कम और दैहिक आकर्षण ज्यादा है। डॉ. बादल प्रशिक्षु अलका का सौंदर्य देखकर आकर्षित है- 'वह जब भी उसकी ओर देखता उसे ऐसा लगता मानो वह उससे कुछ कहना चाहती है। वह अन्य लड़कियों की तरह वाचाल न थी, उनकी तरह खुलकर न बोलती थी। उसकी नजरों में ऐसा जादू था कि बादल उसकी ओर खिंचता ही चला गया।' [5]

लेकिन यह आकर्षण एकतरफा नहीं है। अलका उसके शोधकार्य में पूरी तन्मयता से सहयोग करती है। वह उसके प्रति आश्वस्त और समर्पित है। वह बादल से कहती है- 'आपने अभी मेरे विचार जाने हैं, मेरी पूजा नहीं देखी मेरे आराध्य। मैं आप द्वारा बताये रास्ते पर चलकर शहीद होना सत्कर्म मानती हूँ, बजाए पुराने रूढ़िवादी सामाजिक बंधनों की सलोनी सेज पर किसी अनजाने व्यक्ति, बेमानी विचारों और रूमानी औपचारिकताओं के साथ अपना जीवन बलिदान करने के।' [6]

डॉ. बादल वस्तुत: अलका चौधरी को प्रेम-भावना में बहने के लिए

प्रोत्साहित करता है। वह उसके दैहिक आकर्षण का शिकार है और मन बहलाव से आगे की यात्रा के लिए प्रतिबद्ध नहीं है। वह विवाहित पुरुष है लेकिन जब तक उसकी पत्नी डॉ. सुरभि जीवित रहती है, वह अलका से दूर रहता है। कथाकार ने अलका और बादल के पूर्व प्रेम के नवीनीकरण के लिए सुरभि की मौत की घटना का आश्रय ग्रहण किया है। पति, पत्नी और प्रेमिका का यह त्रिकोण अंतत: पत्नी की मौत के बाद ही समाप्त होता है। सुरभि की मृतात्मा इनके प्रेम को स्वीकृति देती है–'दोनों ने देखा कि सामने वाली दीवार पर टंगी सुरभि की तस्वीर हवा में हिल रही थी। वे ठगे से देखते रह गये और तस्वीर का फ्रेम धड़ाम से जमीन पर गिरकर चकनाचूर हो गया।' [7]

फ्रेम का गिरकर चकनाचूर हो जाने का बिम्ब यह संकेतित करता है कि सुरभि की आत्मा इस युग्म प्रेमी के जीवन से अपने को विलग कर लेती है। डॉ. बादल और उसके अस्पताल को एक नया आधार अलका चौधरी के रूप में मिल जाने से इस कहानी का बेहतर शीर्षक 'आधार' होना ज्यादा उपयुक्त होता।

'मौन समर्पण' का कथ्य भी प्रेमाकर्षण से संबद्ध है। नवीन अपने छात्र-जीवन में मालिनी को पसंद करता है। उसका लुभावना चेहरा उसके मस्तिष्क में बैठ जाता है। वह उससे विवाह करने के लिए आतुर है, लेकिन दोनों परिवारों की आर्थिक-सामाजिक पृष्ठभूमि में बहुत बड़ा अंतराल होने के कारण नवीन का सपना पूरा नहीं हो पाता। पंद्रह वर्षों के बाद जब वह मालिनी की बहन डॉ. भारती से मिलने जाता है तो उसे यह रहस्य ज्ञात होता है कि मालिनी बत्तीस वर्ष की आयु में भी कुँवारी ही है। वह उसके त्याग से अभिभूत हो जाता है- 'निर्णय नहीं कर पा रहा था कि उसके घर जाए या न जाए, क्योंकि अब वह विवाहित व बाल-बच्चों वाला सफल ग्रहस्थ था।' [8] लेकिन वह अच्छी नौकरी में है, संपन्न भी हो चुका है, इसलिए मालिनी के आततायी पिता की गलतियों का अहसास कराने के लिए वहाँ जाने का निर्णय लेता है। ऐसा वह अपने अहं की संतुष्टि के लिए प्रतिक्रियास्वरूप लेता है जिससे कहानी का स्थापत्य पाठकों की दृष्टि से ओझल हो जाता है।

'चेहरे असली नकली' कहानी में प्रेम और आर्थिक संबंध को निरूपित किया गया है। अनिल और सुधा कॉलेज में सहपाठी हैं। अनिल संपन्न परिवार का लड़का है और पढ़ाई में भी प्रथम श्रेणी लाता है। सुधा और अनिल का प्रेम परवान चढ़ते जाता है, लेकिन अनिल का परिवार जब आर्थिक संकट में फँस जाता है तो

सुधा के प्रेम की असलियत सामने आती है। वह अनिल को सहयोग नहीं करती- 'उसे क्या मालूम था कि सुधा उससे नहीं, उसकी दौलत से प्रेम करती थी।' [9]

दूसरी ओर वर्षा नाम की लड़की उसे सहारा देती है। यह वर्षा वही लड़की है, जो अर्थोपार्जन के लिए अनिल की फैक्ट्री में काम करती थी। सुधा के कारण अनिल ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया था और उसे नौकरी से निकाल दिया था। वर्षा श्रम और संघर्ष के बल पर कॉलेज में लेक्चरर बन जाती है और अनिल के साथ विवाह करने और उसे पीएच.डी. कराने का संकल्प लेती है। संघर्षशील व्यक्ति ही संघर्षरत आदमी की पीड़ा समझता है, उसका दर्द बाँटता है और सहयोग करने के लिए आगे आता है। यही इस कहानी का स्थापत्य है। यह अपेक्षाकृत छोटी, भाषा और शिल्प की दृष्टि से सुगठित तथा प्रभावोत्पक कहानी है।

'नवजीवन' कहानी अपने शीर्षक की सार्थकता सिद्ध करती है। यह सामाजिक जड़ता को चुनौती देती है। नारी और पुरुष वर्ग की समानता की पक्षधर है। कथानायक सुशील सामाजिक आडम्बर के विरूद्ध अपनी अंजू भाभी को समझाता है-'समाज के ठेकेदारों ने बिना सोचे समझे न जाने कितने उल्टे-सीधे नियम बना रखे हैं। औरत विधवा हो जाती है और आजीवन शादी जैसे पवित्र बंधन का हक खो बैठती है, परन्तु क्या पुरुष विधुर होने पर दूसरी शादी के अधिकार से वंचित हुआ है ? '[10]

सुशील इस भयावह यथार्थ का सहभोक्ता है। उसके बड़े भाई दीपक का विवाह अंजू से हुआ था। बारात लौटकर घर आयी और दीपक अर्धांगिनी के पास भी नहीं पहुँचा कि आकाश से बिजली गिरी और दीपक के प्राण-पखेरू उड़ गये। सुशील प्रगतिशील विचारों का युवक है। वह अपनी भाभी का पुनर्विवाह करने के लिए राजी करने में सफल होता है। उसका मित्र संजू उसके घर आता है। वह आई.ए.एस. की परीक्षा उत्तीर्ण कर चुका है। वह संयोग से अंजू से पूर्व परिचित है। अंजू के हेडमास्टर पिता का शिष्य है। वह सच्चे दिल से अंजू को प्यार करता है। उसने कभी प्रतिज्ञा की थी- 'शादी करूंगा तो सिर्फ अंजू से ही, वरना कुँवारा ही रहूंगा।' [11]

संयोग से अंजू विधवा है और कथाकार ने इन दोनों पूर्व प्रेमियों को विवाह के बंधन में बाँधकर सामाजिक जड़ता को चुनौती देने की कोशिश की है। सब कुछ अप्रत्याशित ढंग से संपन्न होता है। अंजू की सास अर्थात सुशील की माँ

भी इसका हार्दिक स्वागत करती है। यह कहानी स्थापत्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, लेकिन संयोग पर आधारित घटनाओं के कारण कहानी की स्वाभाविकता और विश्वसनीयता में अनपेक्षित क्षरण होता है।

'कर्ज' कहानी निम्नमध्यवर्गीय परिवार की समस्याओं से जुड़ी कहानी है। कथानायक सौरभ मेधावी छात्र है। वह भावुक, सहृदय, परोपकारी और संवेदनशील व्यक्ति है। वह शहर में पढ़ता है, लेकिन उसका परिवार गाँव में ही रहता है। उसके परिवार की आर्थिक स्थिति अत्यंत चिंताजनक है। वह शहर के बड़े कॉलेज में राष्ट्रीय छात्रवृत्ति और ट्यूशन के सहारे अपनी पढ़ाई में लगा हुआ है। पारिवारिक वातावरण तनावपूर्ण और बड़े भाइयों के असहयोगी रूख तथा अड़चनों के बावजूद वह अपनी पढ़ाई जारी रखे हुए है। वह अपने बड़े भाई राकेश को विदेश में नौकरी लगाने के लिए अपने दोस्त का सहारा लेता है। वह राकेश को विदेश भेजने के लिए बैंक से कर्ज़ लेता है जिसके लिए अपने हिस्से की ज़मीन गिरवी रख देता है। राकेश विदेश से उसका कर्ज़ चुकाने के लिए रुपए भी भेजता है जो राकेश की नीलाम होती ज़मीन छुड़वाने में खर्च हो जाते हैं। वह अपनी ज़मीन बैंक के ऋण से मुक्त नहीं करा पाता और अपनी पढ़ाई जारी रखने के लिए अपने बड़े भाई राकेश से आर्थिक सहायता की याचना करता है। राकेश उसकी प्रार्थना को झटके के साथ खारिज कर देता है, लेकिन बैंक मैनेजर उसे अपनत्व भी देता है, उसकी ज़मीन का कर्ज़ अपनी जेब से चुकाता है और उसकी पढ़ाई जारी रखने के लिए अपेक्षित सहयोग करने के लिए खड़ा भी होता है। सौरभ को अपने भाई से दुत्कार मिलती है तो दूसरी ओर पराया होने के बावजूद सदाशयी बैंक मैनेजर उसके लिए चमत्कारिक पुरुष सिद्ध होता है। संवाद-शिल्प में रचित यह छोटी-सी, किंतु सुंदर कहानी है।

'दीपक की रोशनी' का कथानक एकदम नवीन और मौलिक है। यह देश-प्रेम और उसकी रक्षा के लिए शहीद हुए अक्षय की मौत से गमगीन गाँव की कहानी है। अपने इकलौते पुत्र की शहादत से सोना और जयराज के जीवन में दु:ख का पहाड़ टूट पड़ा है, लेकिन इस दंपत्ति को इस बात की खुशी है कि उनका बेटा देश की रक्षा के लिए शहीद हो गया। गाँव का मुखिया अक्षय की शहादत के कारण दीपावली नहीं मनाने की घोषणा करता है। गाँव में कहीं भी दीपक नहीं जलते, लेकिन जयराज की मुंडेर पर जलता दीपक देखकर मुखिया आग-बबूला हो जाता है। वह इसके लिए दोषी व्यक्ति को सज़ा दिलाने के लिए

पंचायत बुलाता है। उस पंचायत में अक्षय की माँ अनपेक्षित ढंग से उपस्थित होकर यह स्वीकार करती है कि वह दीया मैंने स्वयं जलाया है। वह तर्क प्रस्तुत करती है- 'मेरा अक्षय भी तो इसी दीपक की भाँति जलता रहा था और तब तक जलकर मातृभूमि को रोशनी देता रहा था, जब तक कि उसमें प्राण रहे। अगर मैं आपकी जगह होती तो कभी गाँव को दीपावली मनाने से नहीं रोकती, बल्कि मैं यह कोशिश करती कि गाँव के हर घर में इतने दीये जलते कि वे अपनी रोशनी इस गाँव को ही प्रदान नहीं करते बल्कि उनकी रोशनी गाँव के बाहर चारों ओर फैलकर गाँव के अस्तित्व की विद्यमानता का पुख्ता सबूत देने में और अक्षय के शहीद होने पर गाँव में खुशी की विद्यमानता का आभास कराने में सहायक होती।' [12] सोना की अपेक्षा के अनुरूप ही मुखिया गाँव में धूम-धाम से दीपावली मनाने की घोषणा करता है। अब गम में डूबा हुआ गाँव खुशियां मनाता है, मिठाइयां बाँटता है।

यह नए स्वर की एक अद्‌भुत कहानी है, जो गाँव में नवजागरण और राष्ट्र-प्रेम का अलख जगाती है। गम और उदासी से संचरित इस कहानी की सुखांत परिणति आश्चर्यचकित करने वाली है और साथ ही कथाकार के कथा-कौशल का द्योतक भी है। कैलाश जी की अपेक्षाकृत छोटी कहानियाँ ज्यादा प्रभावोत्पादक बन गयी हैं।

'पैमाना' कहानी का कलेवर भी छोटा है। तंगहाल परिवार का मेधावी लड़का कुणाल अपने भाई के बच्चों के लिए बहुत मुश्किल से जूते खरीदकर जब गाँव आता है तो अपने दरवाज़े पर सेठ जीवनदान की उपस्थिति में कर्ज़ के एवज में घर का प्रमुख सामान निकालते हुए देखता है। कुणाल के द्वारा बच्चों को पहनाए गए जूते भी उतारने के लिए सेठ आगे बढ़ता है, लेकिन उसी वक्त गाजे-बाजे के साथ लोगों की भीड़ आकर उसके कलैक्टर बनने पर बधाइयां देती है, तब सेठ के हाथों से कर्ज़ की बही अचानक गिर पड़ती है। जाहिर है कि अब कुणाल शोषित नहीं होकर , कर्ज़दार नहीं होकर कलैक्टर अर्थात् सामर्थ्यवान शासक बन गया है और सेठ की हैसियत उसके सामने अत्यंत छोटी बन गयी है। कहानी का अंत अत्यंत प्रभावशाली और व्यंग्यात्मक होने के कारण यह रचना उल्लेखनीय और स्मरणीय बन गयी है।

'भटकती आत्मा' एक प्रतीकात्मक एवं व्यंग्यधर्मी लघुकाय कहानी है। गाँव का एक बूढ़ा आदमी गरीबी के कारण दवा के अभाव में दम तोड़ देता है।

उसके श्राद्ध-कर्म में उपस्थित लोग उसके बेटों को कोसते हैं कि उन्होंने बूढ़े की उचित चिकित्सा नहीं करवायी सबों ने औपचारिक सहानुभूति व्यक्त करते हुए भोजन में परोसे हुए व्यंजनों पर ध्यान केंद्रित रखा। बूढ़े के परिचित ने यह खुलासा किया कि इस आयोजन में सेठजी ने रुपए देकर बहुत उपकृत किया है। यही सामाजिक विडंबना है। जिस व्यक्ति के जीवित रहते समाज उसकी सुधि नहीं लेता, वही समाज उसके श्राद्ध-कर्म के लिए सुस्वाद भोजन का आनंद उठाता है। बूढ़े की आत्मा इस अवसर पर आनंदित होने के बजाय दु:खी और कुपित होती है। एक उल्लू के माध्यम से कथाकार ने इस आडंबर पर व्यंग्य किया है- 'एक तरफ कुत्ते हैं और कुत्तों से भी गये गुजरे ये समाज के ठेकेदार हैं जो व्यंजनों से धाप चुके हैं और उन्हें अब इनसे नफरत सी हो गयी है। दूसरी तरफ बेचारे बुड्ढ़े की आत्मा है जो मिठाइयों की खुशबू का आनंद भी आराम से नहीं उठा सकती, खाना तो दूर रहा।' [13]

यह कहानी प्रेमचंद लिखित 'कफन' कहानी के घीसू की उस टिप्पणी की सार्थकता सिद्ध करती है, जिसमें उसने कहा था कि जिसे जीते-जी चिथड़ी नसीब नहीं, उसे मरने के बाद नया कफन चाहिए। जाहिर है, कफन-काल (1936 ई.) से लेकर इस इक्कीसवीं शती तक सामाजिक विडम्बना की संरचना में कोई बदलाव नहीं आया है। इस दृष्टि से कैलाश जी की 'भटकती आत्मा' कहानी की सार्थकता और समीचीनता संदेह से परे है।

'ताबीज़' कहानी अनास्था औा साधु-संतों के प्रति अविश्वास के दौर में एक साहसिक कहानी है। अधिकांश समकालीन कथाकार जब भूत-प्रेत, साधु-महात्माओं को वायवीय, आडम्बरयुक्त, ढोंग, स्वार्थपरता, छल-छद्म और दुराचरण को उद्घाटित करने में अपने कथा-कौशल्य का उपयोग करने में लगे हैं तो इस धारा के विपरीत डॉ. शर्मा की 'ताबीज़' कहानी भूत-प्रेतों का अस्तित्व और महात्माओं द्वारा उनके निदान करने, बाँझ नारियों को तंत्र-मंत्र की सिद्धि से संतान-प्राप्ति की आशा जगाने का साहस करती है। इस कहानी में अवांतर कथा भी है, जो मूल कथा को शक्ति देती है और स्थापत्य को समर्थन देती है। यह कहानी पूर्व दीप्ति शैली और संवाद-शिल्प के माध्यम से पाठकों को बांधकर रखती है और अपनी यात्रा निर्विघ्न रूप से तय करती है। मूल कथा एक ही साथ तीन पीढ़ियों से जुड़ती है। ये तीनों पीढ़ियां महात्मा जी के प्रति आस्थावान और विश्वस्त हैं। कुलदीप अपने बचपन में दादा के साथ आश्रम जाया करता था।

उसके दादा पूजा-पाठी और धर्म के प्रति आस्थावान थे। वे पेशे से इंजीनियर थे। वे विज्ञान के विद्यार्थी थे, किंतु अंधविश्वासों पर भरोसा नहीं करते थे। लेकिन लिछमा और रुक्का की कहानी सुनकर उसके पिता के मन में महात्मा जी के प्रति श्रद्धा और आस्था उत्पन्न हुई थी। उनकी पत्नी नि:संतान थी, इसलिए उन्होंने निश्चय किया- 'मैं भी आशा को महात्मा जी के पास अवश्य ले जाऊंगा। वहाँ पर रोगियों को रोग से छुटकारा मिलता है, सभी समस्याओं का निदान होता है, तो क्या आशा की गोद नहीं भर सकती ? ' [14]

इंजीनियर साहब को आश्चर्य होता है, जब महात्मा जी बिना बताये ही उनके आने का कारण बता देते हैं। पूजा-पाठ, हवन, मंत्रोच्चार के बाद महात्मा जी एक ताबीज़ आशा के गले में पहना देते हैं। आशा की मनोकामना पूर्ण होती है। कुलदीप का जन्म महात्मा जी प्रदत्त एक अमूल्य उपहार था। कुलदीप की भी शादी होती है। उसकी धर्मपत्नी में वर्षों तक मातृत्व के लक्षण प्रकट नहीं होते। कई नामी डॉक्टरों से चिकित्सा कराने के बावजूद कोई सफलता नहीं मिलती। अचानक उसकी पत्नी को पूजाघर की सफाई करते वक्त एक ताबीज़ मिलता है। वह कुलदीप को दिखलाती है। यह वही ताबीज़ था जो महात्मा जी ने कुलदीप को पहनने के लिए दिया था। माँ की मृत्यु के वक्त उसने उसे उतारकर रख दिया था, फिर पहनने का ध्यान ही नहीं रहा। जब तक माँ जीवित थी, वह इस ताबीज़ को एक क्षण के लिए भी गले से उतारने नहीं देती थी। वह उस ताबीज़ के विषय में अपनी पत्नी को बताता है। इस रहस्योद्घाटन के बाद वह अपनी पत्नी के आग्रह पर महात्मा जी के आश्रम में आता है। महात्मा जी परलोक सिधार चुके हैं, लेकिन उनके शिष्य बाबा जानकीदास उसे पहचान लेते हैं। वे महात्मा जी के पद-चिह्नों पर चलने वाले उनके वास्तविक उत्तराधिकारी हैं। रात को संझारती के बाद बाबा जानकीदास रोगियों का उपचार करने लगते हैं, उन्हें अचानक एक बात याद आती है। वे कुलदीप से कहते हैं-'छुटके! गुरुजी ने प्रयाण करने से एक दिन पहले तुम्हारे लिए एक ताबीज़ बनाकर मुझे दिया था और कहा था कि जब मेरा छुटका आये तो उसे देकर कहना बहू को पहना दे.....। गुरुजी के यह भी निर्देश थे कि जिस दिन बहू यह ताबीज़ पहने उसके ठीक नौ माह बाद दानों ताबीज़ तोड़कर गंगा में विसर्जन कर दे।' [15]

कुलदीप बाबा के निर्देश का अक्षरश: पालन करता है। उसे नौ माह बाद पुत्र-रत्न की प्राप्ति होती है। वह अपना और छवि का ताबीज़ खोलकर देखता है,

जिसमें पर्ची मिलती है जिसमें कुलदीप तथा उसके बच्चे का जन्म-समय अंकित है। वह बाबा के प्रति श्रद्धा और भक्ति में सराबोर हो जाता है। यह कहानी पाठकों को विश्वसनीय लगे, न लगे, लेकिन कथाकार ने अलौकि शक्तियों, भारतीय विद्या, महात्माओं, मंत्र, हवन द्वारा उपचार, भूत-प्रेत बाधा के प्रति अपने विश्वास को रचनात्मक कौशल से प्रतिष्ठित करने की चेष्ठा की है। यह कहानी समकालीन कहानियों की लीक से हटकर है। अलौकिक शक्तियों के अस्तित्व और सही संत की स्वच्छ, परोपकारी छवि का पुनर्प्रतिष्ठापन है।

कैलाश जी की कहानियां यथार्थ से कहीं ज्यादा भारतीय मूल्यों और आदर्शों के प्रति आस्थावान हैं। इस कथाकार ने सपट, संवाद-शिल्प से कहीं ज्यादा पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग किया है। कथाकार के पास कहानी कहने का कौशल है, भाषा में छायावादी संस्कार हैं और धारा के विरूद्ध पूरी निर्भीकता के साथ अपनी दृष्टि को प्रक्षेपित करने की ऊर्जा है। इसलिए प्रस्तुत संग्रह की कहानियों का अलग अंदाज है, एक खास महत्त्व है।

सन्दर्भ :

1. अबला की मंज़िल : डॉ. कैलाशचंद्र शर्मा, पृष्ठ 18, प्रकाशक: बाणगंगा प्रकाशन, जयपुर
2. वही, पृष्ठ 26
3. वही, पृष्ठ 26
4. वही, पृष्ठ 50
5. वही, पृष्ठ 58
6. वही, पृष्ठ 61
7. वही, पृष्ठ 68
8. वही, पृष्ठ 71
9. वही, पृष्ठ 74
10. वही, पृष्ठ 85
11 वही, पृष्ठ 87
12. वही, पृष्ठ 100-101
13. वही, पृष्ठ 107
14. वही, पृष्ठ 117
15. वही, पृष्ठ 117

❑❑❑

31

कहानीकार डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा

डॉ. चंचल बाला

कैलाशचन्द्र शर्मा जी की प्रथम कहानी 'चेहरे असली नकली' आज से लगभग चार दशक पहले 1976 में जयपुर के वाणिज्य महाविद्यालय की पत्रिका 'व्यावसायिका' में प्रकाशित हुई। शर्मा जी कहानीकार ही नहीं बाल कहानीकार भी हैं और इस सबसे पहले वे नाटककार हैं। उनकी कहानियां व्यक्ति-सत्य, समाज-सत्य, मूल्यवत्ता और मूल्यों के अवमूल्यन, नारी उत्पीड़न और नारी सशक्तिकरण, भीतरी और बाहरी यथार्थ, जीवन संघर्ष से मिली पराजय और विजय सभी को स्वर देती है- 'कहानी भोगे हुए क्षणों की अभिव्यक्ति का माध्यम है। सच्ची कहानी वही है जो प्रथम बिम्ब को बिना लाग लपेट के यथार्थ रूप में प्रस्तुत करे। जो कहानीकार पाठक की इस जिज्ञासा को जितना शमन करने की शक्ति रखता है, वह उतना ही सफल कहानीकार होता है और वही कहानी सतत् मूल्यों की होती है।[1] कैलाशचन्द्र शर्मा का कहानी संग्रह 'अबला की मंजिल ' 1999 में प्रकाशित हुआ। इसमें उनकी 11 चयनित कहानियां संकलित हैं। शीर्षक से लगता है कि शायद यहां जमाने से पीड़ित घुट-घुट कर जी रही, बेचारी, दुर्बल स्त्रियों की कहानियां हैं, पर सभी कहानियां स्त्री की यात्रा की कहानियां हैं, दमन से गमन, की, अंधेरे से उजाले की, अबला से सशक्तिकरण की कहानियां हैं।

कैलाशचन्द्र शर्मा की कहानियां सबल अबलाओं की कहानियां हैं। यहां रूढ़ परम्परा से जीवंत व्यावहारिकता, भावुकता से बौद्धिकता की यात्रा मिलती है। उनकी 'अबला की मंजिल' की नायिका नीलम में जीजा लोग, देवर और अन्य लोग उसके पति की विक्षिप्तता से अनुचित लाभ उठा कर उससे गलत

* अध्यक्ष,हिन्दी विभाग, खालसा कॉलेज फॉर विमेन्स, अमृतसर

सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। समाज का भय उसके अन्तर्मन को संत्रस्त किए रहता है। ऐसे में अमर उसके अंदर सोई जिजीविषा को जागृत करता है और कल तक की दब्बू नीलम का जीवट उसे 'शोषित ग्रुप ऑफ इण्डस्ट्रीज' की सशक्त प्रबंध संचालिका बना देता है। उसका यह रूप अमर को भी एक बार आश्चर्यचकित कर देता है- 'बड़ी-बड़ी मदभरी आँखें, संवरी हुई भौंहें, युक्ति से बनाया गया बालों का जूड़ा, नुकीली चिबुक और कजरारे नैन।' [2]

देख कर उसका दिल तड़पकर कसमसा उठा। अमर कहता है- ' मुझे खुशी है नीलम कि तुमने कठोर परिश्रम और सूझ-बूझ से अपनी मंजिल तय की और समाज को यह आभास करा दिया कि भारतीय नारी आज असहाय अबला नहीं रही अपितु अपना जीवन बनाने में स्वयं सक्षम है।' [3] 'प्रेम का पुराना भावनात्मक स्वरूप, जिसमें प्रेम-बन्धन जन्म जमान्तर के लिए होता था उसमें अब स्त्री-पुरुष के मध्य मैत्री-सम्बन्ध को अधिक महत्व दिया है। इस वास्तविकता से नायक नायिका परिचित रहते हैं।' [4] प्रेम एक व्यक्ति के बाद दूसरे से भी किया जा सकता है। जीवन अपने में ही जटिल है। हर महसूस की हुई बात पर हम स्वयं भी विश्वास नहीं कर पाते। उनकी 'माधवी' एक प्रेम कहानी है जहां अनकहा प्रेम अंतत: अभिव्यक्ति पा लेता है। कहानी का नायक अरूण माधवी का मुंह बोला अंकल है उन दोनों की उम्र में 15 वर्ष का अन्तर है। अरूण अपनी पत्नी सीमा की अपेक्षा वैचारिक तौर पर माधवी के अधिक निकट है। अरूण और माधवी की साहित्यिक रूचियां उनके आत्मिक संबंधों की पृष्ठभूमि बनती हैं लेकिन प्रेमी अंकल सामाजिक/वैवाहिक नैतिकताओं/ मूल्यों के कारण कभी अपने से पन्द्रह वर्ष छोटी युवती को प्रेम-निवेदन नहीं कर पाता। इसीलिए अपनी पत्नी और परिवार को छोड़ विदेश चला जाता है यहां इन्टरव्यू देने आई माधवी से अचानक मिलने पर दोनों को लगता है मानो विधाता ने उन्हें फिर से मिला दिया है। माधवी को बाहों के सहारे बाहर ले जाते कहता- 'विधाता ने हमें मिला दिया है। अब हमें कोई अलग नहीं कर सकता। अब मैं तुम्हें पत्नी के रूप में अपनाऊंगा माधवी, अपनाऊंगा' [5] माधवी के रूदन में अब विषाद न था और वह आनन्द विभोर हो कर अपने मन के भावों को व्यक्त कर रही थी- 'हां अरूण मैं तो सोच भी नहीं सकती थी कि अपना देश छोड़ने के पश्चात् तुम्हें पा सकूंगी। अब मेरा जीवन तुम्हारे हवाले है अरूण, तुम्हारे हवाले है। ' [6] यानि मूल्यों ने भी कई दिशाएं ले ली हैं। व्यक्ति को अपना अस्तित्व पाने के लिए जीवन के हर क्षेत्र में चुनाव का

अधिकार है।

कहानी में अनेक मनोवैज्ञानिक तत्व भी आए हैं जैसे- 'स्त्री का मन अपने प्रेमी की ओर से बड़ा चौकन्ना रहता है। श्रद्धा और प्रेम में बड़ा अन्तर होता है। पहले जब माधवी को अरूण के प्रति श्रद्धा थी, तो वह उसकी प्रगति, ख्याति एवं प्रचार से प्रसन्न थी। जब अधिकाधिक प्रशंसक अरूण से मिलते, उसकी प्रशंसा करते तो वह फूली न समाती थी, अपने श्रद्धेय का मान बढ़ने से। वह अब अरूण पर अपना अधिकार समझती है , उसकी प्रगति, ख्याति एवं प्रचार से डरने लगती है। ' [7] 'प्रेम में स्त्री पुरुष की अपेक्षा अधिक संवेदनशील होती है। वह शीघ्र ही पुरूष की ओर आकृष्ट हो जाती है। परन्तु वह पुरुष से उसके प्रेम की स्पष्ट अभिव्यक्ति की अपेक्षा करती है और यदि पुरुष ही अभिव्यक्ति न करे तो वह चाह कर भी उसे अपने को समर्पित नहीं कर सकती' [8]

'साक्षात्कार' का बादल और सुरभि दोनों डाक्टर हैं अपना अस्पताल चला रहे हैं। बादल की शिक्षा में सुरभि का पूर्ण योगदान रहा था। वह बादल को किताबों में निशान लगा कर और नोट्स बना कर दे दिया करती थी मृत्यु के बाद बादल उसे अच्छी तरह नहीं सम्भाल पाया। मृत्यु से पूर्व सुरभि ने कहा था-'बादल इस अस्पताल को मैं अपनी अमानत के रूप में तुम्हारे पास छोड़े जा रही हूं। इस वृक्ष का हर नया पत्ता मुझे नई मुस्कान देगा। इस कार्य में मैं तुम्हारा अधिक साथ नहीं दे सकी, पर तुम कोई अच्छा सा साथी ढूंढ लेना जो इसके विकास में तुम्हारा साथ दे सके, मेरी नित नई मुस्कान का स्रोत बन सके। ' [9] इसी बीच बादल अपने शोध कार्य के दौरान अलका के सम्पर्क में आता है। सम्पर्क आकर्षण और प्रेम में बदलता है। दोनों अस्पताल को सुचारू ढंग से चलाने एवं दीन दुखियों की सेवा का व्रत ले सुरभि का स्वप्न पूरा करने का संकल्प करते हैं- 'अब मैं निश्चिन्त हुई बादल। अब तुम्हारे जीवन को सहारा मिल गया। मेरे डांवांडोल होते अस्पताल को अलका जैसी कुशल खिवैया मिल गई। अलका, मेरी बहन। मेरा बादल, अस्पताल अब तुम्हारे हवाले है, इन्हें अपने से भी ज्यादा संभाल कर रखना। ' [10] सुरभि की दीवार पर लगी तस्वीर हवा के झोंके से धड़ाम से जमीन पर गिर कर चकनाचूर हो गई। कहानी के पात्र मानवतावाद का उच्चतम लक्ष्य लिए हैं। लेखक यहां बताना चाहता है कि दूसरों से जुड़ाव ही मनुष्य को शक्ति प्रदान करता है। वह जानता है कि व्यक्ति-समूह के चक्रव्यूह के भीतर ही जीवन की आधारभूमि प्राप्त होती है।

'मौन समर्पण' का निम्नवर्गीय ग्रामीण नायक नवीन जैसे तैसे करके

बी.ए. की परीक्षा पास कर स्वजातीय समाज की विभिन्न पत्रिकाओं में लिखने लगता है। यह लेखन उसकी पहचान बनाता है। उसके लेखों की प्रतिक्रियाएं भी छपने लगती हैं। उनका पारिवारिक स्तर समाज के सभी लोगों से उपर हो आता है। राज्य के स्वास्थ्य विभाग के डायरेक्टर शिवशंकर वशिष्ठ के घर आना जाना बन जाता है। भारती और मालिनी उनकी दो बेटियां हैं। उनकी छोटी बेटी मालिनी जो बी.ए. में पढ़ती थी, उसे मन ही मन भाती है- 'उसका लुभावना चेहरा सदा उसके मस्तिष्क के चक्कर काटता है और आँखें उसे ही तलाशती रहती। वह एक सरकारी कार्यालय में लिपिक हो जाता है और अपना विवाह किसी सम्पन्न और सुशिक्षित परिवार में करना चाहता है। वह मालिनी के ताया की बेटी को देखने कानपुर जाता है और उनके सद्व्यवहार से प्रभावित हो उन्हें पत्र लिख देता है कि वह सोमपुर के स्वास्थ्य विभाग के डायरेक्टर की पुत्री से ही शादी करना चाहता है, अत: उनकी पुत्री से विवाह नहीं कर सकता।' [11] किन्तु मालिनी के पिता का विवाह के लिए पत्र पढ़ वह हीन भावों और दारिद्र्य के कारण कोई जवाब नहीं दे पाता। ऐसे ही पन्द्रह वर्ष बीत जाते हैं। पन्द्रह वर्ष बाद भारती उसे मिलती है और कहती है- 'एक निवेदन है आप से। मेरी एक बहन अभी कुंवारी है। उसके लिए कोई लड़का बताएं। उम्र थोड़ी अधिक हो गई-बत्तीस वर्ष। कोई संयोग ही नहीं बैठ रहा। '[12] नवीन ने सोचा इनके ताऊजी की बेटी होगी.....जी नहीं, मेरी छोटी बहन मालिनी। यह सुनते ही वह कडुवा घूंट पी कर रह गया। उसका मन कह उठा- 'क्या मालिनी। मेरी प्रिय मालिनी। अभी तक कुंवारी है। अभी कोई संयोग बैठा ही नहीं या उसने मेरे प्रति इतना बड़ा त्याग किया है। '[13] इस कहानी में अधूरे प्रेम, नारी के त्याग और प्रेमोत्सर्ग की कथा है।

'चेहरे असली नकली' कहानी का अनिल धानाढ्य परिवार का इंटेलिजेंट युवक है। उसकी दौलत के कारण ही सुधा उससे शादी करना चाहती है। अर्थलोलुप सुधा की हृदयहीनता,स्वार्थीपन अनिल में भी आ जाता है इसीलिए वह अपनी फैक्ट्री में काम करने वाली बेकसूर वर्षा से दुर्घटना होने पर न सिर्फ अपनी अमानवीयता का परिचय देता है, बल्कि उसे नौकरी से भी निकाल देता है। माता-पिता की मृत्यु के बाद जैसे ही बुरे दिन आते हैं, सुधा उसे छोड़ देती है और ऐसे मौके पर वही वर्षा उसकी सहायता करती है। वह कहती है- 'तुम शिक्षित हो तुम्हें पीएच.डी. करवाऊंगी। अनिल कहता है- 'वर्षा, मैं तो सोच भी नहीं सकता था कि तुम में इतनी महानता होगी। ' [14] वह सोचने लगा कि एक दोस्त सुधा थी

जिसने नौकरी न मिलने पर मुझ से कहा था- 'यहां पैसा फूंकने से क्या फायदा इससे अच्छा है वापस अपने घर चले जाओ, अब हम भी तुम्हारे से परेशान हो गए हैं। भाई, अब तो हमारा पीछा छोड़ो। ' [15] वह अपने असली रूप को छिपाये हुए थी जो उस दिन दिखाई पड़ गया था। और दूसरी ओर वर्षा है जो अपने असली रूप को अब उघाड़ रही है।

इस कहानी में असली चेहरा वर्षा का और नकली चेहरा सुधा का है, जो छुपाये हुए अनिल की भावनाओं का खिलवाड़ करती रही।

कहानीकार का उद्येश्य उपदेश देना नहीं है, वह कहानी के माध्यम से हमें वास्तविक स्वरूप से परिचित कराता है। भारतीय समाज में वैधव्य का शाप स्त्री के जीवन को कारा में डाल देता है। वह बेचारी और नि:सहाय बन जाती है। बिलखना, तड़पना उसकी नियति बन जाती है। आज तक माना जाता था कि पितृसत्ताक चाहता है कि स्त्री बच्ची हो, किशोरी हो या प्रौढ़ा-अगर वह विधवा है तो उसे पूरे समाज और सामान्य जीवन से कटना होगा। 'नवजीवन' कहानी में आज का शिक्षित युवक सुशील अपनी अठारह वर्षीय विधवा भाभी अंजू के लिए स्वयं सारे रास्ते खोलता है, उसे रूढ़ियों और दु:खदायी रीति-रिवाजों से मुक्त करता है। विवाह के कुछ क्षण बाद ही बिजली गिरने से अठारह वर्षीय अंजू के पति की मृत्यु उसे सधवा से विधवा बना देती है। ऐसे में उसका इक्कीस वर्षीय देवर कहता है- 'हमारा समाज अपने आप में एक ढकोसला है। समाज के ठेकेदारों ने बिना सोचे समझे न जाने कितने उल्टे सीधे नियम बना रखे हैं। ये कानून बना सकते हैं चाहे औरतों पर अत्याचार होते रहें। औरत विधवा हो जाती है और आजीवन शादी जैसे पवित्र बंधन का हक खो बैठती है, परन्तु क्या पुरुष विधुर होने पर दूसरी शादी के अधिकार से वंचित हुआ है, वह एक नहीं दो-दो शादियां कर सकता है और विधवा औरत एक भी शादी नहीं कर सकती। उन्हें क्या मालूम भाभी कि एक विधवा औरत की इतनी लम्बी दु:खदायी जिन्दगी कैसे कटती है। ' [16] और उसे उसके कॉलेज के प्रेमी संजीव से मिला कर वैधव्य के लांछन से मुक्त करने का प्रयास करता है।

रिश्तों की गर्मी और ठण्डापन उनकी 'कर्ज' कहानी में देख सकते हैं। कहानी उन खून के रिश्तों पर प्रश्न चिन्ह लगाती है जहां भाईयों के बीच की आत्मीयता सत्य होती है। भाई-भाई के परस्पर संबंधों का भारतीय संस्कृति में लक्ष्मण और भरत से उदाहरण दिया जाता है। भाई-भाई संबंधों के वे आदर्श माने

जाते हैं। परन्तु आज के अर्थकेन्द्रित सम्बन्धों में परस्पर त्याग और प्रेम का स्थान गौण है- 'धन ही सब कुछ है। एक भाई अपने हक के लिए दूसरे भाई का हक छीनने या गला घोटने को भी तैयार है।' [17] कहानी में सौरभ बैंक से कर्ज लेकर भाई राकेश को विदेश भेजता है। उसके परिवार की सुरक्षा और संरक्षण के लिए नीलाम हो रही जमीन को बचाता है जबकि विदेश में गये भाई का अपना अर्थतंत्र है उसका बाजारवाद कहता है कि-'पैसे भाई के लौटाने हों या परिवार का पालन पोषण करना हो पहले ही हिसाब करना जरूरी है।

कहानी में हमें नारी उत्पीड़न का वह रूप मिलता है जहां परिवार के पुरुष स्त्री को मारना पीटना अपना अधिकार समझते हैं। कहानी में बड़ा बेटा मनोज अपने मित्र के कारण मां को मारता पीटता है और मनोज का पिता उसे प्रोत्साहित और उत्तेजित करता कहता है- 'इस बदजात के और जमा दो-चार, जिससे इसकी अक्ल ठिकाने आ जाय।' [18] संबंधों में बदलाव की यह प्रक्रिया साठ के बाद परिवार के अन्य जनों के मध्य भी देखी जा सकती है। संबंधों का यह बदलाव तेजी के साथ उभरा है। [19]

शहीद दीपक की तरह होते हैं उनकी शहादत ही दीपावली का पर्याय है। शहीद अक्षय होते हैं उनका क्षय हो नहीं सकता और जिसका क्षय नहीं हो सकता, उसके लिए शोक मनाना व्यर्थ है। 'दीपक की रोशनी' इस भाव को लेकर लिखी गई है। अक्षय की माँ के यह शब्द इस बात की पुष्टि करते हैं- 'मुझे तो खुशी है इस बात की कि मेरा अक्षय देश के लिए शहीद हो गया। मेरा अक्षय भी तो दीपक की भांति जलता रहा था और तब तक जल कर मातृभूमि को रोशनी देता रहा था जब तक कि उसमें प्राण रहे। ' [20] और कहती है- 'इसीलिए दीया मैंने इतनी ऊंचाई पर जलाया है क्योंकि मेरा अक्षय भी इतनी ऊंचाई पर पहुँच कर जलता रहा था। ' [21] जिन्दगी का यही नियम है कि नीचे रहने वाले व्यक्ति बिना कुछ किये ही अपनी जिन्दगी गवां देते हैं। इस कहानी में दीपक शहीद का प्रतीक है। कहानीकार कहानी में जीवन जीता प्रतीत होता है। चाहे वह पात्रों के माध्यम से ही क्यों न हो। धनाभाव के कारण इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो सकती और व्यक्ति निराश हो कर कुण्ठाओं से ग्रसित होता जा रहा है। [22] आर्थिक तंगी ने मनुष्य के पारिवारिक सम्बन्धों को नष्ट कर दिया है। हर पल संघर्ष आज मानव की नियति है, अर्थ जीवन का महत्वपूर्ण मूल्य बन गया है। पारिवारिक सुख के लिए, गृहस्थी के बोझ को उठाने के लिए उसे शिक्षा की आवश्यकता है। शिक्षा के लिए अर्थ कमाने के

लिए उसे गाँव से शहर जाना पड़ा। 'पैमाना' कहानी का कुणाल आर्थिक तंगी के कारण अपने कर्तव्यों से मुँह नहीं मोड़ता। शहर की चकाचौंध में भी वह अपने भाई के शब्द याद रखता - 'कुणाल तुम शहर जा रहे हो, वहाँ पर तुम्हारा कर्तव्य सिर्फ पढ़ना होना चाहिए कुणाल सिर्फ पढ़ना और उसके सामने सारा परिवार एक तस्वीर के समान घूम जाता। ' [23] कुणाल भाई के कर्जे का पूरा मूल्य चुका देता है। यहां कहानी में अर्थ संकट से उत्पन्न संतोष तथा सामाजिक परिस्थितियों का विश्लेषण किया गया है। साथ ही व्यक्ति के स्थान पर अर्थ की प्रतिष्ठा पर प्रकाश डाला है।

'भटकती आत्मा' फैंटेसी शिल्प में लिखी गई व्यंग्यात्मक कहानी है। नायक बुढ़ापे में भी मूंज बांटता रहता, चटाइयां बनाता रहता और जब मरा तो भूखों मरते ही मरा। बेटों ने गरीबी के कारण कोई दवा दारू नहीं की और बुड्ढा इस दुनिया से विदा हो गया। उसके मरने पर साहूकार से पैसा लेकर विविध प्रकार की मिठाइयों और व्यंजनों का आयोजन किया जाता है। सब बुड्ढे के गम में एक साथ बैठ कर पंगत में खाते हैं, व्यंजनों पर एक साथ धावा बोलते हैं। लेखक कहता है- 'बुड्ढे की आत्मा की नाकों में व्यंजनों की खुशबू पहुंची तो व्याकुल हो उठा-यह खुशबू किस चीज की है। उसने तो इस का सामीप्य आज से पहले नहीं पाया था। बुड्ढा यमलोक के चैकीदार को धोखा देकर गाँव पहुंच गया और क्या देखता है कि रेडियो बज रहे थे, रंग-बिरंगे, छैल-छबीले विविध परिधान पहने हुए गाँव में फैले हुए थे। घर में सैंकड़ों आदमी जीमने में फटकारा लगा रहे थे। परोसने वाले बड़े प्रेम से खिला रहे थे, चौकन्ने रहते थे कि किसी तरफ से कोई क्या बोलता है। किसी की फरमाइश का इंतजार अर्न्तमन से कर रहे थे। कुछेक तो आग्रहपूर्वक कह रहे थे-साहब एक लड्डू और चलेगा। '। [24] बुड्ढे ने देखा कि सब रंग बिरंगे कपड़े पहने थे और मिठाइयां खाने में मस्त थे। बुड्ढा पेड़ पर चढ़ गया। कुत्तों के भाग्य भी आज खुल गये थे, मानो उनकी लाटरी निकल आयी हो। बुड्ढे के मुंह में हलचल होने लगी। एक आदमी मिठाईयों की छबड़ी लेकर नीचे से गुजरा। उसके जी में आया कि एक दो ऊपर की ऊपर उठा लूं परन्तु आदमी तब तक निकल चुका था। बुड्ढे का दिल हुआ कि सेठ (कर्ज देने वाला) की गर्दन ऊपर से ही दबोच ले। ' [25] उसी समय उसका बढ़ा हाथ देख कर सींगों वाले आदमियों ने उसके हाथों में हथकड़ियां डाल दी और यमराज के पास ले गये।

इस कहानी में लेखक ने समाज में बाप और बेटे के रिश्तों में जो

अपनापन और आत्मीयता समाप्त हो चुकी है उस पर व्यंग्य किया है। जीवित रहते रोटी नहीं, पर मरने के बाद ढेरों पकवान लोगों को खिलाये जाते हैं, जिसकी खुशबू तक का आनंद उसे नसीब नहीं होता।

'ताबीज' कहानी में ग्रामीण जीवन में विश्वासों, अन्ध विश्वासों, अज्ञानता का मूल्यांकन है।

कहानियों के अस्तित्व सजग पात्र हर पग पर परम्परित मूल्यों को चुनौती दे रहे हैं। 'अबला की मंजिल' की नीलम विक्षिप्त पति से मुक्त हो अमर से विवाह करती है। माधवी का पुरुष शादी के कुछ वर्षों बाद पत्नी से ऊब जाता है और पत्नी भी गृहस्थ में डूब जाती है। तब वह परम्परा का अतिक्रमण करते पत्नी और प्रेमिका दोनों के साथ निभाना चाहता है। 'साक्षात्कार' का नायक सुरभि की मृत्युपरान्त अलका का चुनाव करता है। 'नवजीवन' की अंजू पति की मृत्यु के कुछ महीनों बाद ही वैधव्य का कवच उतार फेंकने का निर्णय लेती है। उनके बौद्धिक पात्रों में निर्णय क्षमता है, बदलते समय के पांव से पांव मिलाने की आकांक्षा है, उनके पास जीवट का अद्‌भुत खज़ाना है।

सन्दर्भ

1 डॉ. रघुवर दयाल वार्ष्णेय, हिन्दी कहानी : बदलते प्रतिमान, पाण्डुलिपि प्रकाशन,दिल्ली, 1975, पृ.11

2 डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : अबला की मंजिल, बाणगंगा प्रकाशन, जयपुर, 1999 पृष्ठ 28

3. वही, पृष्ठ 28

4 डॉ. रघुवर दयाल वार्ष्णेय, हिन्दी कहानी: बदलते प्रतिमान, पृष्ठ 50

5 डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : अबला की मंजिल, बाणगंगा प्रकाशन, जयपुर, 1999 पृष्ठ 35

6. वही, पृष्ठ 43 7. वही, पृष्ठ 21 8. वही, पृष्ठ 55

9. वही, पृष्ठ 56 10. वही, पृष्ठ 63 11. वही, पृष्ठ 68

12. वही, पृष्ठ 71 13. वही, पृष्ठ 71 14. वही, पृष्ठ 78

15. वही, पृष्ठ 72 16. वही, पृष्ठ 83

17. डॉ. ज्ञानवती अरोडा, समसामयिक हिन्दी कहानी में बदलते पारिवारिक सम्बन्ध, सूर्य प्रकाशन, 1989, पृष्ठ 146

18 डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा , अबला की मंजिल, पृष्ठ 90

17. डॉ. ज्ञानवती अरोडा, समसामयिक हिन्दी कहानी में बदलते पारिवारिक सम्बन्ध, सूर्य प्रकाशन, 1989, पृष्ठ 146

20 डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा , अबला की मंजिल, पृष्ठ 101

21. वही, पृष्ठ 101

22. डॉ. ज्ञानवती अरोडा, समसामयिक हिन्दी कहानी में बदलते पारिवारिक सम्बन्ध, सूर्य प्रकाशन, 1989, पृष्ठ 17

23 डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा , अबला की मंजिल, पृष्ठ 103

24. वही, पृष्ठ 106

25. वही, पृष्ठ 107

❑❑❑

32

'अबला की मंज़िल': एक अध्ययन

डॉ. अनीता शर्मा

डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा का कहानी सग्रंह 'अबला की मंजिल' एक विशिष्ट कहानी संकलन है, क्योंकि कथ्य एवं शिल्प-दोनों ही दृष्टियों से इन्होनें अपने पूर्ववर्ती कहानीकारों से अलग होने का परिचय दिया है। इनकी कहानियों की मूल चेतना मनोविज्ञान एवं मनोविश्लेषण है। इनके लिए मानव जीवन की बाहय घटनाएं महत्त्वपूर्ण न होकर व्यक्ति का अन्तर्जगत अधिक महत्वपूर्ण है। इसलिए इन्होंने व्यक्ति को, व्यक्ति के मन के खुरदरेपन को अपनी कहानियों का आधार बनाना अधिक श्रेयस्कर समझा। लेखक ने नारी की पीड़ा और यातना को बड़ी सूक्ष्मता के साथ महसूस करने की कोशिश की है। नारी-पात्रों के चित्रण में इन्होनें अपनी सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि का परिचय दिया है।

कहानियों के संवादों में इनकी चिन्तनशीलता का सहज परिचय मिलता है। वे अन्य लेखकों की तरह समाज को महत्त्वपूर्ण नहीं मानते। समाज के दायरे में वे व्यक्ति को रखकर नहीं देखते, बल्कि व्यक्ति के माध्यम से ही वे समाज का अनुभव और अनुमान करना चाहते हैं। वे मध्यवर्गीय चेतना के कहानीकार हैं, इसलिए उनकी कहानियों के प्रमुख और अधिकांश पात्र भी मध्यम वर्ग के ही हैं, जिनके माध्यम से उन्होंने अपने समसामयिक युग-बोध और भाव-बोध को वैयक्तिक चेतना के आधर पर अभिव्यक्त किया है। उनकी कहानियों के पात्र एकाकी और समाज से असम्पृक्त और कटकर जीवन जीने का फैसला लेने वाले हैं। इनके अधिकांश पात्र मध्यवर्गीय समाज से आये हैं और यह वर्ग सबसे अधिक कुण्ठाग्रस्त और निराशा में जीने के लिए विवश है।

इस संकलन का आधार निरन्तर बदलता हुआ जीवन-बोध कहा जा

* अध्यक्ष, पी.ज़ी. (हिन्दी), एस. एस. एम. कॉलेज, दीनानगर (गुरदासपुर)

सकता है। कहानीकार समाज का संवेदनशील प्राणी है इसलिए उसे समाज की संवेदनशील आत्मा कहा गया है। आज के कहानीकार ने अपने युग के परिप्रेक्ष्य में जीवन के यथार्थ के विभिन्न पक्षों को सृजनात्मक स्तर पर चित्रित करने का यत्न किया है। इसलिए आज की कहानी नयी संवेदना से रचित आज के जीवन के विभिन्न पक्षों को स्पर्श करती है और पाठक के अनुभव क्षेत्र को व्यापक बनाती है। यह कहानी आरम्भ से ही परिवेश के प्रति गहरी जागरूकता लिए हुए है, परिवेश के प्रति यह गहरी जागरूकता उसे सामाजिकता से संलग्न कर देती है। हमारे देश के सामाजिक माहौल में जो एक नये प्रकार की कसमसाहट, आम चुनावों के बाद प्रारम्भ होती है उसे गति एवं दिशा देने के लिए प्रयत्नशील एक नयी पीढ़ी अपने जिन्दा रहने की माँग को लेकर कस्बों में आकर रहने लगी। इस पीढ़ी को उन चीजों की माँग थी जो आदमी बनकर जीते रहने के लिए जरूरी थी। इस पीढ़ी की मांग के मूल में विद्यमान मानसिकता को सही रूप में समझने का अर्थ है स्वतन्त्रता के सही अर्थ को, जीवन को, आदमी को, हर चीज के सही अर्थ को बदले हुए संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में रखकर समझना । समाज का साक्षात्कार कहानीकार की संवेदना का मूलाधार है। भूमिका में लेखक के शब्दों से स्पष्ट होता है- 'स्वजनों की उपेक्षाएं, सामाजिक उपहास, आर्थिक विषमताएँ आदि जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा बनीं और इस परिवेश ने मुझे कहानी लेखन की ओर उन्मुख किया।'[1] नगरों में आकर रहने वाले लोगों के जीवन में विसंगति की उपज बढ़ने लगी क्योंकि नये परिवेश में चीजों को उनके सही अर्थ-सन्दर्भ में अलग करके परिभाषित किया जाने लगा था। समाज की विभिन्न इकाईयों के टूटने-बनने, विभिन्न नये परिवेशों की सृष्टि, जीवन-स्तरों का उतार-चढ़ाव, नये संदर्भो के प्रश्नों-समस्याओं की उपज संबन्धों के पुन: स्थापित होने की अपेक्षा जीवन-मूल्यों के शोध और पुनरान्वेषण की अनिवार्यता का एहसास औद्योगीकरण और पूँजीवादी समाज व्यवस्था की स्थापना के साथ ही हो गया था। जिस पूँजीवादी राजनीति का सूत्रपात हुआ उसमें सामाजिक पुनर्निर्माण के तमाम कार्यक्रमों की समीचीनता स्वतन्त्रता के साथ ही प्रश्नांकित होनी शुरू हो गई थी। यह गाँवों, नगरों, महानगरों के आर्थिक धार्मिक, शैक्षणिक, नैतिक-सांस्कृतिक स्तरों की गिरावट से स्पष्ट हो जाती है।

समाज सामाजिक संबन्धों का जाल है। इनमें आने वाला परिवर्तन सामाजिक संगठन एवं विघटन का उत्पादक है। समाजिक जीवन बाह्य परिवेश से प्रभावित

रहता है। जब बाहरी परिवेश पूर्णत: बदल जाता है तब निश्चित ही सामाजिक शक्तियों के संतुलन में परिवर्तन होता है। सामाजिक ढाँचा टूट जाता है जिससे व्यवहार के पुराने ढंग विफल हो जाते हैं और सामाजिक नियंत्रण की विधियां सफलतापूर्ण ढंग को बनाना कठिन कर देती हैं। असंतुलन आज पारिवारिक संबन्धों में द्रुतगति से दिखाई दे रहा है। परिवर्तित सामाजिक परदृश्य में विवाहाधारित संबन्धों के प्रति अवधारणा में बहुत परिवर्तन आया है। नारी और पुरुष का विवाह के प्रति दृष्टिकोण पूरी तरह बदल गया है। आज विवाह का आधार प्रेम या भावात्मक संवेदना युगों युगों तक निभाने का विश्वास नहीं है बल्कि नारी और पुरुष की ओर से एक सामाजिक समझौता है। आज की नारी तो विवाह को अपना शोषण मात्र समझती है क्योंकि सदियों से चली आ रही परंपरा शोषण का शिकार अबला बनी हुई, बेमेल विवाह के लिए मजबूर, मानसिक एवं शारीरिक अपहरण को झेल कर भी चुप्पी साधने के लिए विवश, घर की लाज कह कर सब की आज्ञा का पालन करने वाली नारी जिसका अर्थ है न+अरी जिसका कोई दुश्मन नहीं है, विविध प्रकार के आक्रमणों को झेलते झेलते समझ गई कि आज पति नाम के परमेश्वर के शोषण से मुक्त हुआ जा सकता है। विवाह संबन्धी नयी सोच को आधुनिक कहानियों में बहुत सशक्त ढंग से स्थापित किया गया है। प्रस्तुत संग्रह की 'अबला की मंजिल' कहानी की नीलम का विवाह उसके बहनोई द्वारा एक अर्दविक्षिप्त युवक से करवा दिया जाता है क्योंकि उसके पिता दान-दहेज नहीं दे सकते थे। वह कॉलेज में पढ़ने वाली खूबसूरत युवती अपने घर की लाज बनाए रखना चाहती है। उसकी सुन्दरता उसके लिए श्राप सिद्ध होती है क्योंकि उसकी बहिन का पति उसे अपनी (हवस) वासना का शिकार बनाए रखना चाहता है। इसी लालच में वह उसका विवाह बिना दहेज के एक संयुक्त परिवार के एकं पागल लड़के से करवा देता है। जब अमर द्वारा उसे ऐसे घिनौने कार्य का पर्दाफाश करने की सलाह दी जाती है तो वह स्पष्ट कहती है- 'शान्त रहो मेरे अच्छे अमर शान्त रहो। हमारे भारतवर्ष की संस्कृति, समाज, यहां के प्रतिष्ठित व्यक्ति विश्व का गौरव माने जाते हैं, संसार उनका अनुकरण करता है तथा किताबों व इतिहास में वे पवित्र माने जाते हैं। पर वास्तविकता मुझ जैसी पीड़ित नारियों को पता है जहां जगत्जननी नारी के स्वत्व व मर्याद की रक्षा एक अनुत्तरित प्रश्नचिन्ह है। जिस दिन नारी इस पुरुष प्रधान समाज का विरोध प्रदर्शित करेगी, उसे या तो पागल करार देकर घर से निकाल दिया जायेगा या फिर कुलटा, कुलच्छिनी या व्यभिचारिणी

कहकर घर से निकाल दिया जायेगा।'[2] अपने जीवन की सच्चाई को छुपाते छुपाते वह एक बच्चे की मां हो जाती है और कई बार आत्महत्या करते करते रुकती है और सोचती है कि पति से संबंध विच्छेद करके किसी के घर की नौकरानी बन कर सुखमय जीवन जी सके। पर मान मर्यादा भंग करने को तैयार नहीं हो सकती।

यही नहीं ससुराल में भी इस चन्द्रमुखी को देवर, जेठ, जीजा आदि उसके साथ गलत संबन्ध स्थापित करने की ताक में रहते हैं। घर की औरतें रोकने की बजाए उसके साथ निर्दयतापूर्वक व्यवहार करती हैं। उसकी कहानी सुनकर जिला मजिस्ट्रेट बनकर शहर में आने पर अमर नीलम के द्वारा बनाए गए 'शोषित महिला ग्रुप ऑफइण्डस्ट्रीज' की एक्सपोर्ट यूनिट का प्रबन्ध-संचालन करने का आमंत्रण स्वीकार कर लेता है। लेखक के शब्दों में- 'यह एक ऐसा कार्य था जो औरों के लिए आदर्श था और समाज के लिए एक उदाहरण।'[3] पुरुष प्रधान समाज में आधुनिक शिक्षित औरत विवाह संस्था को बेमानी घोषित करती है। जब आरोपित पति से जबरन विवाह कर दिया जाता है क्योंकि वह जानती है कि ऐसा विवाह एक दम व्यर्थ, मात्र औपचारिकता, दिखावा और छल है। ऐसे दांपत्य जीवन में घुटन होती है, इसलिए अबला अपनी मंजिल ढूँढने के लिए निकल पड़ती है और दूसरों के लिए एक मिसाल सिद्ध होती है। यह एक प्रेरणादायक कहानी है जो परिवेशगत परिवर्तन से प्रेरित होकर नए इतिहास रचाने की शक्ति पैदा करती है । इससे स्पष्ट है कि कथाकार मानसिक भावावेगों में संतुलन बनाकर सामजिक मर्यादाओं, मूल्यों को भी विस्थापित करने का पक्षधर है । स्पष्ट है कि पुरुष की तरह नारी भी अन्याय के प्रति फैसला लेने में अपना अधिकार समझती है । पति के अत्याचारों के विरूद्ध वह भी आवाज उठाने की अधिकारिणी है, जिसका चित्रण प्रस्तुत कहानी में बहुत ही सशक्त बन पड़ा है।

एक तरफ स्त्री-पुरुष संबंधों के विविध स्तरों के आए अंतर को उद्घाटित करने में कथा-लेखक जितनी सफलता प्राप्त कर सका है, उसका कारण परिवर्तित सामाजिक परिवेश के प्रति लेखक की पैनी दृष्टि एवं सपाटबयानी है। शिक्षा, स्वतन्त्रता एवं अधिक प्रसार के कारण स्त्री-पुरुष एक दूसरे के अत्यधिक नजदीक आए हैं। स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालयों की सह-शिक्षा प्रणाली ने नर-नारी के अंतर को दूर कर दिया है। अनेक क्षेत्रों में वे एक दूसरे के मित्र रूप में सहायक होकर समस्याओं का समाधान भी जुटा पाए हैं। लेखक ने

समाज में नारी के हर पहलू से देखने का प्रयास किया है। चिरकाल से अन्तर्जगत् और बाहरी जगत् के संघर्षों से पीड़ित, उच्चवर्ग तथा मध्यवर्ग के आमोद-प्रमोद के साधन के रूप में नारी की स्थिति का दिग्दर्शन कराकर लेखक ने समाज की इस कुरूपता पर गहरा प्रहार किया है।

इस संकलन की कहानी 'माधवी' में नायिका 'माधवी' जो अरूण को अंकल कहती है और उसकी पत्नी सीमा और उसके बच्चों को खूब प्यार करती है। सीमा भी उसे अपने बच्चों के साथ खेलते देखकर प्रसन्न होती है। माधवी का परिवार स्वतंत्र विचारों वाला सुशिक्षित, सुसंस्कृत एवं रचनात्मक विचारधारा से अरूण की समानता रखने वाला था। 'अरूण जब भी कोई रचना लिखता माधवी को अवश्य बताता जबकि सीमा को कोई रूचि न होती क्योंकि वह केवल घर को स्वर्ग बनाने एवं कर्त्तव्यपरायणता में लीन रहती थी। सृजनात्मक प्रवृति का अरूण उसकी केवल कर्तव्यपरायणता से संतुष्ट नहीं था। शायद बड़े-बड़े मनीषियों विद्वानों का मत है कि पुरुष के लिए स्त्री जाति के मन को समझ पाना कठिन है।'[4] '..... अत: अरूण को उस समय सीमा के पत्नीत्व के कर्तव्य निर्वहन से इतनी प्रसन्नता न होती जितनी कि किसी नई रचना की समीक्षा के रूप में माधवी की प्रसन्नतायुक्त एवं प्रेरणायुक्त आंतरिक अभिव्यक्ति से। जिसका आधार भी तो स्वजनों की प्रेरणा ही हुआ करती है न। प्रोत्साहन एवं प्रेरणा का पारस लोहे को भी सोना बना दे और इनका अभाव शीर्षस्थ को भी धराशायी कर दे।' [5] अर्थात शिक्षित स्त्रियाँ, जो जीवन में मित्र के रूप में परुष के साथ हैं, बराबरी पर भी हैं पर उनकी अलग परिस्थितियां और समस्याएँ हैं। पत्नी सीमा हर बात में दु:ख ही अनुभव करती है, आवश्यकता से अधिक आदर और संवेदना की आशा में घुली जा रही है तो दूसरी तरफ माधवी बिना किसी संकोच के विदेश में सहायक प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति पा चुके अरूण को जब अचानक मिलती है तब वह उसे अपने जीवन की प्रेरणा और सफलता का आधार मानकर उसे सदा के लिए स्वीकार कर लेता है। अरूण विदेश में एक प्रतिष्ठित लेखक माना जाने लगा था। अनेक विद्यार्थियों ने उसकी रचनाओं पर शोध कार्य किये। नौकरी की तलाश में विदेश पहुँची माधवी की आवाज इन्टरव्यू बोर्ड को उत्तर देते हुए सुनकर जब अरूण को 15 वर्ष पहले की प्रेरणा माधवी का चेहरा देखने को मिला तो वह दंग रह गया और कह उठा- 'तुमने स्त्री होकर भी अपना प्रेम व्यक्त कर दिया था और मैं पुरुष होकर भी उस पर कोई प्रतिक्रिया न कर सका, मिलने का कोई समाधान

न निकाल सका। सामान्यत: स्त्री अपने समर्पण हेतु पुरुष की स्पष्ट एवं मुखर अभिव्यक्ति की कामना करती है, परन्तु यहां पर तुम मुझसे जीत गई। लेकिन अब विधाता ने हमें मिला दिया है। अब हमें कोई अलग नहीं कर सकता।' [6]

आलोच्य कहानी में स्पष्ट होता है कि नारी-शिक्षा की स्वतन्त्रता ने सामाजिक-परिदृश्य को बहुत द्रुतगति से बदला है। युग-युग से प्रताड़ित नारी समाज के आगे प्रश्न उठाती है कि वैचारिक समता देकर भी समाज नारी को पूर्ण स्वतन्त्रता क्यों नहीं देता? व्यावहारिक क्षेत्र में आज भी स्त्री-पुरुष के लिए वह इस दोहरी नैतिकता को खुलकर चुनौती देती हुई पुरुष के पूर्ण समकक्ष सत्ता की स्थापना करने का प्रयत्न ही नहीं करती बल्कि अपने विचारों के अनुसार आचरण भी करती है जिसे इस कहानी की माधवी के शब्दों में देखा जा सकता है- 'हां अरूण मैं तो सोच भी नहीं सकती थी कि अपना देश छोड़ने के पश्चात तुम्हें पा सकूंगी। अब मेरा जीवन तुम्हारे हवाले है अरूण, तुम्हारे हवाले है।' [7] विभिन्न सामाजिक दबावों से जीवन में भी नारी जिन अनुभूतियों को अभिव्यक्ति नहीं दे पायी, उन्हें कहानी में बहुत सशक्त रूप में अभिव्यंजित किया गया है।

इस संकलन की 'साक्षात्कार' कहानी में भी आधुनिक शिक्षा प्राप्त एवं नगरीय सभ्यता में पले युवक-युवतियों के जीवन के प्रति प्रगतिशील दृष्टिकोण को उद्घाटित किया गया है। बदलते परिवेश में पश्चिमीकरण का प्रभाव तेजी से देखा गया है जिससे नई पीढ़ी में व्यक्तिवादिता अधिक पाई जाती है। ये लोग नवीनता प्रिय होते हैं जबकि माता-पिता परंपराओं से चिपके रहना चाहने हैं। लेकिन युवा पीढ़ी अपनी पसंद के अनुसार रहना और व्यवहार करना चाहती है प्रस्तुत कहानी में डॉ. बादल को अपनी पत्नी सुरभि के अन्तिम शब्द उसके अन्तर्मन को बेधते रहते हैं-'बादल! इस अस्पताल को मैं अपनी अमानत के रूप में तुम्हारे पास छोड़े जा रही हूँ। इस वृक्ष का हर पत्ता मुझे नई मुस्कान देगा। इस कार्य में मैं तुम्हारा अधिक साथ नहीं दे सकी, पर तुम कोई अच्छा सा साथी ढूँढ लेना जो इसके विकास में तुम्हारा साथ दे सके, मेरी नित नई मुस्कान का स्रोत बन सके, अच्छा बादल मैं जा रही हूँ।' [8] सुरभि के जाने के बाद अस्पताल को अकेले संभालना कठिन था। डॉ. बादल को एक योग्य लेडी डाक्टर तो रखनी ही थी। सैकड़ों लड़कियों का साक्षात्कार लेते लेते वह हार चुका था। एक दिन उसे उसका पुराना मित्र दिवाकर मिल गया। दिवाकर से एक नर्सिंग प्रशिक्षण केन्द्र में बीस लड़कियां शिक्षा ले रहीं थी जिनमें डॉ. बादल को अचानक मिस अलका योग्य

लगी जो उसके शोध कार्य में लिखने में मदद कर सकती थी। डॉ. बादल स्वयं अलका के घर जाकर बात करने को तैयार थे और वह उनके घर जाकर उसके पिता जी से स्वीकृति भी ले आए। तब एक दिन अलका ने उन्हें बताया कि- 'वह आगे पढ़ना चाहती है, पर उसके माता-पिता व्यावसायिक बुद्धि के हैं और उसका विवाह किसी व्यापारिक घराने में कर देना चाहते हैं।' [9] अलका जिस लगन और कर्मठता से डॉ. के शोाध कार्य में साथ दे रही थी, वह बहुत विशिष्ट था। उसके अपनत्वपन ने डॉ. को यह निश्चय करवा दिया कि उनका पूर्वजन्म का कोई संबन्ध रहा होगा और उसकी पत्नी सुरभी की भी यही इच्छा भी। लेकिन मिस अलका का परिवार उसे सहमति देता है या नहीं, उसके मन में तरह तरह के विचार बनते बिगड़ते रहते हैं। एक दिन वह डॉ. से कहती है- 'डाक्टर साहब! अब मैं भी आगे पढ़ना चाहती हूँ। आपकी तरह पढ़-लिखकर डॉक्टर बनना चाहती हूँ। दुखियों की सेवार्थ ही अपना जीवन अर्पित कर देना चाहती हूँ। इसके लिए यदि मुझे परिवार का तथा समाज का विरोध भी करना पड़ा तो करूँगी, यदि आजीवन कुँआरी भी रहना पड़ा तो इसे उपनी विजय समझूँगी।' [10] इस तरह अलका डॉ. अलका बन गई। डॉ. बादल का तबादला हो चुका था। 15 वर्ष बाद डॉ अलका को मिसेज सुरभि की अंतिम इच्छा का पता चलता है -'वह तभी शाँत होगी जब डॉ. अलका तुम उसके अस्पताल को संभालोगी और मेरे इस अनचाहे जीवन को छटपटाहट से मुक्ति मिल सके।' [11] अलका को याद आया कि उसके जीवन का निर्माता डॉ. बादल है जिसके सहारे वह समाज से लड़ते हुए अपने इरादों में सफल हो सकी। डॉ. अलका अपने दोनों हाथ डॉ. बादल के कँधे पर रखकर सिसक-सिसक कर रो पड़ी। अचानक दोनों को ऐसा अनुभव हुआ मानो कोई कह रहा है- 'अब मैं निश्चिन्त हुई बादल। अब तुम्हारे जीवन को सहारा मिल गया मेरे डांवांडोल होते अस्पताल को अलका जैसी कुशल खिवैया मिल गई। अलका मेरी बहिन! मेरा बादल, अस्पताल तुम्हारे हवाले है, संभालकर रखना।' [12]

भारत में पाश्चात्य संस्कृति एवं शिक्षा का प्रभाव बड़ी तेजी से बढ़ने लगा है। योरोपीय सभ्यता के अनेक तत्व भारतीय समाज में समाहित होने लगे और परिवार संबन्धों की मान्यताएँ बदलने लगी। फलस्वरूप भारतीय पति-पत्नी सम्बन्धों में बिखराव-विघटन आने लगा। अनेक नारी सुलभ पेशों जैसे, नर्सिंग, डाक्टरी, शिक्षण कार्य और क्लर्कों आदि में स्त्रियों को आर्थिक स्वतंत्रता मिली। अब वह घर के बाहर विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने लगी। विवाह संस्था को स्वाभाविक प्रेम

पर आधारित एक समझौता माना जाने लगा। परिणाम यह हुआ कि प्रेम-विवाह और सिविल मैरिज की धारणा विकसित हुई। ये वैचारिक परिवर्तन जितनी तेजी से हुए, उतनी तेजी से परंपरागत सामाजिक मान्यताएं नहीं बदल पाई। इन वैचारिक परिवर्तनों का स्त्री-पुरुष के संबन्धों पर प्रभाव पड़ा है । प्रस्तुत संकलन की कहानी 'मौन समर्पण' की डॉ. भारती का विवाह एक प्रतिष्ठित डाक्टॅर से हुआ था । नवीन एक साधारण परिवार का लड़का था जिसने बी.ए. कर रखी थी। डॉ. भारती के घर उसका आना-जाना था । वह डॉ. भारती की बहिन मालिनी के प्रति आकर्षित था , लेकिन डॉ. भारती के पिता डॉ. वशिष्ठ उच्चाधिकारी थे। शायद उन्हें गरीब परिवार के नवीन के प्रति कोई रूचि न थी । जबकि नवीन की सोच इस प्रकार की थी कि वह अपना विवाह अत्यधिक पढ़े लिखे व संपन्न परिवार में बिना किसी दान-दहेज के करना चाहता था, वह अक्सर सोचता- ' यदि मेरा विवाह सुशिक्षित व संपन्न परिवार में हो जाता है तो मुझे वह मान-सम्मान व सामाजिक प्रतिष्ठा मिल सकती है जिससे मैं अब तक वंचित रहा।' [13] लेकिन जब वह सोमपुर डॉ. भारती को और उसके पति से मिलने जाता है तो उसे पता चलता है कि वह प्रन्द्रह वर्ष मे प्रतिष्ठित डॉक्टर बन गई है। प्रतिदिन हजारों रुपयों की आमदनी होती है परन्तु पति-पत्नी में मनमुटाव रहता है। डॉ. विवेक शराब के नशे में रहते हैं और भारती के मना करने पर भी कुछ नहीं बदलता। उसे याद आती है गुप्त जी की पंक्तियां- 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी आंचल में है दूध और आँखों में पानी।' भारत में स्त्री की यह दशा कभी भी हो सकती है। भले ही स्त्री कितना ही विकास कर जाए पर भारतीय समाज तो पुरुष प्रधान है न।' [14]

इससे स्पष्ट होता है कि अधिक पैसा सुख शान्ति नहीं दे सकता बल्कि शान्त मन ही पारिवारिक सुख की अनुभूति कर सकता है। पुराना परिचित नवीन डॉ. भारती के पति के प्रति मनमुटाव को देखकर कहता है-'अरे भारती, तुम्हारी यह क्या दशा हो गई। क्या तुम्हारे पिता के पूर्व यश ने, उच्च पारिवारिक स्तर ने, तुम्हारी डॉक्टरी ने, हजारों रुपए की आमदनी ने, प्रतिष्ठित डॉक्टर पति ने यही सब कुछ दिया है।' [15]

कहानी के अन्त में वह और भी हताश दिखाई देता है जब उसे पता चलता है कि डॉ. भारती की बहिन मालिनी 32 वर्ष की है पर है अभी कुँआरी ही। पर नवीन विवाहित है बाल बच्चों वाला खुशनसीब, सफल गृहस्थ है। इसी तरह पूँजीवादी व्यवस्था में अर्थ का महत्त्व बढ़ता जा रहा है और मनुष्य का मूल्य

कम हो गया है। इस तरह अर्थतन्त्र प्रधान युग में पति-पत्नी अर्थात् पारिवारिक संबन्धों के अतिरिक्ति परिवारेत्तर संबन्धों को स्वीकार करके चलने की मजबूरी को सहन करना पड़ रहा है। एक तरह से अर्थ उपार्जन में नारी कितनी आत्मनिर्भर हो पायी है, यह एक अलग प्रश्न है। परन्तु इस प्रक्रिया में वह पुरुष द्वारा शोषित भी हुई है, यह अपने आप में एक भयावह सत्य है। पाश्चात्य सभ्यता, शिक्षा के विस्तार, नारी स्वतन्त्रता ने पुरुष की तरह ही नारी को घर से बाहर की ओर आकर्षित किया है। वह भी पुराने छोड़े हुए घरेलू मुखौटे को धारण करके रहना नहीं चाहती। उसके सम्मुख एक ही विकल्प शेष रह जाता है, निरन्तर आगे बढ़ते जाने का। बदलती वैचारिकता और पॉलिश की सभ्यता के पीछे छुपे हुए चेहरों के भाव लिए हुए 'असली नकली चेहरों' का पर्दाफाश करते हुए लेखक की कहानी 'चेहरे असली नकली' एक उत्कृष्ट कहानी है जिसमें स्वार्थी सुधा अनिल के पैतृक पैसे से खिलवाड़ करती रही। जब उसका पैसा और शानो शौकत खत्म हो गई तब उसको पहचानने से भी इन्कार कर देती है। अनिल कहता है- 'सुधा उससे नहीं उसकी दौलत से प्यार करती थी। वह उसके प्यार के पीछे रुपया पानी की तरह बहाने लगा और वह बड़ी चालाकी से रुपया हड़पती रही।' [16] जबकि दूसरी तरफ अनिल के पिता की फैकट्री में काम करने वाली वर्षा खूब मेहनत करके कॉलेज में लेक्चरर लग कर अपना स्वयं का घर भी बना लेती है। गरीबी में सुधा तो अनिल को ठुकरा देती है पर वर्षा जिसे अनिल ने स्कूटर से हिट करके सड़क पर तड़पने को छोड़ दिया था वह बे-रोजग़ार अनिल को पीएच.डी. करवाने का प्रण भी लेती है और उसके साथ शादी के लिए भी स्वीकृति दे देती है। आधुनिकतापूर्ण दृष्टि प्रत्येक मूल्य को वर्तमान जीवन की कसौटी पर वर्तमान के सामाजिक संदर्भों और परिवेश में ग्रहण करती है। यही कारण कि परंपरा से चले आते प्रेम विवाह, नैतिकता, न्याय इनका पुनर्सृजन हुआ है। चिरकाल के बाद बदलते समय के साथ मूल्य पुराने तो पड़ते हैं लेकिन आज तो एक ही व्यक्ति के जीवन में मूल्यों का परिवर्तन दस-बारह वर्ष बाद हो जाता है। वास्तव में आधुनिकता का आधार विज्ञान है जिसकी प्रकृति सार्वभौमिक है। विज्ञान प्रौद्योगिकी, शिक्षा, संचार एवं परस्पर समझ का विकास हुआ है। इसी विचारधारा को प्रस्तुत करने वाली कहानी 'नवजीवन' अतीव सजीव कहानी है। सोनपुर लगभग दस हजार की आबादी वाला एक आदर्श गांव था जिसके प्रत्येक घर से कोई न कोई सदस्य क्लर्क, आई. ए. एस., आई. पी. एस., इंजीनियर, मजिस्ट्रेट, प्रोफेसर, डॉक्टर आदि उच्च

पद प्राप्त कर गांव का नाम रोशन कर रहे थे। इसलिए सोनपुर देखने की इच्छुक अंजू का विवाह वहां के युवक दीपक के साथ ही संपन्न हो गया। दोनों बहुत ही खुश थे। गाँव वालों ने भी खूब खुशियों से इस जोड़े का स्वागत किया लेकिन ईश्वर की माया का पार कोई नहीं पा सका। पहले ही दिन बिजली दीपक के घर पर गिरी। दीपक की क्षत-विक्षत लाश को देखकर नव-नवेली अनन्य सुन्दरी विधवा हो गई। सारा गाँव शोकग्रस्त हो गया मानो खुशियों के सारे उछलते दिलों पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा हो। अंजू का देवर सुशील हमेशा सोचता रहता- 'भाभी का क्या होगा, उसका पहाड़ जैसा लम्बा जीवन किस प्रकार कटेगा, किसके सहारे जीती रहेगी।' [17] यह अंजू अभी 18 वर्ष की थी जो सुशील की सहानुभूतिपूर्ण बातों के सहारे दिन काट रही थी। सुशील को आगे पढ़ने के लिए शहर जाना था। वह अपनी भाभी को दूसरी शादी करने का सुझाव देता है जिसे सुनकर अंजू बौखला जाती है और कहती है -'क्या तुम भूल रहे हो सुशील, कि मैं एक विधवा औरत हूँ और हिन्दू समाज में एक विधवा के लिए दूसरा विवाह करना तो दूर ऐसा सोचना भी महापाप है।' [18] उसके इन विचारों से सहमत न होकर सुशील कहता है- ' जानता हूँ भाभी! हमारा समाज एक ढकोसला है। समाज के ठेकेदारों ने बिना सोचे समझे न जाने कितने उल्टे सीधे नियम बना रखे हैं। औरत विधवा हो जाती है और आजीवन शादी जैसे पवित्रा बंधन का हक खो बैठती है, परन्तु क्या पुरुष विधुर होने पर दूसरी शादी के अधिकार से वंचित हुआ है? क्या तुम पढ़ी-लिखी होकर भी समाज के इन ऊट-पटांग नियमों का समर्थन करती हो? जब हम पढ़े-लिखे लोग ही ऐसा सोचेगें तो कैसे मिटेगी समाज से बुराईयां? कौन सुनेगा गरीब विधवाओं के रूदन को' [19] लेकिन सुशील के बार बार समझाने पर वह उससे वादा करती है कि जल्दबाजी से नहीं धैर्य रखकर समाज से टक्कर लेनी होगी। समय आने पर वह जरूर दूसरा विवाह करेगी, अभी हमें हिम्मत रखकर सामाजिक बुराइयों का विरोध करना चाहिए।

कहानी तब एक नया मोड़ लेती है जब दोस्त संजीव के घर आने पर यह बताता है कि वे दोनों आई.ए.एस. के इन्टरव्यू में पास हो गए हैं। खुशी से भाभी दोनों के लिये चाय बनाकर लाती है और संजीव को देखकर उसके हाथ से ट्रे छूटकर गिर जाती है। दोनों अतीत में खो जाते हैं। संजीव पढ़ते समय से ही अंजू को चाहता था लेकिन किसी को बताता नहीं था। आज अंजू को विधवा हुए देखकर जड़वत हो गया। लेकिन सारी सीमाएं पार कर वह अंजू को गले लगा

लेता है। सुशील देवर और उसकी मां की खुशियां लौट आती हैं। अंजू दोनों को देखकर हैरान सहमी सी खड़ी रहती है। लेकिन दीपक की माँ आगे बढकर अंजू का हाथ संजीव के हाथ में देकर कहती है –'सुशील आज का दिन हमारे लिए बहुत खुशी का दिन है, आज मेरा दीपक वापस आ गया।' [20]

इस संकलन की 'कर्ज' शीर्षक कहानी में आज की दो पीढ़ियों की विचारधारा के आपस के टकराव को बड़ी सूक्ष्मता से प्रस्तुत किया गया है। लेखक भली भाँति जानता है कि दो पीढ़ियों का वैचारिक संघर्ष निरन्तर बना रहता है। पुरानी पीढ़ी अपनी पुरानी विचारधारा और संस्कारों को लेकर जीना चाहती है, वह अपनी रूढ़ धरणाओं और पुराने विश्वासों का समर्थन करती है। इसके विपरीत नयी पीढ़ी नये विचारों, नयी धारणाओं की समर्थक है और नयी पीढ़ी नये को लेकर ही जीवन में आगे बढ़ना चाहती है। यह दोनों ही पीढ़ियां जब एक दूसरे के विश्वासों, विचारों और धारणाओं में हस्ताक्षेप करती हैं तो दोनों का अस्तित्व आपस में टकराने लगता है। नयी पीढ़ी को अपने विचारों पर पुरानी पीढ़ी का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं होता और पुरानी पीढ़ी को अपनी रीति-नीतियों का नयों द्वारा उल्लंघन असहय है। ऐसी अवस्था में घर का सुख और शांति दोनों ही समाप्त हो जाती हैं। घर का वातावरण जीने के योग्य नहीं रह जाता है, ऐसी अवस्था में यह आवश्यक हो जाता है कि बदलते सम्बन्धों के नये संतुलन खोजें जाएं। 'कर्ज' कहानी में सौरभ को अपने भाइयों से बहुत घृणा होती है जब उसके सामने उसका भाई मनोज मां पर हाथ उठाता है। सारा परिवार आपस में बातें कर रहा था। मां ने मनोज के दोस्त बंशी को बेईमान कहा जो उनके घर के सामने बैठा था। इतनी सी बात सुनते ही मनोज मां पर बरसने लगा–'खबरदार जो अबकी मेरे दोस्त के लिए गंदे शब्द निकाले।' [21] पर मां जानती है कि वह गलत नहीं है और वह कहती है– 'जो सही है उसे कहने से कौन रोक सकता है।' [22] मां ने सत्य पर अत्याचार होते देख वैसी ही आवाज में अपनी बात को तूल दिया। माँ की आवाज सुनते ही मनोज भईया ने तपाक से उठकर माँ के चार-पांच घूंसे जड़ दिये । सौरभ ने ऐसी कल्पना भी नही की थी जो उसकी आँखों के समाने हो गया।

इससे स्पष्ट हो जाता कि नयी पीढ़ी कभी-कभी भूल जाती है कि उनके जीवन के तनाव के विघटन का कारण उसकी अपनी अस्त व्यस्त प्रवृति है। इसी तरह आलोच्य संकलन में 'दीपक की रोशनी' शीर्षक कहानी की सोना अपने देश के प्रति वही पुरानी परँपरा को निभाने वाले शहीद हुए पुत्र अक्षय की देश-

भक्ति की सराहना करती है। वह माँ होकर भी सरपंच की पंचायत में निडर होकर जाती है और कहती है कि– 'नहीं सरपंच जी, वह दीया मैंने ही जलाया है । मुझे अपने बेटे के शहीद हो जाने का कोई दु:ख नही है । बल्कि मुझे तो खुशी है इस बात की कि मेरा अक्षय देश के लिए शहीद हो गया । मेरा अक्षय भी तो दीपक की भाँति जलता रहा था और तब तक जलकर मातृभूमि को रोशनी देता रहा था जब तक कि उसके प्राण रहे। अगर मैं आपकी जगह होती तो कभी गांव को दीपावली मनाने से नही रोकती, बल्कि अक्षय के शहीद होने पर गांव में खुशी की विद्यमानता का आभास कराने में सहायक होती । वह दीया मैने इतनी उँचाई पर इसलिए रखा था कि तुम्हारे जैसे उसको ठोकर मार कर चूर-चूर न कर सकें, क्योंकि यह भी अक्षय की तरह ऊँचा होकर जलता रहेगा और सबको रोशनी देगा''23 आधुनिक परिवेशगत परिवर्तन प्रमुख रूप से औद्योगिक क्रांति के कारण बहुत तीव्रगति से दृष्टिगोचर होता है जिसके कारण वह किसी प्रकार की पूर्व सच्चाई को स्वीकार नहीं करता, बल्कि वह प्रत्येक निष्कर्ष पर नये सिरे से विचार करता है और प्रत्येक क्षेत्र में क्यों और कैसे का आग्रह लेकर एक विवेकसम्मत तर्कपूर्ण दृष्टि को लिए हुए है। इस प्रकार दो पीढ़ियां जब परस्पर प्रतिद्वन्द्वी होकर आती हैं तो संबन्धों को निभाना कठिन ही नहीं बल्कि असंभव हो जाता है। अत: बदलते युग के बदलते संबंधों को निभाने के लिए यह आवश्यक है कि पुरानी पीढ़ी नयी पीढ़ी को रोकने-टोकने की अपेक्षा स्वयं ही एक ओर हट जाए, और स्वयं अपने रास्ते पर चलते हुए नयों को भी अपनी राह चलने दे।

ऐसी ही स्थिति के सत्य को उद्घाटित करती है प्रस्तुत संकलन की कहानी 'भटकती आत्मा' जिसका बुजुर्ग सारी उम्र गरीबी के कारण अपने बेटे और बहुओं के कटु, तीक्ष्ण व्यंग्य सहते सहते, भूखा-प्यासा ही दिन काट कर चल बसा। कभी कभी तो उसे सूखी भी न नसीब में होती थी। लेकिन उसके मरणेपरान्त बहू-बेटों ने गाँव के सेठ से पैसे लेकर ऐसे-ऐसे पकवान और मिठाईयां लोगों को खिलाई कि गरीब की आत्मा स्वर्ग लोक से धरती पर खाने की खुशबू के लिए भटकती है। जिसे जिन्दा रहने पर दवा दारू दिलाना ठीक न समझा उसके मरने पर दूसरों को मिठाईयां खिला कर झूठा यश कमाने का क्या लाभ। सभी को उसके मरने के बाद तरह-तरह की बाते सूझती हैं। कोई कहता है– 'बेचारा बुढ़ापे में भी काम करता रहा और नहीं तो मूँज ही बाँटता रहता, चटाइयां बनाता रहता और जब मरा तो भूखे मरते ही मरा। रिश्तेदार साहूकार और

अन्य हितैषी लोग ऐसे समय में अपनी असमर्थता प्रकट कर देते थे। उसके मरने के गम में विविध प्रकार की मिठाइयों और व्यजनों की ज्यौनार लगी।' [24] इससे स्पष्ट होता है गरीबी और शोषण दोनों अटूट रूप से अनुबंधित हैं क्योंकि गरीब ऋण लेगा तो चुकाने के लिए दम नहीं रहेगा। कर्ज तो जोंक है जो अन्दर ही अन्दर खून चूस लेती है।

इसी तत्थ को उदघाटित करती कहानी 'पैमाना' बहुत ही यथार्थ कहानी है जिसमें यूनिवर्सिटी में प्रथम स्थान पर आने वाला कुणाल गरीब भईया-भाभी बच्चों के लिए मुश्किल से जोड़े हुए पचास रूपए के जूते लेकर आता है और भागता हुआ खुशी से मखमली नंगें पावों को हाथों से पकड़कर पहनाता है। लेकिन जैसे ही घर के पास खड़ी भीड़ को देखता है तो उसका दिल बैठ जाता है और सोचता है- 'भगवान न करे किसी को कुछ हो तो नहीं गया।' वह आगे बढ़ा। देखा कि घर का प्रमुख सामान निकाला जा रहा था। सेठ जीवनदान हाथों में बही लिये भीड़ के बीच में खड़े होकर उसके भाई से कह रहे थे- 'कर्जा लेते समय अच्छा लगा और देने का वक्त आया तो तुमसे बनते नहीं पड़ता। तुम्हारे घर की एक-एक चीज को बिकवाकर मैं पैसे वसूल करूँगा।' 25 अभी भीड़ वहीं पर थी दूसरी तरफसे संगीत के साथ फूल मालाएँ लेकर आते हुए लोगों को देख सेठ दंग रह गया। उसके हाथ से तब बही-खाता वहाँ जमीन पर गिर गया जब गाँव के लोगों ने कुणाल के भईया-भाभी के गले में माला पहनाते हुए कहा- तुम्हें मुबारक हो, तुम्हारे भाई कुणाल का कलैक्टर बन कर आना। यह सब श्रेय तुम्हें है। यह सुनते ही सेठ चुपके से खिसक गया। सबकी आँखों में खुशी के आँसूं थे। एक गरीब मेहनती कुणाल गांव की शोभा बन गया था।

आलोच्य संकलन की 'ताबीज' शीर्षक कहानी का कथ्य यह स्पष्ट करता है कि आज से लगभग पाँच शताब्दी पूर्व व्यक्ति ने ज्ञान के क्षेत्र में अवलोकन, तार्किक विश्लेषण व व्यवस्थित प्रौद्योगिकी को जन्म दिया, जिसके परिणामस्वरूप औद्योगिक क्रांति व राजनैतिक क्रांति का सूत्रापात हुआ, जिन्होनें समाज में मौलिक व तीव्र परिवर्तनों को जन्म दिया। ये परिवर्तन आंरभ में पश्चिमी योरोप के देशों में हुए जहां से उनका विश्व के अन्य देशों में प्रसार हुआ। इसे आधुनिकता का एक अनिवार्य घटक कह सकते हैं। आधुनिकता एक ऐसी सतत प्रकिया है जो प्रत्येक युग में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है। आज इसे एक स्वतंत्र विचार-दृष्टि तथा बोध प्रक्रिया के रूप में स्वीकारा जाता है। आज

मनुष्य इस नये बोध के अन्तर्गत जीर्ण पुरातन का त्याग कर संशोधन तथा पुनर्मूल्यांकन की पद्धति से नए-नए रूपों के विकास की आकांक्षा और नवीनता के प्रति आकर्षित हो रहा है। मनुष्य का दृष्टिकोण प्राचीनता के प्रति अत्यधिक विवेकयुक्त एवं तार्किक होता जा रहा है।

प्रस्तुत कहानी के आरम्भ में ही लेखक स्पष्ट कहता है- 'आधुनिक युग में मानव जीवन की परिभाषाएँ बदल गई हैं, जीवन मूल्य एवं दर्शन का क्षरण होने से मानव दु:खी जीवन की ओर उन्मुख होता जा रहा है। आज न प्राचीन आश्रम व्यवस्था रही है और न ही भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का वह मूल स्वरूप जिसे आज से चालीस वर्ष पूर्व कुलदीप ने इसी अंचल में देखा था।' [26] कुलदीप की शादी को अभी दो वर्ष ही हुए थे। शहर की औरतों ने तानाकशी करनी शुरू कर दी थी।

कुलदीप की पत्नी को भी निराशा सी होने लगी। उसके ससुर पी. डबल्यू. डी.में इंजीनियर थे। लेकिन बहुत से लोगों के कहने पर वह बहू छवि को महात्मा जी के पास ले जाने का प्रण कर लेते हैं जबकि वे विज्ञान के विद्यार्थी थे अत: अंधविश्वासों पर भरोसा नहीं करते थे परंतु इस बार उनकी आँखों में एक विशेष प्रकार की आशामय चमक थी। विश्वास अटूट हो तो सब सफल हो जाता है। वही हुआ, ताबीज पहनने की तारीख के पूरे नौ महीने बाद उनके घर पोते ने जन्म लिया और घर खुशियों से खिल गया। हमेशा देखा जाता है कि आध्यात्मिकता मनुष्य में उदारता का विकास करती है। आध्यात्म में विश्वास करने वाला मनुष्य भौतिक संपदा के प्रति अधिक आसक्ति नहीं प्रदर्शित करता। वह अनेक तनावों से मुक्त हो जाता है। घीरे-धीरे सब सहज होने लगता है। यही सहजता उसे अनेक संत्रासों से मुक्ति दिलाती है और इससे पारिवारिक जीवन में विघटन व बिखराव कम होते हैं।

प्रस्तुत संकलन की प्रत्येक कहानी श्रेष्ठ है जिसमें मानव मूल्यों, सिद्वान्तों एवं भारतीय संस्कृति की सुरक्षा की ओर सचेत किया गया है। इस मशीनी युग में अमानवीय होते हुए विचारों के उन्मूलन की ओर इशारा करने में लेखक को सफलता मिली है। पश्चिमीकरण के प्रभाव से रिश्ते टूटने लगे हैं, संबन्ध चरमराने लगे हैं। साहित्यकारों की भावना हमेशा अपनी संस्कृति और सभ्यता को बचाने के लिए जुटी रहती है। डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा बधाई के पात्र हैं। मैं उनके प्रति ऐसी कुशल लेखनी के लिए आभार प्रकट करती हूँ।

संदर्भ :

1 डा. कैलाश चन्द्र शर्मा, 'अबला की मंजिल', पृष्ठ 7
2 वही, पृष्ठ 24
3 वही, पृष्ठ 29
4 वही, पृष्ठ 34
5 वही, पृष्ठ 35
6–7 वही, पृष्ठ 55
8 वही, पृष्ठ 56
9–10 वही, पृष्ठ 60
11 वही, पृष्ठ 62
12 वही, पृष्ठ 63
13–14 वही, पृष्ठ 66
15 वही, पृष्ठ 68
16 वही, पृष्ठ 74
17 वही, पृष्ठ 81
18 वही, पृष्ठ 83
19 वही, पृष्ठ 88
20–21 वही, पृष्ठ 90
22 वही, पृष्ठ 100
23 वही, पृष्ठ 101
24–25 वही, पृष्ठ 105
26 वही, पृष्ठ 108

❑❑❑

33

'अबला की मंजिल' : मानवीय सम्बंधों का प्रतिमान रचती कहानियाँ

डॉ. पुनीत कुमार राय

डॉ. कैलाश चंद्र शर्मा बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न रचनाकर हैं। सन् 1999 में प्रकाशित 'अबला की मंजिल' उनका पहला कहानी संग्रह है। कहानी-कला की सादगीजन्य स्पष्टता एवं सुलझी हुई जीवन-दृष्टि उनकी कहानियों की खासियत है। प्राय: समकालीन रचनाकार यथार्थ का इस तरह चित्रण करते हैं, जिसे पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे आज के समय और समाज में कोई भी मूल्य, आदर्श, प्रेरणा ही नहीं रह गया है। इस कदर विकृतियों-विद्रूपताओं से भरा रहता है समकालीन साहित्य। तथा-कथित 'बोल्डनेस' के नाम पर नैतिकता, परम्परा, परिवार और संस्कृति की धज्जियां उड़ाना तो आम बात है। इस दृष्टि से शर्माजी की कहानियाँ बिल्कुल अलग नजर आती हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में जिन चरित्रों को गढ़ा है, वे जीवन के उन्नयन के लिए एक मूल्य, एक आदर्श, एक प्रेरणा प्रदान करते हैं। उनकी कहानियाँ यथार्थ की विकृतियों में न धँसकर यथार्थ का आदर्शीकरण करती हैं। शर्माजी यथार्थ की शिनाख्त करने वाले कथाकार नहीं, आदर्शों की निर्मीति करने वाले कथाकार हैं। 'अबला की मंजिल' में कुल ग्यारह कहानियाँ हैं। पहली कहानी 'अबला की मंजिल' एक लम्बी कहानी है, जो प्रेम का एक प्रतिमान प्रस्तुत करती है। अमर अपने मित्र पंकज की मौसी नीलम के प्रति उसके निर्मल सौन्दर्य को देखकर

*असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी), शासकीय महाविद्यालय, शंकरगढ़ (छ.ग.)

आकर्षित होता है। किन्तु जिस सौन्दर्य की देवी के प्रति वह स्वयं को आकर्षित महसूस कर रहा था, जब उसे उसकी दयनीय दशा का पता चलता है, तब उसके मन में नीलम के प्रति एक गहरी सहानुभूति एवं लगाव उत्पन्न हो जाता है। पुरुषसत्तात्मक समाज ने नीलम को एक गूँगी गुड़िया बना दिया है। अनुपम सुंदरी नीलम के रूप और सौन्दर्य को भोगने की मंशा के कारण उसके जीजा उसका विवाह एक अर्द्धविक्षिप्त धनाढ्य व्यक्ति से करा देते हैं। दान-दहेज में असमर्थ पिता को विवश होकर उस विक्षिप्त व्यक्ति से नीलम का विवाह करना पड़ता है। नीलम के पति के पागलपन का अनुचित लाभ उठाकर उसके सभी जीजा लोग, उसके दोनों देवर और अन्य पुरुष वर्ग उसके साथ गलत सम्बंध स्थापित करना चाहते हैं। भूखे भेड़ियों से भरे इस समाज में नीलम सिर्फ अपनी गरिमा और सम्मान की रक्षा ही नहीं करती है, अपितु अपने पति के काम-धंधे को भी बढ़ाती है। कई वर्षों तक अमर, नीलम की मुलाकात नहीं हो पाती, दोनों अपनी-अपनी दुनिया में व्यस्त रहते हैं। दोनों की पुनः मुलाकात तब होती है जब अमर कलेक्टर बनकर उदयपुर के पास के एक शहर में जाता है। यह मुलाकात भी अनायास होती है, बिना किसी पूर्व योजना के। होता यह है कि 'शोषित महिला ग्रुप ऑफ इण्डस्ट्रीज' की एक्सपोर्ट यूनिट की प्रबंध संचालिका नीलम की ओर से कलेक्टर अमर को बतौर मुख्य अतिथि के रुप में उद्घाटन समारोह में आने का निमंत्रण-पत्र मिलता है। समारोह में अमर और नीलम की भेंट होती है। अमर नीलम की उन्नति से बेहद खुश होता है। एक स्त्री होकर भी विभिन्न विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुए नीलम ने जो मंजिल पाई थी, उससे अमर का हृदय नीलम के प्रति सम्मान से भर जाता है। नीलम अमर से अपने ' शोषित महिला ग्रुप ऑफ इण्डस्ट्रीज' का प्रबंध संचालक बनने का आग्रह करती है। अंत में अमर अपनी नौकरी से त्याग-पत्र देकर नीलम के ग्रुप ऑफ इण्डस्ट्रीज का प्रबंध संचालक बनने का निर्णय लेता है। इस कहानी में अमर और नीलम का जो सम्बंध है वह स्त्री-पुरुष के पारम्परिक सम्बंधों की परिभाषा में नहीं समाता। अमर द्वारा मिले अपनापे से नीलम विपरीत परिस्थितियों से जूझने का ताकत पाती है। अमर के अन्दर नीलम के प्रति सहानुभूति, सम्मान के भाव के साथ ही साथ एक गहरा लगाव है। इसी कारण वह नीलम के सहयोग के लिए अपनी अच्छी-खासी नौकरी से त्याग-पत्र देने का निर्णय लेता है। दरअसल दोनों का सम्बंध

स्त्री-पुरुष के सम्बंधों के गहरे और स्वस्थ रूप का आदर्श प्रस्तुत करता है। एक प्रेम कथा के साथ ही साथ यह कहानी एक अबला के सबला बनने के अदम्य जीवट की भी कहानी है। 'माधवी' एक लम्बी प्रेम कथा है। साहित्यिक रुचि-रूझान वाले अरुण और माधवी का पारस्परिक साहचर्य एक परिपक्व प्रेम में परिणत हो जाता है। अरुण एक पारिवारिक और संवेदनशील पुरुष है, उसकी पत्नी सीमा एक आदर्श गृहणी है, किंतु अरुण को अपने दाम्पत्य जीवन सें एक ऊब होने लगती है, उसे ताजगी और सृजन की प्रेरणा मिलती है माधवी से। अरुण के परिवार से अच्छी तरह घुली-मिली माधवी उम्र में अरुण से छोटी है। क्या विवाहित जीवन जीते हुए प्रेम-सम्बंधों को जीया जा सकता है ? यह कहानी इस प्रश्न का उत्तर देती है। एक ओर अरुण अपनी पत्नी, घर-गृहस्थी के प्रति जिम्मेदार है, तो दूसरी ओर माधवी के प्रति संवेदनशील भी। पारम्परिक भारतीय समाज में अरुण-माधवी के सम्बधों को न तो स्वीकृति है और न ही सम्मान। वर्षो बाद दोनों का मिलन होता है, विदेश के एक विश्वविद्यालय में, जहाँ सहायक प्रोफेसर के लिए माधवी साक्षात्कार देने जाती है, वहाँ अरुण पहले से ही प्रोफेसर के रूप में कार्यरत है। साक्षात्कार का प्रकरण जहाँ अरुण-माधवी का मिलन होता है अस्वाभाविक प्रतीत होता है। बहरहाल, यह कहानी भी प्रेम का एक उदात्त धरातल प्रस्तुत करती है। 'साक्षात्कार' भी एक प्रेम कहानी है। कानपुर में एक कार्यक्रम के दौरान डॉ. बादल का अलका से परिचय होता है। धीरे-धीरे यह परिचय प्रेम में बदल जाता है, फिर दोनों के बीच परिस्थितियों के कारण एक लम्बा अंतराल आता है। डॉ. बादल की पत्नी सुरभि की एक बीमारी से मृत्यु हो जाती है, उसके द्वारा स्थापित अस्पताल में एक लेडी डॉक्टर की आवश्यकता है, इसके लिए डॉ. बादल एक साक्षात्कार रखते हैं, इसी साक्षात्कार के दौरान बादल और अलका का 15 वर्षों बाद मिलन होता है। दोनों के मिलन के समय मृत सुरभि की तस्वीर का गिरना और सुरभि के आत्मा की आवाज आना और दोनों के सम्बंधों को स्वीकृति प्रदान कर विलीन हो जाना अति प्राकृतिक घटनाएँ हैं। 'मौन समर्पण' एक तरफा प्रेम और तद्जन्य त्याग की कहानी है। मालिनी डॉ. भारती के ताऊजी की लड़की है। नवीन मालिनी के प्रति आकर्षित था, और मालिनी भी उसके प्रति आकर्षित थी। किंतु परिस्थितियाँ कुछ इस तरह बनती है, कि नवीन मालिनी से विवाह न करके अन्य जगह विवाह करता है।

वर्षों बाद जब नवीन की भेंट भारती से होती है, तब उसे बातों ही बातों में पता चलता है कि मालिनी अभी तक कुँवारी है, उसने किसी से विवाह नहीं किया। इस बात से नवीन को बहुत ग्लानि होती है, वह इसके लिए स्वयं को जिम्मेदार मानता है। दरअसल मालिनी मन ही मन नवीन को अपना सर्वस्व मान चुकी थी, किंतु जब नवीन से उसकी शादी नहीं हो पाती है, तो वह आजीवन कुंवारी रहने का निर्णय लेती है। उसे न तो अपने घर-परिवार से कोई शिकवा-शिकायत है और न ही नवीन से। यही उसका मौन समर्पण है। 'चेहरे असली-नकली' में हैसियत देखकर सम्बंध बनाने की प्रवृत्ति को दिखलाया गया है। अनिल बड़े घर को बेटा है, सुधा उससे प्रेम करती है, दरअसल सुधा अनिल से नहीं उसकी दौलत से प्रेम करती है। सुधा के कारण ही अनिल ने एक बार अपनी फैक्टरी में करने वाली गरीब वर्षा को डाँटा-फटकारा था। वर्षा अपने परिश्रम से अपनी विपरीत परिस्थितियों को बदलती है। दुर्योग से अनिल की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो जाती है। उसे सुधा से कोई सहयोग-सहारा नहीं मिलता, उसे वर्षा सहारा देती है। दोनों अंत में विवाह भी कर लेते हैं। 'नवजीवन' दो प्रेमियों के पुनर्मिलन की कथा है। संजीव-अंजू कॉलेज के दिनों से ही एक-दूसरे से प्रेम करते हैं, किन्तुं दोनों का प्रेम मुखर नहीं मौन है। अंजू का विवाह दीपक से हो जाता है, और दुर्भाग्य से सुहागरात के ही दिन बिजली गिरने से दीपक की मृत्यु हो जाती है। अभी वैवाहिक जीवन की शुरूआत ही नही हुई थी कि अंजू का वैधव्य शुरू हो जाता है। वह पूरी तरह से बिखर जाती है। ऐसी दुखद स्थिति में उसे सांत्वना-सहारा देता है उसका देवर सुशील। सुशील का दोस्त है संजीव। दोनों आई.ए.एस. की परीक्षा में सफल होते हैं। संजीव सुशील के घर आता है, जब उसकी भेंट सुशील की विधवा भाभी अंजू से होती है, तब वह अवाक रह जाता है। संजीव-अंजू के पूर्व सम्बंधों को जानकर सुशील के घरवालों को सुखद आश्चर्य होता है, और वे अंजू का संजीव से विवाह करने का निर्णय करते हैं। इस प्रकार जहां संजीव को उसका खोया हुआ प्यार मिलता है, वहीं अंजू का रूखा-सूखा जीवन भी फिर से लहलहा उठता है, सुशील और उसकी माँ की अंजू के जीवन को लेकर चिंता भी समाप्त हो जाता है। यह कहानी साफ तौर पर प्रेम और विवाह को लेकर एक व्यावहारिक और प्रगतिशील रवैया अपनाने पर जोर देती है। 'कर्ज' में आज के भौतिकवादी समय में टूटते-बिखरते पारिवारिक रिश्तों का

चित्रण है। मनोज, राकेश, सौरभ तीन भाई हैं, इनमें सौरभ सबसे छोटा है, किंतु मेधावी और अपने परिवार के प्रति संवेदनशील है। वह जहां-तहां से पैसा एकत्र कर और बैंक से अपने हिस्से की जमीन पर कर्ज़ लेकर अपने बड़े भाई राकेश को विदेश भिजवाता है। विदेश जाकर उसका भाई जब अच्छी-तरह कमाने लगता है, तब वह उसे परिवार और उसकी पढ़ाई का खर्चा देने से इंकार कर देता है। सौरभ के समक्ष एक कठिन और असहज स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ऐसे समय में बैंक मैनेजर, जिसने सौरभ को आसानी से लोन दिलवाया था, सौरभ की मदद के लिए आगे आता है। यह कहानी यह बतलाती है, कि जब अपने पराये हो जाते हैं, तब कभी-कभी गैर लोग भी अपनो से बढ़कर साबित होते हैं। यदि आदमी के अंदर जुनून और जज्बा है तो कितनी भी प्रतिकूल परिस्थितियाँ क्यों न हों, रास्ता बनता जाता है, मददगार मिलते जाते हैं। 'दीपक की रोशनी' सैनिकों की शहादत को मातम के रूप में न मनाकर एक प्रेरणा के रूप मे मनाने का संदेश देती है। सोना और जयराज का बेटा अक्षय युद्ध में शहीद हो जाता है। अक्षय के शहीद होने से सोना और जयराम ही नहीं पूरा गाँव बहुत दुखित होता है, ग्राम पंचायत यह निर्णय लेती है कि अक्षय के शोक में इस बार गाँव में दीपावली नहीं मनायी जाएगी। दीपावली आती है, पर गाँव में उल्लास की जगह उदासी छायी रहती है। सोना अपने मुंडेर पर एक दीया जलाकर रख देती है। जयराज के घर पर दीया जलते देखकर गाँव वालों को शक होता है कि जयराज को दुखी करने के लिए किसी ने यह शरारत की है। पंचायत एकत्र होती है, तब सोना आगे बढ़कर गाँव वालों को सच्चाई बतलाती है और लोगों का आह्वान करती है कि अक्षय की शहादत को शोक के रूप में न मनाया जाए, अपितु इसे उल्लास के साथ एक प्रेरणा के रुप में मनाया जाए, जिससे लोग अक्षय की शहादत से सीख लेकर अपने देश और समाज के लिए कुछ करने के लिए तत्पर हो।

'पैमाना' में परिस्थिति बदल जाने पर लागों का नजरिया-व्यवहार कैसा बदल जाता है, इसे दिखलाया गया है। कुणाल एक प्रतिभाशाली छात्र है, उसकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है, उसके बड़े भईया जी-तोड परिश्रम द्वारा, खेती-किसानी करके उसे पढ़ाते हैं। कुणाल अपनी परिस्थिति और अपने बड़े

भाई के त्याग-परिश्रम को कभी भूलता नहीं है। विश्वविद्यालय में वह सिर्फ प्रथम ही नहीं आता, आई.ए.एस. परीक्षा में भी सफल होता है। इस सफलता से वह खुशी से उछल पड़ता है और बधाई देने वालों की भीड़ को छोड़कर सीधे बाजार जाता है और अपने भतीजे-भतीजी के लिए जूते खरीद कर घर पहुँचता है। दरअसल अभाव के कारण उसके भतीजे-भतीजी के पास जूते नहीं हैं, इस बात को कुणाल अपनी ताकत बनाता है और अन्ततः आई.ए.एस. परीक्षा में सफल होता है। घर पहुँच कर वह देखता है कि भईया द्वारा उधार लिए गए पैसे चुका न पाने के कारण सेठजी उसके घर का सामान बाहर निकलवा रहे हैं, और लोगों की भीड़ लगी हुई है। किंतु जब सेठ जी को यह पता चलता है कि कुणाल आई.ए.एस. हो गया है, तब वह चुपके से खिसक जाते हैं। जब कुणाल का परिवार दयनीय दशा में रहता है तब सेठजी उसके साथ कठोरता पूर्ण व्यवहार करते है, किंतु जैसे की कुणाल को ऊँचा ओहदा मिलता है उनके व्यवहार का पैमाना बदल जाता है। यही, व्यवहार का दोहरापन है, जो आदमी को नहीं उसके ओहदे को देखता है। 'भटकती आत्मा' भी समाज के दोहरे आचरण का उद्घाटन करती है। बुड्ढा भूख और बीमारी के कारण मर जाता है। जीते जी वह रोटी, दवा के लिए तरसता रहा, उसे न घर-परिवार से स्नेह- सहयोग मिला और न ही पास-पड़ोस से। मरने के बाद उसका क्रिया-करम बहुत अच्छे ढंग से सबके सहयोग से किया जाता है। बूढ़े की भटकती आत्मा लोगों के बात व्यवहार और पकवानों को देखकर कुढ़ती है। 'भटकती आत्मा' छोटी किन्तु एक तीखी व्यंग्य कहानी है। 'ताबीज' एक लम्बी कहानी है जिसमें एक सिद्ध महात्मा के महात्म्य, गंडा-ताबीज, तंत्र-मंत्र, भूत-प्रेत सम्बंधी बातों का निरूपण किया गया है।

एक कहानीकार के रूप में शर्माजी सकारात्मक दृष्टिकोण रखने वाले कथाकार हैं। उनकी कहानियाँ इतिवृत्तात्मक ओर नैतिकतावादी हैं। चरित्रों और घटनाओं के सपाट और इकहरे निरूपण के कारण उनकी कहानियों में उलझन नहीं हैं। उनकी अधिकांश कहानियाँ प्रेम आधारित है, और प्रायः सभी कहानियाँ सुखांत है। कथा विन्यास में संयोग तत्व का भी खूब इस्तेमाल किया गया है। उनकी भाषा साफ-सुथरी और सधी हुई है, कहीं-कहीं काव्यात्मक शैली भी मिलती है, यथा- 'गोल-गोल मासूम सा चेहरा, तिरेछे कजरारे नैन,

जो गोरे-गोरे चेहरे पर तेज धारदार कटारों सदृश दिल में अंदर तक उतर गये थे। बोझिल मद भरी पलकें जब खुलती थी तो भंवरों को अनुराग तड़ाग में कसमसाती कलियों का रसपान करने का लालच हो आता था और वे पलकों के खुले कपाटों से अंदर तड़ाग की गहराईयों में समा जाते थे और बौराये से कलियों के रसपान में इतने मस्त हो जाते थे कि मदभरी पलकों के बेहोशी में बंद हो जाने का होश ही न रहता। पता नहीं इस सरोवर में कितने भँवरे कैद थे। मदभरी पलकों पर सदा मस्ती का आलम छाया रहता और जब कभी वे खुलती तभी नवीन भ्रमरों को ऐसा अवसर प्राप्त हो पाता था।' (अबला की मंजिल, पृष्ठ-18) शर्मा जी कहानियाँ, पठनीय भी हैं, और प्रेरक भी। एक कहानीकार के रुप में संवेदना और शैली दोनों दृष्टि से वह हमे आश्वस्त करते हैं। इस संग्रह की भूमिका लेखिका डॉ. सुमन मेहरोत्रा ने बिल्कुल ठीक लिखा है - 'डॉ. कैलाशचंद्र शर्मा का यह पहला कहानी संग्रह है। प्रतिभा के लक्षण स्पष्ट परिलक्षित हो रहे हैं। धैर्यपूर्वक परिश्रम और प्रतीक्षा करने की आवश्यकता है।'

❑❑❑

34

'अबला की मंजिल': एक नजर

डॉ. अनीता नरेन्द्र

अबला की मंजिल' डॉ.कैलाश चन्द्र शर्मा का 11 चयनित कहानियों का संग्रह जो बाणगंगा प्रकाशन, जयपुर से प्रकाशित है। ये कहानियाँ सन् 1976 से लेकर 1998 के बीच लिखी गईं, जो समय-समय पर जयपुर और श्रीगंगानगर से प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं में छपी। लेखक की पहली कहानी 1976 में जयपुर से 'व्यावसायिका' पत्रिका में 'चेहरे असली नकली' नाम से प्रकाशित हुई तत्पश्चात् वर्ष 1977 से 79 के बीच भटकती आत्मा, पैमाना, कर्ज, नवजीवन, दीपक की रोशनी जैसी कहानियों का सृजन हुआ। वर्ष 1992 से 1995 की समयावधि में अबला की मंजिल, मौन समर्पण एवं साक्षात्कार आदि कहानियाँ लिखी गई।

स्वयं अपने कहानी लेखन के विषय में लेखक 'भूमिका' में लिखता है- 'स्वजनों की उपेक्षाएं, सामाजिक उपहास, आर्थिक विषमताएँ आदि जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा बनीं और इस परिवेश ने मुझे कहानी लेखन की ओर उन्मुख किया। - - - लिखने का शौक नहीं था परन्तु भोगी हुई, अनुभूत की हुई परिस्थितियों घटनाओं आदि को लेखनीबद्ध करने सें आत्मसंतुष्टि का अनुभव हुआ।' [1]

इस आलेख में मेरा उद्देश्य किसी आंदोलन या किसी विशेष विचारधारा को आधार बनाकर कहानी संग्रह का मूल्यांकन करने का नहीं है। जैसे सहज भाव से चतुर्दिक परिस्थितियों, अनुभूत सत्य से प्रभावित होकर डॉ. शर्मा ने

* एसोसियट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, बी.बी.के.डी.ए.वी. कॉलेज फॉर विमेन, अमृतसर

कहानियां लिखी हैं उसी सहज भाव से मैं प्रस्तुत कृति की शक्ति और संभावना पर विचार कर रही हूँ।

'अबला की मंजिल' कहानी संग्रह की पहली कहानी 'अबला की मंजिल' शीर्षक से ही है। यह कहानी जहाँ आदर्श प्रेम की कहानी हैं वही नारी सशक्तिकरण की कहानी भी सिद्ध होती है तथा समाज के तथाकथित उच्च वर्ग के दोहरे व्यक्तित्व और चरित्र पर प्रकाश डालने वाली कहानी के रूप में सामने आती है। कहानी का नायक 'अमर' गाँव से दूर शहर मे उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए किराए पर कमरा लेकर रहता है। धीरे-धीरे मकान मालिक के परिवार के सदस्यों से घुल-मिल जाने पर वह किराएदार से परिवार का सदस्य ही बन जाता है तथा मकान मालिक के बेटे पंकज का अभिन्न मित्र- 'अब पंकज के सारे रिश्तेदार उसके रिश्तेदार थे तथा सभी दोस्त उसके दोस्त थे।' [2] इसी दौरान पंकज की सगाई और विवाह की तिथि पक्की हो जाती है। शादी में भाग लेने के लिए पंकज की मौसी (नीलम) का आगमन होता है। जो शादीशुदा होने पर भी अपूर्व लावण्य की स्वामिनी है। अमर ऐसे सौन्दर्य के प्रति आकर्षित हो जाता है। इसमें मौसी की भी सहमति है। दोनों एक दूसरे के आकर्षण में बंध जाते है, परन्तु तभी अमर को मौसी के मुख से वास्तविकता का पता चलता है कि किस प्रकार उसके एक बहनोई ने अपनी वासना की पूर्ति हेतु उसका विवाह, बिना किसी दहेज के एक अर्द्धविक्षिप्त युवक से करा दिया। यहाँ लेखक प्रतिष्ठा के आवरण में लिपटे छद्मरूप भेडियों तथा नारी की निरीहता व विविशता का वर्णन करते हुए लिखता है- 'हमारे भारतवर्ष की संस्कृति समाज, यहाँ के व्यक्ति विश्व का गौरव माने जाते हैं, संसार उनका अनुकरण करता है तथा किताबों व इतिहास में वे पवित्र माने जाते हैं, पर वास्तविकता मुझ जैसी पीड़ित नारियों को पता है, जहाँ जगत्जननी नारी के स्वत्व व मर्यादा की रक्षा एक अनुत्तरित प्रश्नचिह्न है।' [3] मौसी की सारी वास्तविकता सामने आने पर अमर का मौसी के प्रति प्रेम सहानुभूति में परिवर्तित हो जाता है और वह विपरीत परिस्थितियों में भी मौसी की सहनशीलता व जिजीविषा का कायल हो जाता है। वह मौसी को सलाह देता है कि वह परिस्थितियों का मुकाबला करे और सम्पत्ति के बंटवारे से अपना हिस्सा लेकर स्वयं का कोई कारोबार करे। यह सुझाव मौसी का जीवन बदल

देता है। बहुत वर्ष बीत जाने पर एक दिन अमर को एक निमंत्रण पत्र मिलता है, जिसमें उसे मुख्य अतिथि बनाया गया है, कार्ड देखने पर उसे पता चलता है कि यह कार्ड 'शोषित महिला ग्रुप ऑफइण्डस्ट्रीज' जिसकी प्रबंध-संचालिका नीलम है की तरफ से है। समारोह में जाने पर सारा भेद खुल जाता है कि स्वयं को अबला समझने वाली निरीह मौसी आज कठोर परिश्रम व सूझबूझ से अबला से सबला बन चुकी है। अंत में अमर जिला मैजिस्ट्रेट के पद से त्यागपत्र देकर पत्नी जया सहित नीलम की 'शोषित महिला ग्रुप ऑफइण्डस्ट्रीज' का प्रबन्ध संचालक के रूप में साथ देने चल पड़ता है।

इस तरह प्रस्तुत कहानी मध्यवर्गीय पुरुष अमर के आदर्श प्रेम की कहानी है जो एक अबला नारी को प्रेरणा प्रदान करता है और उसे समाज व परिवार से टक्कर लेकर स्वयं अपने पैरों पर खड़े होने को प्रेरित करता है। इस कहानी में लेखक ने समाज के सत्य को पहचानकर स्वयं को सभ्य कहलाने वाले समाज की वास्तविकता को हमारे समक्ष नंगा कर दिया है।

'माधवी' प्रस्तुत संग्रह की दूसरी कहानी है जिसमें सामाजिक कर्त्तव्यों, पारिवारिक सम्बन्धों और वैयक्तिक प्रेम की भावनाओं के मध्य संघर्ष है। अरूण (प्रबुद्ध कथा लेखक) और माधवी में बेशक आयु में 15 वर्ष का अंतर है परन्तु वैचारिक स्तर पर समानता है। अरूण की पत्नी सीमा केवल पत्नी और माँ के कर्त्तव्य निर्वहन से संतुष्ट है, पर अरूण को नारी का यह रूप आधुनिक परिप्रेक्ष्य में त्रुटिपूर्ण लगता है। उसके लिए उसका लेखन कर्म सबसे पहले है, वह अपने लेखन की समीक्षात्मक अनुशंषा चाहता है, यह पूर्ति माधवी करती है - 'अरूण को उस समय पत्नीत्व के कर्त्तव्य निर्वहन से इतनी प्रसन्नता न होती जितनी कि किसी नई रचना की समीक्षा के रूप में माधवी की प्रसन्नतायुक्त एवं प्रेरणास्पद आंतरिक अभिव्यक्ति से।' [4] दोनों एक दूसरे से प्रेम करते हैं पर सामाजिक बंधन व मर्यादाएँ सामने हैं और प्रेम को खुलकर एक दूसरे के सामने कहने और स्वीकार न कर पाने की विवशता। दोनों एक दूसरे को अपनी बात लेखन के माध्यम (अरूण कहानी में और माधवी गज़ल और कविता में) से कहते हैं परन्तु स्वीकार नहीं कर पाते। इन सबसे ऊबकर अरूण विदेश पलायन कर जाता है (यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर), जहाँ साक्षात्कार कक्ष में आमना-सामना होने पर (माधवी और अरूण) सभी बंधन टूट जाते हैं और प्रेम स्वीकार करने में माधवी, अरूण से आगे निकल जाती है। अरूण कहता

है- 'तुमने स्त्री होकर भी अपना प्रेम व्यक्त कर दिया था और में पुरुष होकर भी उस पर कोई प्रतिक्रिया न कर सका, मिलन का कोई समाधान न निकाल सका। सामान्यत: स्त्री अपने समर्पण हेतु पुरुष की स्पष्ट एवं मुखर अभिव्यक्ति की कामना करती है, परन्तु यहाँ पर तुम मुझसे जीत गई। ' [5] इस तरह अरूण और माधवी के प्रेम की सुखद परिणति से कहानी का अंत होता है।

तीसरी कहानी 'साक्षात्कार' परिवेश से जुड़े व्यक्ति मन की कहानी है। जिसके नायक डॉ. बादल की अपनी पत्नी डॉ सुरभि (जो अत्यंत गंभीर बीमारी से पीड़ित थी) की मृत्यु के पश्चात् बडे नाटकीय ढंग से अपनी पूर्व प्रेमिका डॉ.अलका चौधरी से मिलन हो जाता है। वह अलका जो रूढिवादी, व्यावसायिक परिवार की बेटी है जहाँ बेटियों के लिए अक्षर-ज्ञान ही काफी समझा जाता है। अलका उच्च शिक्षा पाना चाहती है, पढ़-लिखकर डॉक्टर बनकर दुखियों की सेवा करना चाहती है। यहाँ भी डॉ. बादल उसके प्रेरणा स्रोत बनकर आते हैं। अलका उनके शोधकार्य में सहयोग करती है और इसी दौरान दोनों एक दूसरे की तरफ आकर्षित हो जाते हैं। परन्तु अलका के परिवार को दोनों की यह निकटता पसंद नहीं- ' क्योंकि वह उनकी रूढिवादी आकांक्षाओं और मर्यादाओं के विपरीत अलका में आगे पढ़ने के प्रति भावनाएँ जागृत कर रहा था।' [6] बादल की यह प्रेरणा अलका का जीवन बदल देती है। समय गुजरता जाता है और बादल का स्थानान्तरण कानपुर से जोधपुर हो जाता है जहाँ उसकी पत्नी अपना हास्पिटल चला रही थी और गंभीर बीमार थी। बहुत प्रयास करने पर भी बादल सुरभि को बचा न सका। उसके अंतिम शब्द-'बादल-इस अस्पताल को मैं अपनी अमानत के रूप में तुम्हारे पास छोड़े जा रही हूँ - इस कार्य में मैं तुम्हारा अधिक साथ नहीं दे सकी, पर तुम कोई अच्छा-सा साथी ढूँढ लेना जो इसके विकास में तुम्हारा साथ दे सके, मेरी नित नई मुस्कान का स्रोत बन सके - - - अच्छा बादल - -मैं जा रही हूँ।' [7] बादल को बार बार बेचैन करते हैं। चिकित्सा अधिकारी के लिए उपयुक्त उम्मीदवार का चयन करने के दौरान डॉ. अलका से मुलाकात मानो डॉ. सुरभि की अंतिम इच्छा की पूर्ति हेतु ही थी। बादल कहता है-' अब तुम ही इसे संभालो अलका, ताकि सुरभि की आत्मा को शांति मिल सके और मेरे इस अनचाहे जीवन को छटपटाहट से मुक्ति मिल सके।' [8]

'मौन समर्पण' कहानी एक निम्न मध्यवर्गीय महत्वाकांक्षी युवक नवीन

की कहानी है जो उच्चवर्ग की-सी जिंदगी के सपने देखता हैं, वह समाज में पद, प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य पाना चाहता है। नवीन स्वास्थ्य विभाग के डायरेक्टर डॉक्टर शिव शंकर वशिष्ठ की पुत्री मालिनी से मन ही मन एकतरफा प्यार करता है। बी.ए.पास करने के पश्चात् उसे लिपिक की नौकरी मिल जाती है। विवाह के प्रस्ताव आना शुरू होते हैं पर नवीन-'वह स्वयं अपने आप से एवं अपनी अब तक की प्रगति से संतुष्ट न था और महत्वाकांक्षा के हथियार से सफलता का गढ़ जीतना चाहता था।' [9] किसी तरह डायरेक्टर साहिब को यह पता चल जाता है कि नवीन उनकी बीच वाली पुत्री मालिनी से विवाह का इच्छुक है। वह विवशता में नवीन को विवाह का प्रस्ताव भेजते हैं और साथ ही उसकी जन्मकुंडली और पारिवारिक स्थिति का विवरण माँगते हैं। परन्तु नवीन को पत्र में छिपे अपमान की गंध आ जाती है और वह सोचता है-'भूल जाऊंगा मैं अपनी मालिनी को। जो मिल नही सकता, उस मृगमरीचिका के भ्रम में पडकर जीवन बर्बाद करने से तो अच्छा है कुछ अनचाहा हासिल करके उसी में संतोष करना। समय बीतता जाता है और नवीन एक प्रसिद्ध लेखक के तौर पर समाज में पहचान बना लेता है। तभी अचानक एक दिन उसे पता चलता है कि मालिनी की बड़ी बहन डॉ.भारती अपने पति डॉ. विवेक के साथ रूद्रपुर के अस्पताल में नियुक्त है। वह कौतूहलवश उनसे मिलने जाता है पर वहाँ मोटी, नाटी, काली औरत को देखकर हैरान रह जाता है-'यह वही मेडिकल कॉलेज की छात्रा भारती है, जो गले में स्टेथोस्कोप लटकाए चिंहुक-चिंहुक कर चलती थी।'10 यहाँ लेखकर ने स्पष्ट किया है कि वैचारिक समानता और पति-पत्नी में प्रेम होना वैवाहिक जीवन की सफलता के लिए अति आवश्यक है। फिर चाहे पेशा व सामाजिक स्तर एक जैसे न भी हों। डॉ.भारती व उनके पति डॉ. विवेक में इसी कारण बनती नहीं। नवीन सोचता है-'अरे भारती, तुम्हारी ये क्या दशा हो गई। क्या तुम्हारे पिता के पूर्व यश ने, उच्च पारिवारिक स्तर ने, तुम्हारी डाक्टरी ने, हजारों रूपयों की आमदनी ने, प्रतिष्ठित डॉ. पति ने, इस पन्द्रह वर्ष के अन्तराल में तुम्हे यही सब कुछ दिया। ' [11] तभी नवीन को भारती से पता चलता है कि उसकी एक बहन मालती अभी कुँवारी है। वह नवीन को उसके लिए लड़का बताने के लिए कहती है। नवीन सुनकर सन्न रह जाता है। वह निर्णय नहीं कर पाता कि यह मालती का मौन समर्पण है या सच में उसे कोई रिश्ता मिला ही नहीं। नवीन निर्णय करता है

कि अब वह सम्पन्न है, अच्छी नौकरी में है व शिक्षित है और समाज में उसकी एक पहचान है। अत: अब वह उसके आततायी पिता को उनकी गलती का अहसास करवा सकता है और वह दृढ़ निश्चय कर बाहर निकल जाता है। यहीं कहानी चर्मोत्कर्ष पर पहुँचकर समाप्त हो जाती है।

'चेहरे असली नकली' प्रस्तुत कथा-संग्रह की पाँचवीं कहानी है। कहानी के शीर्षक से ही स्पष्ट है कि प्रस्तुत कहानी में स्वयं को संभ्रांत और प्रतिष्ठित कहे जाने वाले उच्च वर्ग के असली चेहरे को नंगा किया गया है, जिसके लिए हैसियत सारे सम्बन्ध अर्थ से शुरू होकर अर्थ पर ही समाप्त होते हैं। जो पैसा देखकर प्रेम करते हैं और पैसा चले जाने पर उनका प्रेम भी छू मंतर हो जाता है। कहानी का नायक अनिल धनाढ्य परिवार का मेधावी बेटा है। पिता की फैक्ट्रियां हैं। वह और उसकी बहिन यूनिवर्सिटी में मजे से पढ़ते हैं। वहीं सुधा नाम की एक लड़की अनिल को अपने रूप सौन्दर्य में फँसा लेती है दोनों एक दूसरे पर मर मिटते हैं और शादी करने के स्वप्न देखते हैं परन्तु अनिल हकीकत से नावाकिफ़ है कि -'सुधा उससे नहीं उसकी दौलत से प्यार करती थी। वह उसके प्यार के पीछे रुपया पानी की तरह बहाने लगा और वह बड़ी चालाकी से उसका रुपया हड़पती रही।' [12] एक दिन अचानक वर्षा नाम की एक लड़की जो अनिल के साथ पढ़ती है और उसके पिता की फैक्ट्री में पार्ट टाईम जॉब करती है, का एक्सीडेण्ट अनिल के स्कूटर से हो जाता है। उससे माफी मांगने की बजाए अनिल और सुधा उसे खूब भली-बुरी सुनाते हैं और अनिल उसे नौकरी से भी निकाल देता है। इसी दौरान सुधा के पिता जी का ट्रांसफर जयपुर हो गया और वह अनिल को छोड़कर चली गई। धीरे-धीरे अनिल के भाग्य ने भी करवट ली और उनके मैनेजर ने सारा कुछ हड़प लिया। अनिल, सुधा को भूलने का प्रयत्न करने लगा और अपनी बहन को लेकर जयपुर आ गया। वहाँ एक फर्म में नौकरी की परन्तु वह भी शीघ्र ही छूट गई। वह दर-दर भटकने लगा। एक दिन सुधा के घर उससे मिलने गया। उसने सुधा को जब बताया कि वह नौकरी के लिए ही उसके पास आया है तभी उसे सुधा का असली रूप दिख गया-'जब सभ्यता की पॉलिश को जानबूझकर मिटाया गया तो आँखो को सुधा का असली रूप दिखायी पड़ गया।' [13] एक दिन सुधा ने साफ-साफ कह दिया-'और अब हम भी तुम्हारे से काफी परेशान हो गये हैं भाई! अब तो पीछा छोड़ो।' [14]

सुधा का घर छोड़कर आते समय अचानक अनिल का सामना वर्षा से होता है तो वह आश्चर्यचकित रह जाता है। उसे पता चलता है कि वर्षा एक कालेज में लैक्चरार के पद पर है। उसका अपना घर है। वह अनिल से विवाह का प्रस्ताव रखती है और उसे पी.एच.डी करवाने का वचन देती है। अनिल सोचता है-'एक दोस्त सुधा थी जो अपने असली रूप को छिपाये हुए थी और एक दोस्त वर्षा है जो अपने असली रूप को अब उघाड़ रही है।' [15] इस तरह 'चेहरे असली नकली' में लेखक ने धनवानों के नकली चेहरे के पीछे छिपे असली चेहरे को पहचानने का सार्थक प्रयत्न किया है।

'नवजीवन' कहानी सामाजिक कहानी है, जिसमें विधवा का पुनर्विवाह उसके ससुराल वाले करवाते हैं। अंजू का विवाह सोनपुर के दीपक के साथ बड़ी धूम-धाम से हुआ। एक नई नवेली दुल्हन की तरह मन में सपने संजोए वह ससुराल आई परन्तु शादी की पहली ही रात बिजली गिरने से दीपक की मृत्यु हो गई। अंजू की दुनिया बसने से पहले ही उजड़ गई। अंजू का देवर सुशील अपनी भाभी का ध्यान रखता है और एक दिन उसे दूसरी शादी करने के लिए कहता है। अंजू भारतीय समाज में विधवा विवाह को पाप बताती है परन्तु सुशील समाज पर व्यंग्य करता हुआ कहता है-'हमारा समाज अपने-आप में एक ढ़कोसला है। समाज के ठेकेदारों ने बिना सोचे-समझे न जाने कितने उल्टे-सीधे नियम बना रखे हैं। - - - औरत विधवा हो जाती है और आजीवन शादी जैसे पवित्र बंधन का हक खो बैठती है, परन्तु क्या पुरुष विधुर होने पर दूसरी शादी के अधिकार से वंचित हुआ?' [16] इस बात पर अंजू वचन देती है कि उचित समय आने पर वह अवश्य इस सामाजिक बुराई को दूर करने में पहल करेगी और दूसरा विवाह करेगी। सुशील अंजू के लिए उचित वर सोचने लगा, तभी उसे अपने भाई के मित्र संजीव का ध्यान आया जो अंजू के विवाह में नहीं आ पाया था। वह अब एक आई.ए.एस.अफसर बन चुका है। संजीव मन ही मन एक लड़की से विवाह करने की प्रतिज्ञा कर चुका है, किसी अन्य से नहीं। परन्तु बहुत पूछने पर भी वह उसका नाम किसी को नहीं बताता। आई.ए.एस.अफसर बनने पर सुशील उसे अपने साथ घर ले आता है जहाँ अंजू को सामने देखकर वह हैरान हो जाता है। वास्तव में अंजू ही वह लड़की है, जिससे विवाह करने के संजू ने प्रतिज्ञा की थी। दोनों एक दूसरे को देखकर अभिभूत हो जाते हैं। सुशील की माँ यह जानकर अति

प्रसन्न होती है और कहती है-'सुशील आज का दिन हमारे लिए बहुत खुशी का दिन है, आज मेरा दीपक वापस आ गया।' [17]

'कर्ज़' कहानी भारतीय समाज के बदलते रूप की पहचान करवाने वाली कहानी है। अर्थ कैसे सम्बन्धों को प्रभावित करता है और कैसे खून के सम्बन्ध सफेद हो रहे हैं को दर्शाने वाली कहानी 'कर्ज' कहानी है। सौरभ एक छोटे से गाँव में रहने वाला युवक है जो शहर में छात्रवृत्ति लेकर पढ़ रहा है। परिवार में उसके माता-पिता के अतिरिक्त मनोज और राकेश नाम के दो भाई हैं। वह दोनों से छोटा है। आज वह घर छोड़कर जा रहा है, उसे याद आता है कि कैसे उसके भाई मनोज ने माँ को अपने मित्र को बेईमान कहने पर मारा जिसे पिता ने भी उचित ठहराया। विरोध करने पर मनोज ने सौरभ को घर से निकाल दिया। सौरभ को याद आता है कि कैसे उसने बैंक से कर्ज लेकर मामूली से इलेक्ट्रीशियन और कर्ज में दबे अपने राकेश भैया को अपने एक दोस्त (हजारी) के पिता की सहायता से मस्कट भेजा परन्तु वहाँ जाकर उसने प्रथम और अंतिम बार 15000/- रूप्ये का ड्राफ्ट भेजकर अपने कर्त्तव्य से इतिश्री पा ली। अभी सौरभ बैंक का कर्जा वापस करने ही वाला था कि उसे पता चला कि राकेश के हिस्से की जमीन बडे बैंक वाले नीलाम करने वाले हैं। सौरभ ने किसी तरह मिन्नतें कर 15000/- चुकाकर नीलामी रूकवायी। अब नियत तिथि पर बैंक से लिया गया कर्ज कैसे लौटाया जाए? यह समस्या सौरभ के सामने थी। तभी बैंक के मैनेजर जो सौरभ से सगे भाई जैसा स्नेह करते हैं सौरभ की समस्या का समाधान करते हुए कहते हैं कि उन्हे सब मालूम हो गया है, उन्होंने सारा कर्ज़ स्वयं लौटा दिया है। उन्होंने आश्वासन दिया कि वह निश्चिन्त होकर पढ़ाई में ध्यान दे। एक अजनबी मैनेजर से ऐसा स्नेह पाकर सौरभ का मन द्रवित हो गया वह सोचने लगा कि एक और बैंक मैनेजर है तथा दूसरी तरफ उसका भाई-'तुमने विदेश भेजते समय बैंक से ऋण लेकर मुझे दिया था वह मैं तुम्हें सूद समेत भेज चुका हूँ और अब मुझ पर तुम्हारा कोई अहसान नहीं रहा। रही बात तुम्हारी पढाई के पैसे भेजने की। सो मुझसे कोई उम्मीद मत रखना।' [18] सौरभ सोचने लगा कि कैसे अपने पराए और पराए अपने बन जाते हैं। मैनेजर साहिब ने सौरभ को अपने साथ रहने का प्रस्ताव रखा तो सौरभ ने निर्णय किया कि एक दिन

अवश्य वह काबिल बनकर मैनेजर साहिब के ऋण से उऋण हो पाएगा।

'दीपक की रोशनी' एक ऐसे परिवार की कहानी है जिनका पुत्र देश के लिए शहीद हो गया। अक्षय प्रौढ़ा सोना और जयराज का इकलौता बेटा है। अक्षय के चले जाने से उसके माता-पिता, और उसके दादा ही दुखी नहीं अपितु उनके गाँव रायपुर के सभी निवासी अक्षय की शहादत को सलाम करते हैं और परिवार के गम् में शामिल हैं। दीवाली के दिन पंचायत द्वारा फरमान जारी किया जाता है कि इस वर्ष अक्षय की याद में गाँव में दीवाली नहीं मनाई जाएगी। सभी गाँव वाले इस निर्णय का स्वागत करते हैं परन्तु तभी पता चलता है कि किसी ने शरारतवश जयराज की ऊँची मुंडेर पर दीपक जला दिया है। यह सुनकर सरपंच और समस्त गाँव वाले नाराज हो जाते हैं और कहते हैं कि जिसने यह दिया जलाया है उसे कड़ी से कड़ी सजा दी जाए। आधी रात को पंचायत बुलाई जाती है। सारे गाँव वाले इकट्ठा होते हैं। तभी अक्षय की माँ वहाँ आकर रहस्योद्घाटन करती है कि यह इकलौता दिया उसी ने जलाया है क्योंकि उसके बेटे की शहादत दु:ख का विषय नहीं अपितु गर्व का कारण है। यदि वह सरपंच होती तो सारा गाँव रोशनी से जगमगाने का आदेश देती ताकि सभी को पता चलता कि यह शहीद अक्षय का गाँव है। और हमें मातृभूमि पर मर मिटने वाले अपने बेटे पर गर्व है। यह सुनकर सरपंच को अपने गलत निर्णय का अहसास हुआ और उन्होनें कहा- 'समस्त गाँव वालो! आज हमारे गांव में मिठाइयां बंटेंगी, दीपावली मनेगी और इतने जोर से मनेगी कि उसकी याद आगे जाने वाले वर्षों तक बनी रहेगी।' [19]

'पैमाना' इस कहानी संग्रह की नौंवी कहानी है। यह कहानी एक ऐसे मेधावी युवा लड़के (विद्यार्थी, भाई) की कहानी है जो कर्त्तव्यपरायण है, स्नेही है और गाँव से शहर आकर पढ़ते हुए शेष विद्यार्थियों से बिलकुल अलग है। जो गाँव से शहर केवल पढ़ने व एक उद्देश्य से आया है-'कुणाल तुम शहर जा रहे है, वहाँ पर तुम्हारा कर्तव्य सिर्फ पढ़ना होना चाहिए, कुणाल सिर्फ पढ़ना।' [20] सच में कुणाल को अपने बड़े भाई के यह शब्द कभी नहीं भूले। कुणाल ने युनिवर्सिटी में टॉप किया। तथा साथ ही साथ आई.ए.एस में उसका सिलेक्शन भी हो गया। यह सुनकर वह भागकर अपने कमरे में गया और लम्बे समय से संभालकर रखे हुए 50 रूपये निकालकर बाज़ार जाकर अपने भतीजे-भतीजी के लिए बढ़िया जूते खरीदे। जैसे ही यह सूचना देने के लिए वह अपने गाँव

पहुँचा वह हैरान रह गया कि सेठ जीवनदान हाथों में बही लेकर कर्ज का तकाज़ा कर रहा था और धमकी दे रहा था कि वह घर की एक एक चीज़ बिकवाकर पैसा वसूलेगा। उसी समय कुणाल के कलैक्टर बनने की सूचना गाँव वालों तक पहुँची। सभी गाँव वाले उसका स्वागत करने के लिए हाथों में फूलमालाएँ लिए उनके घर एकत्र हो गये। जैसे ही सेठ जी को यह पता चला उनके हाथों से कर्ज की बही छूट गई और वह चुपके से वहाँ से खिसक गए। पद, प्रतिष्ठा के रौब ने सेठ जी को चुप करवा दिया। वर्तमान समय का यही पैमाना है, यही हकीकत है। जिस पर इंसान का मान-सम्मान तौला जाता है।

'भटकती आत्मा' मूलत: एक व्यंग्य कथा है, जहाँ बड़े-बूढों को उलाहने व तीक्ष्ण व्यंग्य कर करके, बिना ईलाज जीते-जी ही मृतक बना दिया जाता है। परन्तु मरने पर वही बेटे, जो उसके जीते जी गरीबी का रोना रोते रहे गाँव में अपना मान-सम्मान बनाए रखने के लिए मिठाइयाँ और तरह-तरह के पकवान बनाकर गाँव व रिश्तेदारों को खिलातें हैं। इधर पकवानों की खुशबू मरे बुड्ढे की आत्मा की नाक में पहुँचती है तो वह यमलोक से भाग निकलता है और गाँव पहुँचकर एक पेड़ पर चढ़कर रौनक व चहल-पहल तथा जीमते लोगों को तरह-तरह के व्यंजन खाते देखता है। वह सोचता है-'कुत्तो के भाग्य भी आज खुल गये थे, मानो उनकी लाटरी निकल आई हो।' [20] इसे बुड्ढे की बदकिस्मती ही कहेंगे कि जो भोजन आज कुत्तों के भी नसीब में है वह उसे कभी प्राप्त नहीं हुआ। तभी यमदूत बुड्ढे को आकर पकड़ लेते हैं। पेड़ पर बैठा उल्लू अनायास ही कहता है-' वाह रे ऊपर वाले तेरी महिमा का। एक तरफ कुत्ते हैं और कुत्तो से गए गुजरे ये समाज के ठेकेदार हैं—— दूसरी तरफ बिचारे बुड्ढे की आत्मा है जो मिठाइयों की खुशबू का आनंद भी आराम से नहीं उठा सकती खाना तो दूर रहा।' [21]

'ताबीज' प्रस्तुत संग्रह की अन्तिम कहानी है जिसमें संतान न होने पर कहानी के नायक कुलदीप को 40 वर्ष पुरानी घटना याद आती है कि कैसे उसके माता-पिता के भी कोई संतान नहीं थी। जब उसके माता-पिता चहुं ओर से निराश हो गये तो एक दिन सिद्ध पुरुष महात्मा जी के चमत्कारों के बारे में सुनकर उन्होंने भी वहाँ जाने का निर्णय किया। वहाँ पहुँचकर महात्मा जी के दर्शन किए और चरणों में माथा टेका। महात्मा जी ने हवन साम्रगी मंगवाकर हवन किया तथा एक खाली कागज़ पर कुछ लिखकर हवन की

सिगड़ी की भभूत बांधकर एक ताबीज बनाकर उसकी माँ के गले में पहना दिया। महात्मा जी के आशीर्वाद से ही उसका (कुलदीप) जन्म हुआ। उसे याद आता है कि कैसे प्रत्येक वर्ष उसके माँ-बाप उसे साथ लेकर महात्मा जी का आशीर्वाद लेने जाते थे। कुछ वर्षों के पश्चात् उसके पिता का तबादला आंध्रप्रदेश में हो गया। पूरा परिवार जा रहा था। आखरी वक्त महात्मा जी ने कहा-'छुटके के गले का ताबीज़ कहीं छूट न जाए।' [22] समय बीतता गया, महात्मा जी का शरीर छूट गया। कुलदीप के माँ-बाबा भी पूरे हो गये। कुलदीप अपनी पत्नी छवि के साथ प्रसन्न था। काफी वर्ष व्यतीत हो गए पर छवि को मातृत्व-सुख नहीं मिला। डाक्टरों पर हजारों रुपये खर्च किए गए परन्तु आशा की किरण दिखायी नहीं दी। अचानक एक दिन पूजा घर की सफाई करते समय छवि को एक ताबीज मिला। ताबीज देखकर कुलदीप को याद आया- 'उसके गले का ताबीज उनके लिए (माता-पिता) उससे भी अधिक कीमती था और वे इसका ख्याल अपने प्राणों से भी अधिक रखते थे।' [23] छवि को जब इस ताबीज का महत्व पता चला तो वह भी महात्मा जी के आश्रम जाने की ज़िद करने लगी। वे दोनों बाबा के आश्रम गए, वहाँ सभी सेवक इंजीनियर साहब के बेटे छुटकू को देखकर प्रसन्न हो गए। रात को बाबा जानकीदास ने संझाआरती के बाद कहा-'गुरु जी ने प्रयाण से एक दिन पहले तुम्हारे लिए एक ताबीज़ बनाकर दिया था और कहा था कि जब मेरा छुटका आए तो उसे देकर कहना बहू को पहना दे।' [24] ठीक नौ महीने बाद छवि को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई तभी उन्हें याद आया कि बाबा जानकीदास ने पूज्य महात्मा जी का निर्देश दिया था कि ठीक नौ महीने बाद दोनों ताबीज़ तोड़कर गंगा जी में विसर्जित कर दिए जाएँ। जैसे ही ताबीज खोले गए तो वह हैरान रह गए कि महात्मा जी ने 48 वर्ष पूर्व ही ताबीज़ पर उसका जन्म, तिथि, समय लिख दिया था एवं छवि वाले ताबीज़ में उसके पुत्र का जन्म, समय, तिथि। दोनों ताबीज़ एक ही स्याही से एक ही दिन बनाए गए थे। पति-पत्नी ताबीज लेकर अपने एक दिन के पुत्र को गोद में लेकर ताबीज नदी में प्रवाहित करने चल पड़े। 'ताबीज' कहानी में लेखक ने यह प्रतिपादित किया है कि आस्था, विश्वास, श्रद्धा विज्ञान से ऊपर है। और आज के समय में भी कुछ सिद्ध पुरुष महात्मा ऐसे हैं जो नि:स्वार्थ भाव से मानवता की सेवा कर रहें है। यह सब कुछ ऐसा है जिसके समक्ष विज्ञान बौना है। जब चहुं ओर से व्यक्ति निराश हो जाता है

तो देवी-देवता, आस्था, विश्वास व श्रद्धा की ओर मानव का झुकाव स्वयं ही हो जाता है और जब कामना पूरी हो जाए तो यह विश्वास और दृढ़ हो जाता है।

प्रस्तुत कहानी संग्रह में संकलित सभी कहानियों पर संक्षिप्त दृष्टिपात करने पर यह तथ्य सामने आता है कि लेखक ने जीवन और जगत् का मूल्यांकन वैयक्तिक अनुभव के आधार पर किया है। इनकी कहानियों के पात्र, जीवन की विषमताओं, जटिलताओं से दो-चार होते हुए आगे बढ़ते हैं। लगभग सभी कहानियाँ मध्यवर्ग से सम्बन्धित हैं। यह मध्यवर्ग सजग, प्रबुद्ध और कहीं' कहीं' सामान्य है। लेखक ने मध्यवर्गीय समाज के यथार्थ को प्रस्तुत करने वाली आदर्शोन्मुखी कहानियां लिखीं हैं। समाज की वास्तविकता व सच्चाई को पकड़ने और उसे नियोजित करने में लेखक की दृष्टि मानवतावादी है। फिर चाहे वह मानव की नियति को चित्रित करना हो, या विविशता को, या उसकी शक्ति या विसंगति को चित्रित करना हो उसकी दृष्टि यही रही है कि इन सबके बीच जो प्रभाव उभरे वह मनुष्य के प्रति हमारी आस्था को दृढ़ करे। 'अबला की मंजिल' कहानी संग्रह में लेखक ने मानव-नियति और उसकी आस्था को, उसके प्रेम और उसकी विवशता को पूरी ईमानदारी और सच्चाई से प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत संग्रह की अधिकतर कहानियां पूर्व दीप्ति शैली में लिखी गई हैं। घटनाक्रम के चित्रण के लिए वर्णनात्मकता अपनायी गई है। भाषा सीधी सरल व रोजमर्रा के प्रयोग में लाई जाने वाली है। कहानी के लक्ष्य को ध्यान में रखकर उसके लिए आवश्यक घटनाओं, प्रसंगों और पात्रों की योजना की गई है तथा जानी-पहचानी भाषा में कहानियां लिखी गई हैं। लगभग सभी कहानियों का परिवेश सामाजिक या पारिवारिक यथार्थ है जो सम्बन्धों, मूल्यों, आकांक्षाओं और अभावों के ताने-बाने से बुना गया है। कुल मिलाकर प्रस्तुत कहानी संग्रह की भूमिका में, लेखक द्वारा स्वीकृत अनुभूत सत्य को, समाज के समष्टिगत सत्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

सन्दर्भ :

1 कैलाश चन्द्र शर्मा, अबला की मंजिल, बाणगंगा प्रकाशन जयपुर, 1999, भूमिका ।
2 अबला की मंजिल, पृष्ठ. 15
3 वही, पृ.24
4 माधवी, पृ. 35
5 वही, पृ. 55
6 साक्षात्कार, पृ. 56
7 वही
8 वही, पृ.62
9 मौन समर्पण, पृ.65
10 वही, पृ. 66
11 वही
12 चेहरे असली नकली, पृ. 74
13 वही, पृ. 72
14 वही, पृ. 76
15 वही, पृ. 78
16 नवजीवन, पृ. 83
17 वही, पृ. 88
18 कर्ज़, पृ. 96
19 दीपक की रोशनी, पृ. 101
20 भटकती आत्मा, पृ. 107
21 वही, पृ. 108
22 ताबीज़, पृ.124
23 वही, पृ. 125
24 वही, पृ. 126

❑❑❑

35

डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा कृत 'अबला की मंजिल' कहानी संग्रह का आलोचनात्मक अध्ययन

रोहित कुमार

बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा का जन्म सन् 1957 में ग्राम मैड़ राजस्थान में हुआ। इन्होंने कहानी, उपन्यास, काव्य तथा नाटक विधाओं में अपनी प्रतिभा का लोहा जमाया और इन्होंने एम. कॉम., एम. ए. (हिन्दी), पीएच. डी., डी. लिट्, सी. ए. आई, आई बी., एलएल. बी, डिप्लोमा इन लेबर लॉ एण्ड पर्सनल मैनेजमेंट, सर्टिफिकेट इन कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग, संगीत विशारद,नृत्य विशारद, सर्टिफिकेट इन रूरल, बैंकिंग तक शिक्षा प्राप्त की। कैलाश ने 25-कहानियाँ, 60-कविताएँ, 1-खण्ड काव्य, 22-नाटक, 2-उपन्यास और 15-लेख लिखे हैं। कैलाशचन्द्र शर्मा द्वारा लिखा गया ''अबला की मंजिल'' कहानी सग्रंह का आलोचनात्मक अध्ययन अग्र प्रस्तुत है।

'अबला की मंजिल'-कहानी के माध्यम से लेखक ने आज के समाज में नारी की स्थिति, उसके स्थान, उसके संघर्ष और उसके कर्तव्य पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। आजादी मिलने के इतने वर्षों बाद भी नारी की स्थिति में बहुत कम सुधार हुआ है। जिस दिन नारी इस पुरुष प्रधान समाज का विरोध करती है उसे समाज में गलत नजर से देखा जाता है। ऐसी ही कहानी नीलम की है। नीलम पढ़ी-लिखी, सुन्दर स्त्री है। उसका सौन्दर्य ही उसके जीवन के विनाश का कारण बनता है। नीलम के माता-पिता गरीब थे और दहेज में ज्यादा नहीं दे सकते थे। उसके बहनोई ने अपनी वासना पूर्ति के लिए उसका विवाह एक अर्द्धविक्षिप्त युवक से करवा दिया। विवाह के पश्चात् नीलम के पति के पागलपन

* व्याख्याता (हिन्दी), राजकीय महाविद्यालय, बिल्लौर, जिला कठुआ (जे एण्ड के)

का अनुचित लाभ उठाकर उसके सभी बहनोई, दोनों देवर और अन्य पुरूष वर्ग उसके साथ गलत सम्बध स्थापित करना चाहते थे।

अपने जीवन की यह कहानी जब नीलम ने अमर (नीलम की बहिन के घर किरायदार) को सुनाई तो वह हैरान हो गया और नीलम से कहने लगा 'क्यों, ऐसा क्यों किया उसने'? और तुमने विरोध नहीं किया? तुम शिक्षित थी, तुम्हें विरोध करना चाहिए था। आज स्त्री निर्बल नहीं है नीलम। फिर तुमने क्यों इसे स्वीकारा ?''[1] अमर ने नीलम को परिस्थितियों का मुकाबला करने को एवं सम्पत्ति के बंटवारे से अपना हिस्सा लेकर अपना स्वयं का कोई कारोबार करने की सलाह दी। नीलम ने अमर के सुझाव पर अमल किया और उसे पूरा करने के लिए जी जान लगा दी। इसके परिणामस्वरूप वह 'शोषित महिला ग्रुप ऑफ इण्डस्ट्रीज' की संचालिका बन गई।

नीलम पढ़ी-लिखी और सुन्दर होने के बावजूद भी अपने अधिकारों एवं नारी शक्ति से परिचित नहीं थी। उसे यह पहचान अमर करवाता है। नीलम की अपने आप की यह पहचान नारी जागरण का जीता-जागता उदाहरण बन जाता है और नारी के नाम को पूर्णत: सार्थक सिद्ध करता है।

माधवी-परम्परागत मूल्यों को नकारती हुई यह कहानी माधवी और अरूण के इर्द-गिर्द घूमती है। अरूण कॉलेज में प्रोफेसर है। उसकी पत्नी सीमा भारतीय नारी के आदर्शों पर चलने वाली कर्तव्यपरायण नारी है। वह अपने पति, घर और बच्चों का पूरा-पूरा ध्यान रखती है लेकिन अरूण को सीमा का ऐसा व्यक्तित्व बिल्कुल पंसद नहीं। वह ऐसी पत्नी चाहता है जो उसकी कला को समझे, उसे सराहे और उसके लेखन कार्य में उसकी प्ररेणा बने। ये सभी गुण उसे 'माधवी' में दिखाई देते हैं। वह साहित्य और कला जगत की जानकार है और अरूण को लगता है कि माधवी ही उसके लेखन कार्य में प्रेरणा का कार्य कर रही है। माधवी अरूण से उम्र में 15 वर्ष छोटी है लेकिन वैचारिक तौर पर वह अरूण के अधिक निकट है।

धीरे-धीरे अरूण को माधवी से प्रेम हो जाता है और यह पता लगाने के लिए कि माधवी उसके बारे में क्या सोचती है वह एक कहानी लिखता है जिसका शीर्षक है 'माधवी'। माधवी जब यह कहानी पढ़ती है तो वह कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखाती । वह अपने मन की बात ज्यादा देर छुपा कर नहीं रख पाती। माधवी द्वारा लिखी गई कविता के माध्यम से अरूण को यह पता चल जाता है कि 'संभवत:

माधवी विवाह के बन्धनों से मुक्त रहकर अपना जीवन स्वतन्त्र रूप से व्यतीत करना चाहती है। वह एक प्रगातिशील विचारधारा वाली तरूणी है और उसने उसके प्रति अपने प्रेम की अभिव्यक्ति काव्य के माध्यम से की है। ऐसी दशा में निश्चय ही वह उससे आजीवन अपने प्रेम सम्बन्ध कायम रख सकेगा'।[2] अरूण को माधवी के प्रेम की स्वीकृति मिल चुकी थी लेकिन समाज के भय से, माधवी के भविष्य के बारे में सोच कर उसने अपने आगे बढ़े कदमों को पीछे खींच लिया।

विदेश की एक यूनिवर्सिटी में सलैक्शन के बाद अरूण प्रोफेसर बन गया और माधवी से कोई सम्पर्क करने का प्रयास नही किया। अरूण की युनिवर्सिटी में सहायक प्रोफेसर के इन्टरव्यू के लिए माधवी भी एक उम्मीदवार थी। अरूण ने जैसे ही यह आवाज़ सुनी उसे माधवी का ध्यान आया। वह उम्मीदवार माधवी ही थी। उसे देखकर अरूण बोल उठा- 'दोष तुम्हारा नहीं माधवी मेरा था। तुमने स्त्री होकर भी अपना प्रेम व्यक्त कर दिया था और मैं पुरुष होकर भी उस पर कोई प्रतिक्रिया न कर सका, मिलन का कोई समाधान न निकाल सका। सामान्यत: स्त्री अपने समर्पण हेतु पुरुष की स्पष्ट एवं मुखर अभिव्यक्ति की कामना करती है, परन्तु यहां पर तुम मुझसे जीत गईं''।[2] अंत में प्रोफेसर अरूण भारतीय मूल्यों को अस्वीकार कर माधवी को मानसिक धरातल पर, पथ-साथी और जीवन साथी के रूप में स्वीकार करता है।

साक्षात्कार- 'साक्षात्कार' कहानी के माध्यम से लेखक हमें एक स्त्री की त्याग भावना, व्यापारिक वर्ग की नारी शिक्षा सम्बन्धी सोच और अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए नारी द्वारा समाज का विरोध के बारे में बताया है। डॉ0 बादल का अपना एक अस्पताल है, जिसके विकास और विस्तार का कार्य उनकी पत्नी सुरभि करती है। सुरभि एक असाध्य किस्म के रोग से पीड़ित है। डॉ0 बादल ने उसके इलाज का हर सम्भव प्रयास किया लेकिन उसे बचा नहीं पाए। पत्नी सुरभि-द्वारा कहे गए अन्तिम शब्द कि 'बादल! इस अस्पताल को मैं अपनी अमानत के रूप में तुम्हारे पास छोड़े जा रही हूँ। इस वृक्ष का हर नया पत्ता मुझे नई मुस्कान देगा । इस कार्य में मैं तुम्हारा अधिक साथ नहीं दे सकी, पर तुम कोई अच्छा सा साथी ढूंढ लेना जो इसके विकास में तुम्हारा साथ दे सके, मेरी नित नई मुस्कान का स्त्रोत बन सके-अच्छा बादल.....मैं जा .....रही हूं''।[4] उसे हमेशा तड़पाते। अस्पताल को सही ढंग से चलाने के लिए डॉ. बादल कई

उम्मीदवारों का साक्षात्कार ले चुके थे लेकिन उन्हें कोई योग्य उम्मीदवार नहीं मिला। तभी चपरासी ने डॉ. अलका चैधरी के नाम से आवाज़ लगाई तो डॉ. बादल हैरान हो गए और 15 वर्ष पूर्व कानपुर शहर पंहुच गए।

पदोन्नति के बाद डॉ. बादल को कानपुर जाना पड़ा। कानपुर में उसकी मुलाकात अलका से हुई। अलका व्यापारिक घराने की लड़की थी और जीवन में कुछ बनना चाहती थी परन्तु उसके परिवार वाले ऐसा नहीं चाहते थे। अलका ने डॉ. बादल को बताया कि 'वह आगे पढ़ना चाहती है, पर उसके माता-पिता व्यावसायिक बुद्धि के हैं और उसका विवाह किसी व्यापारिक घराने में कर देना चाहते हैं'। [5] अलका ने डॉ. बादल को कहा कि वह पढ़ लिख कर डॉ0 बनना चाहती है और लोगो की सेवा करना चाहती है। इसके लिए वह अपने परिवार और समाज का विरोध करने को भी तैयार थी। इसके बाद डॉक्टर बादल का तबादला जोधपुर हो जाता है। जाते-जाते डॉ. बादल अलका से कह कर जाते हैं कि अलका 'तुम अपना जीवन अपने सोचे अनुसार बनाना, इसके लिए भले ही तुम्हें ऐसा कार्य क्यों न करना पड़े, जो परिवार को, किसी विशिष्ट समुदाय को या समाज को स्वीकार्य न हो'। [6] अलका ने डॉ. बादल की बात गाँठ बाँध ली और अन्त में अपने संघर्ष में कामयाब हुई। साक्षात्कार के दौरान डॉ0 बादल को अपना सही उम्मीदवार डॉ. अलका चौधरी के रूप में मिल गया। जो उनकी पत्नी के अधूरे सपने को पूरा कर सकता और अपने त्याग भाव से दुखियों की सेवा में अपना जीवन अर्पित कर देता।

लेखक ने डॉ. अलका के माध्यम से व्यावसायिक बुद्धि की मानसिकता को खत्म करने का प्रयास किया है और स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देने की और एक ठोस कदम उठाया है।

मौन समर्पण-'मौन समर्पण' कहानी में लेखक ने भारतीय नारी की विवाह सम्बन्धि मानसिकता के बारे में बताया है। भारतीय नारी मन से जिसे अपना आराध्य स्वीकार कर लेती है तो उसके न मिलने पर वह जीवन भर विवाह नहीं करती। ऐसी ही प्रेम कहानी नवीन और मालिनी की हैं।

नवीन मध्यवर्गीय परिवार का युवक है जो डॉ0 वशिष्ट की पुत्री मालिनी को चाहता है और उससे विवाह करना चाहता है। मालिनी के पिता एक उच्चाधिकारी हैं। वे मालिनी का विवाह नवीन से नहीं करना चाहते क्योंकि नवीन एक सरकारी कार्यालय में मामूली सा लिपिक है। इसी कारण नवीन ने मालिनी से विवाह नहीं

किया और अपने दिल के कोने में मालिनी की यादों को दफन कर दिया ।

अपनी मेहनत और लगन से नवीन एक उच्च अधिकारी बन जाता है और मालिनी की बहिन डॉ0 भारती से मिलता है । भारती उसे बताती है कि मालिनी का अभी तक विवाह नहीं हुआ। यह सुनते ही नवीन परेशान हो जाता है। उसका मन कह उठता है -'क्या मालिनी! मेरी प्रिय मालिनी! अभी तक कुवांरी है। अभी कोई संयोग बैठा नहीं या उसने मेरे प्रति इतना बड़ा त्याग किया। मैंने तो इस ओर कभी सोचा ही न था।' [7]

अपने पिता द्वारा किया गया नवीन का निरादर और नवीन के प्रति प्रेम भावना के कारण मालिनी शादी नहीं करती। विवाह न करके मालिनी नवीन के लिए एक मौन समर्पण करती है।

चेहरे असली नकली -आज के युग में सभी व्यक्ति अपने मतलब के लिए जीया करते हैं। जिस व्यक्ति से जिसका मतलब निकलता हो वह उसके पीछे-पीछे चल पड़ता है। जब तक कोई व्यक्ति हमारी जरूरतों को समय-समय पर पूरा करता रहता है तब तक हम उस व्यक्ति को अपना सब कुछ मानते हैं लेकिन जैसे ही वह हमारी जरूरतों को पूरा करने में असमर्थ हो जाता है हम उससे अपना पल्ला झाड़ने लगते हैं। ऐसे व्यक्ति को जब हमारी जरूरत पड़ती है तो हम अपनी मजबूरी का राग आलापने लगते हैं। 'चेहरे असली नकली' कहानी के माध्यम से लेखक ने ऐसी ही मानसिकता वाले लोगों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

अनिल सुधा से प्यार करता था और उसकी खुशी के लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाता था। सुधा अनिल से नहीं उसकी दौलत से प्यार करती थी। एक दिन सुधा अनिल के साथ पिक्नर देखने जा रही थी तो अनिल के स्कूटर से एक लड़की जो साईकिल पर जा रही थी, टक्कर लग जाती है। लड़की को चोट लग जाती है। माफी मांगने के बज़ाए सुधा उस लड़की से बद्तमीजी से पेश आती है। उसका नाम वर्षा था और वह अनिल की फैक्ट्री में काम करती थी । अनिल से कह कर सुधा ने वर्षा को फैक्ट्री से निकलवा दिया। वर्षा बहुत गिड़गड़ायी लेकिन अनिल ने उसकी एक न सुनी।

अनिल के माता-पिता एक कार-एक्सीड़ेण्ट में चल बसे और उनकी सारी सम्पत्ति मैनेजर ने हड़प ली। सम्पत्ति के जाते ही सुधा ने भी अनिल से नाता तोड़ दिया। वर्षा जिसे अनिल ने अपनी फैक्ट्री से सुधा के कहने पर निकाल दिया था संकट की इस घड़ी में अनिल का साथ देती है और उसे अपने जीवन साथी के

रूप में स्वीकार करती है।

नवजीवन- इस कहानी के माध्यम से लेखक ने विधवा विवाह की समस्या को उजागर करने का प्रयास किया है। दीपक की मृत्यु के बाद अंजू विधवा हो जाती है और उसके सामने पहाड़ जैसा जीवन पड़ा होता है। देवर सुशील के दूसरे विवाह के प्रस्ताव पर वह कहती है कि, ' क्या तुम भूल रहे हो सुशील, कि मैं एक विधवा औरत हूँ और हिन्दू समाज में एक विधवा के लिए दूसरा विवाह करना तो दूर ऐसा सोचन भी महापाप है।' [8] सुशील के बार-बार आग्रह करने पर अंजू सही समय आने पर विवाह करने का वचन देती है। संजीव जो अंजू का प्रेमी है और सुशील का मित्र है जब सुशील के घर में अंजू को देखता है तो हैरान हो जाता है। अंजू भी संजीव को अपने ससुराल में देखकर उसके गले से लिपट जाती है। यह देखकर सुशील को लगता है कि यही सही समय है जिसका बचन उसे अंजू ने दिया था।

सुशील की मां समाज, परम्पराओं की परवाह किए बिना अंजू का हाथ संजीव के हाथ में दे देती है। इस प्रकार उसने सामाजिक परम्पराओं को नकारते हुए अपनी बहू को बेटी की तरह विदा किया। सुशील जैसे पढ़े-लिखे युवक के प्रयास से विधवा विवाह न करवाने वाली सामाजिक बुराई को समाप्त करने का प्रयास किया गया है।

कर्ज- कई बार पारिवारिक समस्याओं की वज़ह से हम अपनी इच्छाओं का त्याग करने को भी तैयार हो जाते हैं। इस कहानी में, सौरभ एक होशयार पढ़ने-लिखने वाला युवक है। अपने बड़े भाई के जीवन को संवारने के लिए वह अपना भविष्य खतरे में डाल देता है। बड़े भाई को सम्पन्न बनाने, के लिए सौरभ बैंक से कर्ज लेकर उसे विदेश भेजता है। विदेश जाते ही बड़े भाई की नियत बदल जाती है। वह सौरभ को पैसे भेजने और पढ़ाई लिखाई में उसकी मदद करने से साफ इन्कार कर देता है।

ऐसी मुश्किल की घड़ी में बैंक मैनेज़र जिससे सौरभ ने बड़े भाई को विदेश भेजने के लिए लोन लिया होता है उसकी सहायता करता है। बैंक मैनेज़र सौरभ की ईमानदारी और मेहनत को समझता है । वह जानता है कि सौरभ अपनी कड़ी मेहनत से एक दिन अच्छे पद पर नियुक्त होगा। इस लिए वह सौरभ द्वारा लिए गए कर्ज को चुका देता है और उसे पढ़ने के लिए शहर आने का न्यौंता देता है। लेकिन सौरभ के मन में विचार कौंध रहे थे- 'बड़े भैया अपने कर्ज से उऋण

हो गये पर मैं मैनेजर साहब के एक कर्ज से अब भी दबा हुआ हूं और यदि दूसरा कर्ज भी स्वीकारता हूं तो निश्चय ही मेरा भविष्य सुधर जायेगा और फिर मैं निश्चय ही उनके कर्ज को उतार पांऊगा।'' [9] इस प्रकार सौरभ ने अपने भाई के लिए लिऐ गए धन के कर्ज को बैंक मैनेज़र के द्वारा दिए गए जीवन के कर्ज में बदल दिया ।

दीपक की रोशनी-'दीपक की रोशनी' कहानी हमें उन शहीदों की याद दिलाती है जिन्होंने अपने देश की रक्षा के लिए अपने जीवन का त्याग कर दिया। देश के लिए कुर्बान हुए। अक्षय को खोना जयराज और सोना के लिए एक सदमे के बराबर था, जिसे बर्दाश्त करने के लिए गाँव वालों ने उनका साथ दिया। गांव वालों ने इस वर्ष दीवाली न मनाने का निश्चय किया। दीवाली की रात अक्षय-के घर में ऊँचाई पर जलते हुए दीपक को देखकर गाँव वाले अचरज में आ गये और पंचायत बुलाकर ऐसा करने वाले व्यक्ति को दंडित करने का फैसला किया। लेकिन सोना (अक्षय की माँ) जब स्वीकार करती है कि उसने यह दीपक अपने बेटे की बलिदान की भावना को जीवित रखने के लिए जगाया तो सभी हैरान हो जाते हैं। सोना कहती है -'मुझे अपने बेटे के शहीद हो जाने का कोई दु:ख नहीं है, बल्कि मुझे तो खुशी है इस बात की कि मेरा अक्षय देश के लिए शहीद हो गया। मेरा अक्षय भी तो इसी दीपक की भांति जलता रहा था और तब तक जल कर मातृभूमि को रोशनी देता रहा था जब तक कि उसमें प्राण रहे। अगर मैं आपकी जगह होती तो कभी गांव को दीपावली मनाने से नहीं रोकती, बल्कि मैं यह कोशिश करती कि गांव के हर घर में इतने दीये जलते कि वे अपनी रोशनी इस गांव को ही प्रदान नहीं करते बल्कि उनकी रोशनी गांव के बाहर चारों ओर फैलकर गांव के अस्तित्व की विद्यमानता का पुख्ता सबूत देने में और अक्षय के शहीद होने पर गांव में खुशी की विद्यमानता का आभास कराने में सहायक होती'' [10] लेखक ने यह बताने का प्रयास किया है कि हमें शहीदों के बलिदान पर दु:खी न होकर उनके सम्मान की रक्षा करनी चाहिए।

पैमाना- 'पैमाना' कहानी के माध्यम से लेखक ने यह बताने का प्रयास किया है कि हमारे भारतीय समाज में आज भी ऐसे परिवारों के उदाहरण देखने को मिलते है जंहा भाई-भाई एक दूसरे के लिए अपनी आकांक्षाओं का त्याग करने को भी तैयार हो जाते हैं। ऐसी ही कहानी कुणाल की है। कुणाल का बड़ा भाई उसे पढ़ाने के लिए कर्ज लेता है। कुणाल के भैया उसे समझाते हैं कि शहर में जाकर अपने

लक्ष्य की ओर, अपनी पढ़ाई की ओर ध्यान देना। कुणाल ने भाई की बात पर अमल किया और अपनी मेहनत और लगन से आई .ए. एस. बन गया। आई .ए. एस. में सिलेक्शन के बाद जब कुणाल घर आता है तो देखता है उनके घर में भीड़ लगी है और उस भीड़ में सेठ उसके भाई से कह रहा है – 'कर्जा लेते समय अच्छा लगा और जब देने का वक्त आया है तो तुमसे बनते नहीं पड़ता। तुम्हारे घर की एक एक चीज़ को बिकवाकर मैं पैसे वसूल करूंगा'। [11] कुणाल यह देखकर दु:खी होता है लेकिन जब सेठ को कुणाल के आई .ए. एस. में सिलेक्शन के बारे में पता चलता है तो वह चुपके से खिसक जाता है। कुणाल अपनी मेहनत के द्वारा भाई को, परिवार के सभी सदस्यों को उनकी खुशियां वापस लौटाता है।

भटकती आत्मा–'भटकती आत्मा कहानी के माध्यम से लेखक ने मृत्योपरान्त होने वाले संस्कारों पर व्यंग्य किया है। लेखक ने बताया है कि सारी उम्र मेहनत करके दो वक्त की रोटी कमाने वाला व्यक्ति जो बड़ी मुश्किल से अपने और अपने परिवार का पेट पालता है बुढ़ापे में उसकी दशा बड़ी शोचनीय होती है।

जीवन भर बुड्ढा अपने-परिवार वालों को खिलाता है पर उसके अन्तिम दिनों में बेटों के पास इतने पैसे नहीं होते कि वह उसकी दवा दारू कर सके। बुड्ढे की मृत्यु हो गई। मृत्यु के पश्चात उसके बेटों ने साहूकार से उधार ले कर लोगों को खूब अच्छा भोज़न, पकवान आदि खिलाए जिन्हें खाने के लिए वह सारी उम्र तरसता रहा था। मरने के बाद भी बुड्ढे की आत्मा भटकती रही। समाज का शासक वर्ग भी इन संस्कारों का पूरा-पूरा लाभ उठाता है।

ताबीज़–'ताबीज़' कहानी हमारी धर्म के प्रति आस्था और विश्वास की कहानी है। आज के वैज्ञानिक युग में भी हम कभी -कभी अंधविश्वासी हो जाते हैं लेकिन यह अंधविश्वास ही हमारी धर्म के प्रति आस्था और विश्वास का प्रतीक है। ताबीज़ कहानी में कुलदीप के पिता के माध्यम से यही सत्य हमारे सामने आता है। कुलदीप के पिता एक इंजीनियर थे, शादी के दो-वर्ष बाद भी जब उनके यहां सन्तान नहीं हुई तो वे परेशान हो गए। अपने काम के सिलसिले में एक गांव गए तो वहां उन्होंने एक महात्मा के बारे में सुना। विज्ञान के विद्यार्थी होने के कारण वह ऐसे अंधविश्वासों पर भरोसा नहीं करते थे लेकिन पत्नी के बारे में सोचा तो उन्होंने महात्मा जी से मिलने का निश्चय किया।–' मैं भी आशा को महात्माजी के पास अवश्य ले जाँऊगा। वहाँ पर रोगियों को रोग से छुटकारा मिलता है, सभी की समस्याओं का निदान होता है तो क्या आशा की गोद नहीं भर सकती।' [12] महात्मा

जी की कृपा से उनके घर में कुलदीप का जन्म होता है जिससे इंजीनियर साहब की आस्था महात्मा जी में बढ़ जाती है और वह हर वर्ष उनके पास जाने लगते हैं। माता-पिता की मृत्यु के बाद कुलदीप का विवाह छवि से होता है। शादी के दो-तीन वर्ष बाद जब उनकें यहाँ कोई सन्तान नहीं होती तो वह परेशान हो जाते है। घर की सफाई करते समय छवि को पूजा घर से एक ताबीज़ मिला। छवि ने कुलदीप से सारी कहानी सुनी तो उसने आश्रम जाने की जिद की। छवि के कहने पर कुलदीप आश्रम जाने के लिए तैयार हो गया। आश्रम जाने पर उन्हें वहां से महात्मा जी द्वारा उनके लिए रखा गया ताबीज़ मिला। ताबीज़ पहनने के ठीक नौ महीने बाद उनके घर में एक पुत्र ने जन्म लिया। हमारे जीवन में कुछ बातें ऐसी होती हैं जो बिना कहे समझी जा सकती हैं।

अंत में कहा जा सकता है कि डॉ0 कैलाश चन्द्र शर्मा का कथा साहित्य मूलत: समाज सापेक्ष है शृंगार,प्रेम तथा शोषण के प्रति तीव्र आक्रोश का भाव उनके कथा साहित्य की मूल चेतना है। डॉ0 कैलाश चन्द्र शर्मा का कहानी संग्रह 'अबला की मंजिल' सच्चाई, सहानुभूति और मानवीयता से ओतप्रोत है। उनके इस कहानी संग्रह को पढ़कर पता चलता है कि इसका प्रधान विषय है नारी जगत या नारी हृदय। घुमा फिरा कर उनकी हर कहानी नारी को केन्द्र में रखकर ही अग्रसर होती है, फिर चाहे वह युवती हो, बालिका हो, पत्नी हो या प्रेयसी, कभी-कभी बूढ़ी दादी या सास भी। नारी-जीवन से कैलाश जी पूरी तरह जुड़े हुए हैं। उनकी नारियां अपने ही देश की और हमारे आसपास की हैं। उनकी हर समस्या को उन्होने प्रमाणिकता से पहचान कर प्रसंग के अनुसार प्रस्तुत किया है।

संदर्भ :

1. अबला की मंज़िल, पृष्ठ संख्या 33
2. माधवी, पृष्ठ संख्या 49
3. वही, पृष्ठ संख्या 55
4. साक्षात्कार, पृष्ठ संख्या 51
5. वही, पृष्ठ संख्या 60
6. वही, पृष्ठ संख्या 61
7. मौन समर्पण, पृष्ठ संख्या 71
8. नवजीवन, पृष्ठ संख्या 83
9. कर्ज़, पृष्ठ संख्या 97
10. दीपक की रोशनी, पृष्ठ संख्या 100
11. पैमाना, पृष्ठ संख्या 105
12. ताबीज, पृष्ठ संख्या 117

❑❑❑

36

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा और 'अबला की मंजिल'

डॉ. देवेन्द्र कुमार

'अबला की मंजिल' डॉ. कैलाशचन्द शर्मा का प्रथम प्रकाशित कहानी संग्रह है। इसका प्रकाशन सन् 1999 ई. में हुआ। इसमें शर्मा जी के कहानीकार जीवन के लगभग दो दशक समाहित हैं। शर्मा जी कवि हैं, कहानीकार हैं, नाटकार हैं, उपन्यासकार हैं, निबन्धकार हैं अर्थात् वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार हैं। अपनी निरंतर निर्बाध लेखनी से वे माँ सरस्वती के कोश में श्रीवृद्धि कर रहे हैं। उनकी अपनी अलग लेखकीय दृष्टि है, उनका अपना लेखकीय शिल्प है और अपनी अलग विचार,धारा। वे आधुनिक होकर भी परम्परा का निर्वाह करते हैं और आदर्श से जुड़े रहकर भी आधुनिकता की शर्तें पूरी करते हैं।

आपकी प्रथम कहानी 'चेहरे असली नकली' सन/ 1976 ई. में प्रकाशित हुई। इसके बाद आपकी कहानियां समय.समय पर प्रकाशित होती रहीं। 'अबला की मंजिल' कहानी संग्रह में सन् 1976 ई. से लेकर 1998 ई. तक की प्रमुख कहानियां संग्रहीत हैं। इस संग्रह में उनकी ग्यारह कहानियों को स्थान मिला है। ये हैं-अबला की मंजिल, माधवी, साक्षात्कार, मौन समर्पण, चेहरे असली नकली, नवजीवन, कर्ज़, दीपक की रोशनी, पैमाना, भटकती आत्मा और ताबीज। सभी कहानियां अच्छी बन पड़ी हैं और साधारण-सामान्य हैं। इन कहानियों को आधुनिक नहीं कहा जा सकता क्योंकि आठवें दशक के बाद लिखी गई कहानियों में जो अस्पष्टता, दुरूहता, द्वियर्थकता, सांकेतिकता,

* डॉ. देवेन्द्र कुमार, हिन्दी विभाग, खालसा कॉलेज, गडदीवाला, होशियारपुर

प्रतीकात्मकता, फूहड़ता, नग्नता आदि दृष्टिगत् होती हैं, वह यहां नदारद है। आपके पात्र मध्यवर्गीय और साधारण हैं तथा आधुनिकता की अंधी और दिशाहीन दौड़ से कोसों दूर आदर्श के धरातल से जुड़े हुए हैं। ये पात्र व्यक्ति-सत्य के स्तर पर जीवन की विभिन्न स्थितियों, जटिलताओं, विषमताओं आदि से दो-चार होते हुए, जीवन के पथरीले रास्ते पर चलते हुए मंजिल तक पहुँचे हैं। यद्यपि शर्मा जी की कुछ कहानियों में अपरिपक्वता भी साफ झलकती है तथापि कहानी के भीतरी गुण इसकी पूर्ति करने का प्रयास करते हैं। वस्तुत: यह संग्रह शर्मा जी की आरंभिक कहानियों का संग्रह है। अत: पूर्ण परिपक्वता की आशा नहीं की जा सकती। कुछेक कहानियों में अनावश्यक विस्तार इसी के फलस्वरूप है।

शर्मा जी के प्रस्तुत संग्रह की अधिकांश कहानियों में प्रेम-सम्बन्धों को अभिव्यक्ति मिली है। यह प्रेम विवाह-पूर्व का भी है और विवाहेत्तर भी। अबला की मंजिल, माधवी, साक्षात्कार, मौन समर्पण, नवजीवन, चेहरे असली-नकली में प्रेम सम्बन्धों को अभिव्यक्ति मिली है। वस्तुत: यही इन कहानियों का मूल अथवा केन्द्रीय विषय है। चेहरे असली-नकली को छोड़ कर किसी भी कहानी में प्रेम में विश्वासघात/ का अंकन नहीं मिलता। कहानियों में चित्रित प्रेम उच्च कोटि का प्रेम है जिसे आदर्श प्रेम कहा जा सकता है। यह प्रेम निर्मल है, स्वच्छ है और आत्मिक है। यह प्रेम नायिक-नायिका को आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है, यह बाधक नहीं साधक है।

'अबला की मंजिल' में नायक अमर अपने मकान-मालिक के पुत्र पंकज से मित्रवत् व्यवहार रखता है। उसकी और पंकज की अच्छी पटती है। वह पंकज की उसकी भावी पत्नी के घर ट्रंककाल करने में सहायता करता है। इसी बीच उन्हें इस कार्य हेतु किसी स्त्री की आवश्यकता महसूस होती है और पंकज की मौसी नीलम उन्हें उचित सहायिका जान पड़ती है। नीलम भी इस कार्य के लिए हामी भर देती है। अमर का दिल उसकी ओर खिंच जाता है और वह उसे दिल दे बैठता है-'आज से पूर्व उसने मौसी को ठीक से न देखा था। पर आज यौवनाती निशा के प्रथम प्रहर में उस रूपसी को ही देख रहा था। वह छम-छम करती हुई सीढ़ियां उतर रही थी। उसकी पायलों की छम-छम की आवाज अमर के दिल में मीठी-मीठी चुभ रही थी। जी चाहता

था वह रूपसी भी ध्वनि के साथ-साथ दिल की गहराइयों में उतर कर समा जाए। (पृष्ठ18) मौसी विवाहित है, परन्तु प्रेम इन बन्धनों से मुक्त होता है। अमर नीलम (मौसी) के प्रेम में सब कुछ भूल जाता है और उसके साहचर्य के लिए बहाने ढूंढता है। इधर नीलम भी उसे चाहने लगी है परन्तु अपने हालात के कारण वह अमर को प्रत्युत्तर में वैसा प्रेम देने में असमर्थ है।

नीलम के यौवन और उसके जबरन विवाह की दास्तान सुनकर अमर का दिल दहल जाता है और वह नीलम के सुखद भविष्य की कामना करने लगता है। नीलम भी अपने पति से सम्बन्ध-विच्छेद करके किसी के साथ भी चलने को तैयार है पर अमर उसे अपने पति से सम्बन्ध-विच्छेद न करके उस की जायदाद से अपना हिस्सा लेकर अपना नया जीवन शुरू करने के लिए प्रेरित करता है। वह भी ऐसा ही करती है और कहानी के अन्त में वह अपनी मंजिल पर पहुँच ही जाती है। अन्ततः उसे फिर से अमर की सहायता मिल जाती है और अमर उसके संस्थान का प्रबंध संचालक बन जाता है। उसे अपनी मंजिल मिल जाती है और उनका यह कदम अन्य लोगों के लिए आदर्श बन जाता है। प्रेम का ऐसा उज्ज्वल पक्ष समाज में कम ही देखने को मिलता है।

'माधवी' कहानी में अरूण एक प्रोफेसर है और माधवी उससे पंद्रह वर्ष छोटी और उसकी परिचित है। माधवी का परिवार और अरूण का परिवार एक-दूसरे के परिचित हैं। अरूण की पत्नी सीमा एक सफल और आदर्श भारतीय गृहिणी है और अरूण से अत्यंत प्रेम करती है। अरूण को यह प्रेम कर्तव्य नजर आता है और वे एक अनमेल प्रेम-सम्बन्ध की ओर अग्रसर होते हैं और सफलता भी मिलती है और माधवी भी अरूण (अंकल) से प्रेम करने लगती है। अरूण अपनी प्रत्येक रचना माधवी को पढ़ाता-सुनाता है और उसकी प्रतिक्रिया पर प्रसन्न होता है। वह माधवी को प्राप्त करना चाहता है पर समाज का भय उसे ऐसा करने से रोकता है। दुविधा में पड़ा अरूण विदेशी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर बनकर भारत छोड़ देता है परन्तु वह माधवी को हृदय से निकाल नहीं पाता। 7-8 साल के अन्तराल के बाद वह भारत आता है और एक साक्षात्कार में वह माधवी से मिलता है और हृदय में दबा वर्षों का प्रेम उमड़ पड़ता है और वह माधवी को अपनी पत्नी बनाने के तैयार हो

जाता है- 'अरूण माधवी को लिए शांत भाव से अपने घर की ओर पैदल ही चला जा रहा था..... एक लम्बे अन्तराल से भटकती दो आत्माएं एक होकर चली जा रही थीं, एक ऐसे आशियाने की ओर जहां सर्वत्र सुख ही सुख था और विषाद के कोई चिन्ह दूर-दूर तक दिखाई न दे रहे थे।' (पृष्ठ55) अरूण को उसका प्रेम माधवी मिल जाती है परन्तु सीमा का अरूण के प्रति जो प्रेम था वह अनुत्तरित रह जाता है।

'साक्षात्कार' कहानी में डॉ. बादल का अलका से प्रेम के विवाहेत्तर प्रेम है और वह अलका की ओर पहली नजर में ही खिंचा चला जाता है। वह अलका को अपने एक मित्र दिवाकर के प्रशिक्षण केन्द्र में मिला था और तभी उसके प्रति बादल के हृदय में हलचल आरंभ हो गई थी। उसने शोध-कार्य के लिए अलका को चुन लिया और उसके परिजनों की भी इस कार्य हेतु स्वीकृति ले ली। उनके मिलने का सिलसिला कई दिनों तक जारी रहा। बादल उससे प्रेम तो करता था परन्तु उसे समाज के बन्धनों और नियमों के विपरीत भी नहीं जा सकता था। उसका तबादला जोधपुर हो जाता है और वह अलका को पीछे छोड़ आता है परन्तु वह उसे अपने अन्तस् से कभी नहीं निकाल पाता। वर्षों बाद बादल उसे फिर मिलता है। बादल की पत्नी की एक असाध्य बीमारी से मृत्यु हो चुकी है और उसे अपने अस्पताल के लिए एक महिला चिकित्सक की जरूरत है। साक्षात्कार में अलका उसे मिलती है और वह उसके अस्पताल में ही नहीं उसके हृदय और घर में भी सदा के लिए प्रवेश पा जाती है। डॉ. बादल का प्रेम सार्थक हो जाता है- 'अलका ने अपने दोनों हाथ आगे बढ़ा दिये और भाव विह्वल होकर उससे लिपट गई तथा सिसक-सिसक कर रो पड़ी। .... अलका सिसकती जा रही थी और वह उसके कंधे पर हाथ रखे बाहर कम्पाउण्ड की ओर चला जा रहा था।'(पृष्ठ 63)

'मौन समर्पण' कहानी में भी प्रेम-प्रसंग को अभिव्यक्ति मिली है। नवीन मालिनी को चाहने लगा था। वह स्वास्थ्य विभाग में डायरेक्टर डॉ. शिव शंकर वशिष्ठ के घर अक्सर आता जाता है और वहीं उसे मालिनी से प्रेम हो जाता है। नवीन को भारती की छोटी बहन मालिनी, जो बी.ए. की छात्रा थी, मन ही मन काफी भाने लगी थी। धीरे-धीरे मालिनी मन में ऐसी बस गई कि उसका लुभावना चेहरा सदा उसके मस्तिष्क में चक्कर काटने लगा था। वह

जब भी डॉ. वशिष्ठ के घर जाता तो आंखें मालिनी को ही तलाशती थी।' (पृष्ठ 67) कहानी काफी अप्रत्याशित घटनाक्रम के साथ आगे बढ़ती है और नवीन और मालिनी का विवाह नहीं हो पाता। नवीन का विवाह हो जाता है पर मालिनी अविवाहित ही रहती है। डॉ. भारती जब उसे अपनी बहन के लिए रिश्ता ढूंढने के लिए आग्रह करती है तो वह चौंक जाता है। शादीशुदा और बाल बच्चों वाला हो जाने पर भी नवीन मालिनी के त्याग से आहत था और उससे मिलने के लिए व्याकुल था, अत: वह उससे मिलने सोमपुर की राह पकड़ता है।

'चेहरे असली-नकली' में अनिल, सुधा और वर्षा के बीच प्रेम के असली और नकली चेहरों का रहस्य महसूस करता है। सुधा को अनिल की सम्पत्ति से लगाव था। अत: उससे प्रेम का झूठा नाटक रचाकर उसकी सम्पत्ति पर ऐश करती है और उसके कंगाल होते ही उसे छोड़ देती है। उधर वही वर्षा जिससे अनिल ने दुर्व्यवहार करके उसे अपनी फैक्ट्री से निकाल दिया था, उसे अपनाती है और प्रेम का असली चेहरा उसके सामने लाती है।

'नवजीवन' कहानी में भी अंजू और संजू का प्रेम परवान नहीं चढ़ पाता और अंजू की शादी दीपक से ही जाती है। दीपक की उसी रात मौत हो जाती है और अंजू अंदर से टूट जाती है। अंजू का देवर सुशील उसे सांत्वना देता है और उसे खुश रखने का भरसक प्रयास करता है। एक दिन सुशील अपने एक मित्र संजीव (संजू) को लेकर घर आता है तो रहस्य खुलता है कि दोनों तो एक दूसरे को प्रेम करते थे और संजू ने अंजू के कारण ही कहीं विवाह न करने का फैसला लिया हुआ था। अंजू की सास स्वेच्छा से उसका हाथ संजू के हाथ में दे देती है और उनके प्रेम को स्वीकृति और सफलता मिल जाती है।

सतही तौर पर देखने से इन कहानियों में चित्रित कुछ प्रेम-प्रसंग अनैतिक और मूल्यों के विपरीत दिखाई देते हैं परन्तु बदलते समय, बदलती परिस्थितियों में ये स्वीकार्य न होकर भी परित्यक्त करने योग्य नहीं हैं। ऐसे प्रसंगों का समर्थन अनिवार्य नहीं परन्तु कहानियों में लेखक ने जिस प्रकार से इन्हें वर्णित किया है उसके आधार पर ये समाज के नियमों के विपरीत जाते दिखाई नहीं पड़ते। डॉ. सुमन मेहरोत्रा ने इस सम्बन्ध में बिल्कुल स्पष्टता से

लिखा है- 'डॉ. शर्मा के इस संग्रह की कहानियां व्यक्ति-सत्य के स्तर पर जीवन की विषमताओं, जटिलताओं और संघर्ष से युद्ध करती हुई चलती हैं। नैतिकताओं और मूल्यों की परिभाषाएं भी अतीत और वर्तमान के संघर्षों में पात्रों के साथ-साथ चलती रहती हैं। उनके भीतर का एहसास हर पल यह साँस लेता रहता है कि वैयक्तिक सीमा से परे उनका भाग्य दूसरों से जुड़ा हैब। यह दूसरों से जुड़ाव ही उन्हें जीवन-शक्ति प्रदान करता है। (प्राक्कथन)

'अबला की मंजिल' कहानी संग्रह में नारी-शिक्षा को समर्थन दिया गया है। संग्रह के लगभग सभी नारी पात्रा शिक्षित हैं और इन्हें निरंतर आगे बढ़ने और शिक्षा प्राप्त कर जीवन में सफल होने की प्रेरणा साथी पात्रों से मिलती रहती है। लेखक का दृष्टिकोण एकदम स्पष्ट है कि पढ़ी-लिखी-शिक्षित नारी ही समाज को अपेक्षित विकास के मार्ग पर अग्रसर कर सकती है अत: उन्होंने संभवत: सभी नारी पात्रों को शिक्षित अथवा शिक्षा प्राप्त करके कुछ बनते हुए चित्रित किया है।'अबला की मंजिल' कहानी में नीलम (मौसी) पढ़ी-लिखी है। वह कॉलेज की शिक्षा प्राप्त नारी है। शिक्षित नारी समाज को अपेक्षित विकास की ओर उन्मुख करती है तो अपने सम्मान, सुरक्षा आदि के लिए समाज का विरोध भी करती है। शिक्षा नारी को सबल बनाती है। अमर नीलम को उसके अनमेल और जबरन विवाह का विरोध करने के लिए कहता है- 'तुम शिक्षित थी, तुम्हे विरोध करना चाहिए था। आज स्त्री निर्बल नहीं है नीलम।' (पृष्ठ 63)

हालांकि नीलम समाज में नारी की स्थिति से अनभिज्ञ नहीं है और एक लम्बी वक्तृता अमर को देती है परन्तु अन्तत: उसकी शिक्षा ही उसके काम आती है और वह अमर की प्रेरणा से 'शोषित महिला ग्रुप ऑफ इण्डस्ट्रीज' की प्रबंध संचालिका बन कर समाज में प्रतिष्ठित और सम्मानीय बनती है। अमर उसके इस साहस से प्रेरित होकर उसके ग्रुप में प्रबन्ध संचालक बनता है और सरकारी पद से इस्तीफा दे देता है।

'माधवी' कहानी की माधवी शिक्षित है। वह अरूण के विदेश चले जाने के पश्चात् अपनी शिक्षा जारी रखती है और इसी शिक्षा के बूते पर वह साक्षात्कार देने पहुँचती है और अरूण को गिर से प्राप्त करती है। शिक्षा के कारण ही वह अपने प्रेमी को प्राप्त करती है।

'साक्षात्कार' कहानी की अलका भी शिक्षा के महत्व को समझती है अत: वह समाज और परिवार के दकियानूसी नियमों का विरोध वैचारिक शक्ति के बल पर करना चाहती है- 'डॉक्टर साहब, अब मैं भी आगे पढ़ना चाहती हूँ। आपकी तरह पढ़-लिखकर डॉक्टर बनना चाहती हूँ..... इसके लिए यदि मुझे परिवार का तथा समाज का विरोध भी करना पड़ा तो करूंगी, यदि आजीवन कुँवारी भी रहना पड़ा तो इसे अपनी विजय समझूंगी। ' (पृष्ठ 60) अन्तत: वह अपने मकसद में कामयाब होती है और कहानी के अन्त में डॉक्टर बन जाती है और बादल के अस्पताल और उसके घर में स्थाई स्थान ले लेती है।

'चेहरे असली नकली' की वर्षा पढ़ी-लिखी है अत: गरीब होकर भी अमीर अनिल और सिरफिरी सुधा को उनकी गलती पर लताड़ती है। अनिल द्वारा नौकरी से निकाल देने के बाद वह पढ़-लिखकर और कठोर परिश्रम के बल पर कॉलेज में लेक्चरर लग जाती है। शिक्षा की शक्ति को वह जानती है अत: वह शिक्षा के बल पर अपनी गरीबी दूर करती है- 'अनिल बाबू जिस दिन सुधा ने मेरे साथ दुर्व्यवहार किया था उसी दिन से मैंने अपनी गरीबी मिटाने की प्रतिज्ञा कर ली थी। मैं खूब मेहनत करके पढ़ने लगी और आज एक कॉलेज में लेक्चरर हूं, घर का मकान है....।' (पृष्ठ 77)

'नवजीवन' कहानी की अंजू भी शिक्षिक है और शिक्षा के महत्व को समझती है। उसका देवर सुशील भी एक शिक्षित युवक है अत: वह अपनी भाभी को शिक्षा का महत्व समझाकर उसे समाज के बेतुके नियमों का विरोध करने के लिए प्रेरित करता है- 'क्या तुम्हें ये समाज के बेतुके नियम ढकोसला मात्र नहीं लगते? क्या तुम पढ़ी-लिखी होकर भी समाज के इन ऊट-पटांग नियमों का समर्थन करती हो? भाभी, जब हम पढ़े-लिखे लोग ही ऐसा सोचेंगे तो कैसे मिटेगी समाज से बुराइयां।' (पृष्ठ 83) सुशील के वक्तव्य से अंजू भी प्रेरित होती है और उसकी बातों का समर्थन करती है- ' नहीं सुशील, ऐसा मत कहो। मैं जानती हूँ कि हम पढ़े-लिखे लोग ही सामाजिक बुराइयों को समाप्त करेंगे। परन्तु जल्दीबाजी में हम कुछ भी नहीं कर सकते। हमें अवसर आने तक धैर्य रखना होगा, तभी हम समाज से टक्कर ले सकते हैं।' (पृष्ठ 83) समय आने पर अंजू संजू से शादी कर लेती है और अपने वैधव्य का अन्त कर देती है।

समाज में शिक्षा का महत्व अत्यधिक है। शिक्षित व्यक्ति को समाज का सम्मान समझा जाता है। शर्मा जी की कहानियों के प्रमुख पात्र शिक्षित हैं और शिक्षा के बूते पर ही प्रतिष्ठित होते हैं। संग्रह की सभी कहानियों के पात्र शिक्षित हैं और शिक्षा के कारण ही अन्य पात्रों की प्रशंसा के पात्र बनते हैं।

'दीपक की रोशनी' नामक कहानी में शर्मा जी ने देश पर न्योछावर होने वाले जवानों के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि प्रस्तुत की है। रायपुर के निकट रहने वाली सोना का इकलौता पुत्र अक्षय देश के काम आया और उसने अपना बलिदान देकर देश का मान-सम्मान बनाए रखा। जयराज और सोना उसे याद करते और रोते हैं। अक्षय पर पूरे देश को मान था और पूरा रायपुर उसकी कीर्ति गाता था। गाँव वालों ने निर्णय लिया कि पूरा गाँव इस बार दीपावली नहीं मनाएगा। सभी ने इस निर्णय को मानकर घर में दीपमाला नहीं की और न ही कोई मिठाई लाया। रात को सभी अक्षय को याद करते-करते सो गए पर तभी मुखिया जी के झोंपड़े पर गाँव के चार पाँच लोग आए और कहने लगे कि किसी ने शरारत करके जयराज की मुंडेर पर दीया जलाकर रख दिया है। रात को ही पंचायत बिठाई गई और घोषणा की गई कि जिसने भी यह दुष्टता की है उसे कठोर से कठोर सजा दी जाएगी। तभी वहां सोना भी पहुँच जाती है और बताती है- ' नहीं सरपंच जी वह दीया मैंने ही जलाया है। मुझे अपने बेटे के शहीद हो जाने का कोई दु:ख नहीं है, मुझे तो खुशी है इस बात की कि मेरा अक्षय देश के लिए शहीद हो गया। मेरा अक्षय भी तो इसी दीपक की भांति जलता रहा था और तब तक जलकर मातृभूमि को रोशनी देता रहा जब तक कि उसमें प्राण रहे। ..... वही दीया मैंने इनती ऊँचाई पर इसलिए जलाया है क्योंकि यदि नीचा होता तो आप उसे ठोकर मारकर चूर चूर कर देते और फिर मेरा अक्षय भी तो ऊँचाइ पर पहुँचकर ही जलता रहा था। ' (पृष्ठ 100-101) उसके बाद देखते ही देखते पूरा गाँव दीयों की रोशनी से नहा उठा और उन्होंने अक्षय की शहादत को यादगार और अविस्मरणीय बना दिया।

'कर्ज़' और 'पैमाना' कहानियां छोटे-छोटे गाँवों में रहने वाले ऐसे युवकों की हैं जो कर्तव्य-परायण हैं और अपना सब कुछ दाँव पर लगाकर भी अपने घर वालों और भाइयों को कर्ज से मुक्ति दिलाने के लिए प्रयासरत

रहते हैं। सौरभ अपने भाइयों के साथ गाँव में रहता था। एक दिन उसके बडे भाई मनोज ने अपने एक दोस्त के कारण माँ पर हाथ उठा दिया और सभी देखते रह गए। सौरभ से यह सहन नहीं हुआ और वह घर छोड़कर शहर चल दिया। उसे अपने राकेश भैया से भी नफरत हो गई थी क्योंकि राकेश के लिए उसने जो कुछ किया था वैसा शायद ही कोई छोटा भाई करता हो।

सौरभ शहर के एक प्रसि' कॉलेज में राष्ट्रीय छात्रवृत्ति और ट्यूशन के सहारे अपनी पढ़ाई कर रहा था। उधर राकेश एक छोटे-से इलेक्ट्रीशियन के रूप में काम करते थे। घर की हालत दयनीय थी। सौरभ ने एक मित्र की मदद से उसे विदेश भेजने का फैसला किया और उसका पासपोर्ट भी बनवा दिया। उसने अपनी सारी जमा पूंजी लगाकर उसे भेजने का भरसक प्रयास किया पर रुपये कम होने के कारण उसे सफलता न मिली। अन्ततः उसने बैंक से कर्ज लेकर उसे विदेश भेज दिया। विदेश जाते ही राकेश की आँखें बदल गई और उसने सौरभ को पंद्रह हजार रुपये का ड्राफ्ट और पत्र भेजा- 'तुमने विदेश भेजते समय बैंक से ऋण लेकर मुझे दिया था वह मैं तुम्हें सूद सहित भेज चुका हूँ और अब मुझ पर तुम्हारा कोई अहसान नहीं रहा। रही बात तुम्हारी पढ़ाई के पैसे भेजने की। सो मुझसे कोई उम्मीद मत रखना और न ही कभी मुझे पत्र लिखने का साहस करना। ' (पृष्ठ 96)

सौरभ के जख्मों पर मरहम लगाने बैंक का मैनेजर आगे आता है। वह उसका सारा कर्ज चुका देता है और उसे आगे पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करता है। वह उसे अपने साथ शहर ले जाने को भी तैयार है ताकि सौरभ का जीवन सँवर जाए। सौरभ कृतकृत्य हो जाता है कि- 'एक मेरा अपना भाई है जो मुझे पराया समझता है और एक मैनेजर साहब हैं जो पराये होकर भी मुझे अपने भाई समान मानते हैं।' (पृष्ठ 96) सौरभ अब सभी बन्धनों से मुक्त होकर केवल अपने कर्तव्य को याद करके अपनी मंजिल की ओर बढ़ा जा रहा था।

शर्मा जी ने प्रस्तुत कहानी में अधिकांश भारतीय संयुक्त परिवारों की त्रासदी का सफल अंकन किया है।

'पैमाना' कहानी भी इसी तरह की कर्ज में डूबे एक परिवार की कहानी है इसमें सौरभ के भाइयों राकेश और मनोज जैसी कृतघ्नता के दर्शन नहीं

होते वरन् कुणाल और उसके कर्मठ भाई की दास्तान बयान करते हैं। कुणाल एक शिक्षित युवक है जिसे पता है कि उसकी गरीबी और उसके परिवार का कर्ज तभी खत्म हो सकता है यदि वह अपना ध्यान केवल पढ़ाई पर केन्द्रित करे। उसे अपने बड़े भैया के वे शब्द अब भी याद थे जो उन्होंने कुणाल को गाँव से चलते समय कहे थे- 'कुणाल तुम शहर जा रहे हो, वहां पर तुम्हारा कर्तव्य सिर्फ पढ़ना होना चाहिए कुणाल सिर्फ पढ़ना। ' (पृष्ठ 103) वह भी शहर आकर केवल पढ़ाने पर ही ध्यान केन्द्रित करता है और एक दिन वह पूरी यूनिवर्सिटी में प्रथम स्थान पाता है और साथ ही आई.ए.एस. में सिलेक्ट भी हो जाता है। वह खुशी से फूलो नहीं समाता और अपनी जमापूंजी (50 रू.) लेकर जूतों की दुकान पर पहुँच जाता है और अपने भतीजे और भतीजी के लिए नये जूते खरीद का गाँव के लिए चल देता है। गाँव पहुँच कर वह घर के आगे जुटी भीड़ देख कर चकरा जाता है। उसके घर की वस्तुओं को नीलाम करवाने सेठ खुद वहां मौजूद था। कुणाल को देखकर बच्चे उससे लिपट जाते हैं और जूतों की मांग करते हैं। उसके दिये जूतों की खुशी बच्चे अभी पहन भी नहीं पाए थे कि सेठ ने वे जोड़े छीन लिये। तभी वहां कुछ लोग नाचते-गाते-बजाते पहुँचते हैं और कुणाल के भाई को उसके कलैक्टर बनने की बधाई देते हैं। सेठ जी दंग रह जाते हैं और कुणाल के भैया-भाभी चकित होकर देखते रह जाते हैं। उनकी आँखों से आँसू बह चलते हैं पर ये आँसू खुशी के थे।

'भटकती आत्मा' भारत वर्ष में सैंकड़ों वर्षों से फैले कुछ अन्धविश्वासों पर कुठाराघात करने वाली छोटी-सी पर अत्यंत सशक्त कहानी है। गाँव का एक गरीब बूढ़ा अपने दुखमय बुढ़ापे को काट रहा था। सूखी रोटियों पर गुजर करने वाला बूढ़ा एक दिन मर गया और परम्परा के नाम पर उसके लिए व्यंजन बंटने लगे। रिश्तेदारों का तांता लग गया और लोग बुड्ढे को याद करके रोने लगे और परिजनों से सहानुभूति जताने लगे। स्वादिष्ट व्यंजनों पर सभी ने धावा बोल दिया। उधर बूढ़े की आत्मा सोच रही थी- 'यह खुशबू किस चीज की है। उसने तो इसका सामिप्य आज से पहले नहीं पाया था। (पृष्ठ 106) बूढ़ा यमलोक से भाग निकला और सीधा वहां पहुँचा जहां भोज हो रहा था। वहां बूढ़े के सामने सबकी असलियत सामने आ जाती है। अन्य

लोगों के साथ आज गाँव भर के कुत्ते भी उस आदमी की याद में व्यंजन उड़ाने में व्यस्त थे जिसने जीवन भर ऐसी चीजों का मुँह भी न देखा था। वही सेठ जी जिन्होंने बूढ़े की दवा-दारू के लिए कभी एक रुपया नहीं दिया था आज उन्होंने अपनी साख के लिए खर्च उठा लिया था। बूढ़ा आगे बढ़कर सेठ की गर्दन मरोड़ देना चाहता थाब परन्तु तभी वहां यमदूत आ जाते हैं और बूढ़े को ले जाते हैं।

शर्मा जी ने कहानी के अन्त में एक उल्लू के माध्यम से उन दकियानूसी विचारों और लोग-दिखावा करने की प्रवृत्ति पर व्यंग्य कसा है जिसके अनुसार जिन लोगों को जीते जी खाने के लाले पड़े रहते हैं उनके मरने पर लोग हजारों रुपये पकवानों पर उड़ा दिया करते हैं। लोग-दिखावे के कारण ही कुत्ते तक तो भर पेट भोजन पाते हैं पर घर के बड़े-बूढ़े सूखी रोटी से भी मोहताज रहते हैं- 'पास में ही एक उल्लू बैठा थाब उसके मुँह से अनायास ही निकल पड़ा- 'वाह रे ऊपर वाले तेरी महिमा का। एक तरफ कुत्ते हैं और कुत्तों से भी गये गुजरे ये समाज के ठेकेदार हैं जो व्यंजनों से धाप चुके हैं और उन्हें अब इनसे नफरत सी हो गयी है। दूसरी तरग बिचारे बूढ़े की आत्मा है जो मिठाइयों की खुशबू का आनंद भी आराम से नहीं उठा सकती, खाना तो दूर रहा। ' (पृष्ठ 107) शर्मा जी की कहानी का मर्म और सत्य प्रेमचन्द जी की कालजयी कहानी 'कफन' जैसा है जिसके अनुसार जीवित व्यक्ति को चाहे तन ढँकने के लिए चीथड़े भी न मिलें पर लाश को ढँकने के लिए नया कफन अवश्य चाहिए। शर्मा जी अपना संदेश प्रेषित करने में सफल रहे हैं।

संग्रह की अंतिम कहानी 'ताबीज' है जिसमें भारतीय लोगों में घर कर चुकी आस्था के दर्शन होते हैं। इसे चाहे अन्धविश्वास कहा जाए या आस्था परन्तु यह किसी न किसी रूप में पूरे भारतवर्ष में फैली हुई है। वैसे भी आस्था और अन्धविश्वास में कोई सीमा रेखा नहीं खींची जा सकती। भारत में आज भी टोने-टोटके, तंत्र-मंत्र और ताबीजों का बोलबाला है। आश्चर्य ही सही पर ये फलित भी होते हैं। कहानी में नायक और उसके पिता दोनों के घर औलाद नहीं हो रही थी तो महात्मा जी ने नायक की पत्नी और उसकी माँ को ताबीज बांधने के लिए दिया। आश्चर्य की बात यह कि जब नायक का जन्म भी नहीं हुआ था उसी समय उसकी माँ और उसकी पत्नी के लिए महात्मा

जी ने ताबीज तैयार कर दिया था। ताबीज काम करता है और नायक और उसके यहां पुत्र रत्न की प्राप्ति होती है। नायक की आस्था महात्मा जी पर अगाध हो जाती है- 'आश्चर्य की बात तो यह थी कि दोनों की पर्ची महात्मा जी ने एक ही स्याही से और एक ही दिन लिखी थी। दोनों पर आज से 48 वर्ष पूर्व की लिखने की तिथि भी अंकित थी।' (पृष्ठ 127)

भारत पीरों-फकीरों की धरती है। इसमें जहां एक ओर महात्माओं के वेश में ठग पनपते हैं तो वहीं लोगों को दुखों से छुटकारा दिलाने के लिए ईश्वर के नियम में हस्तक्षेप करने वाले फकीर भी मिल जाते हैं। ताबीज में ऐसे ही एक पहुँचे हुए महात्मा का उल्लेख लेखक ने किया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कैलाशचन्द्र शर्मा का 'अबला की मंजिल' कहानी संग्रह एक सशक्त और सफल कहानी संग्रह है। विभिन्न कहानियों में जीवन के विभिन्न पहलुओं, स्थितियों आदि से जूझते-भिड़ते पात्र अपनी मंजिल पाते हैं। सभी कहानियां अच्छी बन पड़ी हैं और पाठकों को बांधने में सक्षम हैं परन्तु यदि इन्हें प्रकाशन से पूर्व एक बार फिर से तराश लिया जाता तो परिणाम और भी सुखद होता। कुछ कहानियों में अनावश्यक विस्तार दृष्टिगोचर होता है।

यदि इन सीमाओं पर अधिक ध्यान न दिया जाए तो कहा जा सकता है कि कैलाश चन्द्र शर्मा का कहानी संग्रह 'अबला की मंजिल' एक उम्दा संग्रह है जिसमें जीवन के यथार्थ एवं सत्यता को बड़ी ईमानदारी के साथ उभारा गया है।

❑❑❑

37

कैलाशचन्द्र शर्मा के कहानी संग्रह 'अबला की मंजिल' में चित्रित युगीन परिदृश्य

डॉ. अशोक पंकज

साहित्य की प्रमुख विशेषता समाज का चित्रण करना है। लेखक समाज का प्रतिनिधि होता है। वह समाज में जो कुछ घटित होता है, को देखता है, उनको अनुभूत करता है और अपनी साहित्य की विभिन्न विधाओं यथा-कहानी, उपन्यास, नाटक, काव्य के माध्यम से पाठकों तक अग्रसर करता है। ऐसे ही लेखकों में डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का नाम अग्रणी रूप से लिया जाता है। इनका जन्म सन् 1957 में ग्राम मैड़ (राजस्थान) में हुआ। ये अपनी विभिन्न साहित्यिक विधाओं के कारण साहित्य संसार में विख्यात हैं। इनकी साहित्यिक विधाओं में कहानी संकलन-2, काव्य संग्रह-1, खण्डकाव्य-1, नाटक-22, उपन्यास-2 तथा अन्य लेख प्रकाशित हो चुके हैं। 'अबला की मंजिल' इनके द्वारा कृत कहानी संग्रह है। प्रस्तुत कहानी संग्रह 1990 में बाणगंगा प्रकाशन, जयपुर से प्रकाशित हैं। इस कहानी संग्रह के कुल 127 पृष्ठ हैं तथा इसमें 'अबला की मंजिल', 'माधवी', 'साक्षात्कार', 'मौन समर्पण', 'चेहरे असली-नकली', 'नवजीवन', 'कर्ज', 'दीपक की रोशनी', 'पैमाना', 'भटकती आत्मा', 'ताबीज' कुल 11 कहानियाँ संकलित हैं। प्रस्तुत कहानी संग्रह में समाज में पनप रही विसंगतियाँ, बुराईयाँ और समाज के बदलते परिवेश की झलक दिखती है। डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा ने मनुष्य के जीवन में बढ़ रही तन्हाई, टूटते रिश्ते-नाते, मनुष्य का बदलता चेहरा, मित्रता में कपटता, दहेज प्रथा, नैतिक मूल्यों का पतन, विषमता, अन्तर्द्वन्द्व तथा भारतीय सभ्यता के हो रहे

* जे.आर.एफ., हिन्दी विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर

पतन आदि समस्याओं का वर्णन अबला की मंजिल कहानी संग्रह में इस प्रकार किया है-

नारी विषयक समस्याएँ

भारतीय समाज में प्राचीन काल से विवाह से सम्बन्धी समस्याओं ने अनेक नारियों का जीवन तबाह किया है। इस समस्या के पीछे दहेज मुख्यत: कार्यरत है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में दहेज प्रथा इतने भीषण रूप से रूढ़ हो गयी है कि विवाह दो अनजान व्यक्तियों का वैवाहिक बन्धन, दाम्पत्य सूत्र में बँधने का नहीं अपितु एक व्यापारिक प्रक्रिया का रूप धारण कर चुका है। शादी की बात शुरू होने से पहले इस बात पर अक्सर चर्चा शुरू हो जाती है कि लड़की वाले क्या-क्या व कौन-कौन सा सामान देंगे इत्यादि। कैलाशचन्द्र शर्मा ने कहानी संग्रह में शामिल 'अबला की मंजिल' कहानी में यह बताया है कि पंकज की उम्र 25 वर्ष की हो जाती है। उनके घर में विवाह की बात होती है लेकिन लोभी किस्म के मनुष्य दहेज के प्रति पूर्ण आसक्त होकर दहेज के बारे में इस प्रकार सोचते हैं- ' अब उसके विवाह की चर्चाएं होने लगी। इन चर्चाओं में उसकी राय का एक पारिवारिक सदस्य की राय के समान महत्व समझा जाने लगा। इस परिवार का कस्बे में अच्छा व्यापार था। अक्सर इस बात की चर्चाए होतीं कि लड़की वाला कितने पैसे देगा, सामान क्या-क्या देगा आदि-आदि।'[1]

दहेज के अतिरिक्त गाँवों, कस्बों में स्त्री पुरुष का साथ-साथ घूमना, बोलना वो भी शादी से पहले गलत माना जाता है। भावना शून्य बड़े-बूढ़े व्यक्ति किसी भी व्यक्ति का लड़की से विवाह कर देते हैं। लड़का चाहे उम्र में बड़ा ही क्यों न हो, गँवार, शराबी, वेश्यागमी, पागल, बदसूरत ही क्यों न हो। लड़की को शादी के विषय में बोलने का अधिकार नहीं दिया जाता। शादी के बाद उस लड़की की जिंदगी घुटन भरी हो जाती है और वह अपने पिता समान उम्र के व्यक्ति के साथ विवाह करके ना चाहते हुए भी जीवन निभा रही होती है। 'अबला की मंजिल' कहानी में पंकज की मौसी का अनमेल विवाह जो एक असामान्य युवक से होता है लेकिन नीलम (मौसी) अपने पति की भरपूर सेवा करती है और उसके साथ जीवन निभाती है, का वर्णन इस प्रकार से है- 'उसका सिर घूम गया - कहां यह अप्रतिम सुन्दरी ओर कहां यह असामान्य युवक। कैसे यह इसके साथ निबाह कर पा रही है। यह इसकी महानता है कि भाग खड़ी नहीं हुई।'[2] नारी अपने अनमेल विवाह के प्रति उदासीन ना होकर पति के आदेशों का अनुपालन

करती है।

विधवा के पुन: विवाह की भारतीय समाज में घोर समस्या है। जहाँ पुरुषों के विधुर होने पर पुनर्विवाह कर दिया जाता है वहीं जब कोई स्त्री विधवा हो जाती है तो उसके पुनर्विवाह की बात तो दूर रही, उसे निकृष्ट नजरों से देखा जाता है।'नवजीवन' कहानी विधवा के पुनर्विवाह की समस्या को उजागर करती है जिसमें दीपक की शादी अंजू से होती है लेकिन पहली रात को दीपक पर बिजली पड़ने से वह रंगमयी संसार छोड़ जाता है किन्तु सुशील अपनी भाभी को पुनर्विवाह करवाने की सलाह देता है। लेकिन उसकी भाभी समाज के बनाए कानून व नियमों पर व्यंग्य प्रकट करती हुई कहती है कि–' क्या तुम भूल रहे हो सुशील, कि मैं एक विधवा औरत हूँ और हिन्दू समाज में एक विधवा के लिए दूसरा विवाह करना तो दूर, ऐसा सोचना भी महापाप है।' [3]

स्त्री अपने सम्मान, वजूद को बनाए रखना चाहती है। वह अपने सभी अधिकार प्राप्त करना चाहती है, वह भी रूढ़िवादी समाज को बदलना चाहती हैं, वह अबला नारी नहीं बल्कि सबला नारी बनकर जीना चाहती है। इसके लिए वह दृढ़ प्रतिज्ञा करती है– 'मैं प्रतिज्ञा करती हूँ सुशील, कि समय आने पर अवश्य दूसरा विवाह करूंगी और इस रूढ़िवादी समाज के मुंह पर एक करारा तमाचा मारकर उन लोगों को प्रोत्साहित करने में मदद करूंगी जो सामाजिक बुराइयों का विरोध करना चाहते हैं।' [4] समाज में प्रचलित बुराईयों का नाश नारी की बहादुरी, उसकी सूझ–बुझ तथा दृढ़ निश्चय से यथा सम्भव हो सकता है।

भारतीय संस्कृति में नारी को गौरवमय तथा उच्च दर्जे का सम्मान दिया जाता था लेकिन अब नारी की स्थिति वास्तव में अत्यन्त दयनीय सी प्रतीत होती है। पुरुष अपने को समाज का प्रधान समझते हैं। वे नारी को केवल एक गृहणी, भोग विलास की वस्तु समझते हैं। यदि नारी पुरुष प्रधान समाज का विरोध करती हैं तो उसे व्यभिचारिणी, कुलटा और न जाने अपलांछन लगाकर उसे घर से त्याग दिया जाता है। 'अबला की मंजिल' कहानी में कैलाश जी ने नारी की बेबसी, दयनीय चित्र को इस प्रकार अंकित किया है– 'जिस दिन नारी इस पुरुष प्रधान समाज का विरोध प्रदर्शित करेगी, उसे या तो पागल करार देकर अस्पताल पहुंचा दिया जायेगा या फिर कुलटा, कुलच्छिनी या व्यभिचारिणी कहकर घर से निकाल दिया जायेगा।' [5] पुरुष प्रधान समाज में पुरुषों में स्त्री को आगे ना बढ़ने देने की प्रवृत्ति सदैव बनी रहती है इसलिए नारी को सशक्त बनकर समाज को बदलने का

प्रण लेना चाहिए।

बनावटीपन

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसके स्वभाव में लालची तथा दलबदली प्रवृत्ति का समावेश होता है। वह लोगों को अपने जाल, झांसे में फँसाने के लिए अपने वास्तविक चेहरे पर कृत्रिम मुखौटा पहनता है किन्तु ऐसे लोग तनिक भी दूसरों को अपने बनावटी चेहरे का अहसास नहीं होने देते। कैलाशचन्द्र ने 'चेहरे असली नकली' में ऐसा ही वर्णन किया है जिसमें अनिल और सुधा सहपाठी होते थे लेकिन जब अनिल इंटरव्यू के लिए सुधा के घर ठहरता है तब अनिल को सुधा के द्वारा किए गए दुर्व्यवहार से उसके बनावटी मुखौटे का आभास हो जाता है जो पॉलिश की हुई सभ्यता के हर भाव को छिपाए हुए है।–'सुधा गंभीर हो गयी। स्वागत के उत्साह का फर्क उस समय दिखायी नहीं पड़ा क्योंकि पॉलिश की हुई सभ्यता हर भाव को ऊपर आने से रोक देती है। लेकिन जब सभ्यता की पॉलिश को जान बूझकर मिटाया गया तो आंखों को सुधा का असली रूप दिखायी पड़ गया।' [6] जब मनुष्य को ठोकर लगती है या किसी मुसीबत में सहायता मिलती है तब वह अपनी चेतनावस्था में आता है, उसे वास्तविकता का पता चलता है।'चेहरे नकली असली' कहानी में ऐसा ही वर्णन किया है जिसमें वर्षा एक गरीब परिवार से सम्बन्धित होती है। अपनी पढ़ाई के लिए वह अनिल की फैक्टरी में पार्ट टाईम नौकरी करती है लेकिन अनिल सुधा के झूठे व बनावटी सुन्दरता पर मुग्ध हो जाता है और स्कूटर से वर्षा के टकराने पर वे वर्षा को ही डांटते फटकारते हैं। उसी डांट–फटकार की प्रेरणा से वर्षा लैक्चरार बन जाती है और अंत में वही अनिल की सच्चे मन से सहायता करती है– 'वर्षा ! मैं तो सोच भी नहीं सकता था कि तुममें इतनी महानता होगी।... वह सोचने लगा कि एक दोस्त सुधा थी जो अपने असली रूप को छिपाए हुए थी और एक दोस्त वर्षा है जो अपने असली रूप को अब उघाड़ रही है। [7] कहा जाता है कि मनुष्य जब जागे, तभी सवेरा। यह उक्ति अनिल पर भी खरी उतरती है जिससे वह वर्षा के साथ शादी करने का निर्णय लेता है और अनिल वर्षा के नाम से शुभ विवाह का निमंत्रण पत्र छपवाता है।

अंधविश्वास

धर्मगुरुओं, पंडों–पुरोहितों, तांत्रिकों ने धर्म की आड़ में आर्थिक शोषण और सामाजिक वैमनस्य को उत्साहित किया है। इसके अलावा धर्मांधता के माध्यम से

लोगों का दैहिक, आर्थिक शोषण भी कम नहीं हुआ हैं। वे डाक्टरी इलाज करवाने की बजाय देवी-देवता, टोने-टोटके आदि की ओर उन्मुख हो रहे हैं। कैलाश जी ने 'ताबीज' कहानी में अंधविश्वास में फँसे लोगों का चित्रण किया है जिसमें सन्तान विहीनता के दु:ख में डाक्टरी इलाज एवं् बाद में जादू-टोने पर विश्वास किया जाता है।

'उसके अनेक मित्र नामी डॉक्टर थे। पर हजारों रुपये खर्च करने के बाद भी कई वर्ष तक जब कोई आशा दिखाई नहीं दी तो देवी-देवता, टोने-टोटके आदि की ओर अपने आप रुख हो गया। सब कुछ कर चुके थे पर कोई सफलता न मिली थी।' [8] आज के समय में मनुष्य परमात्मा का रूप कहे जाने वाले डॉक्टरों पर विश्वास ना करके जादू-टोने, टोटके एवं अंधविश्वास में डूबे हुए हैं जिससे उनकी सोच का दायरा सीमित तथा धन की बर्बादी होती है।

गरीबी

'सोने की चिड़िया' कहलाने वाले भारत जैसे देश में हृदय को हिला देने वाली गरीबी के दृश्यों की कोई कमी नहीं। महानगरों से लेकर छोटे-बड़े नगर, गांव, कस्बे, गली-मुहल्ले यहां तक कि कदम-कदम पर गरीबी के कारण लोगों के जीवन में तडपन, कराहट के दृश्य देखने को मिलते हैं। गरीबी के प्रभाव से मनुष्य का जीवन इतना दरिद्र व नीरस बन गया है कि वह अपना इलाज किसी सरकारी अस्पताल में करवाने से तो रहा उसके बारे में सोच भी नहीं सकता। ऐसे ही गरीबी का वर्णन कैलाशचन्द्र शर्मा ने 'मौन समर्पण' कहानी में किया है जिसमें नवीन जब गाँव में पैदा होता है, उसको तथा उसके पाँच भाई-बहनों को कभी भी अस्पताल में इलाज के लिए नहीं लाया गया। कैलाशचन्द्र ने नवीन के माध्यम से गरीबी का यथार्थ वर्णन इस प्रकार किया है- 'वैसे उसका जन्म गांव में हुआ था और बचपन भी वहीं पर बीता, पर वह गांव का अस्पताल न देख पाया था। उसकी गरीबी के दिन! मन में एक टीस सी उठी। कहां थी पिता की इतनी सामर्थ्य जो उन पांच भाई-बहनों को कभी अस्पताल में दिखा पाते, उनका इलाज करवा पाते।' [9]

गरीबी ने प्रत्येक मनुष्य को चाहे वह मजदूर हो या छोटी सी सरकारी नौकरी वाला, सभी को अपने पंजे के नीचे दबा रखा है। ऐसा ही वर्णन 'कर्ज' नामक कहानी में किया गया है जिसमें राकेश भैया मामूली से इलैक्ट्रीशियन होते हैं किन्तु उनकी घर की दशा इतनी दयनीय होती है कि बच्चे अच्छी पुस्तकें तथा

भाभी अच्छे कपड़ों को तरसती है और कोई ना काई कर्जदार कर्जा वसूलने चौखट पर बैठा रहता है- 'राकेश भैया मामूली से इलैक्ट्रीशियन थे और घर की स्थिति बड़ी दयनीय थी। कोई न कोई कर्जदार राकेश भैया के घर की चौखट पर बैठा ही रहता था। बच्चे अच्छी पुस्तकों को तरसते और भाभी अच्छे कपड़ों को।' [10] गरीबी के शिकंजे मे फंसा मनुषय अपने परिवार की प्राथमिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने में बेबस व असहाय सा महसूस करता है।

नैतिक मूल्यों का पतन

आज के समय में सबसे प्रमुख समस्या नैतिक मूल्यों के पतन की हैं। भारतीय समाज में प्रत्येक माँ-बाप की सर्वप्रथम इच्छा पुत्र प्राप्ति की होती है। वहीं पुत्र बड़ा होकर अपने मां-बाप के अरमानों, भावनाओं का गला रोंदते है। अपने बुजुर्ग माता-पिता का तिरस्कार एवं उनको उपेक्षित करते हैं। उन पर बुढ़ापे में अत्याचार किया जाता है जिससे नैतिक मूल्यों का विघटन बढ़ता जा रहा है। कैलाश जी ने कहानी 'कर्ज' में भी यही दर्शाया है कि एक बुजुर्ग माँ बाप अपने पुत्र मनोज के दोस्त 'बंशी' को बेईमान कहती है जो कि सत्य है। इस बात से मनोज का रोम-रोम जल उठता है और वह अपनी माँ पर बुरे, कटु शब्दों का प्रहार करते हुए उसको चार-पाँच घूंसे मार देता है- 'सौरभ इसे मामूली सी झड़प समझ रहा था और चुपचाप बैठा था। उसने सोचा यह तो हमेशा ही होता रहता है, परन्तु उस समय उसकी आत्मा रो पड़ी जब मनोज भैया ने तपाक से उठकर मां के चार-पाँच घूंसे जड़ दिये।' [11]

कैलाश जी ने 'भटकती आत्मा' कहानी में नैतिक मूल्यों के टूटने का वर्णन किया है। चूँकि माता-पिता अपने बच्चों को बचपन में बड़े लाड़-प्यार से पालन पोषण करते हैं। वह अपने बच्चों को अंधे की लकड़ी मानते हैं। विवाह उपरांत वही बच्चे व उनकी बहुएं अपने वृद्ध माता-पिता का साथ छोड़ देते हैं। उन पर बुढ़ापे में कटु-तीक्ष्ण व्यंग्य तथा परिहास भरे शब्दों की बौछार करते हैं मरते दम तक उनको सूखी रोटियां खाने को नसीब होती हैं। कहानीकार ने इस प्रकार हो रहे वृद्ध माँ-बाप के तिरस्कार, टूटते मानवीय, नैतिक मूल्यों का वर्णन किया है- 'गाँव का एक गरीब आदमी बेटे और बहुओं के कटु, तीक्ष्ण व्यंग्य और उपहास भरे शब्दों की बौछारों के बीच अपने बुढ़ापे के दिन काट रहा था। उसे मुश्किल से सूखी रोटियाँ खाने को मिलती थीं और कभी-कभी तो ये भी नसीब नहीं होती थीं। बेचारा बुढ़ापे में भी काम करता रहा और नहीं तो मूंज ही बांटता

रहता, चटाइयाँ बनाता रहता..... और जब मरा तो भूखों-मरते ही मरा।' [12] इस प्रकार नैतिक मूल्यों के टूटने से मनुष्य की भावनाओं में शून्यता बढ़ रही है और पिता अपने पुत्रों से बुढ़ापे में सहारे की आशाओं का दमन कर रहे हैं।

शहरीकरण

गाँवों में जीवन यापन में कठिनाई तथा आर्थिक तंगी से मनुष्य को घोर आपत्ति का सामना करना पड़ता है जिससे वह गांव छोड़कर शहर की तरफ उन्मुख हो रहे हैं। शहरीकरण की व्यस्त जिंदगी से मनुष्य में आपसी भाईचारा व प्रेम सम्बन्धो में दरारें पैदा हो रही हैं, यही नहीं मनुष्य को फोन पर बातें करने के लिए ट्रंक काल की व्यस्तता के कारण तीन-चार घंटों की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। ऐसी ही व्यस्तता का वर्णन कैलाशचन्द्र ने 'अबला की मंजिल' कहानी में इस प्रकार किया है- 'पंकज अपनी होने वाली जीवन संगिनी से टेलफोन पर बात करने का प्रयास रोज करता था। टेलफोन की लाईन का मिल जाना निर्धन को धन मिल जाने के समान था। टेलफोन प्राय: दूसरी मंजिल वाले उनके सोने के कमरे में रहता और वहीं से वे शहर टेलफोन मिलाने का काम करते। वे रात को बारह-एक बजे तक टेलफोन का ड़ायल घुमाते रहते तब जाकर शायद एक बार बात हो पाती थी।' [13]

'दीपक की रोशनी' में कैलाश जी ने गांव और शहरी मनुष्य के तीज-त्यौंहार पर प्रकाश डाला है। गांव में जहाँ सभी ग्रामवासी तीज-त्यौंहारों को बड़ी धूम-धाम से मनाते हैं वही शहरी जीवन में मनुष्य इन सब से कटता जा रहा है। प्रेम, बन्धुता आदि का ह्रास हो रहा है-'हमारे गांव प्रेम के प्रतीक और भाईचारे की नींव हैं। जो प्रेम शहरों में एक परिवार वाले नहीं निभा पाते वह प्रेम भारत के गांवों में आज भी पाया जाता है।' [14]

अपने कामकाज के उद्देश्य से पलायन के कारण मनुष्य शहरी वातावरण के सौन्दर्य का लुत्फभी नहीं उठा पाते। मशीनी दिनचर्चा के कारण मनुष्य संध्या की लालिमा का आनंद उठाने के बजाय घर का रास्ता देखता है। 'माधवी' कहानी में कैलाशचन्द्र ने शहर में बसे लोगों की दिनचर्या व उनकी व्यस्तता को इस प्रकार प्रकट किया है। 'संध्या की लालिमा राहगीरों को बरबस ही उनके घर की याद दिला रही थी। इस भागमभागामी के शहरी वातावरण में अब ऐसे बहुत ही कम व्यक्ति रह गए हैं, जिन्हें इस लालिमा के दर्शन से आनंद उठाने का सौभाग्य प्राप्त होता होगा। अन्य सब तो अपनी मशीनी दिनचर्या के कारण घर पहुंचने को

आतुर रहते हैं।' [15]

शहरीकरण होने से मनुष्य की जिन्दगी में भागदौड़, थकावट, प्रेम सम्बन्धों का टूटना तथा पारिवारिक विघटन ने अपना घर बसा लिया है।

अत: समग्र रूप से यह कह सकते हैं कि कैलाशचन्द्र शर्मा कृत कहानी संग्रह 'अबला की मंजिल' की कहानियों में व्यक्ति सत्य के सार पर जीवन की विषमताओं, संघर्षो तथा जटिलताओं को उजागर करने के साथ ही साथ मनुष्य के जीवन में आते बदलाव यथा टूटते रिश्ते-नाते, विघटन होते नैतिक मूल्य, पारिवारिक संबंधों के विघटनों के कारण दरिद्र होते जीवन को अंकित किया गया है।

संदर्भ

1. कैलाशचन्द्र शर्मा, अबला की मंज़िल, 1999,, बाणगंगा प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ 16
2. वही, पृष्ठ 25
3. वही, पृष्ठ 83
4. वही, पृष्ठ 83-84
5. वही, पृष्ठ 24
6. वही, पृष्ठ 72
7. वही, पृष्ठ 78
8. वही, पृष्ठ 124
9. वही, पृष्ठ 64
10. वही, पृष्ठ 91
11. वही, पृष्ठ 90
12. वही, पृष्ठ 106
13. वही, पृष्ठ 16
14. वही, पृष्ठ 98
15. वही, पृष्ठ 40

❑❑❑

38

'ओवरकोट' कहानी संग्रह में मूल्य

डॉ. कमलेश कुमारी

वर्तमान भौतिकवादी युग में सांस्कृतिक, मानवीय एवं पारम्परिक मूल्यों का ह्रास अत्यन्त तीव्र गति से हो रहा है। यह ठीक है कि धन का जीवन में बहुत अधिक महत्व है किन्तु धन ही सब कुछ नहीं है। आज का मानव धन को ही सब कुछ मानकर सभी मूल्यों को तिलांजलि दे रहा है। धन के लिए पारिवारिक रिश्तों की बलि चढ़ाई जा रही है। रिश्ते यदि कहीं शेष हैं तो नाममात्र के लिए। मर्यादाएं टूटती जा रही हैं और टूटती हुई मर्यादाएं समाज को विखण्डित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा ने मानवीय, पारम्परिक, पारिवारिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना पर बल देते हुए ही अपनी कहानियाँ लिखी हैं, जो 'ओवरकोट' कहानी संग्रह में संकलित हैं। प्रस्तुत संग्रह में संकलित कहानियों में विभिन्न मूल्यों की स्थापना पर बल दिया गया है।

'ओवरकोट' संकलन में संकलित 'ओवरकोट' कहानी में जहां मध्यमवर्गीय परिवार की स्थिति का चित्रण हुआ है, वहीं पत्नी का पति के प्रति, पति का पत्नी के प्रति, बच्चों का पिता के प्रति, पिता का बच्चों के प्रति प्रेम और लगाव भी चित्रित हुआ है। नौकरीपेशा लोगों की भागदौड़ एवं तद्जनित परेशानियों एवं कठिनाइयों को भी लेखक ने अत्यन्त कुशलता से उकेरा है। अभिनव ठिठुरती रात में अपने पिता को बस अड्डे पर छोड़ने जाता है और पिता को सर्दी न लग जाए यह समझकर अपना ओवरकोट अपने पिता को दे जाता है किन्तु स्वयं लूना पर बैठकर ठिठुरता हुआ आता है। लेखक ने कहानी के अन्त में

* असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, अहीर कॉलेज, रेवाड़ी (हरियाणा)

अत्यन्त मार्मिकता के साथ पिता की पीड़ा का चित्रण किया है, ''उसका मन पीड़ा से कराह उठा कभी वह रात्री की तेज ठण्ड में वापस घर जाते हुए अभिनव को देखता, तो कभी खूँटी पर टँगे हुए ओवरकोट को। उसे लगता मानो वह भी अभिनव की बाईक पर उसके पीछे हुआ है। उससे अपने बेटे की कंपकंपी देखी न गई और खूँटी से ओवरकोट उतार कर अभिनव के कंधे पर डाल दिया।'' [1]

'रींछ भगवान' कहानी में आतिथ्य सत्कार जैसे सांस्कृतिक मूल्य का चित्रण किया गया है तो साथ ही साथ धार्मिक विश्वास 'जैसी करनी वैसी भरनी' पर भी प्रकाश डाला गया है। नरसी बाबा ट्रक ड्राईवर और उसके खलासी का ही आदर सत्कार नहीं करता बल्कि रींछ वाले मदारी का भी सत्कार करता है। ''बेटा, हमारे यहाँ पर तो लोगों को आश्रय देने की एक परम्परा रही है। हम लोग मेहमान को भगवान के बराबर मानते हैं। यहां दालान में क्यों तुम हमारे घर के अन्दर पोळी में जाकर सो रहो..... नहीं बेटा, सुबह तो कलेवा किए बिना नहीं जाने देंगे हम तुम्हें।'' [2] नरसी बाबा की पत्नी दाखां माई ने आगन्तुकों से कहा था। किन्तु लालची ट्रक ड्राईवर उसके पशुओं को ले जाने के चक्कर में रीछ के जाल में फँस जाता है और पकड़ा भी जाता है। तभी तो कहा गया है – 'जैसी करनी वैसी भरनी'। उस्ताद ने सोचा कि वह पाजी आज तो मरवा ही देगा। वह भागकर उसके पास पहुँचा और जैसे ही उसका मुँह भींचना चाहा तो पडिया वेशधारी रींछ ने उस्ताद को भी पकड़ लिया। डर के मारे छींतर की घिग्घी बँध गई थी। अत: वह जोर–जोर से चिल्लाने लगा। विषयान्तर में लेखक ने मदिरापान निषेध का संदेश भी दिया है।

'बोरे की लाश' में लेखक का पशु प्रेम प्रकट हुआ है। घर में पालित बिल्ली के बच्चे को लेकर परिवार के सभी सदस्य व्यथित हो उठे तथा उसे तलाश करने लगे। वह बीमारी से पीड़ित तड़प रहा है। उसके जीवित बचने की कोई आशा नहीं रही तो उसे बाहर बैठा दिया गया और वह अगले दिन गड्ढे में गिरकर मर गया। ''मेरी बेटी ने आकर मुझे बताया कि बिल्ली का बच्चा वेदना से आहत होकर और अधिक तड़पने लगा और एकाएक उछलकर पास के गड्ढे में जा गिरा था। उसने बड़ी दीनता से यह भी बताया कि गड्ढे में चौंलाई आदि के पौधे खड़े थे जो बेचारे उस बच्चे को चुभ गए होंगे।'' [3]

इससे पूर्व परिवार के सदस्यों का प्रेम तो वहां प्रकट होता है जहां उस बच्चे के लिए दूध रखा जाता है। बिस्कुट के टुकड़े रखे जाते हैं और जगह को

साफ करके उसे बैठाया जाता है। बिल्ली के बच्चे की दयनीय स्थिति को देख लेखक के हृदय में हलचल उठने लगी, ''तब मुझे पहली बार अहसास हुआ कि जब जीव मौत के मुहाने तक पहुँच चुका होता है तो उससे बचने के प्रयास में वह किसी भी कष्ट को बर्दाश्त कर सकता है और यह साहस उसमें स्वत: ही आ जाता है।'' [4] बिल्ली के बच्चे की मृत्यु वाली घटना से लेखक कई दिन बेचैन रहा। लेखक जीवन के शाश्वत सत्य को महसूस करता है और उसके मस्तिष्क में एक के बाद एक विचार आने लगे –

''जीव को जीव मात्र से लगाव हो जाता है और आत्माएं एक-दूसरे से गुंथ जाती हैं। कोई कहता है यह मेरा है, कोई कहता है यह तेरा है। परन्तु एक दिन ऐसा भी आता है जब हम उसी को अपनी आँखों से शीघ्र दूर कर देना चाहते हैं जो कभी हमें सबसे प्रिय रहा था। 'सबसे प्रिय से डरना', यही जीवन का सत्य है फिर क्यों नहीं जीव मात्र को इसका अहसास उसके जीवनकाल में और वह भी समय रहते हो पाता।'' [5]

'खान दोस्त' कहानी उच्च अधिकारियों, पूंजीपतियों को एक संदेश देती है कि मानव को संवेदनशील, परदु:खकातर एवं परसेवी होना चाहिए। क्योंकि आज उच्च पदों पर आसीन अधिकारीगण अथवा धनाढ्य व्यक्ति छोटे एवं निर्धन लोगों की उपेक्षा कर देते हैं। कथानायक सरकारी अधिकारी होते हुए भी अपने बचपन के दोस्त खान को नहीं भूलता तथा वह खान के घर भी जाता है। वह बच्चों के लिए मिठाईयाँ भी ले जाता है। कथानायक केन्द्र सरकार में प्रशासनिक अधिकारी के पद पर कार्यरत है। उसने अपने खान दोस्त की आर्थिक रूप से कमजोर हालत देखकर उसे नौकरी करने के लिए प्रेरित किया। ''क्यों भाई खान, तुमने आठवीं कक्षा तो पास कर ही ली थी, फिर कोई नौकरी क्यों नहीं कर लेते ?'' [6] किन्तु आठवीं पास लतीफखान देश की कार्यपालिका पर प्रहार करते हुए कहता है कि, ''नौकरी कहाँ मिलती है साहब। आजकल चपरासी तक की नौकरी के लिए बी.ए. पास लोग पहुँच जाते हैं, फिर मैं तो आठवीं पास ही ठहरा। और फिर मेरे पास कोई सिफारिश भी तो नहीं है न।' [7]

हमारे देश की कार्यपालिका पर उसके इस सीधे प्रहार से कथानायक अवाक रह गया और सोचने लगा कि क्या उसके इस मित्र को केवल आठवीं तक का ही ज्ञान है। कथानायक उच्च पद पर आसीन होते हुए भी अपने पद की परवाह किए बिना अपने बचपन के मित्र, जो कि वर्तमान में तहसील में एक

चपरासी पद पर कार्यरत है, से मिलने तहसील जाता है। वह अपने साथी तहसीलदार से भी यही कहता है कि मैं अपने बचपन के दोस्त खान से मिलने आया है, न कि उससे- ''केदार तुम भी मेरे कॉलेज के सहपाठी रहे हो, परन्तु मेरे स्कूल के एक और सहपाठी कार्यरत है यहाँ पर। और आज तो मैं केवल मात्र उसी से मिलने आया था।.... मेरे इस प्रकार के व्यवहार से सब आश्चर्यचकित थे, परन्तु केदार के मन में शायद ईर्ष्या-भाव जागृत हो गया था।'' [8]

'भिखारिन माँ' एक लघु कहानी है। जैसा कि कहानी के शीर्षक से ही अभिव्यक्त होता है। प्रस्तुत कहानी में भिखारियों की स्थिति, उनकी दुर्दशा और उनके प्रति समाज में व्याप्त उपेक्षा भाव दर्शाया गया है। किन्तु यहां यह भी स्पष्ट किया गया है कि कोई तो होता है जिसके मन में भिखारियों के प्रति सहानुभूति का भाव भी होता है। भिखारिन भजन गा रही है तो एक अन्य बुढ़िया भी बैठकर उसके साथ गीत गाने लगती है। अस्तु बुढ़िया का गीत एक प्रकार से भिखारिन के प्रति सहानुभूति ही है- ''चलो इस दुनिया में कोई तो बुढ़िया के दु:ख का साथी मिला, जो कम से कम उसकी पीड़ा पर सहानुभूति का मरहम लगा सकता है।'' [9]

' बछड़े की अरदास' कहानी में ग्रामीण परिवेश में पले-बढ़े बालकों का पशुओं के प्रति प्रेम प्रकट हुआ है। साथ ही साथ ईश्वर के प्रति आस्था का भी चित्रण हुआ है। कथानायक नन्हे ने नहाने की अपेक्षा पानी को बछड़ों के लिए अत्यधिक आवश्यक माना। वह अपने पशुओं को खेत में ले जाता है किन्तु नवजात बछड़े को गर्मी न लगे, थकान न हो, इसलिए उसे टोकरे में बैठाकर सिर पर रखकर ले जाता है। सायंकाल उन्होंने देखा कि बछड़ा अम्मा-अम्मा करके रम्भा रहा है और थोड़ी ही देर में बारिश आने लग गई तो नन्हे को लगा कि बारिश बछड़े के बुलाने से ही आई है। लेखक ने जीवन की नियति के विषय में लिखता है, ''जीवन में वर्तमान से भी अधिक सुख की उम्मीदें जब भविष्य में परिलक्षित होती हों तो व्यक्ति तो क्या पशु-पक्षी भी भावी गढ़ में प्रविष्ट होने को लालायित रहते हैं और यही जीव मात्र की प्रगति का कारण है, नियति के विस्तार का मूल है।'' [10]

'उपकार का बदला' एक पौराणिक कथानक को लेकर लिखी गई कहानी है जिसमें परी द्वारा किए गए उपकार का बदला चुकाया जाता है। कथानायक रामसिंह की माँ उसे दक्षिण दिशा में जाने से रोकती है क्योंकि पहले उसका पिता भी उसी दिशा में गये थे, जो लौटे ही नहीं। रामसिंह अपनी माँ की बात न मानकर

पिता की तलाश में उसी दिशा में चला जाता है। इससे पूर्व वह परियों को घायल करने वाले धनुर्धर को मारकर परी की प्राण-रक्षा करता है। सभी परियां उसका धन्यवाद करती हैं और बदले में एक तलवार देकर एवं मुसीबत के समय सहायता का आश्वासन देकर चली जाती हैं। राजकुमार रामसिंह अपने पिता की खोज में दक्षिण दिशा में गया तो उसे बहुत से राक्षसों एवं अन्य संकटों का सामना करना पड़ा। अन्त में वह मुसीबत में फँस गया और उसने परी को याद किया। परी ने उसे अपनी पीठ पर बैठाकर गर्म रेत के मैदान को पार कराया और जिसकी सहायता से ही कथानायक ने अपने पिता को मुक्त करवाया। अत: स्पष्ट होता है कि परी राजकुमार द्वारा किए गए उपकार का बदला अपने प्राण देकर भी चुकाती है।

'सवारी का मोह' एक साधारण सी कहानी है। जिसमें गांव के किशोरों द्वारा गधों की सवारी करने का चित्रण किया है। इस कहानी में लेखक ने संगीत के ज्ञान का परिचय भी दिया है- ''संगीत में एकता-भाव जागृत करने की कितनी शक्ति होती है। पच्चीस गधों के रागमय संगीत से वातावरण संगीतमय हो गया था। परन्तु गधों का यह आलाप राग यमन में न होकर बागेश्री में था जो संगीत की परिभाषा में असमय का राग था।'' [11]

'स्वाभिमान' कहानी में लेखक ने जीवन में आने वाले उतार-चढ़ाव का चित्रण करते हुए यह स्पष्ट करना चाहा है कि व्यक्ति को अपने स्वाभिमान को बनाए रखना चाहिए। 'स्वाभिमान' कहानी फ्लैशबैक शैली में लिखी कहानी है। इस कहानी में कथानायक मध्यम वर्गीय किसान परिवार में पला युवक है। उसके विपरीत अशोक गांव के प्रतिष्ठित किसान का बेटा है। कथानायक को उसके पिता ने जैसे-तैसे कठिन परिश्रम करके पढ़ाया और वह आत्मविश्वास एवं दृढ़ निश्चय के बल पर आगे बढ़ता रहा जबकि अशोक धन-वैभव को लेकर अपने धनी मित्रों के साथ ऐश करता रहा। नायक को परिवार सहित गांव छोड़कर शहर में आना पड़ा जहां उसे एक डेयरी में नौकरी मिली। कथानायक अपनी नेकनियति, परिश्रम एवं ईमानदारी के बल पर काम करते हुए धन अर्जित कर अपनी खुद की डेयरी बनाने में सफल हुआ। अशोक समयचक्र के चलते निर्धन हो गया और वह आज कथानायक की डेयरी में ही नौकरी हेतु साक्षात्कार देने आया है। कहानीकार ने उसी दशा का चित्रण यथार्थ के धरातल पर किया है- ''दुबला-पतला, बाल बिखरे हुए, जर्जर वस्त्र। दीनता के जीते-जागते पुतले का आभास

करा रहा था वह। और एकाएक मैं चौंक पड़ा -अरे, यह तो मेरा पुराना सहपाठी अशोक है।'' [12] किन्तु अशोक कथानायक को देखते हुए वापस लौट गया। नायक को लगा कि शायद उसका स्वाभिमान जागृत हो उठा है।

संक्षेप यही कहा जा सकता है कि डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा द्वारा लिखित 'ओवरकोट' कहानी संग्रह में संकलित सभी कहानियाँ हृदयस्पर्शी कहानियाँ हैं। उनकी कहानियाँ शाश्वत मानव मूल्यों की स्थापना करते हुए मानव को भाईचारे, अतिथि देवो भव:, कर्त्तव्यपरायणता, जीवों के प्रति सहानुभूति, निश्छल मैत्री एवं पारस्परिक सद्भाव का अमर संदेश देती हैं। वास्तव में लेखक समाज से जुड़ा हुआ एक संवेदनशील एवं सजग व्यक्ति है जिसने मानव मूल्यों के ह्रास के दुष्परिणामों को देखा है और उसी को अनुभव कर मानव मूल्यों की पुनर्स्थापना करने के लिए यह स्तुत्य प्रयास किया है।

संदर्भ

1. ओवरकोट, डॉ.कैलाश चन्द्र शर्मा, त्रिवेणी कला संगम, जयपुर 2012, पृष्ठ 1६
2. वही, पृ. 16
3. वही, पृ. 38
4. वही, पृ. 39
5. वही, पृ. 40
6. वही, पृ. 56
7. वही, पृ. 57
8. वही, पृ. 64
9. वही, पृ. 66
10. वही, पृ. 69
11. वही, पृ. 92
12. वही, पृ. 99

❑❑❑

39

कहानी संग्रह 'ओवरकोट': एक समीक्षा

विजय कदम

इस कहानी संग्रह में कुल नौ कहानियाँ हैं।

प्रथम कहानी 'ओवरकोट' पिता-पुत्र की संवेदनाओं को व्यक्त करने वाली एक मार्मिक कहानी है।

एक व्यक्ति कँपकँपा देने वाली सर्दी में अपने कार्यस्थल पर जाने हेतु रात्रि के नौ बजे अपने बेटे के साथ बाईक पर हाईवे के बस स्टॉप के लिए प्रस्थान करने वाला है। सर्दी से बचने के लिए वे एक ओवरकोट साथ में ले लेते हैं। कोट एक ही है और व्यक्ति दो। अत: पिता पुत्र से ओवरकोट पहनने को कहता है परन्तु पुत्र को अपने पिता से बेहद लगाव है अत: वह कहता है कि बाईक चलाते समय आपको सर्दी अधिक लगेगी और ओवरकोट को आप पहन लें। पिता का मन पुत्र की भावनाओं से आर्द्र हो जाता है और वह कोट पहनकर अपने पुत्र के साथ बस-स्टॉपेज पर पहुँच जाता है। जब पिता अपने पुत्र को घर जाने के लिए कहता है तो वह बस के आने तक पिता के साथ ही खड़े रहने की जिद करता है। तब जब पिता उसे ओवरकोट पहन लेने को कहते हैं तो पुत्र तर्क देता है कि आप लम्बी यात्रा पर जा रहे हैं अत: बस में बैठने से पहले तक आप ही इसे पहने रहें। पिता का मन पुत्र की भावनाओं से द्रवित हो उठता है और तब ओवरकोट को खोलकर उसे दोनों ओढ़ लेते हैं। बस आ जाती है। अब पिता पुत्र की जिद पर ओवरकोट पहनकर बस में जा बैठता है।

*बिल्डिंग नं. एन 2 ए, फ्लैट सं. 34, कामां पार्क, कामां रोड, अँधेरी स्टेशन के सामने, मुम्बई-400058

अगले दिन जब वह अपने ऑफिस का काम खत्म कर अपने कमरे में पहुँचकर अपने घर फोन करता है तो उसे पता चलता है कि उसका पुत्र सिरदर्द से पीड़ित है और सो रहा है।

उसका मन पीड़ा से कराह उठा। कभी वह रात्रि की तेज ठण्ड में वापस घर जाते हुए अभिनव को देखता, तो कभी खूँटी पर टँगे हुए ओवरकोट को। उसे लगता मानो वह भी अभिनव की बाईक पर उसके पीछे बैठा हुआ है। उससे अपने बेटे की कँपकँपी देखी न गई और खूँटी से ओवरकोट उतारकर अभिनव के कन्धे पर डाल दिया।

कहानी 'रींछ भगवान' के माध्यम से भारतीय ग्राम्य जीवन में अतिथियों के सत्कार की भारतीय परम्परा को दर्शाते हुए युग-परिवर्तन के कारण स्वार्थी एवं चालाक लोगों द्वारा भोले-भाले ग्रामीणों को ठगने की बात का खुलासा किया गया है, तथा साथ ही इसके दुष्परिणामों को उजागर करते हुए ग़लत काम न करने की सीख दी गई है।

'बोरे की लाश' कहानी लेखक के एक संस्मरण पर आधारित है। एक दिन एक बिल्ली एकाएक घर में अपने तीन नवजात शिशुओं को ले आती है जो कहानी के नायक के पूरे परिवार के लिए खुशी एवं मनोरंजन का विषय बन गया है। घर के बच्चे एवं बड़े भी कभी तो उन्हें दूध पिलाते हैं, कभी रोटी खिलाते हैं और जब वे म्याऊं-म्याऊं करते हैं तो खुश होते हैं। कई बार तो उनके लिए विशेष तौर से बाजार से बिस्कुट भी मंगवाये गये थे। एक दिन एकाएक बिल्ली का एक बच्चा बीमार हो जाता है और उसे तड़पता हुआ देखकर सबका मन आहत होता है। बच्चे के मर जाने की स्थिति का आभास होने पर एवं पड़ौसियों के समझाने पर उस बीमार बच्चे को घर के दरवाजे के बाहर बैठा दिया जाता है। इससे बच्चों का कोमल मन द्रवित हो जाता है और वे मरणासन्न अवस्था में बैठे बिल्ली के बच्चे के आगे दूध भरा मिट्टी का पात्र रख आते हैं। तड़पता हुआ बच्चा पास ही घास-फूस मिले काँटों में जा गिरता है और अन्त में मर जाता है। पूरा परिवार इस घटना से व्यथित है। गृह प्रमुख अगले दिन प्रात:काल मरे हुए बच्चे को एक खाली बोरे में लकड़ी की डण्डी से ठेलकर कचरा पात्र में डालकर आता है। इस सम्बन्ध में उसके मन में उठे भावों का इस कहानी में मार्मिक चित्रण किया गया है।

कहानी 'खान दोस्त' में स्कूल के विद्यार्थियों के दैनिक क्रिया-कलापों एवं घटनाओं का विवरण है कि किस प्रकार छोटी क्लास के बच्चों में गुटबाजी हो जाती है और अंग्रेजी के मीनिंग याद न होने पर जब अध्यापक जी द्वारा दूसरे गुट के विद्यार्थियों से चाँटे लगवाये जाते हैं तो चाँटा खाने वाला छात्र अपने मन में बदले की भावना समाये हुए अगले दिन विरोधी गुट के किसी कमजोर छात्र से किस प्रकार जान-बूझकर जोर से एवं अपने गुट के सदस्य के किस प्रकार धीरे से चाँटे लगाता है। चाँटे खाने से बचने के लिए प्रत्येक दल का सदस्य अपने साथियों को अंग्रेजी के मीनिंग याद कराने का किस प्रकार प्रयास करता है, विद्यार्थी जीवन के पश्चात् छात्र-जीवन के ये साथी किस प्रकार अपने-अपने जीवन में स्थापित हो जाते हैं और अपने पुराने कटु सम्बन्धों में भी आत्मीयता अनुभूत करते हुए किस प्रकार एक-दूसरे से गुंथे रहते हैं, ये सभी बातें इस कहानी से उजागर होती हैं।

कहानी के नायक का बालसखा 'खान' तहसील कार्यालय में चपरासी नियुक्त हो जाता है और इसी कार्यालय का तहसीलदार केदार भी कहानी के नायक का कॉलेज का साथी रहा है। केदार के वहाँ होने की बात उसे तब पता चलती है जब वह अपने बालसखा खान से मिलकर तहसील कार्यालय से बाहर निकलता है। उसका कॉलेज का सहपाठी केदार उसे वहाँ पाकर प्रसन्न होता है परन्तु जब कहानी का नायक उसे बताता है कि वह उससे नहीं अपितु तहसील में चपरासी के रूप में कार्यरत अपने बालसखा 'खान' से मिलने आया है तो केदार को अपना अपमान महसूस होता है परन्तु कुछ वर्षों बाद कहानी के नायक को केदार का एक पत्र मिलता है जिसमें वह लिखता है—'मुझे जीवन में एक और अच्छा दोस्त मिला है और वह है तुम्हारा बचपन का साथी खान दोस्त'।

इस प्रकार यह कहानी सामान्य कथावस्तु से प्रारम्भ होकर मानवीय संवेदनाओं के धरातल पर अपना विराट स्वरूप प्रकट करती है।

'भिखारिन माँ' इस संग्रह की सबसे छोटी कहानी है जिसमें परिस्थितियों की मारी एक बुढ़िया के अपने पारिवारिक दायित्वों के निर्वहन हेतु भीख माँगने की विवशता का चित्रण किया गया है। जब बुढ़िया माँ भीख माँगने हेतु गीत गाती है तो हर किसी का मन उसकी पीड़ा से किस प्रकार द्रवित हो जाता है यह इस कहानी में देखने को मिलता है।

'बछडे की अरदास' कहानी में मानव के पशुओं से सम्बन्धों को संवेदनाओं के धरातल पर बडी ही कुशलता से प्रस्तुत किया गया है।

कहानी 'उपकार का बदला' में लेखक द्वारा बाल-मन की भावनाओं को उजागर किया गया है। कोई शिकारी आसमान में उड़ रही किसी परी को तीर मार देता है और वह गिरकर घायल हो जाती है। वहाँ से गुजर रहा किशोरवय का एक राजकुमार उसके तीर को निकालकर उसका उपचार कर उसके प्राण बचाता है और परी राजकुमार को अपना भाई मान लेती है तथा संकट के समय उसे याद कर लेने की बात कहकर परीलोक को प्रस्थान करती है। कई वर्षों तक भी जब उस प्रान्त का राजा (जो कहीं चला गया था) वापस नहीं लौटता तो वह राजकुमार अपने पिता की राजगद्दी पर बैठता है। उसे पता चलता है कि उसके पिता कई वर्षों पूर्व दक्षिण दिशा की ओर शिकार खेलने गये थे और शायद वहीं किसी के चंगुल में फँस गये हैं। राजकुमार अपने पिता को ढूंढ़ने दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान करता है और उन्हें ढूंढ निकालता है जहाँ पर राक्षसों ने उन्हें कैद कर रखा था। वह अपनी परी दीदी को याद करता है। परी प्रकट होती है और पिता-पुत्र को बचाने के प्रयास में अपनी जान गँवा देती है।

इस प्रकार इस कहानी के माध्यम से बच्चों को त्याग एवं बलिदान की शिक्षा मिलती है।

'सवारी का मोह' में गाँव के खेत में खाली पड़े खलिहानों में घूमते आवारा गधों पर किशोरवय के विद्यार्थियों द्वारा सवारी करने का वृत्तान्त है जिसमें समूहबद्धता के अनुकूल परिणामों का संदेश दिया गया है। कहानी में व्यंग्य दृष्टांतों से रोचकता आयी है जो हास्य उत्पन्न करने में सक्षम है।

खलिहानों में घूम रहे पन्द्रह-बीस आवारा गधों में से चार-पाँच तन्दुरुस्त गधों को एक गहरे-ऊँचे रास्ते में ठेलकर पकड़ा जाता है और फिर उन्हें एक पेड़ से बाँध दिया जाता है, फिर दल के सदस्यों द्वारा उन पर बारी-बारी से सवारी कर आनन्द लिया जाता है परन्तु इस बीच एक अछूता गधा रस्सी तुड़ाकर भाग जाता है जिस पर सवारी न कर पाने की व्यथा कहानी के नायक की 'सवारी का मोह' है जो आज भी उसे व्यथित किये देता है।

कहानी 'कार्य का प्रतिफल' एक कर्मठ व्यक्ति की सफलता एवं एक अकर्मण्य व्यक्ति के जीवन में आगे बढ़ने के असफल प्रयासों का ताना-बाना

है। दो सहपाठियों में से एक कर्मठ एवं ईमानदार है जो जीवन में आगे चलकर एक डेयरी का प्रबन्धक बनता है। दूसरा सहपाठी प्रारम्भ से ही आलसी एवं अकर्मण्य प्रवृत्ति का था अत: उच्च शिक्षा हासिल न कर सका। डेयरी का प्रबन्धक बना साथी चपरासी के पद हेतु साक्षात्कार ले रहा है। जब उम्मीदवार के रूप में वह अपने पुराने सहपाठी को सामने पाता है तो उसे नौकरी देना चाहता है परन्तु उसका साथी बिना साक्षात्कार दिये ही लौट जाता है, शायद उसका स्वाभिमान जागृत हो गया था।

❑❑❑

40

कैलाशचन्द्र शर्मा की कहानियों का मूल स्वर: 'ओवरकोट' के संदर्भ में

सविता

कहानी का आधुनिक गद्य साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। कहानी का सम्बन्ध जीवन के यथार्थ से होता है जिसमें मानव जीवन के किसी एक ही पक्ष या घटना का अत्यन्त सूक्षमता के साथ चित्रण किया जाता है। कहानी जीवन के यथार्थ की प्रतिच्छाया होती है।

सुरेश सिन्हा के अनुसार, 'कहानी जीवन, समाज, युग-बोध और भाव-बोध के परस्पर संबंधों एवं फलस्वरूप उत्पन्न प्रतिक्रिया का पूर्ण कलागत ईमानदारी से प्रस्तुत किया चित्रण है।'[1]

मुंशी प्रेमचंद के अनुसार, 'कहानी वह ध्रुपद की तान है जिसमें गायक महफिल शुरू होते ही अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा दिखा देता है, एक क्षण में चित्र को इतने माधुर्य से परिपूरित कर देना है, जितना रात भर गाना सुनने से भी नहीं हो सकता है।' [2]

कैलाशचन्द्र शर्मा यथार्थवादी कहानीकार के रूप में दृष्टिगोचर हुए हैं। इनका जन्म सन् 1957 में राजस्थान के 'मैड़' ग्राम में हुआ। इन्होंने कहानी लेखन के लम्बे इतिहास में बहुत लम्बी यात्रा तय की है। इनके दो कहानी-संग्रह हैं- 'अबला की मंजिल' और 'ओवरकोट'। इन्होंने 'ओवरकोट' कहानी संग्रह के माध्यम से लोगों को मानवीय मूल्यों के बारे में पुन: जागृत करवाया है। 'ओवरकोट'

* शोध छात्रा, हिन्दी-विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर

कहानी संग्रह का प्रकाशन सन् 2012 में त्रिवेणी कला संगम, क्वीन्स रोड, जयपुर से हुआ। इस कहानी संग्रह के कुल 103 पृष्ठ हैं । इसमें ओवरकोट, रींछ भगवान, बोरे की लाश, खान दोस्त, भिखारिन माँ, बछड़े की अरदास, उपकार का बदला, सवारी का मोह, स्वाभिमान आदि कुल 9 कहानियाँ संकलित है।

'ओवरकोट' कहानी में कैलाशचन्द्र शर्मा ने एक मध्यवर्गीय परिवार की दास्तान को चित्रित किया है। परिवार, मनुष्य और समाज के बीच सेतु का काम करता है। साथ ही साथ वह मनुष्य की प्राथमिक पाठशाला के रूप में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मनुष्य अपने जन्म, लालन-पालन की प्रारंभिक अवस्था से लेकर अन्तिम अवस्था तक अपने परिवार पर निर्भर रहता है। 'ओवरकोट' कहानी में लेखक ने माता-पिता की बच्चों के प्रति और बच्चों की माता-पिता के प्रति चिन्ता और प्यार को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है- 'अभी चला जाऊंगा पापा। मैं भी देख जाऊं स्लीपिंग कोच कैसा होता है और आप एक सप्ताह के ट्यूर पर जा रहे हैं। इसलिए ये मेरा ओवरकोट पहन जाएं, मैं तो घर पर पहनता नहीं।'[3]

इसमें कहानीकार ने बताना चाहा है कि परिवार में प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे की परवाह करता है। परन्तु आज के युग में बच्चे माँ-बाप की परवाह न कर उन्हें घर से बाहर निकाल देते हैं। वर्तमान परिदृश्य में यह बहुत ही बड़ी समस्या के रूप में हमारे सामने उजागर हुई है।

'रींछ भगवान' कहानी में लेखक ने भारतीय संस्कृति को दर्शाया है कि भारत में मेहमान को भगवान का रूप माना जाता है और साथ यह भी बताया है कि जब वह मेहमान ही उनके विश्वास तोड़कर चोरी करने का प्रयास करते हैं तो रींछ द्वारा उसकी चोरी का पर्दाफाश होता है। जब परदेशी आदमी नरसी बाबा के घर में मजबूरी में रात काटने के ठिकाने की तलाश में आते हैं तो नरसी बाबा उनकी उसकी परेशानी को समझते हैं- 'नरसी बाबा ने देखा कि एक परदेशी आदमी एकाएक विपदा में फँस गया है और रात भर का आसरा चाहता है, तो एक रहस्यमय मुस्कान के साथ कहा था उसने - बेटा, हमारे यहाँ पर तो लोगों को आश्रय देने की एक परम्परा रही है। हम लोग मेहमान को भगवान के बराबर मानते हैं। यहाँ दालान में क्यों तुम हमारे घर के अन्दर पोळी में जाकर सो रहो।'[4] परन्तु वह मेहमान उनका विश्वासघात करके घर में चोरी करते हैं और अन्त में रींछ द्वारा उसका पर्दाफाश होता है और इस प्रकार लेखक ने सन्देश दिया है कि

'जैसे करनी वैसी भरनी' अर्थात व्यक्ति जिस प्रकार का कार्य करता है उसे उस प्रकार का परिणाम मिलता है।

'बोरे की लाश' कहानी में कैलाशचन्द्र शर्मा ने इंसानियत की मिसाल कायम की है। इसमें लेखक ने दर्शाया है कि मनुष्य का किस प्रकार जानवरों से प्रेम हो जाता है और वह उन्हें किस प्रकार अपने घर के सदस्य के रूप में स्वीकार कर लेते हैं- 'मेरी पत्नी बिल्ली के बच्चे को न पाकर ड़र सी गई थी अन्यथा तो वह बहुत ही दिलेर महिला है। यदि घर में कोई चूहा-छछून्दर या छिपकली आदि आ जाती तो हम सब ड़र जाते थे परन्तु वे इन्हें आसानी से भगा देती थी।'[5]

इसमें बिल्ली के बच्चे के प्रति प्रेम की झलक दिखाई देती है। इसके साथ ही लेखक ने अपनी कहानी में जीवन के सत्य को स्पष्ट किया है और यह बताना चाहा है कि जीवित वस्तु से तो सभी प्यार करते हैं परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् सभी शीघ्र से शीघ्र उसे आँखों से दूर करना चाहते हैं - 'जीव को जीव मात्र से लगाव हो जाता है और आत्माएँ एक दूसरे से गुँथ जाती हैं। कोई कहता है यह मेरा है। कोई कहता है यह तेरा है। परन्तु एक दिन ऐसा भी आता है जब हम उसी को अपनी आँखों से शीघ्र दूर कर देना चाहते हैं जो कभी हमें सबसे प्रिय रहा था। 'सबसे प्रिय से ड़रना' यही जीवन का सत्य है फिर क्यों नहीं जीवन मात्र को इसका अहसास उसके जीवन काल में और वह भी समय रहते हो पाता।'[6]

अत: इस कहानी में लेखक ने मनुष्य और जानवरों में परस्पर प्रेम और जीवन के यथार्थ को स्पष्ट किया।

'खान दोस्त' कहानी में लेखक ने घनिष्ठ मित्रता को दर्शाया है जिसमें अमीरी-गरीबी के भेद-भावों को पीछे छोड़ा गया है। इसमें लेखन ने बताया है कि एक मित्र लम्बे समय के बाद अपने घनिष्ठ मित्र को देखकर बहुत खुश होता है परन्तु उसका हाथ जोड़कर उसका स्वागत करना उसे अच्छा नहीं लगता- 'मुझे देखते ही खान उठ खड़ा हुआ और बड़े ही संकुचित भाव से विनय करने लगा - आइये साहब आइये। आज बड़ा कृपा की इस गरीब पर जो आप उसकी इस झोंपड़ी में तशरीफलाये।'[7]

खान इस प्रकार हाथ जोड़कर स्वागत इसलिए कर रहा था क्योंकि वह गरीब था परन्तु यह सब उसके मित्र को पसन्द नहीं आया। इस कहानी में लेखक ने मित्रता के बीच में ऊँच-नीच के भेद-भाव को समाप्त किया है।

'भिखारिन माँ' कहानी ने कैलाशचन्द्र शर्मा ने एक भिखारिन माँ को

चित्रित किया है जो कि पड़ौसियों के दरवाजे में जाकर भीख माँगने के लिए जोर-जोर से चिल्लाती है और मकान मालिक द्वारा उसे डांटा जाता है- 'बहुत दिनों बाद में आयी है यह भिखारिन माँ। पड़ौसियों के दरवाजे जाकर जोर-जोर से चिल्ला रही है..... 'बेटा आज संक्रान्ति का दिन है। कुछ दे दो भगवान के नाम पर।' और मकान मालिक अपने लोहे के गेट की खट-खट से खीझकर चिल्लाता है- 'जा-जा..... यहाँ से। रोज-रोज आ जाती है माँगने।'8 परन्तु किराएदार बुढ़िया ने उसका हौसला बढ़ाते हुये और उसकी मधुर गीत सुन उसके साथ-साथ गाने लगी। इसके साथ-साथ बुढ़िया वहाँ से उठकर दूसरे घर के दरवाजे पर चली गयी फिर तीसरे गयी, चौथे गयी, पाँचवें गयी और चलती चली गयी। इस कहानी में लेखक ने इन्सानियत को दर्शाया है।

'बछड़े की अरदास' कहानी में लेखक ने सच्चे दिल से माँगी गई दुआ की बात की है और बताया है कि ग्रामीण बालक अपने जानवरों की इतनी परवाह और प्रेम करता है कि वह अपने नहाने की अपेक्षा उन्हें पानी पिलाना जरुरी समझता है। 'क्यों बेटा आज नहायेगा नहीं? नहीं माँ, पानी मेरे नहाने की अपेक्षा पानी बछड़ों के पीने में अधिक उपयोगी रहेगा शायद।' [9]

उसकी माँ को उसकी प्रौढ़ बातों को सुनकर बहुत खुशी हुई और बछड़ा भी उस नन्हे बच्चे की इन्सानियत देखकर मन में ही दुआ माँगता है और भगवान द्वारा उसकी दुआ पूरी होती है- 'बड़े भाई ने एक बार नन्हे की ओर देखा और फिर ऊपर आसमान की ओर। दोनों भाइयों की खुशी का ठिकाना न रहा जब उन्होंने आसमान के उमड़ते-घुमड़ते काले-काले बादलों को देखा।' [10] इस कहानी में कैलाशचन्द्र शर्मा ने बताया है कि सच्चे दिल से माँगी गई दुआ हमेशा भगवान मानता है।

'उपकार का बदला' कहानी में कैलाशचन्द्र शर्मा ने बताया है कि शिकारी द्वारा खींचे गये बाण से जब परी घायल हो जाती है तो राजकुमार उसका बाण निकाल कर उसकी सहायता करता है और इस उपकार का बदला परी उसके पिता की जान बचा कर पूरा करती है- 'राजा अपने बेटे को पहचान गया। उसकी आँखों में खुशी के आँसू भर आये। इस समय परी को सिर्फ चार-पाँच गज मैदान पार करना शेष था। एक जल्लाद ने परी पर निशाना साधकर ऐसा तीर मारा जो सीधा राजकुमार के हाथ को छेदता हुआ परी के पेट में घुस गया।..... 'राजकुमार मेरी चिन्ता मत करो मैं ठीक हूँ। जाओ तुम्हारे पिता जी को बन्धन मुक्त

करो। यह मेरी आज्ञा है।'11 इस प्रकार परी अपनी जान देकर राजकुमार रामसिंह के पिता की जान बचाकर उपकार का बदला चुकाती है परन्तु आज के समय में लोग केवल उपकार लेने पर विश्वास करते है उपकार करने में नहीं।

'सवारी का मोह' कहानी में कैलाशचन्द्र शर्मा ने बच्चों की चंचलता को दर्शाया है, जो कि सवारी के मोह में फंसे होते हैं। जब जगमोहन अपने गाँव गया हुआ था। वह बेखबर चैन की नींद सो रहा था- 'उसने देखा कि उसका भतीजा अखिलेश उसे झिंझोड़कर जगा रहा है- चाचाजी, चाचाजी ! उठो खूब सारे गधे आये हैं जिन पर सवारी करते हैं।' [12] लेखक ने इस कहानी में बताना चाहा है कि समय के बदलाव ने सब कुछ बदल दिया है। पहले बच्चों में बहुत चंचलता और बचपना था परन्तु आज प्रत्येक बच्चा स्वयं को बच्चा न समझ बड़ा मानता है और अपना प्रत्येक कदम स्वयं की ही इच्छा से रखना चाहता है।

'स्वाभिमान' कहानी में लेखक ने बताया है कि यदि कोई भी मनुष्य मेहनत करे तो वह कहां से कहां पहुँच सकता है। इस कहानी में एक मजदूर के बेटे की बात की है जोकि बहुत ही गरीब है। वह अपनी पढ़ाई जारी रखने के लिए टयूशन पढ़ा कर अपनी फीस जमा करता है- 'मेरे पिता जी मुझे पढ़ाई का पूरा-पूरा खर्चा देने में भी कभी-कभी अपने आपको असमर्थ या व्यथित होते ही देखे गये। मैं छोटे-छोटे बच्चों को ट्यूशन पढ़ाकर अपनी पढ़ाई को गति प्रदान करता रहा। गुरुजनों की कृपा से फीस माफ हो जाती और पुस्तकालय से किताबें भी मिल जाया करती।' [13]

परन्तु आज वह मेहनत कर अपनी डेयरी पर नये कर्मचारियों के चयन हेतु इन्टरव्यू लेने बैठा है और उस इन्टरव्यू में प्रत्याशी के रूप में उसका वह पुराना सहपाठी अशोक आया है जो कि बचपन में प्रतिष्ठित किसान का इकलौता बेटा था। उसके परिवार का स्तर गांवों में सबसे ऊँचा था परन्तु आज उसका स्तर गिरता गया और स्वयं को प्रत्याशी के रूप में वहां बैठा देख उसका स्वाभिमान जाग उठता है और वह बिना कुछ बोले वहाँ से चला जाता है- 'किसी के पदचाप ने मेरे विचारों को झिंझोड़ दिया। जब मैंने आँख उठाकर दरवाजे की तरफ देखा तो अशोक कमरे से बाहर निकल चुका था। शायद उसका स्वाभिमान जागृत हो उठा था।' [14] लेखक ने इस कहानी में आज की पीढ़ी को स्वयं को मेहनत कर पैरों पर खड़ा होने का सन्देश दिया है।

उपरोक्त विवेचन के उपरान्त हम यह कह सकते हैं कि कैलाशचन्द्र शर्मा

ने 'ओवरकोट' कहानी-संग्रह में मनुष्य के नैतिक मूल्यों पर प्रकाश डाला है। इन्होंने अपने कहानी-संग्रह में जीव-जन्तुओं के प्रति प्रेम भावना, मेहमानों को परमात्मा का रूप मानना, परिवार में घनिष्ठ मोह-भावना, भिखारियों के मानवीय मूल्यों को समझना तथा उपकार का बदला जान देकर चुकाने जैसे मूल्यों को सामाजिक मनुष्यों तक अग्रसर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है जिनके माध्यम से मनुष्य में क्षीण हो चुकी मानवता, नैतिक मूल्यता को पुन: जागृत किया जा सके ताकि वह अपने जीवन को कुशल व मंगलमय भोग सके।

संदर्भ :

1. हिन्दी कहानी: उद्भव और विकास, 1997, सुरेश सिंह, अशोक प्रकाशन, दिल्ली , पृ. 22.
2. कुछ विचार, मुंशी प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, दिल्ली, 1982, पृ. 28
3. ओवरकोट, डॉ.कैलाश चन्द्र शर्मा, त्रिवेणी कला संगम, जयपुर 2012, पृष्ठ 12
4. वही, पृ. 15-16
5. वही, पृ. 34
6. वही, पृ. 40
7. वही, पृ. 41
8. वही, पृ. 65
9. वही, पृ. 68
10. वही, पृ. 71
11. वही, पृ. 82-83
12. वही, पृ. 85
13. वही, पृ. 99-100
14. वही, पृ. 103

❑❑❑

41

प्रकृति के अप्रतिम कवि : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा

डॉ. कुलविन्दर कौर

कैलाशचन्द्र शर्मा राजस्थान के प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं। आप साहित्य की विविध विधाओं में अपना जादू दिखा चुके हैं। नाटक, उपन्यास, कहानी एवं कविता के आप पण्डित लेखक हैं और सहज सरल प्रवाहमयी भाषा में अपनी बात कहने की महारत रखते हैं। रंगमंच में सक्रिय भूमिका निभाने वाले कैलाशचन्द्र शर्मा बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं।

'तरुणाई' काव्य संग्रह कैलाशचन्द्र शर्मा का नैसर्गिक भावों एवं सूक्ष्म अनुभूतियों से सराबोर प्राकृतिक काव्य है। इसमें प्रकृति के विविध रूप देखने को मिलते हैं। सारा काव्य संग्रह मानो प्रकृति को समर्पित है। भारतीय होने का गौरव, लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रोत्साहन, भक्ति भाव इत्यादि भी चित्रित हुए हैं। कुछ बिन्दु हैं जिनको केन्द्र में रखकर शर्मा जी के काव्य संग्रह का विवेचन किया जा सकता है-

प्रकृति चित्रण

कैलाशचन्द्र शर्मा जी का सम्पूर्ण संग्रह प्रकृति के प्रति कोमल भावनाओं से भरा है। प्रकृति इतना आकर्षित करती है कि मन के भाव प्रकृति के माध्यम से पिरो दिए गए हैं-

'यह प्रकृति की छटा मन भा रही
बाँधकर ज़ंजीर में तड़पा रही
ये पपीहे की चहक मन को हरे

* अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग, हिन्दू कन्या कॉलेज, कपूरथला (पंजाब)

कोकिला के बोल भी विचलित करें।'

शर्मा जी के काव्य में प्रकृति का वैभव बिखरा पड़ा है। कुछ आलम्बन रूप में प्रकृति का सौन्दर्य दर्शनीय है तो कुछ उद्दीपन रूप में। प्रकृति उनके जीवन में कितनी और कैसे महत्वपूर्ण रही, इसके विषय में कवि कैलाश लिखते हैं-

'जीवन की राहों पर मिले साथी, प्रकृति का दर्शन, समस्त वातावरण.....सभी को मैं अपने जीवन की अमूल्य निधि मानता हूं।'

प्रकृति के विभिन्न उपादानों के माध्यम से आलम्बन रूप में अपने हृदय की बात नायिका से कही जा रही है, जैसे-

'नैन क्यों उठते नहीं रानी बता
झील गहरी है कहां जो थी सदा।'
.....
'चाँद के पीछे पड़े हम जोश से
ले रहेंगे हम उसे आगोश में।'

जीवन की राह पर चलते हुए राह में आने वाली समस्याओं एवं संकटों से हल के लिए भी प्रकृति आलम्बन रूप में सामने आई है-

'तूफानों से टकरायेंगे, हाथ पकड़ आजा साथी
राह करें आलोक स्वयं का, तुम दीपक मैं बन बाती।'

नारी के सौन्दर्य का वर्णन करने के लिए प्रकृति को ही आलम्बन बनाया गया है-

'होंठ गुलाबी यों लगें, ज्यों पँखुड़ियां फूल
फूल समझ आ ही गया भौंरा मुझसा भूल।'

श्रृंगारिक भावों की अतिशय अभिव्यक्ति के लिए भी शर्मा जी प्रकृति को ही आलम्बन बनाते हैं-

'कलियों के मुख से भँवरों ने आज किया रसपान
तृप्त हुई कलियां भी करके भँवरों से रसपान।'

राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति के लिए भी कवि प्रकृति का ही आश्रय लेता है-

'विविध जात के विविध भांति के, पंछी चहचाते यहां आकर
उर हर्षाया मन मुसकाया, दूर गगन के पंछी पाकर।'

प्रकृति द्वारा जीवन के नाना भावों को आश्रय देकर जब कवि इतना उत्कृष्ट वर्णन एवं चित्रण कर सकता है तो वह विरह भाव व्यक्त करने में कैसे चूकता! विरह वेदना में भी प्रकृति ही आसरा देती है-

'मन ठिठक गया उस ओर जहाँ, चँदा बादल में सिमट गया
सौतन बदली! चल भाग कहीं, व्याकुल मन उसके बिन तड़पा।'

प्रकृति का उद्दीपन रूप

शर्मा जी के काव्य में प्रकृति अपने समस्त वैभव के साथ विद्यमान है। मन के भावों को एवं हृदय की अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए प्रकृति उद्दीपन रूप में भी समक्ष आई है-

'रंगमहल सूना पड़ा पिय बिन तड़पूं आज
रैना बीती जाय ज्यों मन में बढ़ी पिपास।'

कवि ने अपनी कविता में नायिका के प्रति जगते भावों को भी प्रकृति के माध्यम से ही उद्दीप्त किया है-

'बिजली चमकी पायल झनकी, चँदा की एक झलक पायी
बेहोश पड़े तन में हलचल साँसों में हरकत सी आई।'

धार्मिक भावना को उद्दीप्त करने के लिए भी प्रकृति अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है-

'मुल्ला बांग सुनी मन्दिर के घण्टे की टंकार,
नींद उड़ी आकाश हुआ, प्रातः का उनको भान।'

राष्ट्रीय भावना को उद्दीप्त करने एवं देश में गौरव भाव जगाने के लिए भी प्रकृति ही कवि की प्रिय माध्यम बनी है-

'सूर्योदय-पीताभ छटा भारत का भाल विशाल
सागर की गहराई से अभिभूत हुए बेहाल।'

अपने काव्य के विषय में शर्मा जी एक स्थान पर लिखते हैं-

'जिस प्रकार मुझे अपने द्वारा ही सृजित रचनाओं के पठन से आनन्द की अनुभूति होती है, उसी प्रकार मैं अतीत के दर्शन से अपने भीतर नवसंचार का अनुभव करता हूं।'

नायिका के प्रति उद्दीप्त हो रहे सँचारी भावों के लिए भी प्रकृति की ओट ली गई है-

'जा छुपो हे चाँद तुम घन ओट में

क्यों चले दिल को यहां झकझोरने।'

कवि कहता है कि जीवन का पथ चाहे काँटों भरा हो किन्तु साहस एवं जोश उस पथ को सहज बना देते हैं-

'काँटों से यह युक्त कठिन पथ, तेरे संग मन को भाता
मंज़िल ज्यादा दूर नहीं आ, हाथ पकड़ जल्दी आजा।'

विरह वेदना भी प्रकृति का रूप लेकर, आड़ लेकर छलक-छलक पड़ रही है-

'तारे टिमटिम कर रहे दिल धड़कन बढ जाय
भाग्य सराहूं आपना जो तुम जाऊं पाय।'

वात्सल्य वर्णन में भी कवि प्रकृति का दामन नहीं छोड़ना चाहता क्योंकि प्रकृति उसे अत्यन्त प्रिय है-

'मोर पँख उपहार तुम्हें दें, या फूलों का गुलदस्ता
झिलमिल करते तारे दें, या संध्या का सूरज हँसता।'

प्रकृति का मानवीकरण रूप

कवि ने प्रकृति के पारम्परिक काव्य दृष्टि के आलम्बन एवं उद्दीपन रूप के साथ-साथ उसे आधुनिक शैली का मानवीकरण रूप भी दिया है। कवि की प्रकृति चित्रण शैली सहज ही मानवी रूप धारण कर लेती है-

'चाँद उगने का समय मालूम किया
राह में जाकर बिछा दिल को दिया।'

जीवन की समस्याओं के चित्रण में भी कवि ने प्रकृति को मानवी रूप दिया है-

'कोमल कोमल पैर पड़ें जब, धरती भी सकुचाती है
धक् धक् करे धरा का दिल भी पर मन में हर्षाती है।'

प्रकृति का उपदेशपरक रूप

कवि ने प्रकृति के हर पक्ष को उसकी गरिमा एवं वैभव के साथ प्रस्तुत किया है। कवि की प्रकृति कहीं-कहीं उपदेशक बन जीवन की राह भी दिखाती है-

'छोड़ शीतल छाँव तू मरूभूमि को चल दे
उस पार को भी देख राही क्यों यहां बहके।'

.....

'मृग मरीचिका के संदेहों से होगा उद्धार नहीं
बाज़ारों में क्रय संभव क्या होना सच्चा प्यार कहीं।'

भक्ति भावना की अभिव्यक्ति

शर्मा जी का काव्य प्रकृति का काव्य होने के साथ-साथ जीवन के नाना भाव अनुभाव का काव्य भी है। कवि ने भक्ति का वर्णन एवं चित्रण भी किया है। राम के प्रति श्रद्धा भाव, कृष्ण जी के प्रति आधुनिक भक्ति भाव तथा हनुमान जी के प्रति निष्ठा भाव भी देखने को मिलता है-

'वेश बना है ऋषियों जैसा, धनुष बाण कर धारे हैं
कौन कहे किस कारण भटकत किस विपदा के मारे हैं।'

कवि कृष्ण के प्रति भक्ति को आधुनिक सुर देते हुए राधा और कृष्ण को नए स्वर में बखान करते हैं-

'धीरज थोड़ा धरो राधिके मेरी मान
कहे चन्द्र इस भाँति दिलासा देते श्याम।'

कवि ने अपनी कविता में सुन्दर ढंग से हनुमान जी की आरती भी उतारी है-

'जय हनुमान हरे प्रभु जय हनुमान हरे
भक्ति करो हनुमत की, सब दुःख दूर करें।'

.....

'पवन पुत्र अँजनी-सुत रामदूत नामी
जय हो जय हो जय हो जय जय हो स्वामी।'

सामाजिक सरोकारों का चित्रण

कवि ने समाज में व्याप्त बुराइयों एवं समस्याओं को भी चित्रित किया है। एक लेखक अपने समय का सुधारक भी होता है। कवि ने अपने काव्य में मार्मिक सामाजिक विषयों को छुआ है। नकल की समस्या पर कवि लिखता है-

'जो भी यदि चाहता है करना, नाम इस संसार में
उलझ न जाना ही श्रेष्ठ है, इस नकल जंजाल में।'

शिक्षा के क्षेत्र में सिफारिश के बल पर पढ़ने वाले छात्रों पर भी व्यंग्य किया गया है-

'प्राध्यापकों के पुत्र एवं भानजे पढ़ते कभी?

दस में से दस वे प्राप्त करते, टैस्ट चाहें दें नहीं। '

जीवन की समस्याओं से समाधान पाने के लिए भी उत्साहित किया गया है-

'मजबूती से हाथ पकड़ना छूट नहीं जाने पाये
डरो नहीं ये तो अपने ही तूफ़ानों के हैं साये।'

शृंगार वर्णन

कवि का शृंगार वर्णन पूरे संग्रह का प्राण तत्व है। हृदय की कोमल अनुभूतियों को बहुत ही सहज नैसर्गिक अभिव्यक्ति दी गई है। मन प्रिया से मिलने को आतुर रहता है-

'स्वप्न सुन्दरी आपका रूप सहा नहीं जाय
सर्वगुणों से युक्त हो, यह कैसा अन्याय।
ईश्वर ने रचना करी फुर्सत के मध्यान्ह
हम आशिक मर जायेंगे नहीं रहा यह ज्ञान।'

कवि ने शृंगार के संयोग पक्ष को अपने काव्य में नवीन शैली में प्रस्तुत किया है-

नायिका : कोई देख नहीं ले वहाँ चलें
हरियाली में झुरमुट प्यारे
नायक : नहीं जुदा होंगे अब हम
जीवन भर साथ निभायेंगे।

कवि का अधिकांश काव्य संयोग के शृंगार पक्ष को प्रकृति में गूंध कर पिरोता जाता है। प्रथम मिलन को लेकर कैसी उत्सुकता है-

'मन में ललक उनसे मिलन की थी प्रथम
उनकी छवि को ढूँढते चँचल नयन।'

कवि ने शृंगार के वियोग पक्ष का चित्रण भी बखूबी किया है। नायक-नायिका की एक-दूसरे के लिए तड़पन स्थान-स्थान पर महसूस की जा सकती है-

'रंगमहल सूना पड़ा पिय बिन तड़पूं आज
रैना बीती जाय ज्यों मन में बढ़ी पिपास।'

.....

'घायल हुआ बेचैन सा दिन-रात फिरता हूँ
तुम्हारी याद में प्रिय मैं, तड़पता रोज सिसका हूं।'

सहज सरल प्रवाहमयी भाषा

कवि की भाषा अत्यन्त सहज, सरल एवं प्रवाहमयी है। साधारण सी भाषा में सहजता से गम्भीर एवं गूढ़ बातें कही गयी हैं। मित्रता सम्बन्धी कविता में ऊँट और सियार की मित्रता को सहज शब्दों में व्यक्त किया गया है-

'बड़ी विपद में मैं फँसा, तुम हो मेरे मीत
मुझे बचा लो दोस्त मैं, मन में हूं भयभीत।'

श्री राम को मिले वनवास को लेकर भी कवि ने सुन्दर कविता रची है जिसमें सहज भाषा में उन तीनों का वनवास गमन वर्णित किया गया है-

'वन उपवन इस बियावान में, कौन चले यह मस्ताने
क्या कारज इन तीनों ही का चलकर के सखि यह जानें।'

मुहावरे एवं लोकोक्तियों का प्रयोग

कवि की भाषा में सहजता सरलता के साथ-साथ मुहावरे एवं लोकोक्तियां भी प्रयुक्त हुई हैं जिससे भाषा अधिक प्राणवान बन गई है-

'सोचा लाखों पा लिए, बची रह गयी जान।'

निष्कर्ष

कैलाशचन्द्र शर्मा जी का काव्य अपने आप में अनूठी छटा लिए हुए है। प्रकृति का लहराता पर्चम, शृंगार का संयोगी वर्णन और भगवान के प्रति आस्था की त्रिवेणी इस काव्य में बहती है। नि:सन्देह यह काव्य कवि के मन की सहज सरल अनुभूतियों की निश्छल अभिव्यक्ति है।

❑❑❑

42

शर्मा जी की कविता: अनुभूति की आत्मकथात्मकता

डॉ. सत्यनारायण पाण्डेय

सार्थक सर्जना अक्सर अपना प्रतिमान स्वयं बन जाती है, शायद इसलिए कि उसका ठोस आधार कविता की समाजशास्त्रीयता और चिंतन की सामाजिकता पर केन्द्रित होता है। प्रतिबद्धता 'मनुष्य' के प्रति होना सर्वग्राह्य है, किन्तु राजनीतिक विचारधारा की प्रतिबद्धता कविता की जमीन को निर्बल बना देती है। यह भी सच है कि रूपवादी और कलावादी रुझान कविता की सामाजिक उपयोगिता पर प्रश्नचिह्न लगा देते हैं। कई बार देखा जाता है कि आक्रोशी-आक्रामकता से ज्यादा असरदार रचना का शांत और संयत स्वर हुआ करता है, जो भीतर ही भीतर हमें उद्वेलित करता है। जो रचना हकीकत को सामने रखकर भीतर से स्वत: स्फूर्त देती हुई संवेदनाओं को गहराती है, वह दरअसल मानवीय चेतना की संवाहक होती है, किन्तु आवश्यक यह है कि 'विजन' या 'दिवास्वप्न' ऊपर से थोपा या ओढ़ा हुआ न लगे। थोपने या ओढ़ने से कविता मूलत: कविता नहीं रह जाती, बल्कि उपदेशों का जामा पहनकर निवीर्य हो जाती है अथवा प्रचार-प्रसार का साधन बनकर विज्ञापन या घोषणा-पत्र बनकर निस्तेज हो जाती है। सच्ची और सार्थक कविता कवि की अन्तरात्मा का सात्विक उद्घोष है जिसका प्रयास मनुष्य की जययात्रा और दुर्दम जिजीविषा का रूपांकन है किसी पार्टी का समन्वय नहीं। अत: यह स्पष्ट है कि कविता का भाव-बोध और उसकी स्वस्थ वैचारिकता निरंतर व्यक्ति और समाज के

* प्राचार्य, ए.एन.एच. महाविद्यालय, रानीगंज, प्रतापगढ़ (उ.प्र.)

संवेदनों को प्रकट करके उसे न्याय दिलाने का पुरजोर समर्थन करती है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि कविता का वास्तविक मूल तथ्य इस बात का समर्थन नहीं करता कि भाषा को आराजक और निम्न स्तरीय बनाकर हम देश और समाज की भावधारा को प्रभावित करें। वस्तुत: कविता व्यावसायिकता का संकल्प नहीं, कवि की अन्तश्चेतना का प्रतिफल है, जिसमें जन-समाज को संचारित करने की चिंतना है।

मैं डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा से पूर्णत: परिचित नहीं हूँ, थोड़ा-बहुत इसलिए कि उनकी पुस्तक 'तरुणाई' को मैंने देखा है, समझा है। शर्मा जी की पुस्तक 'तरुणाई' पर एक दृष्टि डालने से मन में एक बिम्ब आता है कि जिस प्रकार से बीज में एक बड़े वृक्ष का आकार नियोजित रहता है उसी प्रकार इस शीर्षक में भी है। मेरा अपना मन्तव्य है कि जो लोग काव्य को अपने जीवन से नहीं जोड़ पाते हैं वे आज की हिन्दी कविता पर प्राय: यह आरोप लगाकर अपनी इतिकर्तव्यता समझ लेते हैं कि उनमें काव्यानुभूति की प्रामाणिकता के अभाव के साथ ही आयातित जीवन-मूल्यों से निर्मित अवास्तविकता का एक संसार बसा हुआ है। शर्मा जी की कविता इस धारणा पर गहरी चोट करती है। वह हमारे अन्तस में बहुत गहरी बैठी हुई आस्थाओं की याद ताजा करती है, जिन्दगी की वास्तविकताओं से साक्षात्कार कराती है और इंसान के चेहरे पर चढ़ी हुई नकाब को धीरे-धीरे किन्तु हिम्मत के साथ उघाड़ने का दावा करती है।

शर्मा जी के काव्य की ज़मीन और आकाश दोनों भारतीय हैं, उनका मनोजगत् भारतीय संस्कारों के धागे से बुना हुआ है। वे जीवन को 'एकात्मकता का प्रत्यक्ष दर्शन' मानते हैं जिसके अन्तर्गत किसी वस्तु को खण्ड-खण्ड करके परखने की विधि मान्य नहीं हो सकती है। सर्जना की पृष्ठभूमि पर यदि हम डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा की काव्य-साधना को परखने की ईमानदार कोशिश करें तो ज्ञात होगा कि कवि 'तरुणाई' से आलोकमय कर्म-कौशल की माँग करता है, वह पुलकित तन-मन-प्राणों में दर्द के कोहरे से मुक्ति के एहसास के साथ जिन्दगी को नया अर्थ और काव्य को नया शब्द देना चाहता है-

दिव्य दृष्टि तब चली मेरी वहाँ
था ज़नाज़ा जा रहा निष्फिक्र हो।
अन्त मेरा भी यही होगा कभी,

साथ न होगा वहाँ सम्पत्ति का।

छोड़कर रथ मैं चला श्मशान को,
शान्त मन था मैं बड़ा निश्चिन्त था।

'जीवन का रहस्य' नामक शीर्षक में जिस आलोकमयी वाणी से कवि ने जीवन की वास्तविकता को व्यक्त किया है वह अपरिमेय है, अनुपम है। सच्ची सार्थकता और सच्ची भावात्मकता से कवि ने यथार्थ को सम्बोधित किया है। सांसारिक मोह-बन्धन जीवन के कंटक हैं जो व्यक्ति को पग-पग पर दर्द देते रहते हैं, किन्तु लोभसंवर्णी व्यक्ति इस वास्तविकता से परे रह जाता है और बारंबार भ्रमित बना रहता है और अंततः वह गहरे कूप में गिर जाता है। और इस संकट के निवारण हेतु कवि का मार्गदर्शक कथन अपनी अलग पहचान है। सिर्फ इतना ही नहीं अपितु इस जीवन को आखिरी मंजिल की ऊँचाइयों तक पहुँचाने का उपाय भी शर्मा जी ने बताया है, वे स्पष्ट करना चाहते हैं कि मनुष्य में यदि जोश हो और आगे बढ़ने की सामर्थ्य हो तो उसके लिए हर मंजिल आसान है। वे इस बात के प्रबल समर्थक हैं कि मनुष्य के लिए जीवन की कठिनाइयाँ ही उसके लिए सच्चे साथी के समान हैं-

हे दोस्त उठो धर जोश हिये,
मंजिल थोड़ी ही बाकी है,
रुकना मत, चलते ही जाना,
मुश्किल तो अपना साथी है।

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के लिए मानव धर्म से बढ़कर कुछ भी नहीं है। उनके लिए धर्म जन-जन के हित का विधायक और मानवता का अनुगायक है। कवि जीवन पथ के राही को उसका वास्तविक धर्म सिखाता है। वह प्रत्येक पल इन्सानों को जागृत करना चाहता है। वह चाहता है कि सुनसान रास्ते पर चलने और अकेले चलने वाला व्यक्ति यदि धैर्यपूर्वक अपने रास्ते पर चलता रहे तो निश्चित ही वह अपने गन्तव्य तक जा सकेगा। वह स्पष्ट करता है कि यदि कण्टकों के जाल से मुक्त होना है और चक्रव्यूह के बाहर निकलना है तो हिम्मत बाँधकर अकेले ही सही, शीतल छाया को छोड़कर मरुभूमि पर चल पड़े वही सच्चा राही है-

जाग उठ इन्सान पल-पल बीतता जाता,
राह है सुनसान इस पर क्यों नहीं आता।
कर इसे आबाद क्यों तू सो रहा पगले?
धैर्य मन में धर, राही राह पर चल दे।
कण्टकों के जाल से क्या मुक्त होना है
या अभावों में पड़े दम तोड़ देना है?
कर जरा हिम्मत बना तकदीर तू अपना,
चक्रव्यूह से मुक्त हो पूरा करो सपना।

सांध्यकालीन बेला का मनमोहक दृश्य कवि को किसी सुन्दर नवयौवना के रूपांकन से कम नहीं प्रतीत होती। कलियों और भौंरों की अठखेलियाँ कवि को मादक मुस्कराहटों से आपूरित दिखाई देती हैं। उनके द्वारा लिखित 'संध्या' नामक शीर्षक कविता में इस बात का प्रमाण है कि-

संध्या का आँचल लहराया, पायल की झंकार बजी,
मनमोहक संध्या की लाली, मन को सम्मुख खेंच रही।
मचल रही कलियाँ रह-रहकर, यौवन कुलबुल कुल करता,
ज्वार चढ़ा सागर में ज्यों जल, कल कल कल करता बहता।
.....
मन्द मन्द संध्या की लाली मुसकाती मन भाये,
पायल की छम-छम मन-वीणा को झंकृत कर जाये।
साँस रुकी ज्यों चुनरी लहरे, कम्पित मन के तार,
संयम मन का टूट गया, सुन पायल की झनकार।।

राष्ट्रीय सन्दर्भ में शर्मा जी का यह कथन सचमुच यथार्थ है कि हमारा देश विविध धर्मों, जातियों के आपसी सौहार्द्र और प्रेम का देश है। अनेकों पक्षियों की कतार जिस प्रकार स्वच्छन्द गगन में विचरण करती है उसी प्रकार इस देश में भी अनेकों सम्प्रदाय के लोग पारस्परिक मेल से रहते हैं। भारत देश का हृदय इतना विशाल और सारगर्भित है कि यहाँ न तो छुआछूत का भेद है, न तो जाति-पाँति का भेद है, मन्दिर, मस्जिद, चर्च और गुरुद्वारों का सम्मेल सागर की गहराई जैसा हैं वस्तुतः यह देश स्वर्ग से कमतर नहीं है-

विविध जात के, विविध भाँति के, पंछी चहचहाते यहाँ आकर

उर हर्षाया, मन मुसकाया, दूर गगन के पंछी पाकर

धर्म मिला निरपेक्ष, नहीं था जाति-पाँति का रुदन,
साम्प्रदायिकी-छुआछूत का, पाया कहीं न क्रन्दन।
मन्दिर देखे, मस्जिद देखे, चर्च मिली हर ओर
दिव्य विराट रूप भारत का, पाकर हुए विभोर।

अंतत: आज की परिस्थितियों में जब भारत में ऊपर से नीचे तक मोटी चमड़ी वालों की बन आयी है, शर्मा जी जैसे अति संवेदनशील व्यक्ति के लिए आन्तरिक मन:ताप के अतिरिक्त और क्या हो सकता है। कवि का कर्म ही है कि जीवन की विसंगतियों से जूझते रहना और इस लड़ाई में मैदान छोड़कर भागना नहीं अपितु पुर्जा-पुर्जा होकर खेत हो जाने के अलावा और कोई रास्ता नहीं है। जीवन के विभिन्न स्तरों पर संवेदनाघात से उत्पन्न मन:स्थितियों का पर्त-दर-पर्त अंकन होने के कारण शर्मा जी की कविता 'विशाल भारत' के आम आदमी की मानसिकता का दस्तावेज़ बनने के साथ अनुभूति की आत्मकथात्मकता का परिचय भी देती है जिसमें शर्मा जी विविध मुद्राओं में देखे जा सकते हैं।

❑❑❑

43

तरुणाई में नारी-यौवन आकर्षण और अन्य भाव

डॉ. अशोक कुमार

डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा कृत 'तरुणाई' नारी-यौवन के सौंदर्य चित्रण, आकर्षण और नर-नारी के परस्पर प्रेम का काव्य है। कथ्य और शिल्प की दृष्टि से इस संग्रह की कविताएँ रीतिकालीन और द्विवेदी युगीन काव्य की जमीन के निकट पड़ती हैं। काव्य-संग्रह की भूमिका में कवि लिखते हैं - 'मैं शौकिया तौर पर अपने मन के भावों को लेखनीबद्ध करता रहा ..... मेरे लेखन का संचय मुझे संतुष्टि प्रदान करता रहा ..... अपने लेखन को स्वयं ही बार-बार, अनेक बार पढ़ा और हर बार मुझे एक नवीन आनन्द की अनुभूति हुई। ..... मैं अतीत के दर्शन से अपने भीतर नवसंचार का अनुभव करता हूँ, ... मैंने अपने जीवन में यदि कभी एक पृष्ठ भी लिखा तो कई दशक व्यतीत होने पर भी वह आज मेरे संग्रहालय में अपने मौलिक रूप में मुझे उपलब्ध है, जो मेरे अतीत का मुझे आभास दिलाता रहता है।'

उपर्युक्त आत्मकथ्य से स्पष्ट है कि डॉ. साहब ने काव्य रचना अपने सुख के लिए की है, यह अलग बात है कि समाज का अंग होने के काण कवि की नितांत वैयक्तिक अभिव्यक्ति भी कभी-कभी सामाजिक हो उठती है। कवि ने जो अतीत का सन्दर्भ उठाया है वह उसके अपने काव्य तक ही सीमित है। काल के धरातल पर वह बृहत सामाजिक सरोकारों से जुड़कर व्यापक स्तर पर वर्तमान तक नहीं आता।

* हिन्दी-विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू-180006

तरुणाई की बहुत सी कविताओं में अज्ञात युवती का देह-आकर्षण कवि को अपनी ओर खींच कर एक टीस दे जाता है। 'यौवन' कविता में इस तथ्य की अभिव्यक्ति है कि स्त्री की आर्थिक दशा का उसके यौवन-आकर्षण पर कोई प्रभाव नहीं होता। युवती चाहे धनी हो, चाहे निर्धन उसका यौवन पुरुष को आकर्षित करता है। 'तलाश' कविता में यौवन का आकर्षण यूं व्यक्त हुआ है-

रह रह उत्ताल भरे यौवन, मदहोशी में प्याली तड़पी
झुक झूम झूम कातिल रचना वसना को, देख भावनाएँ भड़की
(पृष्ठ 48)

वस्तुत: नारी ईश्वर की श्रेष्ठ और सुन्दर रचना है
इसकी ओर पुरुष का आकर्षण सहज-स्वाभाविक है:
ईश्वर ने रचना करी, फुर्सत के मध्यान्ह,
.....
श्रेष्ठ कृति उसकी रही, प्रिया चंचल आप (पृष्ठ 36)

'नव सृष्टि को अभिवादन' और कुछ अन्य कविताओं में नायक-नायिका में परस्पर प्रेम होने की स्थिति अजीब-सी है। इसे प्रथम दृष्टि का प्रेम भी नहीं कहा जा सकता है। नायक नायिका के रूप-पाश में आबद्ध हो जाता है। नायिका नायक के प्रति कब आकर्षित होती है, इसका पता ही नहीं चलता। पता इतना ही चलता है कि दोनों के मन मिल गए हैं। 'आमंत्रण' कविता में भी नायक के मन में नायिका के प्रति प्रेम-भाव के होने का चित्रण मिलता है। नायिका के प्रति आकर्षित होने का एक मात्र कारण है-

तेरा यह सुन्दरतम यौवन, रह रह मन को भाता है,
चंदा जैसा चंचल मुखड़ा, रात-रात तड़पाता है। (पृष्ठ 34)

इस कविता के आरम्भ में नायिका के प्रति सम्बोधन में वह पुलिंग रूप में उभर कर सामने आती है। इस संग्रह की कविताओं में नायक-नायिका एक दूसरे के प्रति अटूट रिश्ता रखने का संकल्प लेते हुए दिखाई देते हैं जो भारतीय सांस्कृतिक-परम्परा के अनुरूप है। पहले एक नायिका, फिर दूसरी, फिर तीसरी नायिका की ओर आकर्षित होने वाले शठ नायक की भर्त्सना की गई है। 'मृग मरीचिका' कविता में यह संदेश है कि ऐसे नायक का उद्धार नहीं हो सकता। उसका कई नायिकाओं के प्रति आकर्षण सच्चा प्रेम न होकर

बाजार का क्रय-विक्रय है-

मृग मरीचिका के संदेहों से होगा उद्धार नहीं
बाजारों से क्रय सम्भव क्या, होन सच्चा प्यार कहीं। (पृष्ठ 53)

'बन्धन' कविता में प्रकृति उद्दीपन के रूप में व्यक्ति-मन को असंयमित कर देती है। नायक नायिका के होंठों का रसपान कर लेता है। जिससे दोनों को तृप्ति का बोध होता है।

श्रृंगार का दूसरा पक्ष विरह का है। इस संग्रह की अधिकांश कविताओं में प्रेमी विरहावस्था में है, प्रेमिका नहीं। 'विछोह' कविता में नायक के पास कोई स्थान भी नहीं है जहां पर बैठकर वह विरहभाव में डूब कर रो सके। वह प्रेमिका की चंचल दृष्टि को पुन: देखने और उसका सामीप्य प्राप्त करने के लिए लालायित है। 'यादें' कविता में विरह में डूबे नायक द्वारा नायिका स्मरण का चित्रण है।

'बहका ये उन्मादी यौवन' कविता में नायिका नायक से मिलने के लिए तड़प रही है। जब उसे कोई मार्ग नहीं सूझता तो वह नयनों में बैठे प्रियतम का दर्शन करके ही तृप्त हो जाती है। 'तलाश' कविता में युवती अज्ञात प्रियतम की खोज में है तो 'प्रतीक्षा' में उसकी तड़प का चित्रण इस प्रकार है-

रंगमहल सूना पड़ा, पिय बिन तड़पूं आज,
रैना बीती जाए ज्यों, मन में बढ़ी पिपास।

नारी-यौवन के आकर्षण और प्रेम से हटकर कुछ अन्य विषयों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति हुई है। 'पथ के राही', 'डगर', 'मंजिल', 'धैर्य', 'उपलब्धि' जैसी कविताओं में कठिन समय में आगे बढ़ने, धैर्य धारण करने और निडर होने का आह्वान है।

'कहीं जीवन नहीं निकल जाये' कविता में प्रेम को एक अन्य कोण से देखा गया है। युवक और युवती के मन में प्रेम का भाव पनपता है, लेकिन आगे नहीं बढ़ पाता। पहली दशा में वे एक-दूसरे के प्रति आशंकित हैं, दूसरी दशा में आकर्षित होते हैं, पर मन की बात नहीं कह पाते। तीसरी दशा युवक द्वारा युवती का हाथ थाम लेने के संकल्प की है। यह संकल्प साहसहीनता के कारण पूरा नहीं हो पताा। युवक इस बात को लेकर व्यथित है कि लज्जा के कारण कहीं ऐसा न हो कि युवती को प्राप्त किए बिना जीवन अधूरा रह जाए।

'विशाल भारत' में भारत की महिमा का गुणगान है। कवि की दृष्टि

में भारत एक ऐसा देश है जहां जीवन संरक्षित है, कोई संशय नहीं है, न साम्प्रदायिकता है और न छुआछूत है। विभिन्न धर्मों के कारण भारत का रूप विराट है।

'परिवर्तन' कविता में युवाओं द्वारा किए जाने वाले फैशन की बूढ़ों द्वारा नकल किए जाने के कृत्य पर चिन्ता प्रकट की गई है। 'जीवन का रहस्य', 'कटु सत्य' और 'स्वार्थ सिद्धि' कविताओं में नित्यप्रति हमारे समक्ष आने वाली स्थितियों की ओर संकेत और उपदेश है। 'बाल संग्राम' में साधुओं के श्राप द्वारा शत्रुओं को नष्ट कहने की सांत्वना अशक्त व्यक्तियों को दी गई है। वर्तमान युग में श्राप के फलित होने की संभावना असंगत-सी लगती है।

इस संग्रह की कविताओं में छोटी-छोटी घटनाएँ और एहसास हैं जो जीवन के ताने-बाने के ऐसे धागे हैं जिनसे विभिन्न डिजाइन आकार लेते हैं। काव्य-संग्रह की पहली कविता 'वस्तु-पात्र सम्बन्ध' व्यक्ति की अधिकार-भावना, पक्षपात, बेईमान न्याय व्यवस्था और निरर्थक वस्तुओं के लिए संघर्ष जैसे विषयों से गुजरकर सीधे वर्तमान जीवन के सरोकारों से जुड़ जाती है। 'पगडण्डी' कविता में गांव के परिवार और प्रकृति का चित्रण है। सुन्दर झोपड़ियों में परिवार प्रेमपूर्वक रह रहे हैं। झोपड़ियों के पास निर्मल जल की सरिता बह रही है, पपीहे और कोयल के स्वर का मन पर प्रभाव पड़ रहा है, उड़ते हुए तोते और चील सुन्दर लग रहे हैं, खरगोश मन मोहक हैं, आम के सुन्दर झुरमुट हैं, झडबेरियाँ हैं, शांत झीलों में हंस हैं, सुन्दर युवतियाँ हैं जिनके उरोज मन-मोह लेते हैं। 'संध्या' कविता में सांध्य बेला की मनमोहक लाली है, कलियाँ हैं, सुगंध है, भँवरें हैं और समीर मन्द-मन्द बह रहा है। कला के स्तर पर कवि ने नायिका का सौंदर्य दर्शाने के लिए परमपरागत औजारों को ही चुना है, जैसे मुख चांद के समान है, होंठ गुलाब की पंखुड़ियों के समान और तारे के समान आँख की चमक है। 'चन्द्रोदय' कविता में सुन्दर बिम्ब का प्रयोग हुआ है। चाँद प्रेमिका के प्रतीक-रूप में बाजार में उतर आया है-

चाँद निकला है सुनो बाजार में (पृष्ठ संख्या 31)

कवि ने अलंकारों का प्रयोग भी किया है जैसे चाँद रूपी नायिका के समक्ष बिजली की चमक का फीका पड़ना। कवि ने कवि-युक्तियों का प्रयोग भी मन के भावों का चित्रण करने के लिए किया है, जैसे चाँद को देखकर चकोर का व्याकुल हो जाना, मोरों का वन में नाच उठना आदि।

❑❑❑

44

डॉ.कैलाश चन्द्र शर्मा की कविताओं में सहजानुभूति

डॉ. विनोद कुमार

कवि कैलाश चन्द्र शर्मा के काव्य संसार की जो अनेक कोंपलें उनके काव्य-संग्रह 'तरुणाई' में प्रस्फुटित हो रही दिखाई देती हैं, उनके रंगों की खुशबू 'तरुणाई' के पश्चात की कविताओं में अपेक्षाकृत व्यापकता के साथ बिखरी है। सहजानुभूति उनकी रचनाओं का केन्द्रीय तत्व बन कर रहा है और यही उनकी कविताओं को विशिष्टता प्रदान किए हुए है।

'वन्दना' शीर्षक कविता में कवि जीवन की वीणा में संगीत का स्पंदन पा हर्षित ही नहीं होता अपितु एक प्रेरणा प्राप्त कर जीवन-डगर की दुर्गमता को सुगमता में परिवर्तित हुआ अनुभव करता है। कवि इस तथ्य की पुष्टि करता है कि यदि मनोनुकूल साथी सहचर बने तो जीवन की कोई भी राह आसान हो जाती है। नायिका का प्रवेश दुर्गम पथ पर चलते थककर चूर हुए नायक के जीवन में नई स्फूर्ति का सोता बनता है। कवि की नायिका कामायनी की 'श्रद्धा' की भाँति प्रेरणा और सहचरी बनने का प्रस्ताव देती हुई दीख पड़ती है-

बनी प्रेरणा सुनो वन्दना, मेरे मन के प्राण तुम्ही,
जीवन भर संगीत बजेगा, पर उसका आधार तुम्ही।
तेरा तन मन मेरा मन तन , दोनों वीणा बनकर बाजें,
राह नहीं दुर्गम फिर कोई, जीवन में चलते ही जाएँ।

'तड़पन' कविता के माध्यम से कवि ने प्रिया-वियोग से व्याकुलता की मर्मस्पर्शी व्यंजना है। अनन्य सुख-सुविधाएँ होते हुए भी प्रिय की कमी खलती है। और प्रिय-वियोग से संतप्त मन-पाखी की दृष्टि प्रथम मिलन के अविस्मरणीय

* हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी,फगवाड़ा (पंजाब)

स्मृति-चित्रों को अतीत के पटल पर देखता है और पाता है कि उसका यह नाता जो उसके साथ है, वह कितनी सदियों से है-

व्याकुल हो यों मिल ही गये तुम, दुनिया के बन्धन टूटे,
सदियों से पीड़ा से पिड़ित, जख़्म भरे अब यों मेरे।

स्मृति-पटल पर दूसरा चित्र उभरता है जिसमें दोनों के वियोग के दुखद क्षण का कारुणिक-कलाप है। दोनों की इच्छा न होते हुए भी विधि की क्रूर क्रिया का जिस प्रकार कोप-भाजन बनना पड़ा था। विछोह के उस क्षण का मार्मिक अंकन कवि ने कलम से यों किया है-

बेबस हो जब विलग हुआ था, उस दिन मैं तुमसे प्रियतम,
अश्रु कहीं क्या छुपा सके तुम, मेरे मन का सुन रूदन?
सौ-सौ आँसू मन रोए रे मेरा, तुमको कैसे छोड़ सकूं,
पर बन्धन की दीवारों को मैं भी कैसे तोड़ सकूं।

साथ ही समाज में रहते हुए अनेक प्रकार के बन्धनों और मर्यादाओं की जंजीरों को क्षत-विक्षत न कर पाने की विवशता को भी शब्द दिए हैं।

'मैं तो हूँ श्रद्धेय नहीं' कविता के माध्यम से कवि ने जीवन के उस अनुभव को वाणी देने का प्रयास किया है, जिसमें वह अपने आस-पास श्रद्धा का पात्र होने के कारण अपने मन की बात कह पाने के अधिकार से वंचित होने की पीड़ा भोगता है। यह एक तथ्य है कि व्यक्ति धर्म, समाज, परिवार और कुल की सम्पत्ति माना जाता है और बहुत बार उसे अपने मन को मारना पड़ता है, उसके मन की बातें मन की दीवारों की कैद से आज़ाद नहीं हो पातीं और दबी रह जाती हैं। और भावावेश में कभी कहीं कोई बात मुँह से निकल भी जाती है तो यह कह कर उसे किनारे कर दिया जाता है कि तुम तो श्रद्धेय हो। कवि कैलाश चन्द्र शर्मा की कविता 'मैं तो हूँ श्रद्धेय नहीं' के नायक को भी इस प्रकार के अनुभवों से दो-चार होना पड़ा है। उसे जीवन के अनेक मोड़ों पर अनेक बार ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ा है कि उसने अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया, लेकिन उसका श्रद्धेय होना हर बार उसके मार्ग में बाधा बन खड़ा हुआ-

मन की बात कहूं किससे मन व्याकुल है अभिव्यक्ति को,
जिसको भी कहना चाहा, कहता तुम मेरे श्रद्धेय हो।
लेकिन अभिव्यक्ति को आकुल मन बार-बार कह उठता है-
तुमको मैंने ना देखा अनुभूत किया अन्तर्मन से,

मन कहता तुम मेरे प्रियतम भटक रहे सौ जन्मों से,
अभिव्यक्ति जब मैंने की तो, क्यों कहते मैं श्रद्धेय हूं,
कई हजारों घाव हृदय में कह दो प्रिय, आ सहला दूं।

एक अन्य कविता 'कोई बतलादे मैं क्या हूँ' साधारण मानव को परिभाषित करने का अद्भुत प्रयास कहा जा सकता है। वे मानव जो ईश्वर-अनुकम्पा से धन-बल और रूप राशि से अपनी पहचान नहीं रखते, लेकिन अपने जीवन-संघर्ष में निरन्तर समय को परास्त करते हुए प्रत्येक मोड़ की परेशानियों को पीछे छोड़ते हुए जीवन की हर बार एक नई परिभाषा बनाते हैं। वे पत्थर तोड़ते, बोझा उठाते मजदूरी करते अपने व्यक्तित्व-विकास का स्वयं ही प्रेरणा और स्वयं ही उदाहरण भी बनते हैं। लेकिन जब मानव इतिहास लिखा जाता है तो उनके जैसे कर्मठ उसमें स्थान नहीं पाते हैं। कवि ने कविता 'कोई बतला दे मैं क्या हूँ' के माध्यम से इसी प्रश्न को अंकित करने का उपक्रम किया है। एक ओर जहाँ इतिहास के पन्नों में स्थान पा चुके बुद्धि-बल-कौशल से धरती से स्वर्ग तक विजय-पताका फ़हरा चुके नाम हैं तो दूसरी ओर ऐसे भी लोग हैं जो इतिहास के आलेखों की पहुंच से दूर हैं। माना कि इतिहास में चमकते हुए नामों से अपने ढंग से बहुत श्लाघनीय कार्य किया, जिससे उनका नाम बना, किन्तु जीवन की असली तस्वीर को उसके वास्तविक रंगों और रेखाओं सहित केवल उन्होंने उकेरा है,जो सर्वदा साधारण श्रमिक वर्ग में परिगणित किए जाते हैं। कवि के सामने जब यह प्रश्न किया जाता है कि तुम्हारी पहचान क्या है? तब कवि क्या कहता है, जरा देखिये-

मुझसे पूछा किसी मानस ने रे कौन, कहो क्या परिचय है?
मैं सोच रहा क्या उत्तर दूं, यह सोच रहा परिचय क्या है।

.....

मिट्टी में रेंग रहे हम सब माता चिथड़ों में लिपटी है।
रोटी का कौर चबा मुँह में हाथ लिए मुँह देती है।
पिता तोड़ते चट्टानें जननी उनको थी पीस रही,

.....

जो मिला उसी को सिर धारे हम सहज भाव से पथ पर हैं,
हम नहीं जानते क्या हैं हम श्रम करने वाले अनपढ़ हैं।
कोई तो बतला दो भाई क्या हूँ रे मैं क्या हूं
क्या हूं रे मैं क्या हूं।

'रद्दी वाला' शीर्षक कविता में कवि ने एक साहित्यिक पत्रिका के मूल्य को आंकने का उल्लेख व्यंग्यात्मकता के साथ करने का प्रयास किया है जो वास्तव में साहित्य-संसार के लिए चिन्तनीय है। फुर्सत के क्षणों में जब कवि मुफ़्त में आई हुई साहित्यिक पत्रिका को पढ़ने बैठता है तो यह गृहस्वामिनी को नहीं भाता और कवि के कानों में मीठी वाणी पड़ती है- घर का काम कौन करेगा? और वह साहित्यिक-यज्ञ अपूर्ण छोड़ घर के काम-काज निपटाने लगता है। घर से रद्दी सामान बेचने के लिए रद्दी वाले को बुलाया जाता है और रद्दी कागजों के तोल को पूरा करने के लिए गृहस्वामिनी साहित्यिक पत्रिका को उठाकर पलड़े में रखती हुई झुके तराजू को देख प्रसन्न होती है कि कितनी अच्छी(मोटी) पत्रिका है-

..... टेबिल से ला मुफ़्त पत्रिका, पलड़े में उसके धरती।
हर्ष उठी वजनी हिन्दी की, कैसी अच्छी पत्रिका।
नहीं मिलावट इसमें क्या हो, आती रहे सैंकड़ों वर्ष।
मरने के भी बाद मिलें, रद्दी के ज्यादा पैसे।

कवि बार-बार अतीत के तहखानों में जा अंधेरे से जुगनू पकड़ने का प्रयास करता प्रतीत होता है। कभी मैं से हम की यात्रा पर निकलते हैं। तृष्णा और लोभ वृत्तियां त्याग उदात्त भावों की मनोकामना करते हुए सरस्वती वन्दना करते हैं। समाज का अभिशाप बन चुके जाति-पाँति और छूआछूत के भेद को नष्ट कर सम-दृष्टि प्रदान करने की प्रार्थना करते हैं। कवि कहता है कि हे वाक्-देवी इन ज्ञानपूर्ण समतायुक्त भावनाओं को जागृत करने की शक्ति तुम्हीं में है।

कैलाश चन्द्र शर्मा की कलम से नि:सृत रचनाओं में मानव-जीवन की सहजानुभूति के बहुत से ऐसे क्षण अंकित हुए हैं, जिसे कभी न कभी प्रत्येक व्यक्ति भोगता है। इनकी कविता एक साथ कई रंगों से सजी है। कभी वैयक्तिक सौन्दर्य की सुरा के सोते बहते दिखाई देते हैं तो कभी सामाजिकता के संस्पर्श से मैं से यात्रा हम की ओर गमन करती है। कभी केवल जागतिक आनन्द लगता है तो कभी वह पर्दे के पार अपार तक अपनी पहुँच बनाता प्रतीत होता है। कलापक्ष की बात करें तो कभी बिल्कुल मुक्त छन्दमुक्त पंछी तो कहीं राग और अलाप लिए स्वरों का सुर-संलाप लिए विहार करती है।

❑❑❑

45

कैलाशचन्द्र शर्मा कृत खण्डकाव्य 'माँ संतोषी' का अनुशीलन

अनिल कुमार

साहित्य के उत्कृष्ट साधक व कर्मयोगी साहित्यकार कैलाशचन्द्र शर्मा का जन्म जुलाई 19, सन् 1957 को राजस्थान प्रान्त के 'मैड़' ग्राम में हुआ। इनके परिवार में पत्नी, एक पुत्र तथा एक पुत्री है। इन्होंने अल्पायु में ही साहित्य लेखन प्रारम्भ कर दिया था। आपकी पहली कहानी 'चेहरे असली नकली' व कविता 'वस्तु-पात्र संबंध' वाणिज्य महाविद्यालय, जयपुर की पत्रिका 'व्यावसायिका' में प्रकाशित हुई जिससे आपके लेखन को गति एवं प्रेरणा मिली और सृजन क्षेत्र में आपके कदम बढ़ते चले गए। आपके कृतित्व में कविताएँ 'तरुणाई' (काव्य-संग्रह) व अन्य कविताएँ, खण्डकाव्य (माँ संतोषी), 132 ढूँढाड़ी गीत, 8 व्यंग्य गीत, 22 नाटक (संयोजन: डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का नाट्य-साहित्य), 2 उपन्यास (अभिव्यक्ति, विरह का इंद्रधनुष), 2 कहानी-संग्रह (अबला की मंजिल, ओवरकोट), 1 जीवनी (कर्मयोगी), 1 आत्मकथा 'कुछ-कुछ यादें' (अधूरी), डायरी, शोध-प्रबन्ध (श्री नरेश मेहता का गद्य साहित्य, हिन्दी-मराठी नाटकों का रंग वैशिष्ट्य : समकालीन भारतीय संदर्भ)। इन्होंने कहानी, नाटक, उपन्यास, काव्य, खण्डकाव्य, आत्मकथा, जीवनी, डायरी, समीक्षा, संपादन आदि सभी विधाओं में लेखनी चलाई है। इनके लेख-आलेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर प्रकाशित होते रहते हैं। ये सक्रिय रूप से रंगकर्म में संलग्न रहते हैं। इन्होंने कई दर्जन नाटकों में अभिनय एवं उनका निर्देशन भी किया है। आपकी वार्ताएँ एवं नाटक आदि दूरदर्शन आदि पर प्रसारित होते रहते हैं। आपके साहित्य की अनेक विधाओं पर विभिन्न विशवविद्यालयों में एम.फिल., पीएच.डी. स्तर पर

* शोधार्थी, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक-124001 (हरियाणा)

** ग्राम-पोस्ट- छिछड़ाना, तह.- गोहाना, ज़िला- सोनीपत (हरियाणा), पिन-131301

शोधकार्य हो चुके हैं तथा हो रहे हैं। आप वर्तमान में पंजाब नैशनल बैंक में वरिष्ठ अंकेक्षक के पद पर कार्यरत हैं। बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी कैलाशचन्द्र शर्मा को उनके साहित्यिक धर्म के लिए विभिन्न मान-सम्मान एवं पुरस्कारों से नवाजा जा चुका है।

'माँ सन्तोषी' कैलाशचन्द्र शर्मा का सद्य: प्रकाशित खण्डकाव्य है जो सन् 2013 में लिखा गया है। 'आत्मकथ्य' में कृति के सृजन की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुए कवि लिखता है- 'मेरे द्वारा संतोषी माँ की इस कथा का प्रारम्भ राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त के 'जयद्रथ वध' से प्रेरित होकर वर्ष 1976 में किया गया था। तब इस संपूर्ण रचना का आधा भाग ही लिख पाया था जब हमारे घरों में संतोषी माता की कथा घर-घर में पढ़ी जाती थी, परन्तु वह केवल गद्य में ही उपलब्ध थी। मैंने इसे पद्य रूप में लिखने का सपना तो देखा था परन्तु वह अपूर्ण ही रहा क्योंकि मैं अपने जीवन के अन्य कार्यों में लग गया।'

आगे रचनाकार लिखता है- 'मेरा लेखन साहित्य की अन्य विधाओं में पलायन कर गया। संगीत, नाटक आदि के क्षेत्र में मैं अधिक व्यस्त होने के कारण अपनी इस अधूरी कृति को पूरा न कर सका और काव्य में मैं कविताओं और गीतों की ओर उन्मुख हुआ। परन्तु जब मेरे साहित्य के शोध-अन्वेषण कार्यों के सिलसिले में मैं गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर के शिक्षक डॉ. सुनील शर्मा जी के सम्पर्क में आया और उन्होंने मेरी हर कृति पर शोध आलेख लिखवाने का बीड़ा उठाया तो मैंने अपनी इस अधूरी कृति को पूरा करने का साहस किया। अत: डॉ. सुनील जी की ही प्रेरणा से यह कृति 18 अगस्त 2013 को गुजरात के गोधरा शहर में ऐसी परिस्थितियों में पूरी हो सकी जब मैं अपने बैंक के अँकेक्षण कार्य हेतु अत्यधिक व्यस्त था। कथा का अधूरा भाग पूरा करने से पहले मैंने माताजी की आरती, व्रत की विधि आदि मई 2013 में महाराष्ट्र के धूलिया शहर में ही लिख दी थी परन्तु कथा का शेष पद्य भाग मैंने 18 अगस्त 2013 को गुजरात के गोधरा शहर में जन्माष्टमी के इस दिवस की रात्रि 11 बजे हॉटल सतलज में पूरा किया जहां मैं ठहरा हुआ था।'

कैलाशचन्द्र शर्मा ने खण्डकाव्य की शुरूआत में ही कृति का उद्देश्य स्पष्ट कर दिया है कि संतोषी मां की कथा सुनने से एक अद्‌भुत परितोष की प्राप्ति होती है तथा व्यक्ति के सब रोग, शोक, संताप, दारिद्र्य आदि दूर हो जाते हैं-

आओ सभी भक्तों सुनाऊं, बैठ संतोषी कथा।

सुख चैन की बन्सी बजेगी, दूर होंगी सब व्यथा।

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, खण्डकाव्य 'माँ सन्तोषी' (जयपुर : त्रिवेणी कला संगम, 2012), पृ. 5)

जब परिवार के सभी सदस्य मिल-जुलकर प्रेम से रहते हैं तो उस घर में सदैव लक्ष्मी का वास बना रहता है-

सिंचित सभी थे स्नेह मधु से, त्याग की सब मूर्ति थे।
सुखपूर्ण यह परिवार था इस, नेह मधु की पूर्ति से।। (पृ. 5)

मनुष्य को कोई भी निर्णय लेने से पहले स्थिति पर भली-भाँति विचार कर लेना चाहिए। कहते हैं कि स्त्री के चरित्र और पुरुष के भाग्य को कोई नहीं जान सकता। धीरज भी एकाएक अपनी पत्नी की बात को 'जैसे का तैसा' स्वीकार न कर स्वयं बात की तह तक जाने की सोचता है-

विश्वास क्योंकर हो सके, जो वाक्य तिय ने थे कहे।
ज्ञानी मनुज अर्द्धांगिनी के, रूप में क्योंकर बहे।। (पृ. 8)

इसी प्रकार- विश्वास करने से प्रथम सब, जान लेना ठीक है।
तिय बात की तह में पहुँचता, वह मनुज निर्भीक है।। (पृ. 8)

प्रस्तुत खण्ड काव्य में बताया गया है कि दुष्ट अपनी दुष्टता को कभी नहीं छोड़ता और उत्तम पुरुष हमेशा नीति एवं धर्म का पालन करता है-

दुष्ट के संग श्रेष्ठता की, बात करना व्यर्थ है।
पर श्रेष्ठ के संग श्रेष्ठता की, बात करना अर्थ है।। (पृ. 9)

समय अनमोल है। समय बहता नीर है। हमारे शास्त्रों, धर्म ग्रन्थों में समय की महत्ता बतलाई गई है। कबीर जी ने भी यही कहा है कि-

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में प्रलय होएगी, बहुरि करेगा कब।।

'का बरखा जब कृषि सुखाने' और 'अब पछताए क्या होत जब चिड़िया युग गई खेत' आदि कहावतें हमारे जन-जीवन का हिस्सा हैं जो समय के महत्व को प्रदर्शित करती हैं। प्रस्तुत रचना में भी जब धीर परदेश जाकर कमाने की बात कहता है तो उसकी माँ यही कहती है-

जाना विचारा कल अगर तो, आज ही जाना भला।
फिर आज की क्यों बाट देखे, शीघ्र ही तू जा चला।। (पृ. 12)

'माँ संतोषी' खण्ड काव्य में कर्म को ही पूजा मानने का संदेश भी दिया

गया है। 'गीता' में भी भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को यही संदेश देते हैं कि- 'कर्म कुरु फलस्य चिंता मा कुरु।' धीरज की पत्नी शीतला बड़े प्रेम से अपने कर्त्तव्य का पालन करती है-

वह प्रेम से सब कार्य करती, रोज़ ही आकर यहाँ।
कर्त्तव्य से जहाँ प्रेम होता, फर्ज़ पूरा हो वहाँ।। (पृ. 13)

व्यक्ति को सदैव सत्यपथ का अनुगमन करना चाहिए। जब शीतला को धीर के परदेश जाने की सूचना मिलती है तो वह अत्यंत दुखी एवं व्याकुल हो जाती है, तब धीर उसे प्रेरित करते हुए कहता है-

मत हो दुखी तुम शीतला क्या, योग्य तुमको है यही।
जो सत्य का पालन करें वे, आर्द्र होते हैं कहीं? (पृ. 13)

कर्मपथ पर आगे बढ़ते हुए मोह-माया के बंधन में नहीं पड़ना चाहिए। शीतला शीघ्र ही अपनी भावनाओं पर नियंत्रण पा लेती है तथा अपने दायित्व का पालन करते हुए अपने पति को कहती है-

मैं जानती हूँ नाथ यह मैं, मानती भी हूँ तथा।
संबंध से कर्त्तव्य ही का, स्थान ऊँचा है सदा।। (पृ. 14)

इतिहास साक्षी है कि भारतीय नारी ने सदैव अपने पतिव्रत धर्म का पालन किया है तथा अर्द्धांगिनी होने के दायित्व को निभाया है। 'माँ संतोषी' खण्डकाव्य में भी यही बताया गया है-

जो स्त्री पति के कर्मपथ में, विघ्न बाधा डालती।
होकर सती भी वह कहां, कर्त्तव्य अपना पालती।। (पृ. 14)

शीतला अपने पति धीर को हौसला देते हुए उसे कर्मपथ पर आगे बढ़ने का संकल्प देती है-

प्राणेश अब आगे बढ़ो, मन बाँध ले तुमको कहीं।
हे शीतला के धन बढ़ो तुम, कर्मपथ पर आज ही।। (पृ. 14)

धीर इस बात से प्रसन्न हो शीतला की प्रशंसा करते हुए कहता है-

तुम सत्यभाषी, सत्यगामी, सहयसहचरिणी तथा,
हूँ सत्य कारण जा रहा मैं, मत करो मन में व्यथा।। (पृ. 15)

खण्डकाव्य में बताया गया है कि चिंता करने से समाधान नहीं मिल सकता। चिंता चिता समान है। सेठ को चिंतित देखकर सेठानी कहती है-

चिन्तित नहीं प्राणेश हों अब, शान्त हों धीरज धरो।

क्या हल कभी पाए निकल जो, आप यों चिन्ता करो।। (पृ. 17)

धीर के व्यवहार से प्रभावित होकर सेठ उसे नौकरी पर रख लेता है तथा धीर की कर्त्तव्यनिष्ठा के कारण सेठ धीर को शीघ्र ही तरक्की भी दे देता है-

कर दी तरक्की सेठ ने तब, धीर की तत्काल ही,
कर्तव्य-फल ना मिल सका हो, यह सुना देखा कहीं। (पृ. 19)

उधर शीतला पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ता है किंतु वह एक आदर्श नारी है जो लगातार अपना कर्तव्यपालन करती चली जाती है। इस प्रकार विवेच्य खण्डकाव्य में भारतीय नारी के आदर्श की प्रतिस्थापना की गई है-

वह भारतीया ही भला क्या, जो नहीं दु:ख सह सके,
तूफान के दु:ख वेग में जो, ना खड़ी है रह सके। (पृ. 21)

एक दिन शीतला को संतोषी माँ के व्रत की महत्ता का पता चलता है। शीतला जब जंगल से लकड़ियाँ बीन कर वापस लौटती है तो रास्ते में एक मंदिर दिखाई देता है जहाँ भीड़ लगी हुई थी। शीतला के आग्रह पर अन्य नारियाँ उसे बताती हैं-

यह देवी है संतोषी माता, हो रही जिसका कथा,
सब कार्य सिद्धि यह करे, दु:ख दूर करती है तथा। (पृ. 24)

अन्य नारियों ने शीतला को बतलाया कि संतोषी माता के व्रत से सभी मनोकामनाएँ पूरी हो जाती हैं-

व्रत करें संतोषी का तो, कामना सब पूर्ण हों,
गृह क्लेश मिट जायें सभी, सुख शांति चारों ओर हो। (पृ. 24)

संतोषी माता के व्रत से बुरे दिनों से शीघ्र ही मुक्ति मिल जाती है तथा दुखों का अंत हो जाता है-

ग्रह खोट भी हों जब किसी के, भाग्य में दुर्दिन लिखे,
त्रिवर्ष में ही फल मिले सब, दु:ख के बादल मिटें। (पृ. 25)

इस प्रकार संतोषी माता के व्रत के प्रताप से शीतला को अपने पति की कुशल क्षेम का समाचार मिलता है तो वह हर्षित हो उठती है। उसकी समृद्धि से अन्य परिवारजन ईर्ष्या करने लगते हैं। उधर धीर अपना ध्यान आठों प्रहर काम में रखता था तथा कर्त्तव्यपालन के आगे उसे कुछ दिखायी नहीं दे रहा था। उसे अपनी पत्नी का ध्यान भी नहीं रहता था। शीतला माँ संतोषी से पति के शीघ्र लौट आने की कामना करती है। माता धीर को सपने में दर्शन देते हुए कहती है-

हे पुत्र यहाँ निश्चिंत होकर, सो रहे आराम से,
अर्द्धांगिनी को भूलकर क्यों, सो रहे हो चैन से। (पृ. 31)

माँ संतोषी उसे शीघ्र ही कार्य से मुक्ति पाने का उपाय बताती है तथा धीरज का सारा कार्य एकाएक हो जाता है और वह अपने घर लौटने का प्रण लेता है। घर आने पर अपनी पत्नी की दुर्दशा देख धीर अधीर हो जाता है तथा संतोषी माता की कृपा से पत्नी संग सुखमय जीवन प्रारम्भ करता है। शीतला पति की प्रेरणा से शुक्रवार के दिन उद्यापन करने का निश्चय करती है, किंतु बच्चे दक्षिणा में मिले पैसों से जान बूझकर खटाई लेकर खाते हैं ताकि शीतला का उद्यापन पूरा न हो। इस कारण माँ संतोषी शीतला से रूष्ट हो जाती हैं तथा उसके पति पर संकट आ पड़ता है। शीतला माँ संतोषी से प्रार्थना करती है-

अपराध मैंने क्या किया, क्या भूल मुझसे है हुई ?
क्यों कष्ट हम पर आ पड़ा, यह क्यों हुई है दुर्गति। (पृ. 39)

माता अपनी भक्त की पीड़ा को सुनकर कहती हैं-

कहने लगी हे पुत्री तूने, भंग उद्यापन किया,
देकर खटाई बच्चों को, जो पाप तूने है किया। (पृ. 39)

शीतला क्षमा-याचना करती हुई पुन: व्रत का संकल्प लेती है तभी माँ के आशीर्वाद से उसका पति सकुशल घर लौट आता है। शीतला कह उठती है-

प्राणेश कहां पर थे गये, मुझ को हुई चिंता बड़ी,
संतोषी माता की कृपा से, फिर मैं तुमसे मिल रही। (पृ. 40)

शीतला अगले उद्यापन पर बच्चों को फल भेंट करती है तथा उसका व्रत पूरा होता है जिससे उसे माता का आशीर्वाद प्राप्त होता है और उसका जीवन पुन: सुखमय बन जाता है। एक दिन संतोषी माता अपने भक्त की परीक्षा लेने की सोचती हैं और विकराल रूप धारण करके शीतला के घर की तरफ चलती हैं जिसे देखकर सभी भयभीत होकर भाग उठते हैं। शीतला अपने पुत्र को स्तन-पान करा रही थी तभी उसने मां को पहचान लिया और कहा-

पुत्र को करके किनारे, जोर से चिल्ला पड़ी,
अहोभाग्य मेरे आज देखो, माँ स्वयं ही आ गई। (पृ. 43)

शीतला दौड़कर माता के चराणों में जा पड़ती है। सारा परिवार माता से अपनी भूलों के लिए क्षमा-याचना करता है तो संतोषी माता कहती हैं-

माता ने दी आशीष फिर यों, भक्तों से कहने लगी,

जो भूल को स्वीकारते, सच्चे मनुज होते वही। (पृ. 44)

माता सभी को प्यार-प्रेम से रहने का आशीर्वाद देते हुए अन्तर्ध्यान हो जाती हैं-

हिलमिल रहो सब आज से, ना मन में कोई द्वेष हो,
सहयोग आपस में करो, मन भाव हो प्रत्येक को। (पृ. 44)

इस प्रकार सभी को शीतला के समान पुण्य की प्राप्ति होती है।

कृति की भाषा पर विचार करते हुए रचनाकार 'आत्मकथ्य' में लिखता है- 'परिशिष्ट के रूप में कथा के गद्य स्वरूप को उसी मूल रूप में दिया गया है जो इसके प्रारम्भिक लेखन काल, अर्थात् वर्ष 1976 के आस-पास पूरे ढूँढाड़ में प्रचलित था। इसे परम्परा के प्रति मेरा मोह कहें या मेरे लेखन की सीमा कि मैंने इसे लोक-भाषा में ज्यों का त्यों प्रस्तुत किया है।'

कृति की सबसे अन्यतम उपलब्धि यह है कि माँ संतोषी का व्रत रखने की परम्परा आज भी जन-जन का हिस्सा है। अब तक उक्त कथा गद्य में कहानी रूप में ही उपलब्ध थी किंतु विवेच्य रचना पद्यबद्ध होने के कारण सरल, सरस व रोचक बन गई है जिससे लोक जीवन में इसे व्रत आदि के अवसर पर सामान्यत: गाया व गुनगुनाया भी जा सकता है। स्वयं लेखक के शब्दों में- 'सन्तोषी माता की भक्ति किसी के जीवन में कितनी फलित होती है, यह माता के प्रति भक्त की श्रद्धा एवं उसके धैर्य पर निर्भर करता है, परन्तु इस सम्बन्ध में मैं इतना ही कहना चाहूंगा कि वर्ष 2013 में मेरे जीवन में आये एक दुर्गम संकट से मुझे अनायास ही उस समय जादुई रूप से छुटकारा मिल गया जब मैंने पहले ही दिन सन्तोषी माता की आरती को अपनी इस अधूरी कृति हेतु पूरा किया था। अब माताजी की भक्ति का प्रताप पाठकगण स्वयं ही लगा सकते हैं। (आत्मकथ्य)'

संक्षेप में यह कृति मानवीय मूल्यो की मंजूषा है। आदर्श एवं यथार्थ के समन्वय को दर्शाती अनुपम कृति है। इसमें सुखद दांपत्य संबंधों की परिकल्पना की गई है। इतिहास एवं कल्पना का मणिकांचन संयोग भी इस कृति में देखने को मिलता है। भाषा चलती हुई एवं सजीव है। कृति के अन्त में कवि द्वारा अपना स्वरचित गीत 'उदियापण', माँ संतोषी की आरती, संतोषी माता के व्रत की विधि एवं कठिन शब्दों के अर्थों की प्रस्तुति बेजोड़ बन पड़ी है। नि:संदेह, यह कृति भारतीय संस्कृति के गौरवमयी आदर्शों की प्रतिष्ठापना करती है।

❑❑❑

46

गीतकार कैलाशचद्र शर्मा

डॉ. सुनील कुमार

लोक साहित्य शब्द अग्रेज़ी के 'फोकलोर' शब्द का अनुवाद है, जिसका सर्वप्रथम प्रयोग अंग्रेज़ी के विद्वान विलियम टाम्स ने किया था। इसी फोकलोर के समकक्ष हिन्दी में लोकसाहित्य शब्द का प्रयोग होता है। भारतीय लोक साहित्य जनता के व्यापक जनसमूह की सभी मौलिक सर्जनाओं का परिणाम है। यह केवल लोक काव्य या गीतों तक ही न सीमित होकर जनता के जीवन धर्म संस्कृति तथा परम्पराओं से भी जुड़ा है। आवश्यकता है तो बस इसके संग्रह की। लोक साहित्य जनता के कंठ में देश के सभी राज्यों, भाषाओं और छोटी-छोटी बोलियों के रूप में भरा हुआ है।

लोक साहित्य उस समाज का साहित्य है जो आधुनिक सभ्यता से दूर अपने समूह विशेष की रीतियों, प्रथाओं रूढ़ियों और संस्कारों को सुरक्षित रखता है। लोक-साहित्य एक प्रकार का सांस्कृतिक प्रयत्न है, जिसमें भारतीय संस्कृति का अत्यंत उज्जवल रूप प्रतिबिम्बित होता है। लोक-साहित्य की जड़ें जन-जीवन और जमीन की जड़ों से जुड़ी होती हैं। वह अपने समय के इतिहास, उसकी संस्कृति, राजनीति, सभ्यता एवं समाज को अपनी सम्पूर्णता के साथ समेटे रहती है। किसी देश को जानने-समझने के लिए वहाँ की लोकसंस्कृति को जानना समझना जरूरी है और इसका सबसे अच्छा माध्यम है लोक साहित्य। लोक-साहित्य राष्ट्र की संस्कृति का वाहक एवं संरक्षक है।

लोक साहित्य में काव्य कला, संस्कृति और दर्शन सभी कुछ एक साथ हैं। यह शब्द विनिमय का प्रथम कला-पूर्ण प्रारम्भ भी है, जिसके द्वारा यंत्र-मंत्र, जंत्र-तंत्र, पहेली, मुहावरे, लोकोक्तियों, लोककथाओं, गीतों आदि के रूप में प्रत्येक जाति अपनी जीवन पद्धति और उसकी प्रणालियों को आगे आने वाली

* सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर-143005

पीढ़ी को सौंपती रही है। यही कारण है कि इसमें प्राचीन युग का साहित्य, धर्म दर्शन, विश्वास, संस्कार, कर्मकाण्ड तथा काल आदि सभी कुछ एक साथ प्राप्त होता है और इसी के द्वारा किसी भी देश, समाज व जाति की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा बौद्धिक उन्नति को समझा जा सकता है।

लोक साहित्य एक ओर जनता की भावनाओं की अभिव्यक्ति है, तो दूसरी ओर सामूहिक जन-जीवन की रचना भी है जो कि जनमानस के दैनिक जीवन में फैली हुई है। वास्तव में लोक साहित्य कला, काव्य संस्कृति और दर्शन का एक सुन्दर, स्वरूप है, जिसमें रचनाकारों की कल्पना और उनके आदर्शों का समावेश रहता है।

लोक साहित्य इतिहास को एक प्रतिबिंब की भांति प्रस्तुत करते हैं। जिसमें ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन इतिहास की भांति न कर सामान्य जनता के दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर किया जाता है। फिर लोक साहित्य की रचना जनता के ही कुशल शिल्पियों ने ही की है जो जनता की स्मृति में खो गये, लेकिन अपनी पहचान समाज में फैली हुई लोक कृतियों में छोड़ गये तथा जो जनता के मध्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक निरंतर चलती और विकसित होती रही।

आज का लोक साहित्य कल के लोक मानस की मौखिक सर्जना का परिणाम है। इसमें मानवता के विकास की उस समय की संस्कृति निहित एवं सुरक्षित है, जिस समय में लेखन पद्धति का प्रादुर्भाव भी न हुआ था और मनुष्य अपनी सर्जनाओं को मौखिक ही कण्ठस्थ कर लेता था, इसलिए लोक साहित्य एक ऐसा पालना है जिसमें लेखन प्रणाली के पूर्व की मानव संस्कृति की अमूल्यनिधि, धर्मदर्शन, संस्कृति, परम्पराओं, नृत्य-गान, काव्यकथायें, नाटक आदि झूलते और खेलते रहे हैं।

दो शब्दों में कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति व जनजीवन को समझने के लिए लोकगीतों का अध्ययन एक अनिवार्य शर्त है। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल का कथन है- 'लोकगीत हमारे जीवन का महासमुद्र है जिसमें भूत, भविष्य और वर्तमान सुरक्षित है।' डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम से न लेकर नगरों, गांवों में फैली उस समूची जनता से लिया है जो परिष्कृत रूचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन की अभ्यस्त होती है।' गुजराती विद्वान झवेर मेंकाणी 'रढ़िया वाली रात' में लिखते हैं कि जिस प्रकार हरे जंगल में पंछी अपने

आप गा उठते हैं वैसे ही लोकगीत स्वाभाविक रूप से हृदय से फूट पड़ते हैं।' (मड़ई-2012, पृ. 36-37) अत: हम कह सकते हैं कि लोकगीत हमारे जीवन (जातीय) विकास का स्वत: स्फूर्त उद्‌गार है जो प्रकृति व जीवन के साहचर्य से मनुष्य के कंठ से सहज ही फूट पड़े।

हम देखते हैं कि उत्तर प्रदेश के लोक-गीतों मे सरलता है, अधरों से ढुलकता हुआ प्यार और भोलापन है, उतनी ही सजीवता और मधुरता बुन्देलखण्डी लोकगीतों में परिलक्षित होती है। पंजाबी, हरियाणवी व हिमाचली गीतों में एक ऐसी चुहल और सरसता पाई जाती है जिनको सुनते ही मुर्दा दिलों में भी शक्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है और राजस्थानी लोकगीतों में जीवन का यथार्थ ही उतर आता है। गीत गाने वाले के साथ-साथ सुनने वाले के मानस में भी एक अतीत जाग उठता है और ऐसे लोक-गीत हृदयस्पर्शी एवं प्रेरणास्पद बन जाते हैं।

भारतीय संस्कृति के समस्त तत्व लोक-साहित्य में विद्यमान हैं। धर्म, दर्शन, आध्यात्मिकता, वसुधैव कुटुंबकम की भावना, परोपकार संवेदनाएँ सब कुछ लोक-साहित्य में समाहित हैं लोक में राष्ट्र का सम्पूर्ण जीवन समाहित है, ऐसा कुछ नहीं जो लोक में नहीं। संस्कृति का सार लोक-साहित्य में विद्यमान है। शंकरलाल यादव के अनुसार - 'यदि साहित्य समाज का दर्पण है तो यथार्थ में लोक-साहित्य समाज की आत्मा का उज्ज्वल प्रतिबिम्ब है। किसी देश की जातीय, राष्ट्रीय, साहित्यिक, सामाजिक ऐतिहासिक, धार्मिक और आर्थिक माप के लिए यदि कोई वास्तविक पैमाना हमारे पास है, तो उस देश का लोक-साहित्य ही है।' (मड़ई-2011, पृ. 177) लोक-साहित्य का जन-जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार - 'लोकसाहित्य को जन-जीवन का दर्पण कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी। लोक साहित्य जनता के हृदय का उद्‌गार है। सर्वसाधारण जो कुछ सोचते हैं और जिस विषय की अनुभूति करते हैं, उसी का प्रकाशन उनके साहित्य में पाया जाता है। ग्रामीण जनता विभिन्न संस्कारों और ऋतुओं में गीत गा-गाकर अपना मनोरंजन करती है। कहानियों को सुनना उनके मन बहलाव का अनन्य साधन है। समय-समय पर चुभती हुई लोकोक्तियाँ और भावभरे मुहावरों का प्रयोग कर ग्रामीण जन अपने हृदय के विचारों का प्रकाशन करते हैं। कुछ सूक्तियों में जिनका निर्माण जनता के अनुभव पर आश्रित है, ऐसी अनुभूतियाँ पायी जाती हैं, जिनकी उपलब्धि अन्यत्र नहीं हो सकती।'(मड़ई - 2011, पृ. 177)

लोक-साहित्य की कई विधाएँ हैं, जैसे- लोकगीत, लोक कथा , लोक-नाट्य, लाकोक्ति, चुटकुले, मुहावरे, पहेलियाँ इत्यादि। ये विधाएं सदियों से पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होती चली आ रही हैं। लोक-गीतों का प्रचलन अधिक है। हिन्दी में लोकगीत अधिक हैं । हिन्दी भाषी प्रदेशों में कौरवी, मालवी, हरियाणवी, पहाड़ी, कुमाऊंनी, मैथिली, अवधी, भोजपुरी आदि बोलियाँ हैं और ये बोलियाँ अपने में रीति-रिवाजों को समाये लोकगीतों का सृजन करती हैं।

लेकिन आज की शिक्षा प्रणाली के प्रसार के कारण हम अपने ही देश, समाज व संस्कृति की प्राचीन परम्पराओं से दूर हो गये हैं और थोड़े से शब्दों की कोठरी में कैद हैं। इन शब्दों की परिधि हमें अपने ही देश में विदेशियों सा बनाये हुए है। इसलिए यह प्रश्न उठता है कि वह देश कहां है जहां वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, बाणभट्ट, भवभूति जैसी महान विभूतियों की आत्मायें निवास करती हैं। कहां गयीं वे संस्कृति की परम्परायें जिन पर देश व समाज आज भी गर्व करता है? कहीं ऐसा तो नहीं कि हम आधुनिकतावादी रहन-सहन से अपने देश की परम्पराओं, संस्कृति, सभ्यता से दूर हो गये हैं अथवा हमारे अल्पज्ञान का विशाल अभियान देश को शांति प्रदान करने वाली उस हवा का आनंद लेने नहीं देता अथवा हमारे बीच विदेशी संस्कृति-संस्कार और भाषा लोहे की दीवार बने खड़े हैं । यही वह प्रश्न हैं कि जो कि विवश करते हैं कुछ सोचने के लिए जिनके कारण हम काफी दूर खड़े हैं अपनी भाषा, संस्कृति और सभ्यता से।

'लोक-गीत' चाहे किसी प्रदेश के हों, चाहे किसी स्थान विशेष के, वे सदैव अपनी संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं । किसी भी प्रदेश की सांस्कृतिक चेतना से परिचित होने के लिए आवश्यक है कि हम वहां के लोक गीतों को सुनें, समझें, परखें, और उनसे मेल बढ़ाएं। यदि हमें किसी प्रदेश के निवासियों के जीवन-स्तर, उनके रहन-सहन, आचार-विचार और वहाँ के सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं साहित्यिक-सांस्कृतिक जीवन की विविध झांकियों से परिचय बढ़ाना है तो हमें वहां के लोक-गीतों की गहराइयों में उतरना होगा।

उल्लेखनीय हैं कि नवगीत में लोक को वाणी मिली जबकि सन् 1975 के पूर्व नयी कविता में लोक असंपृक्त रहा है। धर्मवीर भारती का 'डोला का गीत' लोकगीत से पूर्णत: अनुप्राणित है जबकि अज्ञेय के 'कांगडत्रे की छोरियाँ', भवानी प्रसाद मिश्र के 'पीके फूटे आज' नरेश मेहता के 'पीले फूल कनेर' तथा शंभुनाथ सिंह के 'पुरवैया धीरे बहो' में लोकगीत का प्रभाव उल्लेखनीय है। श्री केदारनाथ

सिंह के 'रात पिया पिछारे पहरू ठनका किया' में गीतकार ने लोकगीत से संवेदना अधिगृहीत कर इसे नव्य स्वरूप प्रदान किया है। (मड़ई-2011, पृ. 179)

आज लोकजीवन में गहराई से पैठने वाले विद्वान लोकगीतों को भी अपौरूषेय कहते हैं। उनका भी कहना है कि लोकगीत किसी एक व्यक्ति की रचना नहीं है, अपितु पूरा समाज ही उसका रचनाकार है। पूरे समाज का अनुभव-जन्य ज्ञान और उसकी रचनाशीलता का बल उन लोकगीतों में समाहित होता है।

साहित्य का सृजन ही लोक-मंगल के लिए होता है। सभी तरह के साहित्यों में मनुष्य के लिए कल्याणकारी भावना रहती है। अत: साहित्य का अध्ययन पूर्वाग्रहों से ग्रस्त होकर नहीं किया जाना चाहिए। ऐसा करने से साहित्य में सन्निहित लोक-कल्याण की भावना दृष्टि-ओझल हो सकती है।

लोकगीतों में शैलियों पर विचार करें तो पाते हैं कि लय लोकगीतों का प्राण है। लोकगीतों में एक-एक भाव को लेकर एक-एक गीत गीत नहीं चलते। इनमें तो एक-एक गीत के साथ एक-एक कथा चलती है पर सभी गीतों की कथाएं तक सी नहीं होती। कथा विस्तार की दृष्टि से श्रम गीत, संझा पराती आदि गीतों की पराएं अपेक्षाकृत अन्य गीतों से बड़ी होती है। सब गीतों में कथा की शैली एक सी नहीं होती हैं। किसी-किसी लोक गीत में कथा वर्णन द्वारा गीत बढ़ता जाता है तो किसी-किसी लोकगीत में प्रश्नोत्तर शैली द्वारा गीत बढ़ता जाता है।

लोकगीतों में लय की प्रधानता होती है। लय लोकगीतों के लिए संगीत का कार्य करती है। लय, माधुर्य और रमणीयता के कारण लोकगीत हृदय पर प्रभाव डालते हैं। लय लोकगीतों में प्राण फूंकने का कार्य करते हैं।

लोकगीतों में छन्द शास्त्रों के नियमों का गहन प्रतिपालन नहीं होता, जैसा कि डॉ. सत्येन्द्र ने लिखा है - 'जीवन का मार्ग विस्तृत, युग-युग से प्रभावित वैविध्यपूर्ण रहा है। उसी प्रकार लोक साहित्य है। इसकी विविध शैलियों का न वर्गीकण सम्भव है, न यथार्थ परिचय ही। गीतों की शैली को लें तो प्रतिफल पर प्रति व्यक्ति के द्वारा उसमें भिन्नता दिखती है। ' (ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, पृ. 551) अर्थात् लोकगीतों के प्रत्येक पंक्तियों की मात्राओं एवं वर्णों की संख्या निश्चित नहीं होती। किसी पंक्ति में वर्णों की मात्राओं की संख्या बहुत अधिक तो किसी में बहुत कम होती है।

लोक काव्य का अपना अलग अनुशासन होता है। उसके रस-अलंकार

सुबोध होते हैं पर उसे समझना सबके वश की बात नहीं, लोकगीतों का श्रोता भी संस्कारित व अनुशासित होना चाहिए। तब जाकर जीवन-रस की तरह लोक-रस का आनंद लिया जा सकता है। रघुवीर सहाय ने कहा है - 'जो लोग विदेशी शासन में हिन्दी को सार्वदेशिक एकता का आधार कहते और मानते थे, वे आज स्वदेशी शासन का निर्वाह नहीं करते ... जबकि हिन्द लोकभाषाओं के साहित्य का उद्धार और परिष्कार तथा प्रचार करने में वह सदैव सजग और तत्पर है। लोक साहित्य के संग्रह और प्रकाशन की दिशा में यह प्रगतिशील है। लोक भाषाओं के उपयोगी शब्दों, मुहावरों, कहावतों, गीतों आदि को वही साहित्यिक सम्मान देती चल रही है।' (मड़ई-2012, पृ. 151)

कैलाशचन्द्र शर्मा साहित्य के उत्कृष्ट साधक व कर्मयोगी साहित्यकार हैं। उन्होंने साहित्य की लगभग सभी विधाओं- कहानी, नाटक, उपन्यास, काव्य, जीवनी, गीत आदि में लेखनी चलाई हैं। 'मेरे गीत दिखाएं गाँव' पुस्तक में इन्होंने 131 ढूंढाड़ी गीतों का सृजन एवं ध्वनि संयोजन किया है। 50 ढूंढाड़ी गीतों की विषयवस्तु एवं भावार्थ का अंग्रेजी अनुवाद भी किया गया है। 11 फरवरी, 2007 को कैलाशचन्द्र शर्मा के निर्देशन-स्वर संयोजन में उनके द्वारा लिखित ढूँढाड़ी गीतों की 'त्रिवेणी कैसेट- सी.डी.' शृंखला का लोकार्पण 'जयपुर तमाशा' के मूर्धन्य कलाकार स्व. श्री गोपीकृष्ण भट्ट द्वारा किया गया। यहां हम कैलाशचन्द्र शर्मा के इन्हीं गीतों का अध्ययन करेंगे।

'गरीब किसान' गीत में भारतीय किसान की कर्मठता व संघर्ष पर प्रकाश डाला गया है। प्राकृतिक आपदा व कर्ज से वह बेहाल है-

नायक : सांसा पडगा खाबा का भी दाणो को. नै एक भी-2
भूखो सारो कुटम कबीलो तू भी तो छै देख री,
कैड्या सूं ल्याऊं बीज खेतां मैं, ओरबा नै।
.....

नायक : बाण्या का पीसा छीं बाकी दादाजी ज्यो लीन्या-2
ब्याज चुकाया जीवन भर वा ब्याज भराऊ कीन्यां
अब कइयां देगो वा बीज उधार खेतां मै ओरबा.. नै

नायिका : सुणो-सुणो जी बिजळी चमकै..,

नायक : देख-देख तू मेहा गरजै।

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, मेरे गीत दिखायें गाँव (जयपुर : त्रिवेणी कला

संगम, 2012), पृ. 166)

शादी के बाद ससुराल जाती लड़की की मानसिक स्थिति को उजागर करती गीत की ये पंक्तियाँ भाव विह्वल कर देती हैं। एक ओर लड़की को पराया धन समझा जाता रहा है तो दूसरी ओर भ्रूण हत्या आज की ज्वलंत समस्या बन चुकी है। लेकिन सच तो यह है कि लड़कियाँ किसी भी क्षेत्र में लड़कों से कम नहीं हैं। लड़की को विदा होते समय भी यही चिंता रहती है कि उसके ससुराल जाने के बाद उसके पिता का ख्याल कौन रखेगा ? प्रस्तुत गीत में इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति हुई है-

आज पराई कर दी मूंनै काकोजी सब सोच,
जातां जातां साथ पीव कै मन मैं कोनै ए सन्तोष
कांईं काकोजी को व्हैगो अब हाल मेरै बिना ईं घर मैं
मा ए कइयां मैं जाऊं ससुराल काकोजी म्हारा छानै रावै
म्हारा छानै रोवै म्हारा छानै रोवै। (वही. पृ. 112)

राजस्थान मेले एवं त्यौंहारों की धरती है। ये मेले एवं त्यौंहार हमारी समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर का प्रतीक हैं। प्रस्तुत गीत में 'तीजां कै मेळै' के पर्व लगने वाले मेले का चित्रण देखते ही बनता है-

प्रथम दल अरै हालर-ढूलर गाडी चा.लै., बळद खुशी सूं भा.गै.,
छम छम छम छम बाजीं घूघरा, म्हारा. मन कै सा.थ.
म्हे तो जार्‌या छां तीजां के मेळै आज
आ जावो थे भी छोर्‌यां ए .....(वही. पृ. 121)

'मूंज कूटै' गीत में भारतीय ग्राम्य जीवन की झांकी बरबस ही आकर्षित करती है। किसान रोजमर्रा के कामों में किस प्रकार व्यस्त रहता है, इसकी एक छटा देखिए-

स्त्री जेवड्यां की पीण्ड़ी ले लै, खरवाड्यो भी साथ लै,
चारा को भरोटो भी तू, माथा माळै म्हेल लै,
देख ढ़ळगी संझ्या ले ळै छाबड़ी मैं बच्या रै गुवाळ
अब घर जाणो छै ..... स्थाई - पीहो .....(वही. पृ. 138)

'भूरी टोल्डी' गीत में उस समय का वर्णन किया गया है जब दूल्हा अपनी नई-नवेली दुल्हन को लेने सजी-धजी ऊँटनी पर जाता है। राजस्थान में पहले ऐसे दृश्य आम देखे जाते थे। ससुराल में दामाद के आने की खुशी में पूरे घर को सजाया जाता है तथा तरह-तरह के पकवान आदि बनाए जाते हैं। इसी का एक

नजारा देखिए-

छम छम बाज रही पाजेब, छोर्‌यां गीत गाओ ए (2)
म्हारै घरां जवांई आया, पडोसण गाळ गाओ ए
चांवळ बूरा घी कै साथ वांनै आज जिमाओ ए, (वही. पृ. 143)

ग्रामवासियों की आवश्यकताएं सीमित होती हैं। यदा-कदा गाँव में आए फेरी वाले अर्थात् भियासती से ग्रामीण औरतें व युवतियां सामान खरीदती हैं। 'भियासती' गीत में इसी की झलक देखने को मिलती है-

स्त्री तू ठैर भिसायती ऽऽऽऽ (5)
(पु.) अरै कांई खै छी ऽऽऽ (5)10
स्त्री तू ठैर ठैर रै ठैर भिसायती आई रै (2)
मैं आई रै मैं आई रै तेरो सौदो तू दिखलाइदै,
मैं आई रै मैं आई रै
स्त्री जोबण को कांईं करूं ऽऽऽऽ 4
हां रै बारै कांईं करूं ऽऽ 4
जोबण को कांईं करूं बता मत बूंटी की तू बात 2
बिछिया बिन्दी और चुटीलो दे दै मूंनै आज 2
बिछिया बिन्दी ऽऽऽऽ 4
हां रै चिटकी अर बिन्दी ऽऽऽऽ 4
तू ठैर भिसायती ऽऽऽ (पु.) और कांईं खै छी ऽऽऽऽ (वही. पृ. 150)

भारतीय परिवेश में मकर-सक्रांति के त्यौंहार को अत्यंत हर्षोल्लास के साथ यूं मनाया जाता है-

पु. सकरांत का दिन आया रै, खुण्ड्या खेलां आऽजऽ 2
चाल दडकली तावळ कर लै भीडा भीडू आय - भाई रै
स्त्री. चूरमा को रोट बणाऊं जगरो मेरो जागै, 2
उलट पलटकर सेक किलाण्या, आ जा मेरै सागै ऽ, - भाई रै
(वही. पृ. 159)

'काजलियो' गीत में नवविवाहिता के शृंगार की अनुपम झलक देखते ही बनती है-

स्थाई स्त्री: कर सोळा सिणगार पलंग पर बैठ्यां देखै बाट
कोरो काजळियो

म्हारो काजळियो रै काजळियो पिव जोहै तेरी बाट
कोरो काजळियो। (वही. पृ. 173)

'त्याग' गीत में प्रेम एवं कर्त्तव्य के बीच अद्भुत सामंजस्य दिखाया गया है-

पु. स्वाभिमानि मेरी प्राण पियारी तूं बिन रह्यो न जाय 4
स्थाई रूक जाइरै मैं तो परणूं ऽऽ तूनै ऽऽ ही ऽऽ 4
स्त्री. मात-पिता की सेवा कर मैं छूं माटी, की पुतळी 4
स्वर्ग तेरै ऊं पौंछ मिनखड़ा मैं माटी की पुतळी 4
बाट तेरी माँ कर री 2
मैं माटी की पुतळी 2
मिनखड़ा ऽऽऽऽ 4 - 8
अगलै जनम मिलूंगी ऽऽऽ - 8 (वही. पृ. 199)

कहते हैं कि एक सच्चा पड़ोसी उस भाई से बढ़कर होता है जो दूर रह रहा हो। प्राचीनकाल से ही हमारे देश में सुख-दुख में एक-दूसरे का साथ देने की परम्परा रही है। 'पड़ोसन' गीत में एक औरत के घर अनाज खतम हो जाने पर उसकी पड़ोसन कहती है-

स्त्री. म्हारा टाबर बास्या आज पड़ोसण दे दै तू
स्थाई म्हारै घर मैं कोनै नाज पड़ोसण दे दै तू
पडोसण म्हारै घर मैं छै भण्डार, पड़ोसण ले लै तू 2
क्यूं चिंता कर री बावळी, दोन्यूं घर की सुणलै एक
पड़ोसन ले लै तू (वही. पृ. 208)

कहते हैं कि पति-पत्नी आपस में एक-दूसरे के सच्चे साथी होते हैं। 'मिनखड़ा' गीत में एक पत्नी अपने पति को नशा छोड़ने व कर्म करने की प्रेरणा देते हुए कह रही है-

स्त्री मूनै मर्‌योडी जाण मिनखड़ा क्यूं कुळ्ळावै रै
या तो माटी की छै देह ऊंनै क्यूं लिपटावै छै
तेरा पौरूष नै तू जाण, भीख क्यांटै मांगैरै
तेरा दोन्यूं साबत हाथ वांकी लाज बचालै रै
लाज बचा लै रै दारू मत न पीवै रै (वही. पृ. 215)

'ब्याव की तैयारी' गीत में एक घर में हो रही शादी की तैयारियों का वर्णन किया गया है। हमारे ग्रामीण समाज में शादी-ब्याह के अवसर पर पूरा गाँव ही उमड़

पड़ता है तथा उत्साहपूर्वक एक-दूसरे का साथ देते हैं-

बंदडा गांवीं जी लुगायां पीठी लगारी ऊं कै
देखो भाभ्यां हळदी रगडीं ऊं को मूंड़ो चमकै
यै दिन फेर कदे नहीं आवीं बंदडा ल्हैर ले लै रै ..
(वही. पृ. 256)

किसान के लिए अकाल की स्थिति सचमुच भयावह है। 'छप्पन्या को काल' गीत में बताया गया है कि अकाल के लम्बे समय के बाद हुई बारिश से जन-जीवन किस तरह झूम उठता है-

पुरुष गड़ गड़ गड़ गड़ हुई गर्जना काळो व्है आकाश
टप टप टप टप बूँदां पडरी व्हियो हर्ष उल्लास
धरती की काया हरषी सब खुशी मंनांऽवीं रै
बरसो बरसो रैऽ इन्दर बरसो बरसो रै
बरसो बरसो रै बरसो बरसो रैऽ (वही. पृ. 271)

आज जिस प्रकार विद्वेषपूर्ण माहौल बन रहा है तथा अपनी कुत्सित महत्वाकांक्षाओं को पाले साम्राज्यवादी शक्तियों ने पूरे विश्व को तीसरे विश्व युद्ध के कगार पर ला खड़ा कर दिया है। ऐसी स्थिति गाडिया लुहार सारी पृथ्वी को ही परिवार के समान मानने की अनूठी शिक्षा देते हैं। 'भोभळ्यो' गीत में बताया गया है कि गाडिया लुहार कभी भी घर बनाकर एक जगह नहीं रहते बल्कि सारे संसार को ही अपना घर मानते हैं-

पु. ब्याळू कऽर ऊठगोऽ देर मूंछ्यां ताव
म्हाराणा प्रताप कीऽ करी प्रतिज्ञा याद
गाड़ी मैं ही र्‌हांऽगाऽ घर सारो संसार रै
घर सारो संसार रै
घर सारो संसार रै (वही. पृ. 297)

'काठी' गीत में जीवन में सच्चाई एवं धर्म-कर्म का महत्व प्रतिपादित किया गया है-

7. पु. माफ करो बाई थे मूंनै बात थारी सांची
नेकनीयती धन्य करम थांको वापिस ठाल्यो काठी
भाई तेरो कैर उन्नति देर्‌यो आशीर्वाद रै
पु. करम कर्‌यां जा भाई रै स्त्री -धन्य-धन्य फिरवाळ रै (वही. पृ. 318)

प्राचीन समय में गाँवों में भजन एवं सत्संगों के आयोजन के समय समूचा गाँव संत या महंत के पास बैठकर प्रवचन सुनते हुए ज्ञान सागर में डूबकी लगाता था। इसी की एक झलक यहाँ प्रस्तुत है-

सियावर का मिन्दर आगै धूणी सन्तां की
ऊंकै आगै चूंथरो छै माटी को लीप्यो
म्हंत गणेश दास जी बात खैर्‌या ज्ञान की
सुणतां-सुणंता गाँव हाळा सुलपी पीर्‌या रै .(वही. पृ. 320)

'चिरमी' गीत में रोजमर्रा के कार्यों में लगी ग्रामीण महिलाओं के स्वरूप का मनोरम चित्रांकन मिलता है-

छम-छम करती आरी बीनणी धण कै पाछै
लावो बकरी को बच्यो छै म्हेल्यां कांधा माळै
छम-छम व्हैरी देखो धण की ऊंका बिछुवा बाजैं
अइयां लागै अंधेरा मैं चांद-सितारा आर्‌या रै .(वही. पृ. 342)

होली, बास्योड़ा, मकर सक्रांति, दीवाली, राखी, तीज, गणगौर आदि ऐसे त्यौंहार हैं जिनके अवसर पर सभी पारिवारिक सदस्य एकत्र होते हैं और खुशी एवं उमंग के साथ त्योहार मनाते हैं। 'स्योणां को त्युंवार' गीत में राखी के त्यौंहार का चित्रण यूं मिलता है-

राखी को त्युंवार पड्‌यो छै खीर बणांवां
या तो स्योणां को छै स्योण राखी पाछै बांधांगा
भैण-भूवा दोन्यां आई अब थे दूध छडाद्‌यो जी (वही. पृ. 350)

'जान-जनैती' गीत में भारतीय ग्राम्य जीवन में विवाहोत्सव की रस्में देखी जा सकती हैं-

वापिस चाल्या ऊंट-घोड़ा ल्हड्डा मैं बाजाळा
बिदाई बहू की करा जनैती चाल्या
बहू आयी बहू आयी गीत गावो रै
छोर्‌यां नाचो रै
गाँव नै जिमाबाटै नाई खैया रै
भाग बोगो रै न्योंतो दिय्या रै (वही. पृ. 357)

गीतकार ने अंग्रेज़ी के बढ़ते चलन एवं हिन्दी के प्रति लोगों के बदलते नज़रिये पर चिंता प्रकट करते हुए करारा व्यंग्य किया है-

महिमा अंगरेजी की भाई च्यारूं मेरां आज भी
थोड़ी-थोड़ी करो शुरू भाई पाछै बोलो हिन्दी ही
काम बणींगा थांका सारा म्हांका हिन्दुस्तान मैं
रही गुलामी की आदत वा कइयां अइंयां जाय रै
टूटी ही बोलो अंगरेजी पण जद रोब पड़ैगो रै
हिन्दी बोल्यां मान घटैगो मन मैं सब जाणी रै
अंग्रैजी नै सीखबाटै बावळा व्हैर्‌या रै कांई व्हैर्‌योसोचो रै
(वही. पृ. 364)

'पाळत्यां की दिनचर्या' गीत में भारतीय किसान की दिनचर्या का वर्णन मिलता है- तडकाऊ व्हैतां ही बोल्यो मुरगो कुकडू कू
माई छोरां की तू ऊठ जा अर दूध काढ़ लै
बोल्यो पांच्यो माळी मैं जाऊं कूवा कै माळै .स्थाई
खोल बळदां नै चाल्यो वा सुलपी पीतां-पीतां
छोरो पाछै-पाछै जार्‌यो लाव-चिड़स नै लियां
चालो जल्दी-जल्दी चालो कूवा नै जगांवां बारा 1
पांच्यो ऊभो ढ़ाणा माँयं छोरो गूण मैं चाल्यो
देर बळदां नै जूड़ा मैं फेर लाव सूं जोड्‌यो
फेर पूंद्‌यो लेर बैठ चाल्यो झूलतो देखो . (वही. पृ. 372)

हमारा देश देवी-देवताओं के देश के रूप में जाना जाता है। 'उदियापण' गीत में माता संतोषी के व्रत के उदियापण की रीति-प्रक्रिया पर प्रकाश डाला गया है-

दो बरसां तक संतोषी माता को बरत कर्‌यो
म्हारी हुई कामना पूरी या माता की किरपा
आज उदियापण मैं इक्यावन कन्या जीमींगी रै। (वही. पृ. 383)

गणेश चतुर्थी राजस्थान का प्रमुख पर्व है। आंचलिक बोली में इसे 'चतडाचोथ' कहा जाता है। ढूँढाड़ क्षेत्र में इसे विशेष तरीके से मनाए जाने की परम्परा है-

खात्यां कै दरवाज़ै पोंछ डंड़ा पीटीं
माई वांनै ल्यार देरी गुड़-धाणी
चतड़ा-चोथ बाजूडो गाता जार्‌यो रै। (वही. पृ. 398)

दीवाली भारत का सबसे बड़ा त्यौंहार है। 'दीवाळी आई' गीत में इसी पर्व के महत्व के बारे में बताया गया है-

दीवाळी आई रै भाई दीवाळी आई
नया कपड़ पैर सारा घर का बैठ्या
इक्यावन दीया जोया अर पूजा करीं रै..। (वही. पृ. 403)

'काचा कळवा सेवडो' गीत में बताया गया है कि मनुष्य को अपने कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है। इस गीत में मनुष्य द्वारा किये जाने वाले अनैतिक कार्यों के परिणाम को दर्शाया गया है-

सारी आत्मा छूटी मुक्ति वांनै आइयां मिली
ऊं स्याणा नै उल्टो टाँक टोरा लगावीं देखो
धर्मराज को न्याव या भाई ब्होत चोखो रै
संजीद्यो रोवै रै
ऊंनै बळतां खंभां सै देखो
जोरामरदी बाँधीं रै
जोरामरदी बाँधीं रै
जोरामरदी बाँधीं। (वही. पृ. 456)

इस प्रकार कहा जा सकता है कि लोक साहित्य अतीत की आवाज मात्र ही न होकर ऐसी कड़ी भी है, जिसके अध्ययन के बिना किसी भी देश, समाज व संस्कृति से परिचित नहीं हुआ जा सकता है।

कैलाशचन्द्र शर्मा के ये गीत जनमानस का दुख-दर्द भुलाने वाले, घरेलू जीवन में सजीवता और सरसता लाने वाले और सांस्कृतिक चेतना जगाने वाले हैं। ये गीत युग-युग तक लोक को प्रभावित करते रहेंगे और इनसे राजस्थान का अहर्निश विकसित कीर्ति-कमल चिरकाल पर्यन्त अपनी यश-सुरभि से दिग दिगन्त को सुरभित करता रहेगा।

संदर्भ

1 डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, मेरे गीत दिखायें गाँव (जयपुर : त्रिवेणी कला संगम, 2012)
2 मड़ई-2011, डॉ. कालीचरण यादव (संपादक, वर्ष-13, अंक-1) बिलासपुर : रावत नाच महोत्सव समिति, बिलासपुर।
2 मड़ई-2012, डॉ. कालीचरण यादव (संपादक, वर्ष-14, अंक-1) बिलासपुर : रावत नाच महोत्सव समिति, बिलासपुर।

❑❑❑

47

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के ढूंढाड़ी गीतों का नृत्य-नाट्य पक्ष

सौ. आशा जोगलेकर

नृत्य जगत् में डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का नाम अपरिचित नहीं है। मुझे त्रिवेणी कला संगम, जयपुर के कार्यक्रमों के माध्यम से कैलाश जी से जुड़ने का मौका मिला। 4 नवम्बर 1998 को अखिल भारतीय गान्धर्व महाविद्यालय मण्डल, मुम्बई के 67 वें दीक्षान्त समारोह के संयोजक शर्मा जी ही थे जिसमें उन्होंने मुझे भी निमन्त्रण पत्र भेजा था पर मैं समारोह में भाग लेने जयपुर न जा सकी थी क्योंकि मेरी बेटी अर्चना के नृत्य का कार्यक्रम उन्हीं दिनों महाराष्ट्र में होना तय था। मुझे कैलाश जी त्रिवेणी कला संगम के हर कार्यक्रम की जानकारी देते रहे हैं। कई बार वे मुझसे मिलने मुम्बई आ चुके थे। उनके डी.लिट्. के शोधकार्य के सिलसिले में मैंने आपको बाल गन्धर्व नाटक मण्डली की कलाकार श्रीमती सुरेखा नारायण जोशी, स्व. श्री विजय तेन्डुलकर, श्री सुरेश खरे, पद्मश्री, विजय कदम आदि से मिलवाया था। अब कैलाश जी मेरे लिये अपने बेटों के समान ही हो चले थे। एक बार वे सपरिवार मुम्बई आये थे तब हमारे घर पर ही ठहरे थे। इससे पूर्व मैंने त्रिवेणी कला संगम, जयपुर की आजीवन सदस्यता ले ली थी। कैलाश जी के परिवार के साथ इस अवसर पर संगीत, नृत्य एवं नाट्य विषय पर गहन चर्चा हुई तथा त्रिवेणी कला संगम समिति की औपचारिक बैठक भी तब हुई थी। तब कैलाश जी ने मुझे बताया कि इन दिनों वे ढूंढाड़ी गीत लिख रहे हैं और उन्हें अपने नाटकों में नृत्य को

*वरिष्ठ नृत्यगुरु, अर्चना नृत्यालय, ए 105 विनीत टावर, जुहू-वर्सोवा लिंक रोड, अँधेरी (पश्चिम) मुम्बई-53

शामिल करके नये-नये प्रयोग भी कर रहे हैं। कैलाश जी ने स्व. श्री तीरथ राम आजाद, श्री राजेन्द्र गंगानी आदि गुरुओं से कत्थक नृत्य सीखा है और अपने ढूंढाड़ी गीतों पर अपनी शिष्याओं को नृत्य सिखाकर उनका कत्थक नृत्य में प्रयोग भी किया है।

मैंने उन्हें और गीत लिखने एवं उनका कत्थक नृत्य और नाटकों में प्रयोग करने की सलाह दी जिसके परिणामस्वरूप त्रिवेणी कला संगम, जयपुर की ओर से उन्होंने 'त्रिवेणी कैसेट-सी.डी.' जारी की । इसका कम्पोजीशन कैलाश जी का ही था और अपनी शिष्याओं के साथ आपने इसमें गाया भी था। इस कैसेट की प्रति मुझे डाक से मिली। शर्मा जी ने प्रेरक के रूप में कैसेट के रैपर पर मेरा नाम भी दिया था जो उनकी, अपने गुरूओं के प्रति श्रद्धा-भावना को दर्शाता है।

शर्मा जी के गीतों की विषय वस्तु

कैलाश जी ने अपने ढूंढ़ाड़ी गीतों के माध्यम से भरतीय ग्राम्य जीवन की कला-संस्कृति, सामाजिक प्रतिबद्धताओं, मान्यताओं आदि की नवीन सन्दर्भों में व्याख्या की है। अनेक गीतों में वर्तमान युग में हुए परिवर्तनों को भी दर्शाया गया है जो श्रोता, पाठकवर्ग, शोधार्थियों तथा राजस्थान के ग्राम्य जीवन की जानकारी चाहने वाले पर्यटकों एवं सामान्यजन के लिए मार्गदर्शक एवं उपयोगी हैं। इन नवसृजित गीतों में मैड़-विराट अँचल के मैड़, बळेसर, तेवड़ी, सेवरियों की ढ़ाणी, रागलों की ढाणी, बड़ की ढाणी नौरंगपुरा, बीलवाड़ी, सताणा, गालास, अँगारी, झोझूला, ताळवा, बिहाज्यर, पालड़ी, पीठाठी, पणदो, धोला, तालवृक्ष, पावटा, बिलाळी आदि स्थानों के कार्यकलापों को सम्मिलित कर एक नवीनतम पुष्पाहार का सृजन किया गया है।

इन गीतों में ग्राम्य जीवन के लगभग हर पहलू को समाहित किया गया है इन गीतों में सेढ़ माता, पथवारी माता, बालाजी, भोम्याजी, ठाकुरजी, गंगाजी, पितृदेव आदि लोक देवता तथा भूत-भूतणी, प्रेत आदि दुष्टात्माओं को भी समाहित किया गया है। इसके अतिरिक्त इन गीतों में मज़दूर-किसान एवं ग्रामवासियों के सहज क्रिया-कलापों, जात-पाँत, शादी-ब्याह, सामाजिक रूढ़ियों-मान्यताओं एवं प्रथाओं का भी सजीव चित्रण किया गया है। इन गीतों में ग्रामीण क्रिया-कलापों की रीति-प्रक्रिया, उनके माप एवं उनकी कलात्मकता की

नवीनता भी देखी जा सकती है। इन गीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि प्रत्येक गीत में एक पूर्ण कथानक को दर्शाया गया है जिससे जहाँ एक ओर जनसामान्य को इनके श्रवण, पठन एवं दर्शन से आनन्द की प्राप्ति होती है वहीं दूसरी ओर इन गीतों को लिखने की सार्थकता भी सिद्ध होती है। इन गीतों से वर्तमान पीढ़ी को अपने अतीत की धरोहर का पता चलने के साथ ही साथ यह भी जानकारी मिलती है कि हमारे पूर्वजों के संस्कार, ज्ञान, नैतिकता, खान-पान, वेश-भूषा, सामाजिक मान्यताओं के प्रति आस्था इन सबकी वर्तमान परिवर्तित युग में भी कितनी उपयोगिता है।

इन नवसृजित गीतों से वर्तमान पीढ़ी को एक नया जोश मिलता है, अपनी संस्कृति, कला एवं प्राचीन सामाजिक रीति-रिवाजों में छुपी सार्थकता एवं पवित्रता के प्रति मस्तक स्वत: ही श्रद्धा से झुक जाता है। इस अँचल के प्रत्येक नवसृजित गीत में एक घटना या कथानक विशेष की पूर्णता है और वह भी रस, छन्द और आलंकारिक समायोजन के साथ, जिससे श्रोता, दर्शक एवं पाठक को पूरी बात समझ में आती है। ये नवसृजित गीत जहाँ एक ओर पुरानी पीढ़ी को आत्मसन्तोष प्रदान करते हैं वहीं वर्तमान पीढ़ी को मार्गनिर्देशन, उन्हें अपने अतीत की जानकारी एवं भावी प्रगति हेतु ठोस आधार प्रदान करते हैं।

इन गीतों में कथानक की पूर्णता होने के कारण नाटकीय तत्त्व अपने पूर्ण स्वरूप में उपस्थित हैं, अत: नाट्य या नृत्य नाटिकाओं हेतु अधिकांश गीत उपयोगी हैं। इनकी उपयोगिता को पाश्चात्य देशों से आये पर्यटकों एवं हमारे देश के अहिन्दी भाषी प्रदेशों के लोगों ने भी स्वीकार किया है अत: इन गीतों की कथावस्तु को जन-जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से राजस्थान बृजभाषा अकादमी के पूर्व अध्यक्ष एवं वयोवृद्ध साहित्यकार श्री हीरालाल शर्मा 'सरोज' ने इन गीतों की विषय वस्तु, पृष्ठभूमि, भावार्थ आदि का अंग्रेजीकरण तथा सभी गीतों को रोमन लिपि में रूपान्तरित करने का बीड़ा उठाया है। इन गीतों से न केवल देश के ही अपितु विदेशी व्यक्तियों को भी हमारे देश के ग्राम्य जीवन की सही तस्वीर जानने में मदद मिलेगी।

इस प्रकार यह बात उजागर होती है कि शर्मा जी ने अपने गीतों में जीवन के हर पक्ष को शामिल किया है उनके गीतों में नवरस दिखायी देते

हैं। उनके गीत अनेक भावों को अपने में समेटे हुए हैं। एक विशेष ख़ूबी जो इन गीतों में देखने को मिलती है वह यह कि हर गीत एक पूरी की पूरी कथा को बताता है इसलिए शर्मा जी के अधिकांश गीतों पर नृत्य नाटिकाएं तैयार कर प्रस्तुत की जा सकती हैं। हालांकि अभी तक कैलाश जी ने अपने कई गीतों पर आधारित ढूंढाड़ी नृत्यों को अपने नाटक 'तुक्के का बादशाह', 'आधुनिक यमलोक', 'कार्यवाहक हलवाई', 'लड़ी मैड़ की', 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' आदि में शामिल कर देश के विभिन्न भागों में इनके अनेक सफल प्रस्तुतीकरण किये हैं परन्तु नाट्य जगत् में इन गीतों पर नृत्य नाटिकाएं तैयार कर प्रस्तुत किये जाने की पर्याप्त सम्भावनाएं हैं और इसके लिये नृत्य गुरुओं को पहल करनी चाहिये।

इन गीतों में चूंकि आँचलिकता है और ताल, लय एवं ध्वनि का अनोखा मेल है इसलिये इन गीतों पर तैयार कराये गये नृत्यों से हमारे ग्रामीण जीवन की परम्पराएं साकार हो सकती हैं जिन्हें देखने से दर्शकों को खूब आनन्द मिलेगा, ऐसा अन्दाजा मैं लगाती हूँ।

राधाकृष्ण के पारम्परिक गीतों एवं भजनों से हमें श्रृंगार एवं प्रेम के दर्शन होते हैं, परन्तु कैलाश जी के इन गीतों में प्रेम एवं सौन्दर्य सच्चे एवं मन को छू लेने वाले रूप में मौजूद है और उन पर तैयार कराये गये नृत्य जरूर मन को भायेंगे।

कैलाश जी के ढूंढाड़ी गीतों की सीमाएं (Limitations)

ढूंढाड़ी जयपुर एवं उसके आस-पास के क्षेत्र में बोली जाने वाली एक बोली विशेष है। मैं स्वयं भी ढूंढाड़ी नहीं जानती परन्तु मैंने इन गीतों की कैसेट सुनी है जिसके सुर, ताल, लय एवं ध्वनि संयोजन सब मन को छू लेने वाले हैं और यह समीक्षा मैंने इन गीतों के अंग्रेजी-हिन्दी में लिखे गये भावार्थ एवं विषय वस्तु के आधार पर लिखी है। शुरू-शुरू में ढूंढाड़ी न जानने वालों के लिये इन गीतों पर आधारित नृत्यों को समझना शायद मुश्किल हो सकता है परन्तु थोड़ा देखने-सुनने के बाद सब लोग आसानी से समझ लेंगे।

संभावनाएं

राजस्थान का फोक जगजाहिर एवं मन को लुभाने वाला है अत: जहाँ

लोकनृत्यों की बात आती है वहाँ पर कैलाश जी के गीतों पर आधारित नृत्यों का अपना अलग महत्त्व होगा और उन्हें हर दर्शक मन से स्वीकार करेगा। इन गीतों पर आधारित नृत्यों एवं नृत्य नाटिकाओं के प्रस्तुतीकरण से पहले यदि सूत्रधार से या अन्य किसी रूप में यदि विषय वस्तु की संक्षेप में जनकारी दी जाय तो शायद दर्शकों को समझने में आसानी रहेगी। लोकनाट्य एवं लोकनृत्यों में अपनी शैली विशेष के कारण ऐसे संकेत देने की परम्परा रही है और कैलाश जी ने भी अपने कई नाटकों में इस शैली का प्रयोग किया है। उन्होंने अपने नाटक 'लड़ी मैड़ की' में तो अपने तेरह ढूंढाड़ी गीतों पर आधारित नृत्यों को शामिल करके नृत्य-नाट्य के क्षेत्र में एक नया प्रयोग किया है। प्रारम्भ में यह नाटक हिन्दी में चलता है जिसकी शुरूआत लन्दन शहर से होती है। बाद में नाटक के तीन प्रमुख पात्र हिन्दुस्तान में प्रवेश करते हैं और धीरे- धीरे किस तरह वे जयपुर जिले के छोटे से गाँव मैड़ में पहुँचकर शुद्ध ढूंढाड़ी बोलने लगते हैं, पता ही नहीं चलता और ढूंढाड़ी नृत्यों के माध्यम से दर्शक ग्रामीण जन जीवन में इतने खो जाते हैं कि अब उन्हें ढूंढाड़ी बोली भी अपनी लगने लगती है।

❑❑❑

48

डॉ. कैलाशचद्र शर्मा के नगाड़े की थाप: 'बोल नगाड़ा बोल'

ओमप्रकाश शर्मा 'निर्लेप'

ढूँढाड़ी कवि और ढूँढाड़ी संस्कृति के मर्मज्ञ डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा ऐसे अद्वितीय व्यक्ति हैं जो अपनी जन्मभूमि मैड़-बैराठ की, परंपरा से चली आ रही , और अब विलुप्त हो रही मूल्यवान धरोहर का परिचय संसार को कराने में जुटे हुए हैं। उनके काव्य संग्रह 'बोल नगाड़ा बोल' पर मेरा अभिमत प्रबुद्ध पाठक वर्ग के समक्ष प्रस्तुत है-

विगत समय तक हमारे क्षेत्र में लड़के और लड़की के विवाह पर, दोनों के द्वार पर बान बैठाने के दिन से ही नगाड़े बजते थे। नक्कारची और शहनाइची सूर्योदय से सूर्यास्त तक निरंतर बजाते रहते थे। बान पाँच या सात दिन पूर्व होता था। बान बैठने के बाद निश्चित तिथि को विवाह अनिवार्य होता था, चाहे दैवयोग से बीच में कोई अशुभ घटना हो जाय तो भी मुहूर्त नहीं टलता था। लड़की कुँआरी नहीं रह सकती थी। बचपन में हम नगाड़े के बोल यूं समझते थे-'चूरमा दाल बाटी, चूरमा दाल बाटी (नक्कारी),''घी घणू घी घणू (नक्कारा) '। बारात के बारे में बोल- 'बराती कस्याक आया बराती कस्याक आया'।....'बड़ा बड़ा ढीम बड़ा बड़ा ढीम।' डॉक्टर कैलाशजी के नगारे के बोल मैंने इतने ही सुने हैं, जितने कि विवाह वाले के घर थोड़ी देर जाने वाला। फिर भी बानगी पूरी तरह कह देती है, जैसे कि पड़छे के उबले हुए चावलों में से एक-दो दाने। रचनाकार ने शीर्षक भी विचित्र ही दिया है। पहले नगाड़े की ही बात की जाय। नगाड़ा, नगाड़ी (शुद्ध नाम नक्कारा नक्कारी) विवाह के अवसर पर बजाये जाते है। मंगल ध्वनि करते हैं। काम हो जाने पर इनकी गति 'नदी सिरावत मोर' जैसी हो जाती

* गाँव व डाकघर- प्रतापगढ़, जिला अलवर (राजस्थान)

है। इनको विसर्जित तो नहीं किया जाता किंतु छत में कड़े के बाँधकर उल्टा लटका दिया जाता है। डॉक्टर कैलाश का मनरूपी नगाड़ा भी शायद बैंक सेवारूपी छत के कड़े से उल्टा बँधा प्रतीत होता है। कहां बैंक का अधिकारी (नीरस कार्य) और कहां काव्य सृजन। 'बैंक सेवा की छत' और 'मन के नगाड़े' का सार्थक पहलू यह भी है कि जैसे नगाड़े के लटकने पर सुरक्षा मिलती है वैसे ही कवि महोदय के भी सभी ठाठ-बाट, प्रतिष्ठा, सामाजिक सुरक्षा आदि सभी सुख इस बैंक की छत पर चिपकने से ही तो हैं। अस्तु।

कवि की काव्य रचना के संदर्भ में भी शीर्षक का परीक्षण किया जाना चाहिए। एक देशी कहावत है 'नगारे की चोट (डंके की चोट) कहना' । जब कोई व्यक्ति साहसपूर्वक कोई रहस्य की बात कहता है तो वह बात किसी अन्य के लिए चुनौतीपूर्ण या सच्चाई लिए होती है तो गणमान्य व्यक्ति उससे पूछते हैं कि क्या वह अन्य के समक्ष भी ऐसा कह सकेगा? कहने वाला व्यक्ति उत्तर देता है कि वह डंके (नगाड़े) की चोट कहेगा। अर्थात् जायसी के शब्दों में जो बात 'बारहबानी सोने' जैसी खरी होगी, वही डंके की चोट कही जायेगी। इसे कसौटी पर परखते हैं-

बानगी संख्या 3 'कुदरत'

सुरजी नामक मालिन की पुत्री के बालों की चमक देखकर एक आधुनिका जोकि एक धनाढ्य सेठ की तरुणी पुत्री है, आश्चर्यचकित हो जाती है। वह कहती है- 'कांई तू लगावै तेरा बाळां मैं,
या तू बात बता दै?
म्हे भी तेरी नियां लागां तो,
म्हारो मन भर जावै।'

(मैं आधुनिक प्रसाधनों से, ब्यूटी पार्लर में जाकर बालों को साजती-सँवारती हूं फिर भी मेरे बाल इतने सुन्दर नहीं, जितने तेरे बाल हैं। तू क्या लगाती है बालों में?)। सुरजी कहती है- 'माटी मैं पैदा व्हिया माटी मैं खेल्या,
सुणो जी बीबीजी म्हे तो माटी सैं न्हावां
नांवं ऊंको मुल्तानी, शिकाकाई कदे दही।'

(मैं तो अपने बालों को मुल्तानी मिट्टी, शिकाकाई या फिर दही से ही धोती हूं।) कवि ने मुल्तानी मिट्टी के साथ साथ शुद्ध आब हवा और शुद्ध खान पान का

महत्त्व भी सुरजी के मुँह से कहलवाया है, जोकि ग्रामीण संस्कृति का अभिन्न अंग था–

'कुदरत की सुन्दरता मिली देशी चीजां मैं,
खाबो पीबो सादा राखो, आबो हवा चोखी,
सुघड़ शरीर बणै, गाल चमचम जी,
आंख्यां डोळ डोळ जी, दाँत अनार का,
दाणा धोळा धोळा,
वेणि लटपट लट, लिपटावै चटपट,
देखबाळांनै,
कोनै छिटकीं जी, मजो आवै कस कस,
कांईं खैणो जी, कुदरत थारो
कांईं खैणो कांईं खैणो कांईं खैणो '

इस बात को कसौटी से परखते हैं–मुल्तानी मिट्टी के युग में कवियों ने लम्बी केशवालियों का खूब बखान किया है। चोटी से एड़ी तक के बाल। जब पद्मावती बाल खोलती है तो आकाश से पृथ्वी तक अँधेरा छा जाता है। उसके सिर पर अष्ट वर्ग के नाग सदैव निवास करते हैं। (वेणि के रूप में), जो शरीर की मलयचन्दन की सुगंधि में सदैव मस्त रहते हैं।

मुल्तानी के साथ ही हल्दी का प्रयोग होता था। सौंदर्य प्रसाधनों में हल्दी से उबटन तैयार होता था। बालाएं चन्द्रमुखी होती थी। कवियों ने शृंगार रस में लिखा है–'निस दिन पूनम ही रहे, आनन ओज उजास' (बिहारी)

(वेणि के रूप में)

'धोवति सुंदरि वदन करन अति ही छवि पावत।
वारिधि नाते शशि कलंक मनु कमल मिटावत।।' (भारतेन्दु)

सौंदर्य प्रसाधनों में लाखों रुपये खर्च कर 'बोल्ड सीन' देने वाली हीरोइनों के बारे में क्या किसी कवि ने ऐसी उपमा लिखी है? ऐसा सौंदर्य मुल्तानी और हल्दी के प्रयोग में ही था। डॉ. कैलाश ने नगारे की चोट पर यह बात कही है।

उन्होंने उसी मिट्टी की सुगंधि को पहचाना है। अब तो मन किसी से, शादी किसी से भी होने लगी है।

बानगी संख्या 5 'कसरत'

इस कविता में कवि ने दादी पोती के संवाद द्वारा चरखा कातने, दरी

बुनने, खाट बुनने, रई से दही बिलोने के माध्यम से कसरत कर शरीर को स्वस्थ रखने का महत्त्व बतलाया है। दादी समझाती है, पोती दादी को झिड़कती है कि वाशिंग मशीनें आ गई, फैक्ट्रियां लग गई, सभी कार्य मशीनों से होने लग गये। दादी क्यों परेशान करती है–

'क्यांटै माई ज्यान ले,
म्हांकी माँ की म्हां की भी,
सैरां मैं अब दरी बणीं,
बड़ी बड़ी फैक्टरी चली।'

दादी अपने समय का चरखे का महत्त्व बतलाती है–

'बूढ़ी बूढ़ी डोकर्यां पूणी कातीं,
पूड़ा का पूड़ा एकोड़ी नै म्हेल,
गीत गाती चरखो चलावीं,
छम छम छम छम टाबर नाचीं।'

एक समय वह भी आता है कि पोती बीमार होकर अस्पताल में भर्ती हो जाती है। अस्पताल में उसको 'एक्सरसाइज' बतलाई जाती है। उसे चरखे का महत्त्व समझ में आता है–

'बाई छै बेमार भर्ती अस्पताळ मैं,
नर्स करावै एक्सरसाईज भाठो बाँध पगां कै,
दायां बायां हाथ करावै ऊपर नीचै,
कैडे फंसगी रै भगवान छोरी सोचै।
.....
घरां नै जाऊंगी, चरखो चलाऊंगी
दही मैं बिलोऊं, दरी बणाऊं,
खैबो मानूं दादी तेरो,
चाल घरां नै चाल'

गाँधीजी ने चर्खे द्वारा स्वराज्य प्राप्त किया था। चर्खा–दरी ग्रामीण अर्थव्यवस्था की धुरी थी। गर्मियों में खाटें बुनी जाती थी जो आपसी सहयोग पर आधारित था।

चरखे के बारे में भजन भी है– चरखला वाळी ए तेरो चरखो बोलै राम

राम।

चरखे की भाँति ही महिलाओं के व्यायाम का एक सुदृढ़ तरीका हाथ की चक्की से आटा पीसना भी था। ब्राह्म मुहूर्त से पूर्व महिलाएं उठकर (पीसणा तारा उगने पर) हाथों से चक्की चलाकर आटा पीसती थी। सूर्योदय के समय मेरी माताजी इस प्रकार प्रभाती गाती थी-

'बाबो सूरज देव कलाधारी। कामदेव को पुत्र बिरमचारी।
ऊठो ऊठो मात जसोदा दहियो ए बिलोवो। बाहर खड़ी है थारी छछियारी।
बाबो सूरज देव।'

अर्थात् चक्की पीसना, छाछ बिलोना, और छाछ बाँटना हमारी संस्कृति के अनिवार्य अंग थे। घर के काम काज से सम्बन्धित एक और गीत महिलाएं भजन के रूप में गाती थी- 'राधा की सास सपूती नै, कान्हा की माय मंगेजण नै,
नंद जी की नार अनोखी नै म्हारो पगांलागणूं कहदीज्योजी।
राम थप थप तो वा गोबर थापे मचकर ल्यावै पाणी।
म्हारी राधिका असी छबीली झट से काम करै छै जी।'

इस गीत में जहां लड़की की माँ लड़की की सास को आदर प्रदर्शित करती है, वहीं अपनी पुत्री के काम की प्रशंसा भी करती है। सभी कार्य घरेलू हैं।

अयोध्या में सीता की रसोई भी है। अर्थात् भारतीय संस्कृति के अनुसार राजमहलों तक में घरेलू कार्य किये जाते थे। चर्खा, दरी, दही बिलोना आदि सभी कार्य कैलाश जी के इस गीत में नगाड़े की चोट सिद्ध हो गये।

बानगी संख्या 2 'अंग्रेज़ी की फड़ाई'

इस गीत में कवि ने ढूँढाड़ी भाषा में मुहारणी और पहाड़ों का महत्त्व समझाया है- 'म्हारणी अब बोलल्यो टाबर ऊभा व्हैर,
मास्टरजी अइयां खीं, मत करो देर,
दो एकम दो दो दूणी च्यार,
दो चोका आठ दो पंज्या दस।
.....
कस्यो मजो आयो भाई देखो हिन्दी मैं,
सब मिल बोलीं सुर-ताळ मैं,
अद्धा एकम अद्धा, अद्धा दूणी एक,

अद्धा तिया डेढा, अद्धा चौका दो। '

अंग्रेज़ी के पहाड़ों और देशी विधि की तुलना भी की है। पव्वा, अद्धा, सवैया सभी का महत्त्व बतलाया है। लयात्मक विधि से बारहखड़ी की पढाई अब लुप्त हो चुकी है।

बानगी संख्या 1 'डब्बो खावै सारो टेम'

इस गीत में कवि ने टेलीविजन पर व्यंग्य किया है। आज के युग में टी.वी. इतना लोकप्रिय हो गया है कि घर-घर में लोग इससे चिपके रहते हैं। काव्यकार के अनुसार सर्वप्रथम 1975 में टी.वी. आया था। तब यह श्वेत श्याम था और गाँवों में घर-घर में न होकर चौपालों पर लगा होता था। अब रंगीन टी.वी. घर-घर में पहुंच गया है। गीत में एक ओर व्यंग्य है कि इससे बच्चों की पढ़ाई में बाधा हो रही है। टी.वी. देखकर अनेक युवतियां उन्मुक्त प्रेम की ओर बढ़ रही हैं। पहले एक से ही प्रेम होता था, वह भी विवाहित से। अब अनेक पराये पुरुषों से भी प्रेम होने लगा है। 'ब्वाय फ्रैण्ड' और 'गर्ल फ्रैण्ड' सड़कों पर घूमने लगे हैं।

व्यंग्य द्वारा एक प्रकार से कथोपकथन किया गया है। पक्ष में दलील है कि धारावाहिकों से ज्ञान बढ़ता है। पाक कला में निपुणता आती है। वस्तुत: कवि ने सभी आधुनिक विषय लिये हैं और ढूँढाड़ी बोली में ग्रामीण पात्र नगाड़े के माध्यम से सटीक कह रहे हैं।

चावल 6 'काँदा रोटी'

कांदा या प्याज गरीबों की प्रमुख खाद्य वस्तु है। यह उनके लिए परमावश्यक व्यंजन है। भारतीय राजनीति में भी यह खासा स्थान प्राप्त कर चुका है। इसकी कीमतें जब आसमान पर पहुंचती हैं तो सरकारें बदलती देखी गई हैं। मुनाफाखोरों ने सरकारें बदलने के रामबाण अस्त्र के रूप में कांदा (प्याज) काम में लिया है। अब यह वैसे ही अमीरों का भी प्रिय हो चुका है जैसे जौ-चने की मिस्सी (बेजड़ की) रोटी। अकबर के नवरत्नों में मुल्ला दो प्याजी का नाम भी आता है। उनका नाम दो प्याजी इसलिए पड़ा क्योंकि वे भोजन में रोटी के साथ केवल दो प्याज लेते थे, अन्य व्यंजन नहीं। नगाड़ा वादक डॉ. कैलाशजी ने मंगळ्या नामक एक गरीब बालक के माध्यम से व्यंग्य लिखा है। उसके सहपाठी जहां भाँति भाँति के व्यंजन खाते थे, वह केवल कांदा रोटी ही खाता था। कांदा खाने वाले (ग्रामीण लोग) जानते हैं कि प्याज काटकर खाने में वह स्वाद नहीं मिलता जो उनको मुक्की से फोड़कर खाने में मिलता है। मुक्की से फोड़ने पर एक

कली दूर जाकर गिरती है। उसको बच्ची कहते हैं–

'चीलड़ा मैं बँधी रोटी काढ्यो मंगळ्यो,
कांदा फोड़ मुक्की सैं अइयां बोल्यो,
खालै तू रै जीवड़ा जौ टणको,
कांदा को छै साथ मिल्यो।'

कवि ने बतलाया है कि स्वादिष्ट व्यंजन खाने वाले पीछे ही रह गये। 'ठोठ' निकल गये जबकि मंगळ्या डाक्टर बन गया । उसके पुराने सहपाठियों में से एक रूग्ण होकर उसके अस्पताल पहुंच जाता है। डाक्टर मंगळ्या मजाक में कांदे के इंजेक्शन की बात कहता है। इस कविता में कवि ने गरीब की साधना की सम्पन्नों की सुख लिप्सा पर विजय बतलाई है। व्यंग्य बहुत सटीक है और वह भी ठेठ ढूँढाड़ी में–

'अइयां बोल्यो डाक्टर, कांदा को इंजेक्शन,
जौ की रोटी साथ मैं, खाबा मैं द्यो,
खैबै लाग्या घर हाळा, कांदा महंगा,
सोना कै छीं भाव अब, कइयां ल्यावां,
अमीरां की पेटी मैं, बन्द कांदा,
गरीबां की ज्यान के बचावींगा।'

चतुर्थ तंदुल 'साईकिल'

साईकिल से प्रेम करने वाला एक व्यक्ति अपनी पुरानी साईकिल दुरुस्त कराने साईकिल वाले की दुकान पर पहुंचता है। गुल्या नामक दुकानदार या उसका नौकर साईकिल देखकर कहता है कि इसका पहिया डगमग करता है । यह साईकिल बहुत पुरानी हो गई। अब तो हीरो होण्डा का युग है अत: आप हीरो होण्डा क्यों नहीं ले लेते–

'पिंचर देख गुल्या रै, टायर कइयां डगमग व्है,
अब तो ईंनै ले बदल, साईकिल पुराणी रै।
.....
आज पण तेरो नांव च्यारूं मेर गूंजै,
बात मेरी मान अब हीरो होण्डा ले लै,

भाभी बैठी पाछानै फर फर उडै।'

नगाड़े की चोट पर साईकिल वाला साईकिल का महत्त्व समझाते हुए उसे कहता है कि यह नहीं छोड़ी जायेगी क्योंकि यह मुझे दहेज में मिली है–

'कइयां बदलूं गुल्या भाया, डायजा मैं आई,
बणी ठणी जद रेड्यो टांक्यां, बैठै छै घर हाळी,
सर सर करीं हवा मैं पत्ता, साईकिल जद लहराती।'

उल्लेखनीय है कि हमारे यहां दहेज की प्रारम्भिक अवस्था में घड़ी, साईकिल, रेड़ियो दहेज की बहुत बड़ी वस्तु समझी जाती थी। लड़के के विवाह अवसर पर स्त्रियां 'बन्ना' गाते समय एक गीत यह भी गाती थी–

'रेल चालै, मोटर चालै, बग्गी चालै न्यारी।
म्हारा बना की साईकिल चालै वा भी लागै प्यारी।।'

जवाँईं के ससुराल जाने पर महिलाएं जो गीत गाती थी, उनमें ऊंट (करटे) का स्थान साईकिल लेती जा रही थी। महिलाओं के एक गीत के बोल थे–

'जवाँयां नै सासूजी रै बुलावै
थे मोड़ा क्यों रै पधार्‌या म्हांका राज। '

महिलाओं के गीत में ही जवाँई का उत्तर होता था–

'सासूजी थारी राठोड़ी धरती मैं, म्हांकी चलती साईकिल
अटकी म्हांका राज। '

मूलरूप से साईकिल के स्थान पर करवा (करहा) शब्द था।

कवि ने नगारे की चोट पर हीरो होण्डा के स्थान पर साईकिल को ही महत्त्व देते हुए बताया है कि–

'खर्चो कोई ईंको कोनै, नै डीजल पैट्रोल,
न कोई ईंको टैक्स लागै, क्यूं बदलूं रै बोल ?'

बोल संख्या 8 'आमद'

यह कविता बहुत ही अनूठी है। समसामयिक तो है ही। प्राय: बस वाले किसी रेस्त्रां अथवा चाय-पकौड़ी, तंदूर की रोटी, दाल फ्राई वाले की दुकान के सामने बस खड़ी करते हैं। वह दुकान निश्चित होती है। वह दुकानदार ड्राईवर और कण्डैक्टर की बहुत खुशामद करता है और उनको नि:शुल्क

(फ्री) खाने को देता है। सवारियां चाय-पकौड़ी,समोसे, दाल-रोटी आदि अपने पैसे से खरीदती हैं। इस गीत में कवि ने व्यंग्य के माध्यम से बतलाया है कि किस प्रकार दुकान का मालिक दो-तीन दिन की बासी सब्जियां पकौड़ियों के घोल में नौकर द्वारा मिलवाता है-

'मालिक बोल्यो कांईं साळा इत-उत नै तू देखै,
परस्यूं को ज्यो साग बच्योडो, बेसण मैं झोंकै नै'

सवारियां ड्राईवर -कण्डैक्टर पर व्यंग्य भी करती हैं कि जहर खाकर कौन मरेगा-

'पण खाबा को लाभ मिलै, बीमार्यां सै लडबा मैं,
जहर चख्योडा सहन करीं, ज्यो जहर आज छै फैल्यो,
बचीं सवारी तो सारी, पण थां दोन्यां को के,
कैंयां बचोगा सुण रै डलेबर, अर कण्डैक्टर खै ?'

कविता में मजेदार प्रयोग बस के ड्राईवर -कण्डैक्टर को बस के अफसर बताना है-

'मालिक बोल्यो जी कण्डैक्टर, आवो साब डलेबर,
अन्दर बैठो ए सी चालै, छोरा कर रै खातर,
भाग भाग कर छोरा म्हेलीं, दाळ फ्राई अर नान,
दोन्यूं बस का अफसर खार्या, दे मूंछ्यां कै ताव।'

दूसरी बात एक ग्राहक से जब सिगरेटों के छः के स्थान पर बीस रू. वसूले जाते हैं तो ग्राहक झुंझलाकर उससे कहता है-

'आँख तरेर्यां बाबू बोल्यो, ठगी करै रै बाण्या,
छै रुप्यां की दोनी, पण फोड करम मैं साळा,
नहीं फैक्ट्री खोल सकै, खोखा मैं ही बैठ्यो रह,
बाण्यो बोल्यो खै दै पण, मेरी तो आमद व्है।'

(चाहे तू छः के बीस लेता रह, फिर भी खोखे में ही बैठेगा। इतनी बेईमानी करने पर भी तेरे भाग्य में फैक्ट्री खोलना तो है नहीं।)

ठेठ ढूँढाड़ी शब्द 'साळा' का प्रयोग चमत्कारिक सा है।

ध्वनि संख्या 7 'जीवन पथ'

इस बोल को पढ़कर 'किस्सा तोता मैना' की याद आती है। तोता और मैना लम्बी बात करते हैं। तोता महिलाओं में कमी बतलाता है तो मैना पुरुषों में। अन्त में निष्कर्ष यही निकलता है कि दोनों स्थायी रूप से एक दूसरे के प्रेम बन्धन में बंध जाते हैं, विवाह के माध्यम से। हिन्दू, मुसलमान सबको दावत दी जाती है।

स्त्री और पुरुष का शाश्वत सम्बन्ध है। प्रकृति और पुरुष की भाँति। भगवान शिव को अर्द्धनारीश्वर कहा गया है। शिव का अर्थ कल्याण भी होता है। जीवन में प्रगति और कल्याण स्त्री पुरुष के मैतक्य द्वारा ही संभव है। कवि ने दांपत्य जीवन की भारतीय मर्यादा को इस कविता द्वारा नगाड़ा-नगाड़ी के कथोपकथन के रूप में दर्शाया है।

डॉ. कैलाश जी ने बहुत ही मूल्यवान बातें नगाड़े की चोट पर कही हैं। वह भी ढूँढाड़ी में।

निष्कर्ष : ढूँढाड़ी तोते

डॉ. कैलाश जी की विशाल काव्य रचना पर विस्तृत चर्चा करने के उपरान्त अब सारांश में साहित्य की मान्य विधाओं के अनुसार विचार कर लेते हैं। सर्वप्रथम कलापक्ष की विवेचना।

रचनाकार ढूँढाड़ी की मिट्टी में जन्मे हैं, बड़े हुए हैं। जन्मते और बड़े तो और भी होते हैं किन्तु कवि कैलाश जी ने जिस गंभीरता और स्नेह से वहां की गंध को, संस्कृति को समझा और आत्मसात किया है, वह अतुलनीय है। उनके प्रयास सराहनीय हैं। ठेठ ढूँढाड़ी के देहाती नाम-पांच्या, गुल्या, मंगळ्यो, माल्यो, साद्यो, सुरजी और डोकरी जैसे प्रयोग वहां रचा-बसा कवि ही कर सकता है। एक अनोखा उदाहरण 'बाळ्या' शब्द का प्रयोग और किया है। ऐसा प्रयोग हर कवि और लेखक नहीं कर सकता। यह ढूँढाड़ी भाषा का बहुत ही स्नेह भरा, मीठा शब्द है जो महिलाएं पुरुषों के लिए प्रयोग में लेती हैं। यह शब्द बन्धन मुक्त है और प्रत्येक वय की महिला प्रत्येक वय के पुरुष पर आवश्यकतानुसार प्रयोग कर सकती हैं। किसी भी सम्बन्ध के स्तर पर।

उलाहने के रूप में भी और प्रशंसा आदि के रूप में भी–'हैं बाळ्या तूनै कांई ठीक'।

दूसरा शब्द 'साळा', 'साळा नै अभी बताऊं के'। ग्रामीण जीवन की सामान्य और छोटी मोटी गतिविधियों का भी स्वाभाविक चित्रण किया गया है। रचनाकार ने ग्राम्य जीवन की आत्मा से साक्षात्कार किया है। भावपक्ष भी अपने आप मे सबल है। स्वाभाविक है। गाँवों की सरल और श्रमशील जीवन की झाँकी मिलती है। साथ ही आधुनिक जीवन का भी दिग्दर्शन कराया गया है। टेलीविजन, हीरो होण्डा, बस की सवारी, सौंदर्य प्रसाधन, पढ़ाई सभी प्रकार की आधुनिक बातें जिनका सम्बन्ध ग्राम्य जीवन से हो चुका है, वर्णित की गई हैं।

लेखक, कवि, नाटककार डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा अपनी लेखनी द्वारा उस संस्कृति को जीवित रखने का प्रयास कर रहे हैं, जो अब विलुप्त होती जा रही है। आने वाले बालक कुआँ, लाव चड़स, हल, बैलगाड़ी आदि को केवल सुना करेंगे। गाँवों में भी अब काका, दादा, जीजी नहीं रहे, पापा, मम्मी, अंकल जी होते जा रहे हैं। नान्या, गोपाल्या के स्थान पर गोलू, बबलू आदि आ गये हैं। दाखां मीनाक्षी हो गई है। खेतों की मिट्टी की महक यूरिया तले और गाँव की गली–चौकों की महक कमीशनखोरी की सीमेंट की सड़कों तले दब गई है। धोती को पतलून मात दे चुकी है और बाणगंगा के मेले में–

'भाया की भाभू ले लै, या ठण्डो मीठो ले लै
या तरी करैगो ले लै, तू ले लै भाभी ले लै' की लय पर शर्बत छिड़की बर्फ का लच्छा अब बिकता नहीं दीखता है। मुख्य बात यह है कि बाणगंगा अब सूख चुकी है।

अन्त में लाख पते की एक बात। मैं पाठकों से पूछता हूं–

'खान्देश मैं बैठकर लिख दियो ढूँढाड़
तापी मैं तिरतां करै बाणगंगा की याद,
कुण ऐस्यो छै मैड़ को कांई थांनै थाक,
नै जाणो तो जाणल्यो भाई सियावर कैलाश।'

और स्वत: ही पाठकों के मुँह से निकल पड़ेगा–

'तू कैलाश्या मैड़ का , कर दियो यार कमाल।'

❑❑❑

49

धर्म और कर्म का योग: महन्त श्री गणेशदास ('कर्मयोगी' जीवनी के संदर्भ में)

डॉ. अनुपाल भारद्वाज

भावों की अभिव्यक्ति के लिए साहित्य को सशक्त माध्यमों में से एक माना गया है। समय के साथ-साथ साहित्य समृद्ध होता गया। साहित्यकारों ने जीवन की व्याख्या साहित्य की कई विधाओं के माध्यम से की है। पद्य से गद्य तक साहित्य ने कई पड़ाव पार किए। जैसे-जैसे भावों में विकास होता गया, उसी क्रम में गद्य में कई विधाओं का जन्म होता गया। जीवन की यथार्थता को समेटने की चेष्टा ने गद्यात्मक विधाओं को समृद्ध किया है। रामचन्द्र तिवारी के शब्दों में ''जीवन की जटिलता, संदर्भों का वैविध्य, यथार्थ के अनेक स्तर और पहलू, मन की गुत्थियां, स्त्री-पुरुष संबंधों की रहस्यमयता, प्रकृति और मानव के संघर्ष की अनादि अनंत गाथा ..... विराट् प्रकृति के अनंत रहस्यों को बूझने के प्रयत्न में एकत्रित संघर्षशील अदम्य जिजीविषा वृत्ति वाले मानवों की अनुभव राशि, यह सब कुछ व्यक्त होने के प्रयत्न में गद्य साहित्य की अनेक विधाओं को जन्म दे रहा है।'' [1]

निबंध, आलोचना, उपन्यास, नाटक, कहानी गद्य साहित्य की प्रमुख विधाएं हैं। इनके अतिरिक्त आधुनिक युग में जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, रेखाचित्र, डायरी, रिपोर्ताज आदि विधाओं का विकास हुआ है, हो रहा है।

जीवनी विधा इनमें से नई नहीं है। इसका कोई न कोई रुप पद्य में

* म.नं. 1664, विकास नगर, डाकखाना रेयन एण्ड सिल्क मिल्ज, अमुतसर (पंजाब)

ही सही मध्यकाल में भी मिल जाता है।

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार–किसी व्यक्ति विशेष के जीवन वृतान्त को जीवनी कहते हैं। जीवनी में किसी मनुष्य के अंतर्बाह्य दोनों ही जीवनों का लेखा जोखा होता है।'' [2]

जीवनी साधारण इतिहास और कल्पना का मिश्रण माना जा सकता है। इसमें दो तरह से कथा होती है- अपनी कथा, आत्मकथा तथा पर कथा। आत्मकथा स्वयं व्यक्ति लिखता है जबकि पर-कथा (जीवनी) कोई अन्य व्यक्ति लिखता है। किसी प्रसिद्ध, प्रेरक व्यक्तित्व का जीवन वृत्तांत सबको बताना जीवनी का प्रथम उद्देश्य होता है।

द इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार-"Biography form of nonfictional literature, the subject of which is the life of an individual. In general the form, is considered to include autobiography in which the subject recounts his or her history. Biography can be seen a branch of history because it depends on a selective, ordering and interpretation of materials, written and oral established through research and personal recollection. It can also be seen as a branch of imaginative literature in that it seeks to convey a sense of the individuality and significance the subject through creative sympathetic insight."[3]

प्रसिद्ध व्यक्ति, योद्धा, राजनीतिज्ञ, लोकनायक, महापुरुष आदि की कई घटनाएं मौखिक रुप से पीढ़ी दर पीढ़ी दर आगे आई हैं। यह क्रम ऐसे ही आगे चलता रहता है। लिखित रूप में प्रचलन आरंभ होने से यह सब सुरक्षित रहने लगा।

पश्चिम में जीवनी का प्रारंभिक रूप चौथी-पांचवी ई.पू. मिलता है। ग्रीक और रोमनों ने जीवनी में कार्य किया ''दूसरी शताब्दी में डियोजेनेस लारेटियस ने ग्रीक दार्शनिको की संक्षिप्त जीवनी लिखी परन्तु 46-127 ई. में इस विधा में महत्त्वपूर्ण कार्य प्लूटार्क का है जिसे 'फादर ऑफ बायोग्राफी कहा गया है।'' [4]

प्रारंभ में जीवनी को साहित्य के अंतर्गत नहीं माना गया परन्तु मध्य युग तक आते-आते जीवनी को साहित्य के अंतर्गत माना गया। अंग्रेजी साहित्य में 16वीं शताब्दी में विलियम रोपर की 'लाइफ ऑफ थामस मोर', जार्ज

केवेंडिश की 'लाईफ ऑफ कार्डिनल' ने अच्छी जीवनियां लिखी हैं। इनके अतिरिक्त एंथनी वुड, जॉन ऑब्रे का नाम भी उल्लेखनीय है।

17वीं शताब्दी का सबसे अच्छा जीवनीकार इजाक वॉल्टन माना गया। इसके अतिरिक्त 18वीं शताब्दी में बोसवेल की 'लाईफ ऑफ सैमुअल जॉनसन' [5]जीवनी इस विधा की क्लासिक कृति मानी गई।

19वीं शताब्दी[6] में नया परिवर्तन आया। जॉन गिब्सन लाकहर्ट की 'लाईफ़ ऑफ़ सर वॉल्टर स्कॉट', थॉमस कालाईल-फ्रैडरिक द ग्रेट (13 वर्षों का परिश्रम), फ्रायड की 'लियोनार्डो द विंची' आदि जीवनियां प्रसिद्ध हुई। 20वीं शताब्दी में जीवनी विधा उत्कर्ष की ओर पहुंची है।

इस क्रम में यदि भारतवर्ष की बात की जाए तो आरम्भ में यहां अवतारी पुरुषों, महामानवों की आदर्शीकृत गाथाएं अधिक लिखी गई। मध्ययुग में भक्तों की परम्परा में भक्तमाल लिखे गए आधुनिक युग में वैज्ञानिक और बौद्धिक जीवनदृष्टि के विकास के साथ ही जीवनी साहित्य लिखने की परम्परा पल्लवित हुई और अब तो जीवनी साहित्य हिन्दी गद्य की एक पृथक विधा के रूप में मान्य है।

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार-''हिन्दी में अपेक्षाकृत आधुनिक रीति से जीवनियों का लिखा जाना लगभग 1882 से प्रारंभ होता है। कार्तिक प्रसाद खत्री ने 1893 में मीराबाई का जीवन चरित्र लिखा। भारतेन्दु, राधाकृष्णदास, बालमुकुन्द गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र ने इस विधा में कार्य किया।'' [7]

महापुरुषों, जननायकों में स्वामी दयानंद, महात्मा गांधी पर अधिक जीवनियां लिखी गई। जीवनी लेखन के लिए चरितनायक के संबंध में पूर्ण जानकारी होना अपेक्षित है।

जीवनीकार से यही अपेक्षा की जाती है कि वो तटस्थ भाव से सभी स्थितियों का वर्णन करे। यह कार्य तब और भी कठिन हो जाता है जब जीवनीकार और चरितनायक में पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य, पति-पत्नी आदि का संबंध होता है। ''इस क्रम में अमृतराय (प्रेमचंद के पुत्र) ने 'कलम का सिपाही' तथा शिवरानी देवी (प्रेमचंद की पत्नी) ने 'प्रेमचंद घर में' जीवनियों में इस विधा के स्तर को ऊँचा उठाया है। दोनों का प्रयत्न श्लाघ्य है।'' [8]

इसी क्रम में हिन्दी के प्रतिबद्ध साहित्यकार कैलाशचंद्र शर्मा द्वारा

लिखित जीवनी 'कर्मयोगी' विवेच्य है। कैलाशचंद्र शर्मा पंजाब नैशनल बैंक में वरिष्ठ प्रबन्धक के रूप में कार्यरत हैं परन्तु उनकी उतनी ही सक्रियता साहित्य के क्षेत्र में भी है। ये त्रिवेणी कला संगम, जयपुर के संस्थापक एवं मानद सचिव हैं। इन्होंने हिन्दी साहित्य में अनेक विधाओं (कहानियां, कविताएं, खण्डकाव्य, जीवनी, नाटक, उपन्यास तथा कई लेख) के माध्यम से श्रीवृद्धि की है।

शर्मा जी ने अपने पिता महन्त श्री गणेश दास के जीवन को 'कर्मयोगी' में लिपिबद्ध किया है परन्तु केवल पिता-पुत्र के संबंध ने ही इस जीवनी के लिए इन्हें प्रेरित नहीं किया अपितु महन्त श्री गणेशदास द्वारा किए गए कार्यों, लोगों की उनके प्रति श्रद्धा ने इन्हें इस ओर प्रेरित किया। पुस्तक की भूमिका में लेखक ने इसका कारण स्पष्ट किया है। 'महन्त श्री गणेशदास एक ऐसी ही पुण्यात्मा हुए हैं जो गृहस्थ आश्रम में रह कर भी अपने सत्कर्मों द्वारा जनता के समक्ष मानवता के अनेक मानदण्ड स्थापित कर गए।..... आज भी वे जन-जन के हृदय में सम्मानजनक स्थान रखते हैं ..... ऐसे महान कर्मयोगी के जीवन प्रसंग इस संसार के तुमुल कोलाहल के बीच एक मधुर संगीत है, एक ऐसी सुखद गाथा है जिसे पढ़कर पाठक युगों-युगों तक आनन्द का अनुभव करते रहेंगे।'' [9]

महन्त श्री गणेशदास जयपुर के आस-पास के क्षेत्रों में आज भी सम्मानजनक स्थान रखते हैं। राजस्थान की पृष्ठभूमि भी कुछ ऐसी है जहां धार्मिक क्रियाकलापों को अधिक महत्त्व दिया जाता है। केसरी नंदन हनुमान के प्रति लोगों में अगाध श्रद्धा है। ऐसे ही संस्कार महन्त श्री गणेशदास को अपने पिता मंगलदास से मिले जो वचन के पक्के थे जिन्होंने अपने वचन का पालन करने के लिए जमीन-जायदाद, गांव सब त्याग दिया।

महन्त श्री गणेशदास उनकी चार संतानों में दूसरे थे। बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि, ईश्वर के प्रति आस्थावान थे। शस्त्र और शास्त्रों का अध्ययन/प्रशिक्षण लेना भी कम आयु से ही प्रारम्भ कर दिया था। भगवद्भक्ति में भी उनका अधिक समय व्यतीत होता था। उनकी योग्यता ने लोगों के बीच उन्हें लोकप्रिय बना दिया। अपने गुरु की कृपा से उन्होंने प्रत्येक विपित्त का सामना धैर्य से किया -

उनकी इस भक्ति एवं उनमें आस्था की चर्चाएं पास ही के ग्राम मैड़ के राजपूतों के कानों तक भी आ पहुंची। ग्राम मैड़ के पास ही बाणगंगा नदी (पाण्डवों के अज्ञातवास की समाप्ति पर अर्जुन के बाण से उद्गमित) पर श्री 'सियावर जी का मंदिर' नामक स्थान है। मंदिर के हक में लगभग 120 बीघा पक्की जमीन थी और इसके महन्त वैष्णव सम्प्रदाय के श्री रामदास जी महाराज को गांजा, भांग आदि का इतना अधिक चस्का लग गया था कि उन्होंने मंदिर के किवाड़ तक गिरवी रख दिये थे।'' [10]

मंदिर के पास करोड़ों रू. के आर्थिक साधन थे जिसके कारण राजपूतों का एक गुट उस पर कब्जा करना चाहता था परन्तु एक अन्य गुट ने महन्त श्री गणेशदास की योग्यता को पहचानकर उन्हें रामदास का शिष्यत्व ग्रहण करवाया। मात्र ग्यारह वर्ष की आयु में वे इनके शिष्य बने। गुरु जी विरोधियों की बातों में आकर महन्त जी को प्रताड़ित करते परन्तु वे अपने कर्मपथ पर बिना विचलित हुए बढ़ते रहे। अपने गुरु को भी उन्होंने अपने सेवाभाव से प्रभावित कर लिया। आश्रम में आने वाले प्रत्येक साधू को अपने सेवा-भाव और लगन से प्रभावित कर उनसे तन्त्र-मंत्र आदि सिद्धियां सीख लीं, स्वयं भी तपस्या से सिद्धियां प्राप्त की। जैसे-जैसे उनकी प्रसिद्धि बढ़ी। दूसरा पक्ष उनके विरुद्ध षड्यंत्र रचने लगा। मुकद्दमा भी करवा दिया। एक समय ऐसा आया जब उन्हें आश्रम से भी जाना पड़ा।

''युवक गणेशदास इन घटनाओं से तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने सेवा पूजा का अवसर न मिलने के संबंध में भगवान से क्षमा मांग ली और जंगल में ही एक पत्थर को भगवान मानकर उसकी पूजा करने लगे। वे अपना पूजा-पाठ पूर्ण विधि विधान के साथ किया करते हैं।'' [11]

अंत में विजय सत्य की हुई और मुकद्दमा जीतकर आश्रम का सम्पूर्ण प्रबंध इनके हाथ में आ गया। स्वामी रामदास की मृत्यु के पश्चात् इन्हें मंदिर का महन्त नियुक्त किया गया। गृहस्थ आश्रम में इन्होंने प्रवेश 25 वर्ष में किया। दोनों दायित्वों का निर्वहन सफलतापूर्वक किया।

महन्त श्री गणेशदास समय के पाबन्द नियम के पक्के रहे। स्वयं तीनों पहर भगवान की पूजा करते, स्वयं अपने हाथों से रोटी बनाकर भगवान को भोग लगाते, फिर खाना खाते। आश्रम में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए

स्वयं खाना बनाते। देर रात तक भगवान की तपस्या में लीन रहते। ऊपरी बीमारियों का इलाज करते। यही कारण है कि उनके प्रति लोगों में श्रद्धा बढ़ती गई। कई ऐसे प्रसंग है जिनके कारण पाठक भी उनके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त कर सकते हैं। संसार में जहां विज्ञान की सीमा समाप्त होती है वही से उस परम सत्ता का विस्तार आरंभ होता है।

''कर्मयोगी महन्त श्री गणेशदास जी प्राणीमात्र के प्रति मानवोचित्त व्यवहार करते थे। उनके आश्रम में ऊपर की बीमारियों से पीड़ित स्त्री-पुरुष, बच्चे आदि अक्सर आया करते थे। भक्तों के खान-पान एवं ठहरने आदि की व्यवस्था उनके द्वारा ही की जाती थी। अपने भक्तों के लिए वे स्वयं अपने हाथ से खाना बनाकर उन्हें खिलाया करते थे। इस कार्य में अपनी पत्नी या मेहमानों की कभी भी सहायता नहीं लिया करते थे। अतिथियों को अपने हाथ से बनाया हुआ खाना खिलाकर उन्हें अपार आनन्द की अनुभूति होती थी।'' [12]

सेवा को ही उन्होंने अपना धर्म माना। एक कर्मयोगी बनकर उन्होंने जीवन का प्रत्येक क्षण जिया। उन्होंने अपनी तपस्या से उनकी शरण में आने वाले प्रत्येक भक्त की रक्षा की। इसका प्रमाण उनके द्वारा अपने भक्त को दिया गया एक ताबीज है, जिसमें उन्होंने अपने एक भक्त और उसके पुत्र के आगे संतान उत्पत्ति की तारीख एक ताबीज में लिखकर रख दी थी। पढ़ने में शायद ऐसी घटनाएं अविश्वसनीय लगती हों परन्तु जो महन्त जी के सान्निध्य में रहा हो उसके लिए ऐसे चमत्कार होना सामान्य बात थी। इतने तपस्वी और सिद्ध पुरुष होने के पश्चात् भी महन्त जी ने सदा सादा जीवन ही व्यतीत किया जो उनकी महानता का प्रतीक है।

अपने भक्तों को वे सदाचार, नीति का उपदेश देते। समय का सदुपयोग करने को कहते। संतोष को सबसे बड़ा धन बताते। यही एक सिद्ध पुरुष होने का प्रमाण है।

लेखक ने बड़े मनोयोग से महन्त श्री गणेशदास के जीवन प्रसंग को लिपिबद्ध किया है। कहीं भी अपने और महन्त जी के सम्बन्ध का गुणगान नहीं किया है बल्कि एक भक्त की भांति ही उनके क्रियाकलापों और चमत्कारों को सामने रखा ताकि पाठक उनके जीनव से प्ररेणा ले सकें। अपने मत की

पुष्टि के लिए पुस्तक में स्थान-स्थान पर कई प्रसंग दिए गए हैं। प्रसंगानुसार ही भाषा कहीं चित्रात्मक काव्यात्मक वर्णनात्मक है। सरल शब्दावली में एक सरल महात्मा जी के जीवन को उभारा गया है। तटस्थ भाव से महन्त जी के जीवन का उल्लेख कर लेखक एक कर्मयोगी के प्रेरक जीवन को सबके सामने रखने में सफल हुए हैं।

संदर्भ :

1. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य साहित्य, वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1968, पृष्ठ 192
2. हिन्दी साहित्य कोश, सं. धीरेन्द्र वर्मा, वाराणसी : ज्ञानमण्डल प्रा.लि. 1957, पृष्ठ 335
3. द इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, खण्ड-2 जैकब ई सफरा, शिकागो : यू.एस.ए. 1997, पृष्ठ 222
4. द इनसाइक्लोपीडिया ऑफ अमेरिकाना, खण्ड-3,यू.एस.ए. ग्रोलियर, 1999, पृष्ठ 766
5. वही, पृ. 767
6. वही, पृ.767
7. हिन्दी साहित्य कोश, सं. धीरेन्द्र वर्मा, वाराणसी : ज्ञानमण्डल प्रा.लि. 1957, पृष्ठ 195
8. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य साहित्य, वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1968, पृष्ठ 195
9. डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा, कर्मयोगी (जीवनी), भारती पुस्तक मन्दिर, भरतपुर, 2005, भूमिका
10. डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा, कर्मयोगी (जीवनी), भारती पुस्तक मन्दिर, भरतपुर, 2005, पृष्ठ 9
11. वही, पृष्ठ 11
12. वही, पृष्ठ 18

❑❑❑

50

मानवता के संदेशवाहक गणेशदास जी

डॉ. विपिन गुप्त

21वीं सदी में विज्ञान, फंतासी, सामाजिक मुद्दे, नारी मुक्ति आदि अनगिनत विषयों पर साहित्य रचा जा रहा है, परंतु आज भी ऐसे लेखक हैं जो आध्यात्मिक लोगों के जीवन को जन के समक्ष प्रस्तुत करके ईश्वरीय आराधना का कार्य कर रहे हैं । डा. कैलाशचंद शर्मा कृत जीवनी 'कर्मयोगी' इसी श्रृंखला की एक ही है। लेखक स्वयं आध्यात्मिक विचारधारा से ओतप्रोत है। उनका मानना है –

'प्रथम प्रकार की जीवात्माएँ औरों के लिए पुण्य कार्य कर जाती हैं वे समाज के समक्ष अपने कर्मों से आदर्श, स्थापित कर जाते हैं और अंधकार में एक ऐसा जलता हुआ दीपक छोड़ जाते हैं जो आने वाले पीढ़ियों के मार्गदर्शन हेतु तीव्र प्रकाश-पुंज साबित होता है।' [1]

अपनी इस कृति में लेखक ने महंत श्री गणेशदास के जीवन प्रसंग को रोचक शैली में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। महंत गणेशदास गृहस्थी रहकर भी अपने सत्कर्मों द्वारा मानवता के अनेक मानदंड स्थापित कर गए। लेखक ने महंत के जीवन का गहन विश्लेषण किया। वे महंत की पारिवारिक पृष्ठभूमि का वर्णन करते हैं। महंत का परिवार अलवर जिले के ग्राम बुर्जा में रहता था। गणेशदास जी के पिता मंगलदास बुर्जा गांव में कृषि कार्य के साथ-साथ पंडिताई भी करते थे। कर्ज देने की घटना से विरक्त होकर उन्होंने गांव छोड़ दिया। घूमते-घूमते विराट नगर गांव में पहुँचे जहाँ उनकी ईमानदारी के

* सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, वैश्य पी.जी. महाविद्यालय, भिवानी (हरियाणा)

कारण कृषि कार्य मिल गया। उनकी चार संतानों में गणेशदास मंझले थे।

यह सर्वविदित है कि धर्म के नाम पर सदियों से राजनीति होती रही है जिसे लेखक ने महंत श्री गणेश दास जी की इस जीवनी के माध्यम से उजागर किया है। धर्म के प्रमुख नशे में डूबे रहते थे। मंदिर के स्वामित्व वाली जमीन पर कब्जा लेने की कोशिश रहती थी। इस तरह के वर्णन लेखक जहाँ-तहाँ करता है – 'मंदिर के हक में लगभग एक सौ बीस बीघा पक्की जमीन थी और इसके महंत वैष्णव संप्रदाय के श्री रामदास जी महाराज को गांजा, भांग आदि का इतना अधिक चश्का लग गया था कि उन्होंने मंदिर के किवाड़ तक गिरवी रख दिए थे।' [2]

'यज्ञशाला की बावड़ी जयपुर, आश्रम के पास करोड़ो रुपए के आर्थिक साधन थे, परंतु वहाँ के महन्त जी गांव मैड़ के राजपूत उमराव सिंह को मोहरा बनाकर श्री सियावरजी नामक स्थान की जागीर को भी अपने में मिला लेना चाहते थे।' [3]

कृतिकार का उद्देश्य गणेशदास के जीवन के साथ-साथ उनके संस्कारिक कार्यों को आम जन तक पहुँचाना रहा है। महंत जी गृहस्थी थे, परंतु इसके बावजूद वे महंत का कार्य करते थे, ऊपरी बीमारियों का इलाज करते थे। उनके व्यक्तित्व का वर्णन कुछ इस तरह है –

'महंत श्री गणेश दास जी महाराज स्वाभिमानी एंव अक्खड़ प्रकृति के व्यक्ति थे। घुटनों तक ही धोती, पूरी आस्तीन की रेजी की बनी हुई बंडी, पैरों में बाड़ीजोड़ी की जूतियाँ और ठाकुरजी की सेवा-पूजा में लकड़ी की खडाऊ, यही था उनका पहनावा। ..... गले में तुलसी की माला, तुलसी का मणिया और सिर पर चंदन की बिन्दी वे हर समय लगाए रहते। कहीं बाहर जाते तो खादी की कमीज और कंधे पर अंगोछा।' [4]

आमतौर पर देखा जाता है कि धार्मिक जीवनियों में महिमा मंडन की प्रकृति होती है, परंतु लेखक इन से अलग है। वे महंत का सहज व स्वाभाविक वर्णन करते हैं। उन्होंने कहीं भी अतिरंजित बातें नहीं बताई हैं। महंत की भक्ति पद्धति का कितना सहज वर्णन हैं –

'महंत जी प्रात: काल पांच बजे उठ जाया करते और नित्यप्रति गंगा नदी में स्नान करते आते। उसके पश्चात् भगवान की पूजा-आरती करते एवं उनके भोग लगाते। दोपहर को अपने हाथों से दो मोटे-मोटे टिक्कड बनाते और

पूजा करके भगवान के भोग लगाया करते, तत्पश्चात् स्वयं प्रसाद पाते थे। ..... रात्रि को संझारती करके मिश्री या बताशे का भोग लगाते और उसके बाद देर रात तक तपस्या में लीन रहते।' [5]

कैलाश जी ने अपनी इस रचना में महंत जी की सामाजिकता पर प्रकाश डाला है। वे कभी चमत्कारिक शक्तियों का प्रदर्शन नहीं करते थे। लेखक बताते हैं कि श्री सियावरजी के मंदिर के सामने घास के मैदान में छप्पर से ढकी हुई बैठक होती थी। महात्मा जी भक्तों को उपदेश, ज्ञान व व्यावहारिक जीवन की बातें बताया करते। वे संतोष की महिमा बताते हुए कहते कि व्यक्ति को झूठे संतोष की प्राप्ति के लिए छल, प्रपंच, झूठ, धोखाधड़ी आदि का सहारा नहीं लेना चाहिए। वे बताते कि 'संतोष ही व्यक्ति के जीवन के जीवन का सबसे बड़ा सुख है और जिस व्यक्ति को संतोष मिल जाता है, उसके लिए धन दौलत, मान-सम्मान आदि की कोई कमी नही रह जाया करती है।' [6]

लेखक ने जीवनीकार के कार्यों को उभारा हैं। महंत गणेशदास जी ने आम जनता को जीवनोपयोगी शिक्षाएँ प्रदान कीं। वे चमत्कार को नमस्कार नहीं करते थे। समय पर कार्य करना, समय विशेष पर वस्तु की उपयोगिता, मानमर्यादा रखना आदि अनेक प्रवचन जन उपयोगी थे। महात्मा जी मानना था कि यदि कोई कार्य उपयुक्त समय पर निष्पादित कर लिया जाता है तो उसके कर्ता को उसका प्रतिफल भी सही समय पर एवं अपेक्षित रूप में मिल जाता है, अन्यथा उचित प्रतिफल से वंचित रह जाता है। किसी वस्तु की उपयोगिता किसी समय विशेष पर अधिक हो सकती है। इसी तरह के उपदेश को दृष्टांतों से पुष्ट किया जाता था। किसान द्वारा बैलों के लिए अपने कानों की मुर्कियां देना दृष्टांत इसी तरह का था।

लेखक ने महंत जी के प्राणीमात्र के लिए मानवोचित व्यवहार का समुचित स्थान दिया है। महंत जी भूत-प्रेतों, तंत्र-मंत्र से संबंधित समस्याओं का निवारण करते थे। इनके लिए वे आंडबर या चमत्कार नहीं करते थे। शनिवार एवं मंगलवार की रात को पूजा करने के बाद वे ताबीज बनाते थे तथा रात को भक्तों को स्वयं खाना खिलाते थे। लेखक ने अनेक प्रसंगों को रोचक ढंग से प्रस्तुत किया हैं जिसमें ताबीज का प्रसंग, गडे पुतले, जगदीश शर्मा का इलाज आदि प्रमुख है।

वस्तुत: लेखक कैलाशचंद्र शर्मा ने महंत श्री गणेश दास जी के जीवन

चरित्र को दृष्टांतों के साथ आम पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया है। भले ही जीवनी विधा की तात्विक कसौटी पर यह रचना खरी न उतरती हो, फिर भी लेखक की मूल भावना को पूर्णत: अभिव्यक्त करती है-

'मनुष्य आदिकाल से ही मानवता का भूखा रहा है। कहीं वह दिग्भ्रांत हो गया है तो कहीं उसके विकास की गति अवरूद्ध हो गई है। परंतु फिर भी वह जाने अनजाने में अपने मूल स्रोत की ओर अग्रसर होना चाहता है। वह उस भावभूमि तक पहुँच जाने को उत्सुक रहता है जहाँ शाश्वत शान्ति, असीम प्रेम और आनंद की विद्यमानता है। वह ऐसी, मानवता की ओर बढ़ना चाहता है, जहाँ अज्ञान का आवरण हटाकर द्वैत की दुविधा मिट जाती है और प्रेम का सागर लहराता दृष्टिगोचर होता है।' [7]

संदर्भ :

1. कर्मयोगी डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा; 2005, भारती पुस्तक मंदिर, भरतपुर (राज0) - पृ0 6
2. वही, पृ0 9
3. वही, पृ0 9
4. वही, पृ0 15
5. वही, पृ0 14
6. वही, पृ0 80
7. वही, भूमिका

❑❑❑

51

कर्मयोगी : कर्म का दर्पण

डॉ. शलेन्द्र स्वामी 'शैल'

भारत आध्यात्मिक देश है, जहाँ अनेक साधु-सन्तों ने जन्म लेकर उज्ज्वल सांस्कृतिक धारा को प्रवाहमान रखा है- जिससे निमग्न होकर आर्त-मानव-हृदय ने सुख-शान्ति की छाया को प्राप्त किया है। सन्तों के मुखश्री से नि:सृत उपदेशामृत की पावन ज्ञान-धारा मनोमालिन्य का निवारण कर अन्त:करण को विशुद्ध बनाती है। सन्तों के जीवन चरित पर आधारित पुस्तक आज के भौतिकवाद की अन्धी दौड़ में दिग्भ्रमित मनुष्य को उचित राह दिखा सकती है। प्रात: स्मरणीय महन्त श्री गणेश दास महाराज के पावन जीवन चरित पर आधारित श्रेष्ठ पुस्तक है 'कर्मयोगी' ।

विद्वान लेखक डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा की सशक्त लेखनी महन्त श्री गणेश दास महाराज के उज्ज्वल व्यक्तित्व और कृतित्व को उद्घाटित करती है। पुस्तक का आरम्भ महन्त श्री गणेश दास महाराज के जन्म की घटना से होता है। आज से लगभग नब्बे वर्ष पूर्व विराटनगर (जिला जयपुर) नामक ऐतिहासिक स्थान पर स्वाभिमानी धर्मपरायण भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण श्री मंगलदास जी के यहां पुत्र गणेश दास का जन्म हुआ। पुत्र जन्मोत्सव पर खुशियां मनाना स्वाभाविक ही था। बालक गणेश ने प्रारम्भिक अध्ययन में ही कुशाग्र बुद्धि का परिचय दे दिया था। शारीरिक रूप से बलिष्ठ गणेश बचपन से ही भगवद्भक्ति की ओर उन्मुख हो गये थे।

आरम्भिक दिक्कतों के पश्चात् बालक गणेश को वैष्णव सम्प्रदाय के महन्त तथा श्री सियावरजी मन्दिर, मैड़ (जयपुर) के पुजारी स्वामी रामदास

*महामन्त्री, अखिल भारतीय साहित्य परिषद, राजस्थान
जोधपुर इकाई, 'मातुश्री' चाँदपोल चौका, न्यू चाँदपोल रोड, जोधपुर (राजस्थान)

महाराज का शिष्य बनाया गया। बालक गणेश दास गुरु-सेवा तथा भगवद् सेवा में पूर्ण समर्पित हो गये। ग्यारह वर्ष की अवस्था में शिष्यत्व ग्रहण करने के पश्चात् गणेश दास ने कठोर तपस्या करके तन्त्र-मन्त्र की सिद्धियों को भी परोपकारार्थ प्राप्त किया। गुरू रामदास महाराज के ब्रह्मलीन हो जाने के पश्चात् श्री गणेश दास श्री सियावरजी के मन्दिर के महन्त बने। पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्याश्रम में रहते हुए कठोर तपस्या एवं समर्पित ईश-सेवा करके श्री गणेश दास ने गृहस्थ जीवन में प्रवेश किया। सद्गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए महन्त जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन मन्दिर की सेवा-पूजा में समर्पित कर दिया। स्वयं अपने हाथों से भोजन बनाकर भगवान को भोग लगाते थे। ईश्वर की कृपा से महन्त गणेश दास महाराज ने असंख्य दुखी प्राणियों के कष्टों को दूर किया तथा जनता जनार्दन के हृदय में प्रतिष्ठित हुए। शनिवार एवं मंगलवार के दिन मन्दिर में सत्संग होता था। महन्त जी भूत-प्रेत से पीड़ित व्यक्तियों को भी राहत प्रदान करते थे। इस समस्या से पीड़ित व्यक्ति का इलाज आधुनिक आयुर्विज्ञान के पास भी नहीं है। तन्त्र-मन्त्र से पीड़ित व्यक्ति और भूत-प्रेत की आधि-व्याधि से पीड़ित व्यक्ति जब कष्टों से राहत पाते थे तो वे हृदय के अन्त: स्थल से महन्त श्री गणेश दास महाराज के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते थे। वास्तव में महन्त श्री गणेश दास महाराज सच्चे कर्मयोगी थे।

इस प्रकार 'कर्मयोगी' पुस्तक महन्त गणेश दास महाराज की यथार्थपरक जीवनी है। डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा की लेखनी कल्पना लोक में विचरण नहीं करती है, बल्कि जीवन के यथार्थ धरातल पर अग्रगामी होती हुई जीवन की सच्चाई को अभिव्यक्त करती है। लेखनी मिट्टी से जुड़कर स्वर्ग-दूत के अनुभवों को व्यक्त करती है, हमें आनन्दमय मानवता से परिपूर्ण जीवन जीने का सन्देश देती है।

वस्तुत: 'वसुधैव कुटुम्बकम् ' तथा 'सर्वेभवन्तु सुखिन:' की भावना सन्तों के 'ढ़ाई आखर के प्रेम के' में निहित है। सन्तों का प्रेम-प्रसाद पाकर मानव शून्य-हृदय में सरसता का संचार पाता है। सन्तों का जीवन एकांगी नहीं होता। सन्त परोपकार के लिए ही जीते हैं। वे हृदय में प्रेम की ज्योति जगाकर हमें उन्नति के पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा देते हैं। महन्त गणेश दास महाराज की वाणी भी हमें उद्बोधित कर लक्ष्य की ओर चलने को प्रेरित करती है।

यह प्रसन्नता का विषय है कि बैंक में प्रबन्धक के पद पर रहते हुए

व्यस्त समय में भी डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा साहित्य-संगीत साधना हेतु रत रहते हैं। जिस प्रकार सूर्यनगरी जोधपुर के निवासी पं. श्रीराम दवे ने बैंक-प्रबन्धक रहते हुए भी संस्कृत साहित्य की अमिट साधना की वैसे ही डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा हिन्दी साहित्य की अथक साधना कर रहे हैं। डॉ. शर्मा का बहुआयामी व्यक्तित्व साहित्य साधकों को रोमांचित एवं चमत्कृत करता है। डॉ. शर्मा की कहानी-विधा, काव्य-विधा, नाटक-विधा, उपन्यास-विधा तथा जीवनी-विधा पर गहरी पकड़ रही है तथा उनकी प्रखर लेखनी हिन्दी साहित्य की इन विधाओं पर गतिशील रही है। उनकी लेखनी का विस्तृत फलक पाठकों एवं सहृदयों को प्रमुदित एवं आनन्दित करता है। भक्ति, श्रृंगार एवं नीति की त्रिवेणी में निमज्जित उनकी लेखनी कला, साहित्य एवं संगीत के संगम को उद्घाटित करती है। फलस्वरूप त्रिवेणी कला संगम, जयपुर के मानद सचिव के पद पर सुशोभित एवं सुवासित और सुभाषित करना डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के ही विराट व्यक्तित्व का परिचायक है।

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा ने 'कर्मयोगी' पुस्तक में सारगर्भित रूप में कुल 88 पृष्ठों में महन्त गणेश दास महाराज की जीवनी प्रस्तुत की है। भाषा सरल एवं प्रवाहमान है। विरक्त, स्त्रोत, आमन्त्रण, परिलक्षित जैसे संस्कृत शब्द, काफ़िर, क़जा, लाइलाज़ जैसे उर्दू-फारसी शब्द, अफ़सर, स्टेट, साहब जैसे अंग्रेजी शब्द तथा मुण्डी, धूणी, टिक्कड़, टनटनी जैसे ग्राम्य बोलचाल के शब्दों का प्रयोग भी पुस्तक में हुआ है। लेखक की शैली गतिशील है। शैली में विद्वता का अभिमान नहीं है, बल्कि लोकमानस की सरलता, तरलता एवं सहृदयता विद्यमान है। पुस्तक को पूज्य दीदी स्व. गीता शर्मा की चिर स्मृति में सादर समर्पित करके लेखक ने दिवंगत पुण्यात्मा के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है। यह लेखक की उदारता, नम्रता एवं सहजता का परिचायक है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि विद्वान लेखक डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा द्वारा लिखित पुस्तक 'कर्मयोगी' परम् श्रद्धेय महन्त गणेश दास महाराज की उज्ज्वल एवं प्रामाणिक जीवनी प्रस्तुत करती है। सरस एवं सरल भाषा-शैली में महन्त जी के उदात्त व्यक्तित्व को यथार्थपरक घटनाओं के माध्यम से उद्घाटित किया गया है। लेखक डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा की यह पावन कृति स्तुत्य है, वन्दनीय है और अभिनन्दनीय है।

❑❑❑

52

कर्मयोगी महन्त गणेशदास: एक अवलोकन

डॉ. विनय कुमार

दर्पण झूठ नहीं बोलता। जो जैसा है उसे बिना फेरबदल के हू-बहू दिखा देना ही दर्पण की सार्थकता का सबसे बड़ा प्रमाण है। यही कारण है कि हमारे महामनीषियों ने दर्पण के लिये 'आदर्श' शब्द का प्रयोग किया है। आदर्श दर्पण का अभिधेय है, वाक्यार्थ है। वस्तुत: आजकल जिसे हम 'आदर्श' के रूप में प्रयोग करते हैं वह तो लक्ष्यार्थ मात्र है। किसी भी छवि को यथावत साफ सुथरा प्रतिबिम्बित करते हुये पूरे स्वरूप का परिचय करवा देना उस 'आदर्श' का व्यंग्यार्थ है। कितने सुन्दर मुहावरे की परिकल्पना की गई है—''शीशा दिखाना''। लौकिक व्यवहार से लेकर परमार्थ की दहलीज से परिचित करवाता है उसका चिन्तन मित्र बनता है, उसे आत्मबोध करवाने में परमसखा की भूमिका निभाता है। बस, चिन्ता केवल इस बात की करनी है कि कहीं दर्पण मैला तो नहीं? कहीं मैला होने की गुंजाइश तो नहीं? यदि नहीं तो फिक्र किस बात की है?

लेखनी भी दर्पण की सहोदरी है। वह भी झूठ नहीं बोलती। लेखनी की सार्थकता का भी सबसे प्रमाण यही है कि किसी भी छवि को बिना फेर के हू-बहू दिखा देना; न केवल दिखा देना अपितु बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत कर देना, ''सत्यम शिवम् सुन्दरम्'' का प्रतिमान बन जाना। फिक्र तो बस इस बात की करनी है कि लेखनी में कहीं कोई मैल तो नहीं। और यह सब निर्भर करता है उस लेखक पर जो लेखनी को, कलम को तलवार बनाकर सामाजिक, वैश्विक रण प्रांगण में अपने जौहर दिखाता है। साहित्य समाज का दर्पण है और लेखनी उस साहित्य के सृजन का महास्रोत बनती है, इसीलिये

* सहायक प्रोफेसर, गुरु नानक खालसा कॉलेज, यमुनानगर (हरियाणा)

वह दर्पण की सहोदरी हो जाती है तथा सामाजिक, वैश्विक रण प्रांगण में इतिहास के कैनवास पर रंग बिखेरने के लिये, जीवन दिशाओं को सुचारू रूप से मोड़ने के लिये, बेजान रूढ़ियों को तोड़ने के लिये वही लेखनी, वही कलम तलवार बनती है। इसीलिये लेखक का प्रथम कर्त्तव्य, प्रथम धर्म यह बनता है कि ''सत्यं शिवं सुन्दरम्'' की धुरी कभी न छोड़े क्योंकि सारे समाज द्वारा अपनी दिशा ढूंढ़ने के लिये उसी का मुँह ताका जाता है। डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा ने ''कर्मयोगी'' को लिखकर न केवल एक जीवनी प्रस्तुत की है अपितु एक महात्मा-महापुरुष को अपना केन्द्र बनाकर समाज के सामने एक आदर्श प्रतिमान प्रस्तुत करने का अत्यन्त सराहनीय प्रयास किया है। मनुष्य कदम-कदम पर अपनी दिशा भूल बैठता है, अपने विकास की गति को अवरुद्ध कर बैठता है किन्तु फिर भी उसके मन में एक कसक, एक कशिश, एक ललक निरन्तर बनी रहती है कि मेरा मूल स्रोत क्या है? ''तमसो माँ ज्योतिर्गमय'' एक शाश्वत गवेषणा ही तो है, अन्त: स्थल की एक अभिलाषा ही तो है। हम कौन होते हैं उसे रोकने वाले—

''प्रकृतिं यानि भूतानि निग्रह: किं करिष्यति।।'' ।। श्रीमद्भगवतगीता।।

''कर्मयोगी'' पुस्तक में महन्त श्री गणेशदास के जीवन का आद्योपान्त विवरण लेखक ने बड़ी विशदता के साथ प्रस्तुत किया है। अलवर (राजस्थान) के बुर्जा ग्राम के भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण परिवार में जन्मे परम रामभक्त श्री मंगलदास के घर में जन्म लेने गणेशदास के जीवन का हर एक पहलू उनकी दृढ़ता, आत्मविश्वास की पराकाष्ठा एवम् अध्यात्म के बल से पा लिया वह नि:सन्देह एक महान् आदर्श है।

''कर्मयोगी'' में लेखक ने अपनी लेखनी से महन्त श्री गणेश दास के जीवन के हर एक पहलू को बड़े सुन्दर ढंग से उकेरा है। पूरे विस्तृत वर्णन को लेखक ने सटीक बिन्दुओं में बांधकर प्रस्तुत किया है जिससे वह विवरण केवल विवरण मात्र नहीं रहता अपितु सहज स्वाभाविक ढंग से अनायास ही मनोमस्तिष्क में अंकित हो जाता है। महन्त श्री गणेश दास का गृहस्थ जीवन में प्रवेश, तीनों समय भगवान की पूजा, परमार्थ के कार्य, महन्त श्री का व्यक्तित्व, मन्दिर की बैठक (धूणी) के लिये कोर मँगवाना, गर्मियों में भगवान को पँखा झलना, मानवोचित व्यवहार, काली मिर्च और भभूत, भजन, ताबीज, झाड़ा, लगाना, भूतप्रेत, भूत भविष्य वर्तमान का ज्ञान (त्रिकालज्ञता),

ज्योतिर्विज्ञान पर अधिकार, कर्मयोगी धर्मगुरु में रूप में, विविध रोगियों का इलाज, जगदीश शर्मा का किस्सा, गडे हुये पुतले, महात्मा जी की सीख, कुतिया वाला यज्ञ, सन्तोषी नर सदा सुखी, इत्यादि छोटे-छोटे कथ्य तथ्य बिन्दुओं में पूरी जीवनी को बाँटकर लेखक ने सहज रोचक बना दिया है। किसी रोचक उपदेशात्मक, दिशा निर्देशक लघु कथा संग्रह की तरह कर्मयोगी जीवनी बरबस अपनी ओर खींच लेती है।

बीच-बीच में जीवन पथ प्रदर्शक सूक्तियाँ भी सहज ही मन को आकृष्ट कर लेती है—'देख पराई चोपड़ी, क्यूं तरसावे जीव, रूखा सूखा खयकार, ठण्डा पाणी पीव।।'

वाह, अपरिग्रह का कितना सुन्दर उपदेश है।

हमारे धर्म वाक्यों में जो धर्म का नि:रूपण किया गया है उसी का स्पष्ट प्रतिबिम्ब ही तो है महन्त श्री गणेश दास की यह जीवनी। इसी तरह समय विशेष पर किसी वस्तु की उपयोगिता, किसान द्वारा अपने कानों की मुर्कियां देना, कर्मयोगी की वैदिक सिद्धियाँ इत्यादि। दैनिक जीवनपयोगी सरल-सरल दृष्टान्तों के द्वारा कर्मयोगी पुस्तक पगपग पर मनुष्य के भटकते मनुष्य को रास्ता दिखाती है।

इतना ही नहीं, लेखक ने पुस्तक के अन्त में कर्मयोगी की सिद्धियों में एवं तंत्र-मंत्र का संक्षिप्त विवरण भी प्रस्तुत कर दिया है जो कि किसी हीरे मोती के मिलने के बराबर है। शरणागत मंत्र, षटाक्षर बीज मंत्र, रोगनिवारण मन्त्र, मूँठ बनाने की विधि, मूँठ चलाना, मूँठ उतारना, मूँठ रोकने की विधि, रक्षक कार का मन्त्र, सम्मान लब्धक मन्त्र, वशीकरण मन्त्र, इत्यादि तन्त्र-मन्त्रों का परिचय साधनामार्गियों के लिये भी वरदान के समान है।

महन्त श्री गणेश दास का दिव्य स्वरूप, उनकी दिव्य साधना और दिव्यलब्धियाँ निस्सन्देह उजाले का अवतार हैं। निराशाओं में आशा का संचार है। लेखक कैलाश चन्द्र शर्मा अपने इस स्तुत्य प्रयास के लिये बधाई के पात्र हैं। यह पुस्तक लेखक की अपनी (निजी) ज्ञान एवम् आध्यात्म सम्पत्ति को भी इंगित करती है। महन्त श्री गणेश दास की जीवनी अज्ञान के आवरण का निवारण है, शुद्धबुद्धस्वरूप का आलोक है, अद्वैत की प्रतिष्ठापना है।

❑❑❑

53

निर्धनता में सफलता (बम्बई की डायरी से)

डॉ. मिथिलेश कुमार सिंह

व्यक्ति के विचार उसके भविष्य को जोड़ने वाले वे सूत्र हैं जो उसके कार्यों को गति प्रदान करते हुए लक्ष्य की उपलब्धि में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। जिस प्रकार मनुष्य पर उसके आस-पास के वातावरण एवं संगति का प्रभाव पड़ता है वैसा ही प्रभाव उसके द्वारा किये जाने वाले कार्यों पर उसकी सोच का पड़ता है। अर्थात् मनुष्य के जीवन में उसकी सोच ही उसके कार्यों को गति प्रदान करती है और उसके जीवन में सफलता या असफलता का हेतु उसकी वर्तमान सोच ही हुआ करती है। यही कारण है कि एक गर्भस्थ शिशु में अच्छी सोच की निर्मीति हेतु एक माता अपने मन में सदैव अच्छे एवं प्रगतिशील विचार सँजोये रखने का प्रयास करती है ताकि वह एक ऐसे स्वस्थ शिशु को जन्म दे सके जो सद्विचारों एवं अपनी अच्छी सोच के बल पर जीवन में सफलता की ऊंचाइयों पर पहुँचकर नये कीर्तिमान स्थापित कर सके।

साहित्य, संगीत एवं नाट्य जगत् में डॉ. कैलाश चन्द्रशर्मा का नाम आज अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। शर्मा जी वैष्णवी विचारधारा वाले एक अच्छे इन्सान हैं और इसकी पुष्टि उनके द्वारा रचित साहित्य की विभिन्न विधाओं में देखने को मिलती है। उनकी कृति 'बम्बई की डायरी' एक ऐसा ही दर्पण है जो न केवल इस बात का समर्थन करता है अपितु जनसामान्य की प्रबल सोच के परिप्रेक्ष्य में उसकी निश्चित सफलता की सत्यता को भी दर्शाता है।

*स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, राँची विश्वविद्यालय.
निवास : 3 बी रामेश्वरम अपार्टमेंट, अशोक कुँज, राँची-834002

शर्मा जी ने 28 फरवरी 1980 से 17 मार्च 1980 तक की समयावधि में डायरी का लेखन किया है। लेखन की अवधि बहुत ही कम रही परन्तु उनके चिन्तन का फलक बहुत विशाल रहा। उनके जीवन की तत्कालीन परिस्थितियां इतनी प्रभावशील रही कि उन्होंने विभिन्न गलियारों से गुजरते हुए एक सामान्य से इन्सान को एक ऐसे उच्च शिखर पर ले जा स्थापित किया जो अपने आप में विशिष्ट एवं अनुकरणीय है।

लेखक को 28 फरवरी 1980 को एक डायरी किसी से उपहार में मिलती है। उसके लिये यह उपहार बहुत मायने रखता है। वह अपने मित्रों से इतना जुड़ाव रखता है कि इस डायरी को उन्हें देना चाहता है-

'आज दिनांक 28.2.80 को सम्पत ब्रदर्स से यह डायरी मिली। मुझे डायरी प्राप्त करते ही अपने दोस्तों व घर की याद आयी । मैं यह डायरी कभी तो अपने दोस्त प्रेमजी व गणेश को देने की सोचता और कभी सोचता कि इसे मैड़ सीतारामजी भाईसाहब को भिजवा दूं। यदि ये लोग इतने अधिक दूरी पर न होते तो निश्चय ही इसे मैं इनमें से किसी को भी दे देता। एक बार तो जी मैं आया कि इसे डाक द्वारा भिजवा दूं परन्तु पैसे की कमी के कारण ऐसा न कर सका।'

'मैं वर्ष 1980 में सी.ए. की पढ़ाई करने बम्बई गया था। इससे पूर्व 1978 में प्रथम श्रेणी से बी.कॉम. की परीक्षा पास करने के पश्चात् मैंने राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के आर्थिक प्रशासन एवं वित्तीय प्रबन्ध विभाग में नियमित विद्यार्थी के रूप में एम.कॉम. में प्रवेश लिया तथा उसके तुरन्त पश्चात् सी.ए. की पढ़ाई करने हेतु अमरनाथ कपूर एण्ड कम्पनी, कनाट प्लेस नई दिल्ली में प्रवेश लिया। कुछ ही दिनों बाद अपने मित्र श्री जुगलकिशोर गुप्ता को भी मैंने आर्टिकल के रूप में अपनी ही कम्पनी में बुला लिया परन्तु अपने मित्र की सलाह पर दोनों ही बिना अपने बॉस को बताये तथा ऑफिस की चाबी एवं एक पत्र कपूर साहब के नाम छोड़कर वापस जयपुर चले आये। जयपुर आये, पढ़ाई में मन न लगा परन्तु परीक्षा दी और एम.कॉम. प्रीवियस के परसेन्टेज बिगड़ गये। तब फिर मन में कुछ निश्चय करके दुबारा सी.ए. करने बम्बई गया।'

(कुछ-कुछ यादें : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा से)

घर की आर्थिक स्थिति ठीक न थी परन्तु लेखक सी.ए. की पढ़ाई करने मुम्बई चला ही गया। ठहरने की व्यवस्था तो भुलेश्वर रोड स्थित महन्त श्री नरसिंह दास जी के पँचमुखी हनुमान मन्दिर में हो गई थी परन्तु खाने आदि का खर्चा वहन करना उनके लिये मुश्किल हो रहा था। उनकी यह आर्थिक परेशानी समीक्ष्य डायरी के पन्नों से स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है-

'.....एक बार तो जी मैं आया कि इसे डाक द्वारा भिजवा दूं परन्तु पैसे की कमी के कारण ऐसा न कर सका। '

आर्थिक विषमताजन्य चिन्ता में भी लेखक के मन में स्वजनों के प्रति अपनत्वपन की भावना मौजूद है । लेखक एक सहृदय व्यक्ति हैं तथा समाज के कमजोर वर्ग के साथ उनका विशेष लगाव रहा है जो उनके नाटक छोटा बेगारी में देखा जा सकता है।

'रेवती : पालर कहाँ से मांग लाती ..... मांग लाऊंगी'

(तुक्के का बादशाह : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 30)

घर की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है परन्तु फिर भी रेवती अपने पुत्र का पूरा-पूरा ध्यान रखती है। उसे अपने होनहार बेटे से काफी उम्मीदें हैं। इसी प्रकार की आशाएं अभिव्यक्ति उपन्यास के नायक विस्वास से उसके बाबा को हैं। वे भी अपने होनहार पुत्र का उसी प्रकार ध्यान रखते हैं जिस प्रकार नाटक छोटा बेगारी की रेवती आपे पुत्र गोपी का रखती है।

'पिताश्री मुझसे कहा करते- बेटा निर्मल, तुम पढ़-लिखकर कोई नौकरी कर लेना, यह मत सोचना कि मैं कोई खास नौकरी मिलने पर ही करूंगा। तुम अच्छी नौकरी मिलने पर पहले वाली को छोड़ देना और इसी तरह जीवन में आगे बढ़ते रहना।' (अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा, पृष्ठ..)

'बाबा स्वयं परोसते और मेरे ना ना करने पर भी दो चमचे खीर डाल ही देते—

'ले ले बेटा खा ले। पूरे साल तो वहाँ चटनी-रोटी ही खायी होगी तूने।' कितनी चिन्ता रहती थी बाबा को मेरी। एक दिन जब छुट्टियाँ खत्म करके शहर रवाना हो रहा था तो मेरी घर पर ही रह गयी कमीज़ को कैसे बस रुकवाकर दे आये थे बाबा।

थैले में सामान रखते समय मुझसे एक-एक सामान का नाम पूछते थे—

'आटे का कनस्तर, घी का डिब्बा और घासलेट लाने के लिए खाली पीपी ले ली विस्वास?'

'हाँ बाबा सब रख लिया।' मैं आँखें बन्द कर सब कुछ याद करते हुए बाबा को आश्वस्त करता।

'और वो बबूल की दाँतुन का गट्ठा?' बाबा फिर पूछते।

'अरे बाबा, कहाँ रखा है? वो तो रह ही गया।'

अपनी भूल को विशेष हँसी के साथ स्वीकारता मैं।

बाब बताते—'बेटे वो परीण्डे (घर के चौक में पानी से भरे मटके रखने का एक स्थान) के नीचे मिट्टी में दबा रखी है, जा ले आ।'

और फिर मुझे लक्ष्य करके ऊँची आवाज में कहते—

बहुत ही उत्तम रहती हैं ये बबूल की दाँतुन। कहीं भी जाओ, भई अपनी हुई तो किसी के मोहताज नहीं हुए और सुबह मुँह माँज लिया, वर्ना कहाँ भागोगे शहर में लेने।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ..)

नाटक छोटा बेगारी का गोपी गरीबी एवं पग-पग पर आ रही बाधाओं की स्थिति में भी जीवन में आगे बढ़ने की इच्छा रखता है और अपनी माँ के प्रोत्साहन से उसकी इच्छा शक्ति को बल मिलता है।

'अरे बेटा। आज तू..... ..... स्कूल जाऊंगा'

(तुक्के का बादशाह : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ ....)

नाटक पेड़ हमारे मित्र में गरीब परिवार का भीखू, सेठ की पुत्री सिमरन के समक्ष अपने परिश्रम के परिणाम को उजागर करता है।

'बीबीजी, यह बगीचा .....जरूरी है' ।

(तुक्के का बादशाह : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ ....)

'विरह का इन्द्रधनुष' की मीता जीजी भी गरीब ही थी परन्तु वह अपने होनहार भाई निर्मल का विशेष ध्यान रखती है। ठीक उसी तरह जैसे

कि बाबा विस्वास का रखते थे।

अगले दिन प्रात: छह बजे ही मैं रोहतक जाने को तैयार हो गया। दीदी ने पूछा था-

'परीक्षाओं की अंकतालिकाएं और प्रमाण पत्र ले लिये निर्मल?'

'हां दीदी ले लिए।'

'और लिखने को पैन?' उसी प्रवाह में पूछा था दीदी ने।

'क्या जरुरत है दीदी उसकी?'

'अरे भई अपना हुआ तो काम मे ले लिया नहीं तो यदि हस्ताक्षर भी करने पड़ गये तो किससे मांगोगे पराये शहर में।'

(विरह का इन्द्रधनुष : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 77)

'बम्बई की डायरी' में लेखक आर्थिक संकट से जूझ रहा है। इस दशा में उसे अपने मित्रों से सहयोग मिलता है और वह मैदान में डटा रहता है।

'आज सुबह-सुबह ही प्रेमजी का पत्र मिला जिसे पढ़कर अपार प्रसन्नता हुई। पिछले दो तीन दिनों से मैं उदास सा था और प्रेमजी का पत्र पाकर राहत महसूस हुई। उन्होंने लिखा है कि यदि पैसों की आवश्यकता हो तो तुरन्त लिखना। मुझे वास्तव में पैसों की तुरन्त आवश्यकता है अत: मैंने लिख दिया है । कुछ ही दिनों में पैसे आ जायेंगे। वैसे आज मेरे पास 80-90 पैसे ही रह गये हैं, प्रेमजी के पैसे मिलने तक इन्हीं से काम चलाना है सो काम चल भी जायेगा।'

(बम्बई की डायरी : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा)

'विरह का इन्द्रधनुष' की मीता जीजी भी आर्थिक संकट में अपने भाई की मदद करती है।

वह अपनी दीदी से बस का किराया लेकर नौकरी का इन्टरव्यू देने रोहतक के लिए प्रस्थान करता है।

अपने अंचल में समेटकर पुचकारते हुए दिलासा दिया था दीदी ने- 'बाबा नहीं तो क्या हुआ निर्मल, मैं बाबा की जगह हूं तुम्हारे लिए। आगे से तुम कभी मायूस मत होना।'

'और पैसे कितने चाहिएं तुम्हें किराये के लिए?' मुझे अलग करते

हुए पूछा था दीदी ने।

'दीदी बीस रुपये एक तरफ का किराया है इसलिए पचास रुपये दे दो। रिक्शा भाड़ा सब हो जायेगा उसमें।' आश्वस्तता से कहा था मैंने।

दीदी ने बहुत कहा कि दस-बीस रुपये और ले जाओ, परन्तु मैं न माना और दीदी का आशीर्वाद लेकर पहुंच गया बस स्टैड पर। बस रवाना होने वाली थी। मैं सीधा उसमें जाकर बैठ गया।

(विरह का इन्द्रधनुष : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 78)

लेखक की एक मुँहबोली बहिन है, श्रीमती सुरेश कँवर शेखावत। वैसे तो यह उनके स्कूली साथी की पत्नी हैं। परन्तु जब ये विवाह होकर ग्राम मैड़ आयी तभी लेखक को धर्म-भाई बना लिया। उस समय सुरेश बाई आठवीं कक्षा पास थी। उनकी सैकेण्डरी परीक्षा की तैयारी हेतु लेखक ने उन्हें जयपुर में पढाया था। आगे बी.कॉम. एवं एम.कॉम. की पढाई में भी उनकी मदद करने हेतु अपने घनिष्ठ मित्र प्रेमराज जी कुमावत से सिफरिश की थी।

अपने बम्बई प्रवास के दौरान लेखक की 'बम्बई की डायरी' के पन्ने अपनी इस बहिन से वैसी ही प्रेरणा प्राप्त करते हैं जैसी प्रेरणा 'विरह का इन्द्रधनुष' के निर्मल को अपनी मीता जीजी से मिली थी।

'आज सुरेश दीदी का पत्र मिला जिसे पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई । मेरे पास आज एक भी नया पैसा नहीं है। एक रूपया जो पैन्ट की जेब में मिला था उसे मैंने सूटकेस में डाल दिया था परन्तु बहुत ढूंढ़ने पर भी वह न मिला। आज दुबारा बिना प्रेस के कपड़े पहनकर जा रहा हूं। दीदी को पत्र का उत्तर देने की जल्दी थी, अत: थोड़ा दुखी सा था। परन्तु सूटकेस में दीदी का पता किया हुआ एक लिफाफा मिल गया जिसे पाकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। '

(बम्बई की डायरी : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा)

'बम्बई की डायरी' के पृष्ठ लेखक के बम्बई प्रवास के दौरान उनके द्वारा पग-पग पर सहन की गई आर्थिक पीड़ा को उजागर करते हैं। ऐसी ही आर्थिक पीड़ा को साहस के साथ सहन करते उनके साहित्य के विभिन्न पात्रों

को देखा जा सकता है।

'मुझे लगा कि मैं सड़क पर कार्य कर रही एक मज़दूरिन के साथ लोहे की पराती में मिट्टी डाल रहा हूं और उसके बाद हम पत्थर तोड़ने उसी पहाड़ी पर चले गये जिस पर कभी योगेश ने मुझे नाटक खेलना सिखाया था।.....

मज़दूरिन ने पेड़ की छाँव में एक गूदड़ी बिछाकर उस पर अपने बच्चे को लिटा दिया और चटनी रोटी खाने लगी। मैं भी उसके साथ चटनी रोटी खा रहा हूं। उसमें मुझे ऐसा स्वाद आ रहा था कि मन भरता ही न था'

(विरह का इन्द्रधनुष : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 51)

'विरह का इन्द्रधनुष' उपन्यास का तो सम्पूण रचाव ही एक निर्धन परिवार की किशोरी सरला के इर्द गिर्द है।

मैं हायर सैकेण्डरी में पढ़ रहा था। आर्थिक स्थिति अच्छी न थी अत: शहर की एक पुरानी बस्ती में शर्मा जी के मकान में बीस रूपये माहवार पर एक कोठरी किराये पर ले ली थी। ..... मेरे मकान मालिक एक मोटर गैराज में हैल्पर थे और उनकी पत्नी पड़ौस की औरतों के कपड़े सीने का काम किया करती थी। घर की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी इसलिए उन्होंने अपने आँगन के सामने वाली कोठरी बीस रूपया महिने के किराये पर मुझे को दे दी थी, क्योंकि उनकी सोलह वर्षीया पुत्री सरला, जो इस वर्ष सैकेण्डरी का इम्तिहान दे रही थी, उसका खर्च भी उन्हें वहन जो करना था।

(विरह का इन्द्रधनुष : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 86)

जिस प्रकार 'बम्बई की डायरी' में लेखक को उसके मित्रगण, अभिव्यक्ति उपन्यास में विस्वास को उसके बाबा, 'विरह का इन्द्रधनुष' में निर्मल को मीता जीजी एवं गीत काठी में लकड़ी ले जा रहे विद्यार्थी को फिरवाल आगे बढ़ने हेतु प्रेरित करते हैं उसी प्रकार 'विरह का इन्द्रधनुष' की भाभी को भी उसके पिता संकट की घड़ी में सहारा देकर आगे बढ़ने का मार्ग दिखाते हैं।

'वह बेचारी अपने दोनों बच्चों का पालन पोषण करने के लिए आस-पड़ौस की औरतों के कपड़ों की सिलाई किया करती परन्तु वह भी घर के अन्दर ही। उसके पिताजी ने ऐसी कठिन परिस्थितियों में अपनी पुत्री का हौसला बढ़ाते हुए यह सलाह दी कि भले ही उसके सास-श्वसुर एवं जेठ-जेठानी कितने ही अत्याचार करें या अमानुषिक यातनाएं दें परन्तु वह अपना घर न छोड़े। अपने पिता के सहयोग से भाभी ने उस वर्ष चोरी छिपे दसवीं कक्षा का प्राईवेट फार्म भरा और उसके पिताजी ने उसकी फीस के रूपयों की व्यवस्था की'।

(विरह का इन्द्रधनुष : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 41)

आर्थिक कठिनाइयां एवं गरीबी 'बम्बई की डायरी' में अपना आधिपत्य रखते हैं। लेखक इन्हें जीवन में आगे बढ़ने के उपादान मानता है जो उनके काव्य में देखा जा सकता है।

'..... कण्टकों के जाल से क्या मुक्त होना है
या अभावों में पड़े दम तोड़ देना है
कर ज़रा हिम्मत बना तक़दीर तू अपना
चक्रव्यूह से मुक्त हो पूरा करो सपना
इस पार हैं दुर्दिन गरीबी के थपेड़े भी
बाट किसकी देखता चल पड़ अकेले ही
.....
इस कँटीले मार्ग को जो पार तू कर ले
ज़िन्दगी का ले मज़ा फ़िर खूब जी भरके '

(तरुणाई काव्य संग्रह : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा)

'.....मैं साधारण सा मनुज किया पीड़ा को अंगीकार सदा,
अवरोध दिखे जिसके जीवन व्याकुल हो मन उस ओर चला.....'

(मैं तो हूं श्रद्धेय नहीं : डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा से)

'..... मिट्टी में रेंग रहे हम सब माता चिथड़ों में लिपटी है,
रोटी का कौर चबा मुँह में हाथ लिए मुँह देती है।

पिता तोड़ते चट्टानें जननी उनको थी पीस रही,
निर्जनता में प्रमुदित होकर मैं मार रहा था किलकारी।
थोड़ा-थोड़ा बोझा ढ़ोते और मात-पिता का सहारा ले,
पहले ढ़ोयी रेती सिर ले फिर जाकर तोड़ी चट्टानें।'

(कोई बतला दे मैं क्या हूं : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा)

गीत 'गरीब किसान' में पात्रों की कर्म करने की भावना दृढ़ता धारण किये हुए है। हर वर्ष की भाँति इस बार भी बारिश न होने के कारण दुर्भिक्ष की स्थिति है। ऐसी दशा में पति-पत्नी दोनों आपस में विचार विमर्श कर यह निर्णय लेते हैं कि यहां पर तो हम सब भूखे मर जायेंगे अत: अपने बच्चों को तो यहीं छोड़ देते हैं जो यहां पढ़ाई करेंगे और हम दोनों पास के शहर में ईंट भट्टों पर मज़दूरी करने चलते हैं जिससे बच्चे भी पढ़ जायें और परिवार का पालन-पोषण भी होता रहेगा ।

'.....

नायक : म्हे जार्यां छां शैर कमाबै. टाबर थे सब फडज्यो,
नान्हां- नान्हां भैण भायां को ध्यान सभी मिल रखज्यो,
ल्यो ये जेवर जडाऊ सब बेच चले जाज्यो थे फडबा.नै।

नायिक : चालो-चालो जी मत करो दे.र भट्टां पर ईंटां ढोबा.नै,

नायक : जार्यां-जार्यां छां म्हे दोन्यूं अब शैर
थे तो अण्डे र्‌हो फडबा. नै।

(मेरे गीत दिखायें गाँव : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, गीत सं. 3)

डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा के गीत संग्रह 'मेरे गीत दिखायें गाँव' के 'पडौसण' गीत की कथावस्तु भी 'बम्बई की डायरी' के लेखक को स्वजनों से मिले प्रोत्साहन के जैसी ही है।

किसी गाँव में एक औरत का पति परदेश कमाने गया हुआ है। काफी दिनों से उसका कोई समाचार नहीं मिल रहा है। ऐसी स्थिति में उसके परिवार पर आर्थिक संकट आन पड़ा है तथा बच्चे भूख से व्याकुल हैं। उनकी ऐसी में उन बच्चों की माँ मन ही मन बहुत दु:खी है। वह अपनी पड़ौसन से कहती

है कि बहिन मेरे बच्चे भूख से व्याकुल हैं अत: तुम थोड़ा अनाज उधार दे दो। उसकी पड़ौसन उससे कहती है कि हे बहिन तुम व्यर्थ में चिन्ता क्यों कर रही हो। हमारे दोनों के घर एक ही हैं और हमारे घर में अनाज का भण्डार है अत: तुम जितना अनाज चाहो मेरे से ले लो।

'.....स्त्री- स्थाई म्हारै घर मैं कोनै नाज पडोसण दे दै तू
पिवजी म्हारो गयो परदेशां, कद आवै कोनै थाक पडोसण दे दै तू

1. स्त्री म्हारा टाबर बास्या आज पडोसण दे दै तू
+ स्थाई- म्हारै घर मैं कोनै नाज पडोसण दे दै तू
2. पडोसण- म्हारै घर मैं छै भण्डार, पडोसण ले लै तू 2
क्यूं चिन्ता कर री बावळी, दोन्यूं घर की सुणलै एक पडोसण ले लै तू'

(मेरे गीत दिखायें गाँव : डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा, गीत सं. 32)

लेखक अपने बम्बई प्रवास के दौरान पैसे-पैसे को तरस गये थे। ऐसी स्थिति में उनके लिये एकाएक एक रूपये का मिल जाना भी बहुत मायने रखता है।

'आज शर्ट धुलवाने डाल आया हूं। डाल तो आया पर सोच रहा था कि इसकी धुलाई के 2.50 रूपये दो दिन बाद कहां से दूंगा। आज तो मेरे पास सिर्फ 90 पैसे ही थे। इसी फिक्र में ऑफिस चला गया जहां पर मालूम पड़ा कि कम्पनी की तरफ से (सी.ए.साहब) प्रतिदिन एक चाय के पैसे सब आर्टिकल को देते हैं। उन्होंने मुझे पूछा कि क्या यहां प्रवेश लेने के बाद चाय अपने पैसे से पी है? तो मैंने हां में जवाब दे दिया और 7 दिन के 60 पैसे के हिसाब से 4.20 रूपये मुझे मिल गये। यहां निर्धन को धन मिलने वाली कहावत लागू हो गयी। इन पैसों को प्राप्त करके मुझे बहुत ही प्रसन्नता हुई है और विश्वास हुआ है कि भगवान सबकी सुनता है। वैसे मेरे जीवन में भगवान ने हमेशा ही आगे से आगे पैसे की व्यवस्था कर दी है, इसीलिए पैसे की कमी से मैं विचलित नहीं होता। मुझे पूरा विश्वास है कि जब मेरे पास सब पैसे समाप्त हो जायेंगे तो भगवान फिर कहीं से दिला देगा।

आज से मैंने निश्चय किया है कि चाय तो पीऊंगा नहीं (वैसे बम्बई

में आने के बाद पी भी नहीं कभी), और सी.ए. साहब से 60 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से चाय का खर्चा ले लूंगा जिससे मेरा गुजारा चल जायेगा। इसके लिए यह जरूरी है कि प्रतिदिन लंच टाइम में नीचे आकर 5-7 मिनट घूमना पड़ेगा।

.....आज गणेश को पत्र लिखा । न चाहते हुए भी मैंने उसे लिख ही दिया कि शास्त्रीनगर वाले जीजाजी से 150 रूपये लाकर कैसे भी करके भिजवा देना। मैंने उसे यह भी लिख दिया है कि मेरे पास सिर्फ 80 पैसे ही रहे हैं। शुरू में तो मुझे ग्लानि सी हुई कि मुझे ऐसा नहीं लिखना चाहिए था परन्तु अब बोझ हल्का महसूस कर रहा हूं।

..... आज जब मैं कपड़े धोने हेतु जा रहा था तो पैंट की जेब से कलदार एक रूपया मिला। पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई और आश्चर्य भी कि आज से पहले खोजने पर एक पैसा भी नहीं मिला और आज क्यों। भगवान हनुमानजी ने सहायता की है, उन्हें मैं भूलता थोड़े ही हूं।

..... ढाबे का मालिक मंशाराम जी इस समय बहुत अच्छा आदमी साबित हो रहा है। आज उसका महिना पूरा हो गया है। यहां पर सब एडवांस लेते हैं परन्तु उसने बिना कुछ लिए महीने भर खाना खिलाया है। मैं खाना खाने जाता हूं तो मन में बड़ा संकोच होता है। आज मैंने उससे 2-4 दिन और रुकने का निवेदन किया है।

अब मेरे पास कुल 2 रूपये हो गये हैं। एक रूपया पहले वाला भी मिल गया है। मुझे अब थोड़ी राहत महसूस हो रही है। आज कई दिनों बाद 50 पैसे के 2 चीकू खाये हैं।'

(बम्बई की डायरी : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा)

शर्मा जी के गीतों में उन्होंने अपने जैसी इस स्थिति का ग्रामीण जीवन में साक्षात् कराया है। उनके गीत 'छप्पन्या को काळ' गरीब किसानों के लिए वैसा ही समय है जैसा कि लेखक के लिये उनका बम्बई प्रवास रहा।

हमारे देश में सन् 1856 में भयंकर अकाल पड़ा था जिससे जीव-जन्तु भी पानी के बिना मरने लगे थे।.....गाँव में अकाल पड़ा है तथा एक किसान के घर में खाने को एक दाना भी नहीं है।

इतने में ही सामने से दामाद को आता देखकर स्त्री ने कहा कि हमारे यहाँ तो अकाल पड़ा हुआ है आपके यहाँ की स्थिति बताओ। इस पर दामाद ने कहा कि इन्द्र भगवान जरूर बरसेंगे और युग-युग से उन्होंने भक्तों की परीक्षा ली है। परन्तु यदि सारा गाँव मिलकर उनको बुलाएगा तो वह अवश्य बरसेंगे।

'स्थाई : पुरूष - बरस्यो कोऽनै इन्दरराज, धरती देखै मूऽण्डो फाड़
स्त्री - झोझरू की रोऽटीऽ मूंगांऽ की दाऽळ,
खालै जँवाईं जीऽ पड गयो काऽळ

..... 7-पुरूष पाड्या झोझरू टीबा सूंऽ पल्है लिया बाँध
कूटकाट रोटी बऽणाई और मूंग की दाळ
देख्या साऽमैं आया जँवांईं ढोक लगावीं रै

8- स्त्री सासू बोली आओ जीऽ काळ पड्यो ईं देऽश
थे आया परदेश सूं कांईं इन्दर को संदेश

9- पुरुष बोल्यो सुणो सासूजीऽ इन्दरजी आवैगो
जुग जुग मैं वा लिई परीक्षा भक्तां की वा लेगो
मिलकर सारो गाँव बुलावैऽ तो सुणलेगो जी'

(मेरे गीत दिखायें गाँव : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, गीत सं. 49)

शर्मा जी का गीत 'काठी' तो बम्बई की डायरी के अधिकांश पन्नों को अपने अंतर में समेटे हुए है। दृष्टव्य है।

कोई कहता होगा कि गरीबी और कठिन परिस्थितियाँ मनुष्य के जीवन में अवरोधक होते हैं परन्तु सही मायने में तो ये मनुष्य के जीवन को एक सशक्त पृष्ठभूमि प्रदान करते हैं। कठिन परिस्थितियों से निकला हुआ व्यक्ति अपने जीवन में कभी हताश नहीं होता और वह निरन्तर सफलता की ओर बढ़ता ही रहता है। उसे अपना वक्त याद रहता है और वह अपने कर्त्तव्य-पथ से कभी विचलित नहीं होता। यह सर्वविदित है कि अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन भी एक लकड़हारे थे और कठिनाई से जीवन जीते हुए उन्होंने जन-सामान्य के समक्ष एक अनोखा आदर्श प्रस्तुत किया।

एक गरीब स्त्री अपने विद्यार्थी भाई को लेकर लकड़ियों का गट्ठर लाने के लिए पहाड़ी पर पहुँच गई। जब वे लकड़ियों का गट्ठर लेकर वापस अपने घर की ओर आ रहे थे तो जंगल में उन्हें वनरक्षक (फिरवाल) मिल गया और उनको कहने लगा कि तुम मेरी इजाजत के बिना लकड़ियाँ कैसे काटकर ले जा रहे हो। इन गट्ठरों को नीचे डाल दो अन्यथा मैं तुम्हारे विरुद्ध कानूनी कार्यवाही करूँगा।

.....उसकी बात पर फिरवाल ने उसे ऊपर से नीचे तक देखा और कुछ सोचने लगा। पश्चाताप में भरकर फिरवाल स्त्री से कहता है कि हे बहन मुझे माफ करो। मैं तुम्हारी नेक-नीयति और धर्म-कर्म से बड़ा प्रभावित हूँ। आप लोग अपने-अपने गट्ठर लेकर घर जाओ। यह मेरा आशीर्वाद है कि तुम सुखी रहो और तुम्हारा यह भाई पढ़-लिखकर अपने जीवन में उन्नति करे यही मेरा आशीर्वाद है। इस प्रकार यह गीत मनुष्य के जीवन में सत्य, धर्म-कर्म आदि के महत्व को उजागर करता है।

'पुरुष काठी लियां बोलो थे बिन पूछ्यां कैंयां जार्‌या रै
स्त्री काठी लिया घर आटै म्हे जार चूलो बाळां रै
1 पुरुष मैं छूं ई डूंगर को रै फिरवाळ कोनै जाणो
बन्द करूं ज्यो बिन पूछ्यां पत्ता अर लकडी काटो
गेरो नीचै काठ्यां नै माथा सूं मैंऽ खैर्‌यो + स्थाई
2 स्त्री दया करो फिरवाळ जी म्हे कोनै यांनै बेचां
टाबर बैठ्या भूखा वांनै जार रोटी देद्‌यां
थे खो तो म्हे गेरद्‌यां पण रोटी कैंयां बणांवां + स्थाई
.....
4 स्त्री या छोरो छै भाई मेरो फडबाटै र्‌ह कन्नै
खै साँची फिरवाळ जी नै डरपै तू मन्नै
रोटी या सेकै न्यारी या बात साँची छै +स्थायी
5 पुरुष ऊपर सूं नीचा तांयां यूं देख्यो वा फिरवाळ
सोच्यो कपड़ा खाकी पैर्‌यां बाई खै छै साँच

बिन बात मैं रोक्यो ऊंनै मन या पीड़ उठी रै
.....
7 पुरुष माफ करो बाई थे मूंनै बात थारी साँची
नेकनीयती धन्य करम थांको वापिस ठाल्यो काठी
भाई तेरो करै उन्नति देर्‌यो आशीर्वाद रै
पुरुष करम कर्‌यां जा भाई रै स्त्री - धन्य-धन्य फिरवाळ रै'

(मेरे गीत दिखायें गाँव : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, गीत सं. 65)

यह गीत शर्मा जी के निजी जीवन से कितना मेल खाता है। दृष्टव्य है।

'बात शायद 1975 की है। मैं नाहरी का नाका, जयपुर की कच्ची बस्ती में अपनी बहिन गीता जीजी के घर रहकर पढ़ाई कर रहा था। राजकीय दरबार उच्च माध्यमिक विद्यालय में हायर सैकेण्डरी का विद्यार्थी था। एक दिन अँधेरे ही जीजी के साथ नाथू और मैं भी जलाने के लिये लकड़ियां लेने नाहरी का नाका के डूंगर में गये। जब लकड़ियों का गट्ठर लेकर वापस लौट रहे थे तो फिरवाल ने पकड़ लिया और जुर्माना मांगने लगा। बहिन ने उससे विनय की कि हम इन्हें बेचने के लिये नहीं अपितु अपना चूल्हा जलाने के लिये ले जा रहे हैं। तब फिरवाल ने मेरी स्कूल की ड्रेस पर तरस खाकर हमें छोड़ दिया। इसमें फिरवाल का दोष नहीं था क्योंकि हमारे गाँव का घींसा कण्डेरा भी तो एक-एक दिन में पाँच-पाँच छह-छह काठियां तक लाकर बेच दिया करता था। आज वही फिरवाल, मेरे स्वर्गीय पिताजी एवं गीता जीजी मुझे जीवन में और आगे बढ़ने हेतु प्रेरित कर रहे हैं'।

(कुछ कुछ यादें : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा से)

जिस प्रकार साहित्य समाज का दर्पण होता है उसी प्रकार किसी रचनाकार की कृति में कहीं न कहीं उसका निजीपना भी होता है। यह शर्मा जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से स्वयं सिद्ध होता है।

❑❑❑

परिशिष्ट 1

साक्षात्कार

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा द्वारा अपने सृजन-पथ पर चलते हुए कई अन्य सृजनकारों, कलाकारों एवं मातृभूमि के सच्चे सेवकों के साक्षात्कार लिए जिनका संक्षिप्त विवरण यहां पर प्रस्तुत किया जा रहा है :-

1. नाटककार स्व. श्री विजय तेन्डुलकर से उनके मुम्बई निवास पर लिये गये साक्षात्कार के मुख्यांश: दि. 5/1/2005 सायं 4.30 बजे

प्र. – आपके किन नाटकों में दो पीढ़ियों के संघर्ष मूल्य विघटन के बारे में बताया गया है।

वि. ते. – कन्यादान में बताया गया है। 1960 के बाद का है।

प्र. – सर, पाश्चात्य देशों का मराठी थियेटर पर आपकी राय में क्या प्रभाव पड़ा है?

वि. ते. – भारतीय रंगमंच पर पाश्चात्य देशों का बहुत प्रभाव पडा है। मराठी, गुजराती, हिन्दी आदि सभी थियेटरों पर विदेशों से एडोप्सन हुआ है।

प्र. – आपके नये नाटक?

वि. ते. – कन्यादान, सफर, हत् तेरी किस्मत

प्र. – सर, जिस प्रकार मराठी नाटकों का हिन्दी नाटकों में एडोप्सन किया गया है क्या उसी प्रकार हिन्दी के नाटकों का भी मराठी नाटकों में एडोप्सन हुआ है?

वि. ते. – प्राचीन हिन्दी नाटकों का तो मराठी में मंचन कम हुआ है परन्तु नये हिन्दी नाटक मराठी में खेले जा रहे हैं, जैसे हाल ही में मोहन राकेश के कई नाटक मराठी में खेले गये हैं।

प्र. – क्या आपने किसी विदेशी भाषा के नाटक का मराठी में अनुवाद

किया?

वि. ते. – हाँ, एक अंग्रेजी नाटक का मराठी में अनुवाद किया है?

प्र. – सर, नवें दशक एवं उसके बाद के अपने लेखन के बारे में बताने की कृपा करें।

वि. ते. – मैंने अपना अन्तिम नाटक 1992 में लिखा और तब से घोषित रूप से नाट्य-लेखन से रिटायर हो गया हूँ। इसके बाद मैंनें प्राकृतिक (यथार्थवादी) शैली में एक उपन्यास, 'कादम्बरी' लिखा।

श्री सुरेश खरे से साक्षात्कार दि० 5/1/2005 दोपहर 12.30 बजे

प्रश्न – क्या पुराने लोग प्रायोगिक नाटकों को स्वीकार कर रहे हैं?

सुरेश खरे – हाँ स्वीकार कर रहे हैं। परन्तु यहाँ पर प्रमुख बात है यह कि आप लोगों को ये प्रयोग किस प्रकार उपलब्ध करा रहे हैं। यदि आप उन्हें नयी चीजें नये निदान के साथ देंगे तो वे उन्हें स्वीकार नहीं करेंगे। परन्तु यदि आप नयी चीजें पुराने निदान के साथ या पुरानी चीजें नये निदान के साथ उन्हें उपलब्ध कराते हैं तो लोग इसे स्वीकार करेंगे और इस प्रकार आप स्वयं अपने दर्शकों का निर्माण करेंगे। इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटक सामूहिक गतिविधि है। काव्य, कहानी उपन्यास आदि स्वान्त: सुखाय होते हैं परन्तु नाटक बहुजन सुखाय होता है।

प्रश्न – सर, मूल्य विघटन एवं यौन सम्बन्धों के बारे में आपके क्या विचार है?

सुरेश खरे – आधुनिकता के कारण हमारे जीवन में अनेक कठिनाइयां पैदा हो रही हैं। पहले महिलाएं घर की चार दीवारी में ही रहती थी और कामकाज आदि के उद्देश्य से बाहर की दुनियाँ में नहीं आती थी। इस कारण घरेलू समस्याएं पति-पत्नी या घर के अन्य सदस्यों के बीच ही रहती थी। नारी बाहरी पुरुषों के सम्पर्क में नहीं थी, अत: समस्याएं सीमित थी। परन्तु

अब कामकाज के लिए स्त्री को घर से बाहर आकर अन्य पुरुषों के साथ काम करना पड़ रहा है। 1960 के पूर्व सभी नाटक परम्परागत थे जिनमें स्त्री को कठिनाइयां सहने वाले पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उसे सती सावित्री के रूप में बताया गया है। परन्तु वर्तमान में मीडिया आदि के कारण मूल्य बदल गये हैं।

अर्चना जोगलेकर से लिया गया साक्षात्कार दिनांक 03/01/2005

प्र. – आधुनिकता किसे कहते हैं और आज के नाटकों पर इसका क्या प्रभाव पड़ा है?

अ. जो. – पुराने नाटकों में शास्त्रीय संगीत का पक्ष होता था परन्तु आधुनिक नाटकों में सुगम संगीत (भाव संगीत) का प्रयोग बढ़ गया है।

प्र. – वर्तमान में मराठी नाटकों की क्या स्थिति है?

अ. जो. – मराठी नाटकों में समाज की आवश्यकताओं के अनुसार समसामयिक विषयों पर नाटक लिखे जा रहे हैं। बदलते हुए समय के विषयों पर मराठी नाटक लिखे जा रहे हैं। उदाहरण के लिए हाल ही में लिखा नाटक 'हमें अलग होना है' तलाक के विषय पर लिखा गया एक महत्त्वपूर्ण नाटक है। इस नाटक में एक गर्भवती महिला की समस्या को उजागर करते हुए उसका समाधान प्रस्तुत किया गया है। यह समाज को सही दिशा देने की ओर एक अच्छा कदम है। यदि ऐसे नाटक और लिखे जायें तो समाज में लोगों की मानसिकता में परिवर्तन होने की प्रबल संभावना है।

प्र. – आपके विचार से क्या हिन्दी-मराठी नाटकों पर विदेशी थियेटर का प्रभाव पड़ा है?

अ. जो. – जी. हाँ, हिन्दी-मराठी नाटकों पर वर्तमान में विदेशी प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। विदेशी नाटकों से जो भी कुछ अच्छा हिन्दी मराठी नाटककारों को देखने को मिला उन्होंने

अपने नाटकों में इसका समावेश किया। विदेशी थियेटर ने हिन्दी-मराठी थियेटर को नये-नये प्रयोग करने के अवसर प्रदान किये है। पी.एल.देशपाण्डे का नाटक 'टी. फुलाराणी' जो 'माई फेअर लेडी' फिल्म पर आधारित है, ऍडॉप्शन का एक अच्छा उदाहरण है। विदेशी थियेटर ने मराठी थियेटर को नये प्रयोग के अवसर दिये हैं।

प्र. – आपकी राय में हिन्दी मराठी नाटकों में स्त्री-कलाकारों की क्या स्थिति है?

अ. जो. – वर्तमान समय में नाटक के क्षेत्र में बहुत परिवर्तन हुए हैं। मराठी नाटकों को समाज में आज बहुत सम्मान की दृष्टि से देखा जा रहा है इसलिए वर्तमान समय में नारी कलाकारों द्वारा नाटकों में काम करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला है।

बाल गंधर्व नाटक मंडली की सदस्य, मराठी रंगकर्मी एवं निर्देशिका श्रीमती सुरेखा नारायण जोशी से 2 जनवरी 2005 को पुणे (महाराष्ट्र) में उनके निवास पर लिये गये साक्षात्कार के मुख्यांश

प्र. – आपने नाटकों में काम करना कब प्रारम्भ किया?

सु. जो. – मैंने नाटकों में काम करना सन् 1951 से प्रारम्भ किया और लगभग 10 वर्ष पूर्व मैंने नाटकों में काम करना बन्द कर दिया।

प्र. – आप किस संस्था से जुड़ी रही?

सु. जो. – मैं बाल गन्धर्व द्वारा स्थापित 'बाल गन्धर्व नाटक मण्डली' से जुड़ी रही। जब सन् 1954 में यह मण्डली बन्द हो गयी तो मैंने 'नट नाट्य कला मन्दिर' के नाम से अपनी स्वयं की एक संस्था स्थापित की।

प्र. – आपने बाल गन्धर्व नाटक मण्डली के किन-किन नाटकों में काम किया?

सु. जो. – मैंने बाल गन्धर्व के निर्देशन में मराठी नाटक संशयकहोव, मानापमान, एकच प्याला, द्रौपदी, स्वयंवर आदि नाटकों में काम किया।

प्र. – क्या आप अपनी संस्था 'नट नाट्य कलामंदिर' के तहत् मंचित नाटकों के कलाकारों को पारिश्रमिक प्रदान करती थी?

सु. जो. – हाँ, और यह पैसा या तो जनता से मिल जाता था या कमी पड़ने पर मैं स्वयं अपने पास से देती थी।

प्र. – वर्तमान समय में नाटकों की क्या स्थिति है?

सु. जो. – वर्तमान युग में चलचित्रों के आगमन के कारण नाटकों पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। शायद यही कारण है कि वर्तमान समय में कलाकारों की निष्ठा भावना नाटकों के प्रति कम होती जा रही है।

वरिष्ठ कत्थक नृत्य गुरू एवं मराठी रंगकर्मी श्रीमती आशा जोगलेकर से 3 जनवरी 2005 को मुम्बई में उनके निवास स्थान पर लिये गये साक्षात्कार के मुख्यांश

प्र. – आज के युग में मराठी रंगकर्मियों की नाटक के प्रति क्या प्रवृत्ति है?

आ. जो. – अभी जो मराठी रंगकर्मी नाटकों में काम कर रहे हैं वे अच्छे पढ़े लिखे है तथा नौकरी के साथ-साथ नाटकों में भी काम कर रहे हैं।

प्र. – ऐसे नौकरीपेशा लोगों का प्रतिशत आपकी राय में कितना है?

आ. जो. – लगभग 90 प्रतिशत नौकरीपेशा लोग ऐसे है जो नाटकों में भी काम करते हैं।

प्र. – क्या ऐसे रंगकर्मियों को नाटकों से आमदनी होती है या वे शौकिया तौर पर नाटकों में काम करते हैं?

आ. जो. – ऐसे कलाकार अपनी नौकरी से भी अधिक पैसा नाटकों में काम करके अर्जित करते हैं और बहुत से कलाकार तो आगे चलकर नौकरी छोड़कर केवल नाटकों में काम करने लगते हैं।

प्र. – क्या महाराष्ट्र में रंगमंच-कलाकारों की ऐसी संस्थाएं हैं जो नाटकों में

काम करने वाले कलाकारों को आर्थिक सहायता प्रदान करती हैं?

आ. जो. – इसकी ज़रूरत नहीं पड़ती क्योंकि मराठी लोग नाट्य-प्रेमी होते हैं इसलिए यहाँ पर नाटकों के शो बहुत अच्छे चलते हैं। यदि यहाँ पर रंगमंच के क्षेत्र में कोई टिक गया तो उसके पास अन्य कुछ कार्य करने का न तो समय रहता है और न ही उसकी ज़रुरत।

वरिष्ठ रंगकर्मी श्री दिनेश ठाकुर से दिनांक 24-10-04 को लिये गये साक्षात्कार के मुख्यांश

प्र. : नाटक के इस सेट को तैयार कर रहे ये लोग क्या सेट लगाने का ही कार्य करते हैं?

दिनेश ठाकुर : नहीं, ये लोग केवल इस कार्य से ही नहीं जुड़े हुए हैं, ये सब रंगकर्मी हैं और आज शाम को होने वाले शो में ये सब अभिनय भी करेंगे।

प्र. : सर, यह तो बहुत अच्छी बात है। इससे नाटक की टीम में एकता की भावना जागृत होती है और मंच-व्यवस्था भी प्रभावी बन पड़ती है।

दिनेश ठाकुर : हाँ, प्रत्येक रंगकर्मी को मंच-व्यवस्था का ज्ञान होना आवश्यक है, और यह तभी संभव हो सकेगा जब वह ऐसे कार्यों में सहभागिता करेगा। इससे कलाकारों में टीम- भावना का विकास भी होगा। रंगकर्म में कलाकार एवं कार्य दोनों में छोटे-बड़े का भेद नहीं होता। यही कारण है कि किसी भी नाटक का प्रदर्शन टीम-भावना से ही सफल हो पाता है।

प्र. : सर, क्या नाटकों में मंच-सज्जा, रूप-सज्जा, वस्त्र -विन्यास आदि आवश्यक होता है, क्योंकि कई बार जब हम किसी दूरस्थ स्थान पर नाट्य-प्रदर्शन करने जाते हैं तो इन व्यवस्थाओं को जुटाने में काफी कठिनाई आती है।

दिनेश ठाकुर : नाट्य प्रदर्शन हेतु ये सभी उपादान आवश्यक नहीं, अपितु सहायक होते हैं। नाटक की सफलता हेतु अभिनय एवं संवादों की प्रभावशाली अदायगी, बोलने का ढ़ंग आदि अधिक महत्व रखते हैं अत: हम दूरस्थ क्षेत्रों में साधारण से मंच पर भी प्रभावशाली प्रस्तुति दे सकते हैं। जैसे पौराणिक नाटकों में यह आवश्यक नहीं कि राजा को मुकुट ही पहनाया जाय या रानी को अलंकारों से सुसज्ज़ित ही किया जाय। आप उन्हें संकेतात्मक वस्त्र भी पहना सकते हैं। यह जरूरी नहीं कि राम का अभिनय करने वाला पात्र राजसी वस्त्र ही पहने। आप उसे कुर्ता पाजामा भी पहना सकते हैं, या फिर साधारण वस्त्र- विन्यास में सिर पर पगड़ी पहनाकर भी प्रस्तुत कर सकते हैं। उसकी उपस्थिति, उसके अभिनय से सार्थक होगी और दर्शक भूल जायेंगे कि उसका वस्त्र- विन्यास क्या है, मंच-सज्ज़ा कैसी है। अगर अभिनय प्रभावशाली रहा तो पात्र अपने किरदार को प्रस्तुत करने में पूर्णत: सफल रहेगा।

प्र. : सर, ऐसा माना जाता है कि रंगकर्मियों को हमेशा ही आर्थिक कठिनाइयों से जूझना पड़ता है, नाटकों के शो आदि के टिकिटों की बिक्री नहीं होती, और सामान्यतया इस क्षेत्र में सभी रंगकर्मियों को सरकारी सहायता भी उपलब्ध नहीं हो पाती। ऐसे में वह अपने आपको इस क्षेत्र से कैसे जोड़े रखें?

दिनेश ठाकुर : आपकी बात सही है कि हिन्दी थियेटर में अभी रंगमंच पर टिकिट खरीदकर नाटक देखने की भावना मराठी रंगमंच के जैसी नहीं है, परन्तु इसके लिये सतत् प्रयासरत रहकर लगे रहने की जरूरत है। जब मैंने बम्बई में हिन्दी रंगमंच पर कार्य करना शुरु किया था तो वहां पर भी ऐसी ही स्थिति थी। परन्तु इसके लिये मैं सतत् प्रयासरत रहा और आज आप देखिए कि मुम्बई में ही नहीं जयपुर आदि स्थानों पर भी हमारे नाटकों के प्रदर्शनों के लिये टिकिटों की खूब बिक्री होती है। और रही रंगकर्मियों के आर्थिक संकट की बात,

तो यह मानिए कि आर्थिक दृष्टि से तो रंगकर्म लाभ का कार्य है ही नहीं। इसमें तो वह व्यक्ति आये जो निष्ठा-भाव से रंग- कार्य करना चाहे। यदि कोई ऐसा सोचे कि इससे मुझे लाभ होगा , टिकिटों की बिक्री से शो के खर्चे निकल जायेंगे, वह रंगकर्म छोड़कर दुकानदारी जैसा अन्य कोई कार्य करे, क्योंकि रंगकर्म एक साधना है, परन्तु आज भी हिन्दी नाटक के सम्बन्ध में हास्यास्पद स्थिति यह है कि जो भी कोई पाँच- दस नाटकों में काम कर लेता है वह सिनेमा की ओर मुम्बई भागना चाहता है। ऐसे व्यक्ति कभी भी रंगमंच का हित नहीं कर पायेंगे।

प्र. : सर, हिन्दी- नाट्यलेखन के बारे में कुछ बतायें ।

दिनेश ठाकुर : असल में आज हिन्दी में अच्छे नाटक लिखने वालों की कमी है। जो कुछ नाटक लिखे भी जा रहे हैं उन पर निर्देशक अपनी टीम के साथ कड़ी मेहनत करता है और जब उसकी प्रस्तुति अच्छी हो जाती है तो उसका सारा श्रेय लेखक लेना चाहता है। उस सफलता के आधार पर कोई-कोई लेखक तो अपनी नाटक की पुस्तक को बोर्ड या विश्वविद्यालयों के कोर्स में भी लगवा देता है और अन्य कोई लेखक नाटक की इस सफलता के आधार पर प्रकाशकों से रॉयल्टी के रूप में मोटी रकम ही हड़प लेता है, परन्तु सही बात यह है कि एक साधारण सी कृति को भी अपनी मेहनत से सफलतम नाट्यकृति का दर्ज़ा दिलवाने के हेतु निर्देशक एवं कलाकार ही हैं जबकि इसका श्रेय उनके स्थान पर लेखक ले जाता है।

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के पूर्व निदेशक श्री देवेन्द्रराज अंकुर से 10 अक्टूबर 2004 को लिये गये साक्षात्कार के मुख्यांश

शोधार्थी : सर, क्या नाट्यशास्त्र जैसे ग्रन्थ आज भी प्रासंगिक हैं, और क्या ऐसे ग्रन्थों का व्याकरण आज भी हमारे लिये उपयोगी है?

देवेन्द्रराज अंकुर : हाँ, नाट्यशास्त्र, अभिनय दर्पण आदि ग्रन्थों में उल्लखित अभिनय के सिद्धान्त-व्याकरण आदि आज भी प्रासंगिक हैं और सही मायने में तो यदि आज भी उन सिद्धान्तों का पालन किया जाय तभी नाटकों का प्रभावी मंचन सम्भव हो सकेगा। इन ग्रन्थों में नाटक का हर तत्त्व मौजूद है, उनके बारे में गहन निर्देशन हैं और उन्हें स्वीकार किया जाना समकालीन रंगमंच की अनिवार्यता है।

वर्तमान समय में काव्य का रंगमंच, कहानी का रंगमंच आदि नवीन नाट्यरूप प्रकट हो रहे हैं, जिसमें कविता एवं कहानी को नाट्यरूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

शोधार्थी : सर, इस प्रकार की नवीन नाट्यावधारणाओं के बारे में कुछ जानकारी दें।

देवेन्द्रराज अंकुर : चूंकि कविता ,कहानी एवं उपन्यास का रंगमंच वर्तमान समय के सर्वथा नवीन प्रयोग हैं। ख़ास तौर से कविता में काव्यात्मक भावपक्ष की प्रधानता होने के कारण उसके रंग वैशिष्ट्य के उपादान भी इस प्रकार के चुनने पड़ते हैं ताकि उनसे काव्य के मौलिक भाव उजागर हो सकें।

परमवीर चक्र कर्नल होशियार सिंह जी से उनके निवास पर लिये गये साक्षात्कार के प्रमुख अंश [1]

कर्नल होशियार सिंह : 'हम लद्दाख से हैदराबाद की ओर आ रहे थे। 1971 की लड़ाई प्रारम्भ होने के कारण हमें पठानकोट में ही रोक लिया गया। हम 5 दिसम्बर 1971 को सरहद पार करके तथा दुश्मन के मोर्चों पर कब्ज़ा करके 14 अगस्त को बसन्तर नदी को पार करके दुश्मन के इलाके में बीस किलोमीटर अन्दर तक पहुँच गये। वहाँ पर हमें गाँव जरपाल (जहाँ पर दुश्मन के बहुत मजबूत मोर्चे थे) पर कब्ज़ा करने का आदेश मिला। दुश्मन के इन मोर्चों के सामने नदी थी जिसके दूसरी ओर बारूदी सुरंगें पड़ी थीं जिन्हें दुश्मन ने मशीनगनों, टैंकों एवं तोपखानों से ढँक रखा था। हमने पन्द्रह तारीख की रात को लगभग दस बजे नदी पार करना प्रारम्भ किया तथा नदी

पार करके दुश्मन के मोर्चों और मशीनगनों पर हमला कर दिया। यह एक ऐसा वक्त होता है जहाँ दुश्मन करो या मरो का इरादा रखता है। इस घमासान युद्ध के दौरान मैं स्वयं जान की परवाह किये बिना एक मोर्चे से दूसरे मोर्चे के बीच जाता रहा तथा जबरदस्त हाथापाई की लड़ाई के पश्चात् हम दुश्मन के इस मोर्चे पर कब्ज़ा करने में क़ामयाब हुए जिसमें दुश्मन के काफी कैदी और हथियार पकड़े गये।

परन्तु अगले दिन सोलह तारीख की सुबह दुश्मन ने हमारे चारों ओर घेरा डालकर हमारी सेना पर पैदल फ़ौज और टैंकों के साथ भारी गोलाबारी शुरु कर दी परन्तु हम लोगों ने उनके ये हमले नाकाम कर दिये। सोलह दिसम्बर 1971 की इस लड़ाई में दुश्मन के 45 टैंक बर्बाद हुए एवं काफी जान-माल का नुकसान हुआ। यह लड़ाई काफी नज़दीक से लड़ी गई। हमारे एवं दुश्मन के टैंकों में चार सौ-पाँच सौ गज की दूरी से सीधी भिडन्त थी। इस युद्ध में मेरे साथी सैकेण्ड लैफ्टिनेंट श्री अरुण खेतरपाल वीरगति को प्राप्त हुए जिन्हें मरणोपरान्त परमवीर चक्र से सम्मानित किया गया।

परन्तु दुश्मन चुप न रहा और उसने पीछे से अपनी रिजर्व ब्रिगेड के साथ, पूरी प्लानिंग के साथ, हमारी कम्पनी पर एक ओर से पैदल सेना से और दूसरी ओर से टैंकों से 17 दिसम्बर 1971 को प्रात: पाँच बजे ही ज़बरदस्त हमला कर दिया। यह युद्ध अब तक का सबसे घमासान युद्ध था जो लगभग ढाई घण्टे तक चलता रहा। इसमें दुश्मन मार खाता रहा और बार-बार आक्रमण करता रहा। इस घमासान युद्ध में दुश्मन के लगभग 350 जवान मारे गये तथा मैं स्वयं भी जख़्मी हो गया परन्तु युद्ध के मैदान से हटने को तैयार न हुआ।

इस युद्ध में मरने वालों में दुश्मन के कमाण्डिंग ऑफिसर ले. कर्नल अक़रम रज़ा और तीन अन्य अधिकारी शामिल थे। 18 तारीख को युद्ध का सीज फायर हुआ। पाकिस्तानी ब्रिगेडियर सफेद झण्डा लेकर हमारे सामने आये व अपने और अपने अधिकारियों व जवानों की लाशें मांगी।..... ले. कर्नल अक़रम रज़ा की लाश हमारे मोर्चे के 20-25 गज के अन्दर थी जिससे यह साबित होता है कि वे लीड कर रहे थे। एक पाकिस्तानी सैनिक ने बताया

([1] पंजाब नैशनल बैंक, जयपुर अँचल की पत्रिका 'पी एन बी सन्देश', अक्टूबर- दिसम्बर 1997, संपादक, डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा, से साभार)

कि ले. कर्नल अक़रम रज़ा कहते थे कि मैं लड़ाई में सदा आगे रहूँगा और वे अन्तिम समय तक आगे रहे। इस युद्ध को देखने एवं मुझे जख़्मी हालत में हौसला देने मेजर जर्नल वाग पिंटो स्वयं आये और मुझसे कहा कि आपने बहुत बहादुरी की लड़ाई लड़ी है।

इस युद्ध में मुझे अद्वितीय बहादुरी एवं कुशल नेतृत्व हेतु परमवीर चक्र से सम्मानित करने की 13 जनवरी 1972 को विधिवत घोषणा की गई।'

❑❑❑।

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

साहित्य और समाज एक सिक्के के दो पहलू हैं। अगर समाज है तो साहित्य है। यदि समाज ही अपने अस्तित्व में नहीं है तो साहित्य के होने न होने का कोई औचित्य भी नहीं है। इसके विपरीत साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। कोई भी राष्ट्र तब तक उन्नति नहीं कर सकता जब तक उस राष्ट्र का साहित्य उच्चाकोटि का न हो।

साहित्य और साहित्यकारों का अटूट सम्बन्ध है। साहित्यकार अपने युग का प्रतिनिधि होता है। साहित्य का जन्म वहां होता है जहां आत्माभिव्यक्ति की तीव्र कामना होती है। इसलिए बिना किसी विवाद के कहा जा सकता है कि साहित्यकार की रचनाओं में मुख्य रूप से उसकी आत्मसत्ता व व्यक्तित्व का प्रभाव परिलक्षित रहता है। वैसे भी साहित्यकार अत्यधिक भावुक और संवेदनशील होता है। वह अपने परिवेश में होने वाली घटनाओं और क्रिया-कलापों से आम जनमानस की अपेक्षा अत्यधिक प्रभावित रहता है। एक समर्पित साहित्यकार वही होता है जो जनहित से जुड़कर कार्य करता है, आदमी की पीड़ा को अंतर्चेतना के धरातल पर स्पर्श करता है। उसके दर्द की अभिव्यक्ति तथा भावना को उभारने के लिए सीधा व सपाट रास्ता मुहैया करवाता है। इस दृष्टि से डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा जी ने प्रशंसनीय कार्य किया है, जो उन्हें विशिष्ट बना देता है। इनका समग्र साहित्य बड़ा ही प्रभावकारी एवं मार्मिक है। इन्होंने जिस यथार्थ को भोगा है, उसी सच्चाई को अपनी लेखनी के माध्यम से अपने साहित्य में उकेरा है।

जीवन परिचय—

जन्म—साहित्य के उत्कृष्ट साधक व कर्मयोगी साहित्यकार कैलाशचन्द्र शर्मा जी का जन्म 19 जुलाई सन् 1957 को राजस्थान प्रान्त के मैड़ ग्राम में हुआ। डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा जी को अपने जन्म के समय के सम्बन्ध में मतभेद है। आपको अपनी माता जी से केवल इतना ही पता चल

पाया है कि जिस दिन आपका जन्म हुआ उस दिन बाणगंगा का मेला था और तिथि के हिसाब से यह मेला प्रतिवर्ष उतरते वैशाख की पूर्णिमा के दिन लगता है। जब आपने विद्यालय में प्रवेश लिया तो गुरुजी ने अपने हिसाब से कल्पना कर आपकी जन्म तिथि 19 जुलाई सन् 1957 लिख दी और तब से समस्त सरकारी प्रमाण पत्रों में यही तिथि आपकी जन्मतिथि मानी जाने लगी।

माता-पिता—कैलाशचन्द्र शर्मा जी के पिता श्री गणेश दास जी ग्राम मैड़ में स्थित श्री सियावरजी के मन्दिर में महन्त थे। वे जीवन-यापन के लिए कृषि कार्य भी किया करते थे। उन्होंने अपना पूरा जीवन भगवत्-भक्ति एवं जनसेवा में व्यतीत किया। उन्हें अपने जीवनकाल में अपने पुत्रों की ओर से कोई सुख न मिला। ऐसे समाजसेवी एवं परोपकारी व्यक्ति का 29 मार्च 1980 को निधन हो गया। कैलाशचन्द्र शर्मा जी की माता श्रीमती नारायणी देवी गृहकार्य में दक्ष एक विदुषी महिला थी। आप मातृ स्नेह से वंचित ही रहे क्योंकि आपकी माँ अधिकतर अपने पीहर टोडा (जयपुर) में ही रहा करती थी।

शिक्षा—कैलाशचन्द्र शर्मा जी की प्रारम्भिक शिक्षा ग्राम मैड़ में स्थित राजकीय श्रीराम प्रवेशिका संस्कृत विद्यालय में हुई। आप प्रारम्भ से ही मेधावी छात्र रहे और अपनी कक्षा में अव्वल आते रहे। आठवीं की परीक्षा पास करने के उपरान्त आपने शाहपुरा (जयपुर) के राजकीय श्री कल्याण सिंह उच्च माध्यमिक विद्यालय में जीव-विज्ञान विषय लेकर प्रथम श्रेणी से नौवीं कक्षा पास की। इसके उपरान्त आपने जयपुर के पोद्दार उच्च माध्यमिक विद्यालय में प्रवेश लिया परन्तु दसवीं की पढ़ाई बीच में ही छोड़कर नौकरी हेतु कलकत्ता चले गया। वहां पर आपका मन न लगा और नौकरी छोड़कर वापस जयपुर आ गए। तदुपरान्त स्वयंपाठी विद्यार्थी के रूप में ऐच्छिक विषय हिन्दी लेकर द्वितीय श्रेणी से दसवीं कक्षा उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् आपने दरबार उच्च माध्यमिक विद्यालय जयपुर से प्रथम श्रेणी में हायर सेकैण्डरी की परीक्षा उत्तीर्ण की । अपने पिता की प्रेरणा से वाणिज्य महाविद्यालय जयपुर से बी. कॉम. एवं तत्पश्चात राजस्थान विश्वविद्यालय से एम. कॉम. की परीक्षा पास की।

सन् 1982 में आपने पंजाब नैशलन बैंक में कार्य ग्रहण किया एवं नौकरी करते हुए एलएल. बी., सी. ए. आई. आई. बी., डिप्लोमा इन लेबर ला एण्ड पर्सनल मैनेजमेंट, सर्टिफिकेट इन रूरल बैंकिंग, सर्टीफिकेट इन कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग, एम. ए. (हिन्दी), पीएच. डी. तथा डी. लिट्. की उपाधियां

प्राप्त की। आपने भातखण्डे संगीत विद्यापीठ लखनऊ, अखिल भारतीय गांधर्व महाविद्यालय मण्डल मुम्बई तथा वृहद् गुजरात संगीत समिति अहमदाबाद की संगीत एवं नृत्य विशारद परीक्षाएं भी पास की।

विवाह और सन्तति—कैलाशचन्द्र शर्मा जी का विवाह 8 जून सन् 1982 को केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा के प्रो. डॉ. ईश्वर सिंह जी शर्मा की जयेष्ठ पुत्री रेनूरानी के साथ सम्पन्न हुआ। आपके एक पुत्री काजल और एक पुत्र अभिषेक है। दोनों ने कम्प्यूटर इन्जीनियरिंग की परीक्षा पास की है तथा दोनों ही संगीत, नृत्य एवं नाटक के प्रतिभाशाली कलाकार हैं। आपकी पत्नी श्रीमति रेनू जी त्रिवेणी कला संगम जयपुर की संस्थापक सदस्य एवं वर्तमान में अध्यक्ष हैं जबकि काजल और अभिषेक इस संस्था के प्रथम विद्यार्थी रहे हैं।

संघर्षमय जीवन—कैलाशचन्द्र शर्मा जी ने अपने छात्र जीवन को पूरा करने में जिस यातनामय संघर्ष को झेला, उसका स्वाद बहुत कड़वा है, फिर भी आपने किसी से याचना नहीं की। जब तक आपके पिता जी जीवित रहे तब तक उन्होंने आपकी शिक्षा के खर्चो की पूर्ति का पूरा-पूरा बन्दोबस्त किया। आपको यह भी पता था कि आपके पिता जी आपकी पढ़ाई के लिए आर्थिक साधन किन कठिनाइयों से जुटाते थे। उनकी इस तपस्या को आपने अपने पिता की जीवनी 'कर्मयोगी' लिखकर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की है।

कैलाशचन्द्र शर्मा जी ने अध्ययन के समय काफी बाधाएं झेली फिर भी इन संघर्षपूर्ण परिस्थितियों में आपने किसी से याचना नहीं की । आपके पिता जी ने अपने जीवनकाल में आपके अध्ययन में आने वाली हर बाधा को दूर करते हुए आपको आगे बढ़ने हेतु प्रोत्साहित किया।

आजीविका—कैलाशचन्द्र शर्मा जी ने अपनी एम. कॉम. की शिक्षा पूरी करने के पश्चात् जयपुर के एक प्राईवेट स्कूल में अध्यापन का कार्य प्रारम्भ किया। इसके पश्चात् आपने कुछ समय आडवाणी एण्ड सन्स जयपुर (एक्सपोर्ट कम्पनी) में लिपिक का कार्य किया तथा वर्ष 1980 में राजस्थान वित्त निगम जयपुर में अस्थाई लिपिक के रूप में लगभग एक वर्ष तक कार्य किया। तत्पश्चात् दी गंगानगर केन्द्रीय सरकारी बैंक के प्रधान कार्यालय में एक वर्ष तक लिपिक के रूप में अपनी सेवाएं देने के उपरान्त 14 अगस्त 1982 में पंजाब नैशनल बैंक में लिपिक के रूप में कार्यग्रहण किया । वर्तमान

में आप इस बैंक में वरिष्ठ अंकेक्षक के रूप में कार्यरत हैं। आपको कृषि कार्य करने का भी शौक है। ग्राम मैड़ में स्थित अपनी कृषि भूमि पर आप दो स्थाई नौकरों की सहायता से कृषि कार्य करवाते हैं।

साहित्य सृजन (रचना संसार)—कैलाशचन्द्र शर्मा जी ने अल्पायु में ही साहित्य सृजन करना प्रारम्भ कर दिया था। जब आप आठवीं कक्षा में पढ़ते थे तो विरोधी गुट के साथियों को चिढ़ाने के लिए तुकबन्दी किया करते थे, जो आपके वर्तमान लेखन का आधार बनी । आपने अपनी इस धरोहर को अपने काव्य-संग्रह 'तरुणाई' में यत्र-तत्र प्रस्तुत किया है। आपकी सर्वप्रथम कहानी 'चेहरे असली नकली' एवं कविता 'वस्तु-पात्र सम्बन्ध' वाणिज्य महाविद्यालय जयपुर की पत्रिका 'व्यावसायिका' में प्रकाशित हुई जिससे आपको प्रोत्साहन मिला और आप निरन्तर लेखन के क्षेत्र में आगे बढ़ते ही चले गये।

संगीत, नृत्य एवं नाटक—लेखन के साथ-साथ आपका व्यक्तित्व नाट्य एवं नृत्य विधा से भी जुड़ा रहा आपने जयपुर घराने के वरिष्ठ नृत्यगुरु स्व. श्री मांगीलाल जी पँवार से कत्थक नृत्य की प्रारम्भिक शिक्षा लेने के बाद श्री राजेन्द्र गंगानी, स्व. श्री तीरथ राम आजाद तथा श्रीमती आशा जोगलेकर जैसे महान् गुरुओं से समय-समय पर कत्थक नृत्य की बारीकियां सीखकर न केवल अपने अनेक शिष्य शिष्याओं को कत्थक नृत्य की शिक्षा प्रदान की अपितु जयपुर, जोधपुर, भरतपुर गाजियाबाद आदि अनेक स्थानों पर अपनी शिष्य-शिष्याओं के साथ विभिन्न मंचों पर प्रस्तुतीकरण भी दिया। उल्लेखनीय है कि आपकी शिष्या श्रीमती रीना शर्मा ने इन्दिरा कला संगीत विशविद्यालय, खैरागढ़ की वर्ष 2003 की विश्वविद्यालय की बी.डान्स की योग्यता सूची में अखिल भारतीय स्तर पर द्वितीय स्थान प्राप्त किया। नृत्य के क्षेत्र में आपके इस योगदान को कथक नृत्य गुरु श्रीमती आशा जोगलेकर एवं श्री राजेन्द्र गंगानी ने 'कर्मपथ' (डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा का बहुआयामी सृजन) पुस्तक हेतु प्रस्तुत अपने आलेखों में उजागर किया है।

आपने अब तक लगभग डेढ़ दर्जन नाटकों की रचना की, उनके मंचन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी तथा नाट्य निर्देशन जैसे महान् दायित्व का भी निर्वहन अत्यन्त कुशलता से किया। अपने इन सुरूचीपूर्ण कार्यों को गति प्रदान करने हेतु आपने अपनी पत्नी श्रीमती रेनूरानी के सहयोग से सन् 1995 में त्रिवेणी कला संगम, जयपुर की स्थापना की जहां पर अखिल भारतीय

गांधर्व महाविद्यालय मण्डल, मुम्बई की संगीत अलंकार तक की परीक्षाओं के केन्द्र व्यवस्थापक के रूप में संचालन करना एवं वर्ष 2001 में त्रिवेणी संगीत महाविद्यालय, जयपुर की स्थापना कर उसमें इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ की विद् डिप्लोमा एवं बी.डान्स तक की परीक्षाओं हेतु कत्थक नृत्य विषय का शिक्षण प्रदान कर परीक्षाओं का संचालन करना आपकी सांगीतिक अभिरूची का परिचायक है। 4 नवम्बर 1998 को आपके कुशल संयोजन में न्यू गेट से रवीन्द्र मंच, जयपुर तक एक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की विशाल संगीत रैली का आयोजन किया गया जिसमें देश-विदेश से लगभग सात सौ संगीत-विद्यार्थियों एवं संगीत प्रेमियों ने पद्मश्री विश्वमोहन भट्ट एवं संगीतज्ञ स्व. श्री नारयणराव पटवर्धन के नेतृत्व में सहभागिता की। आप अखिल भारतीय गांधर्व महाविद्यालय मण्डल, मुम्बई की संगीत एवं कत्थक नृत्य की विभिन्न परीक्षाओं के प्रायोगिक परीक्षक के रूप में भी संगीत एवं नृत्य जगत् को अपनी सेवाएं देते रहे हैं तथा राजस्थान विश्वविद्यालय के नाट्य विभाग में समय-समय पर एम.ए. कक्षाओं के विद्यार्थियों को अवैतनिक अतिथि संकाय के रूप में अपनी सेवाएँ प्रदान की हैं।

मान-सम्मान (सम्मान एवं पुरस्कार)—कैलाशचन्द्र शर्मा जी बिना किसी प्रतिफल प्राप्त करने की आकांक्षा के निरंतर साहित्य, संगीत, नाट्य एवं नृत्यकर्म में सलंग्न रहे हैं। अपने सुरूचिपूर्ण कार्यों को मूर्त रूप प्रदान करने के उद्देश्य से आपने अपनी पत्नी श्रीमति रेनू रानी शर्मा के सहयोग से वर्ष 1995 में त्रिवेणी कला संगम की स्थापना की और उसकी छाया तले रंगमंच से जुड़कर अनेक नाटकों का प्रस्तुतीकरण किया, जिसके परिणामस्वरूप आपको राजस्थान कला केन्द्र भरतपुर द्वारा 'कलाश्री', अखिल भारतीय साहित्य परिषद द्वारा 'नाट्य कला सम्मान' तथा इण्डियन फार्म जर्नलिस्ट एसोसिएशन द्वारा ढूँढाड़ी बोली में किये गये शोधपरक कार्य एवं नाट्य क्षेत्र में किए गए उल्लेखनीय कार्यों हेतु सम्मानित किया गया।

कार्यक्षेत्र (अभिरूचि)—कैलाशचन्द्र शर्मा जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी है अर्थात् आपका लेखन एक विधा तक सीमित नहीं रहा। आप कहानीकार होने के साथ-साथ नाटककार, उपन्यासकार और कवि भी हैं। लेखन के साथ-साथ रंगमंच और संगीत में भी आपकी रूचि रही है। आप सक्रिय रूप से रंगकर्म में संलग्न रहे हैं तथा कई नाटकों का निर्देशन एवं उनमें अभिनय

किया है। संगीत के क्षेत्र में आपने वर्ष 1995 में त्रिवेणी कला संगम जयपुर एवं वर्ष 2001 में त्रिवेणी संगीत महाविद्यालय जयपुर की स्थापना की। आप अखिल भारतीय गांधर्व महाविद्यालय मंडल मुम्बई की संगीत अलंकार तक की परीक्षाओं के केन्द्र व्यवस्थापक एवं मण्डल के 67वें दीक्षांत समारोह के संयोजक रहे हैं। आप मंडल की संगीत अलंकार तक की परीक्षाओं के क्रियात्मक परीक्षक एवं मंडल के आजीवन सदस्य हैं। आपने विभिन्न प्रांतों में आयोजित संगीत सम्मेलनों एवं बैठको में सहभागिता की है।

व्यक्तित्व—व्यक्तित्व से तात्पर्य है व्यक्ति का अपना वैशिष्ट्य या निजीपना। वस्तुत: व्यक्तित्व का निर्माण व्यक्ति विशेष के अनुभवों और परिवेशीय प्रभावों से होता है। दशरथ ओझा ने व्यक्तित्व की परिभाषा इस प्रकार दी है-''व्यक्तित्व का अर्थ है मानसिक प्रक्रिया में अनुरूपता अथवा एकरूपता का निर्माण।''

मनुष्य की सबसे बड़ी पहेली उसका अपना व्यक्तित्व है।

रामबाबू गुप्त के अनुसार-''व्यक्तित्व पूर्णतया एक आदर्श है। यह आत्मज्ञान है।''

आइनैक के अनुसार-''व्यक्तित्व व्यक्ति के चरित्र, स्वभाव, वृद्धि और शारीरिक बनावट का थोड़ा बहुत स्थाई और स्थिर संगठन है जो वातावरण के साथ उसके अपूर्व समायोजन को निधारित करता है।''

व्यक्तित्व शब्द को अंग्रेजी में 'पर्सनेलिटी' कहा जाता है। पर्सनेलिटी शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द 'परसोना' से हुई है जिसका अर्थ है मुखौटा।

किसी भी व्यक्ति की तरह साहित्यकार का व्यक्तित्व भी द्विपक्षीय होता है-बाह्य और आन्तरिक पक्ष। बाह्य पक्ष में पहनावा, रंग-रूप, खान-पान आदि आते हैं, जबकि आन्तरिक पक्ष में स्वभाव, व्यवहार और साहित्यिक रचनाओं में प्रदत्त भावना और शैली को लिया जा सकता है। जीवित साहित्यकार के व्यक्तित्व का चित्र प्रस्तुत करना अत्यन्त जटिल कार्य होता है, क्योंकि परिस्थिति के अनुसार वह अपने अन्दर नये भाव और प्रभाव ग्रहण करता है। वह परिस्थितियों और भावों के अनुकूल ही रचना कार्य करता है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य का व्यक्तित्व गतिशील होता है।

कलम की शक्ति, विचारों और सिद्धांतों को अपना ध्येय मानकर

सृजन एवं सेवा में कार्यरत कैलाशचन्द्र शर्मा जी एक ऐसे आलोक स्तम्भ हैं जो दूर-दूर तक लोगों का मार्गदर्शन कर रहे हैं।

आकृति एवं वेशभूषा—कैलाशचन्द्र शर्मा जी साधारण-सी कद-काठी वाले व्यक्ति हैं। यद्यपि आपका जन्म एक साधारण कृषक परिवार में हुआ है अत: आपकी आकृति से आपके ग्रामीण होने का अनुमान सहज रूप से लगाया जा सकता है। आपकी वेशभूषा सामान्य है। नौकरी पर जाते हुए आप पैन्ट-शर्ट पहनते हैं। पहनावे में किसी भी प्रकार का दिखावा आपको पसन्द नही है। जब आप अपने गाँव जाते है तो सफेद धोती-कमीज, सिर पर लाल पगड़ी एवं पैरों में बाड़ीजोड़ी की जूतियाँ पहनना आपको रूचिकर लगता है। संगीत एवं नाटक के कार्यक्र मों में सहभागिता के अवसर पर आप कुर्ता-पाजामा पहनते हैं। आप सक्रिय रंगकर्मी एवं कत्थक नृत्य के प्रदर्शनकारी कलाकार हैं, अत: कार्यक्रमों के प्रस्तुतीकरण के समय आप पात्रानुसार वेशभूषा धारण करते हैं।

खान-पान—कैलाशचन्द्र शर्मा जी विशुद्ध रूप से शाकाहारी हैं। माँसाहार, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, गुटखा आदि से आपको सख्त घृणा है। सामान्यतया आप चाय नहीं पीया करते, परन्तु छाछ-राबड़ी, बाजरे की खिचड़ी, लहसुन की चटनी एवं दाल बाटी चूरमा आदि आपको बेहद पसंद हैं।

स्वभाव—कैलाशचन्द्र शर्मा जी स्वभाव से विनम्र शिष्ट और मृदुभाषी हैं। आप मिलनसार व्यक्ति हैं। प्रत्येक कार्य को आप बड़ी गम्भीरता से लेते हैं। आपका जीवन अनुशासन के साँचे में ढ़ला है।

शालीनता—कैलाशचन्द्र शर्मा जी सादगी और सरलता की प्रतिमूर्ति हैं। जीवन में किसी भी प्रकार का दिखावा आपको पसन्द नहीं है तथा औपचारिकताओं से वे कोसों दूर हैं। आप अपनी बैंक की सेवा में भी एक सहज व्यक्ति के रूप में रहते हैं। आपको कभी भी पद का अभिमान नहीं रहा। यही कारण है कि जब आप प्रबन्धक के पद पर कार्यरत थे तो कई लोगों ने आपको अधिकारी की पदोन्नति के लिए तैयारी करने की सलाह दी।

स्वाभिमानी व्यक्तित्व—कैलाशचन्द्र शर्मा जी अपने पिता महन्त श्री गणेशदास जी महाराज की ही भांति स्वाभिमानी व्यक्तित्व के धनी रहे हैं। कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी आपने न तो अपने सिद्धांतों के विरुद्ध कोई कार्य किया और न ही अपनी परिस्थितियों को किसी के सामने उजागर किया। शायद

इसी गुण ने आपको समान्य लोगों की पंक्ति से परे शीर्ष पर ले जाकर खड़ा करने में अहम भूमिका निभाई। जब किसी कठिन परिस्थिति से निपटने में आप स्वयं को असहाय महसूस करते तो सब कुछ भगवान के भरोसे छोड़ दिया करते और तब निश्चय ही उस कठिनाई से आप आसानी से निजात पा लिया करते।

पुरुषार्थ एवं आशावाद—कैलाशचन्द्र शर्मा जी की सबसे बड़ी विशेषता उनका आशावादी होना है। कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी आप आशा, विश्वास और पुरुषार्थ से परिपूर्ण रहते हैं, तभी तो आपका लेखनकार्य निरन्तर जारी है। हमने हालातों और परिस्थितियों की मार से टूट कर अनेक लेखकों को राह छोड़ते हुए देखा है या फिर गहरी निराशा और अवसाद के दौर से गुजरते हुए। परन्तु कैलाशचन्द्र शर्मा जी आशावादी हैं और आप में परिस्थितियों से संघर्ष करने की क्षमता है।

दृढ़ इच्छा शक्ति—कैलाशचन्द्र शर्मा जी दृढ़ इच्छा शक्ति सम्पन्न एक कर्मठ इन्सान हैं। जब आपके मन में किसी कार्य को करने की इच्छा उत्पन्न होती है तो आप तब तक चैन की साँस नहीं लेते जब तक कि उस कार्य की सिद्धि न हो जाए। इस मार्ग में आने वाली किसी भी प्रकार की कठिनाई से आप तनिक भी विचलित नहीं होते। आपका मत है कि डूबता हुआ व्यक्ति यदि डरकर जीने की उम्मीद खो बैठता है तो वह जरूर डूबेगा। पर ऐसे समय में किसी के जीने की इच्छा बलवती हो तो शायद वह बच सकता है। इस सम्बन्ध में आपके तरुणाई काव्य संग्रह की कविता 'पथ के राही' खरी उतरती प्रतीत होती है-

'जाग उठ इन्सान पल-पल बीतता जाता, राह है सुनसान इस पर क्यों नहीं आता।

रित नाटक कर इसे आबाद क्यों तू सो रहा पगले, धैर्य मन से धार राही राह पर चल दे। ....."[1]

प्रकृति प्रेमी—कैलाशचन्द्र शर्मा जी का जन्म एक ऐसे गाँव में हुआ जो प्राकृतिक वातावरण से आच्छादित है। आपका निवास स्थान सियावरजी का मन्दिर बाणगंगा नदी के तट पर स्थित है,जहां पर खजूर, आम, जामुन आदि के हजारों पेड़ सैकड़ों वर्षों से स्थिर रूप से खड़े हैं। मोर, पपीहे,

1.13 जून 1997 को जयपुर दूरदर्शन से प्रसारित नाटक 'पेड़ हमारे मित्र' में भीखू की गुनगुनाहट

कोयल,चिड़ियाओं की चहचाहट एवं गाय, भैंस, बछड़ों के रंभाने का स्वर निरन्तर रूप से आपको आनन्दित करता है, जो आपके दूंढाड़ी गीतों, कविताओं, कहानियों, नाटकों एवं उपन्यासों में देखा जा सकता है।

सृजन की प्रेरणा—डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा जी को साहित्य सृजन की प्रेरणा अपने जन्म स्थान के इस प्राकृतिक वातावरण एवं स्कूल के सहपाठियों से मिली जिसके परिणामस्वरूप आपने अपनी प्रारम्भिक कविताएं एवं कहानियाँ लिखी। जीवन में पग-पग पर आपको कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जो आपके लेखन के आधार बने। इस बात को आपनेअपने काव्य संग्रह 'तरुणाई' में अभिव्यक्त भी किया है।

वर्ष 1995 में त्रिवेणी कला संगम जयपुर द्वारा आयोजित बाल नाट्य प्रशिक्षण शिविरों हेतु अच्छे नाटकों की कमी ने आपको नाटक लिखने हेतु प्रेरित किया तथा वर्ष 2005 में भरतपुर की कत्थक नृत्य की उनकी शिष्या श्रीमती रीना शर्मा ने आपको ढूंढाड़ी गीत लिखने हेतु प्रेरित किया जिनका आगे चलकर आपने अपने नाटकों के मंचीय प्रस्तुतीकरण में समायोजन किया। आपने रीना शर्मा के घर पर अपना प्रथम गीत 'टरैं' लिखा तथा आगे चलकर उनकी शिष्या ज्योति कटारा के सहयोग एवं प्रेरणा से ढूँढाड़ी गीतों का सृजन एवं ध्वनि संयोजन किया जिसके परिणामस्वरूप फरवरी 2007 में आपके ध्वनि संयोजन में 'त्रिवेणी कैसेट-सी. डी.' जारी हुई।

कृतित्व

हिन्दी साहित्य के प्रबुद्ध साहित्यकार कैलाशचन्द्र शर्मा जी की साहित्य यात्रा विभिन्न कृतियों, जैसे कहानी, नाटक, उपन्यास, काव्य,जीवनी जैसी विधाओं से होकर गुजरती है। इनकी सफलता और प्रसिद्धि लेखक के लेखन कर्म की सार्थकता को सिद्ध करती है तथा श्रेष्ठता को भी स्थापित करती है।

कहानियां : - अबला की मन्ज़िल (कहानी संग्रह)

1. अबला की मंज़िल
2. माधवी
3. साक्षात्कार
4. मौन समर्पण
5. चेहरे असली-नकली

6. नवजीवन
7. कर्ज़
8. दीपक की रोशनी
9. पैमाना
10. भटकती आत्मा
11. ताबीज़

ओवरकोट (कहानी संग्रह)

1. ओवरकोट
2. रींछ भगवान
3. बोरे की लाश
4. खान दोस्त
5. भिखारिन माँ
6. बछड़े की अरदास
7. उपकार का बदला
8. सवारी का मोह
9. स्वाभिमान

नाटक :

1. मानवता की पुकार
2. दुश्मन दोस्त
3. कंस
4. बदले का अभिशाप
5. वीर शिरोमणि चौहान
6. लड़ी मैड़ की
7. कार्यवाहक हलवाई
8. आधुनिक यमलोक (पुरस्कृत)
9. मोती मैड़ के
10. मेरी लाडो पढ़ेगी
11. और मंज़िल मिल गई

12. मन चंगा तो कठौती में गंगा
13. महावत
14. देख जात के ठाठ
15. नामकरण
16. अफ़सर का कुत्ता
17. पेड़ हमारे मित्र
18. छोटा बेगारी
19. जैसे को तैसा
20. तुक्के का बादशाह
21. जँगल मित्र
22. आज का गुरुकुल

उपन्यास : - अभिव्यक्ति
- विरह का इन्द्रधनुष

जीवनी : कर्मयोगी

शोध प्रबन्धः - नरेश मेहता का गद्य साहित्य (पीएच.डी.)
- हिन्दी मराठी नाटकों का रंग वैशिष्ट्य समकालीन भारतीय सन्दर्भ (डी.लिट्.)

समीक्षा : 1. मोहब्बत का सफ़रनामा (लेखक -श्री जगदीश चन्द्र पण्ड्या,
2. हादसों के संस्मरण (मराठी रंग कलाकार श्री विजय कदम की पुस्तक 'हलकं फुलकं' की समीक्षा)

सम्पादन :-स्मारिका- त्रिवेणी कला संगम, जयपुर- वर्ष 1995 एवं वर्ष1998
- पी.एन.बी. सन्देश (पंजाब नैशनल बैंक की गृह पत्रिका)
- बैंक ज्योति (जयपुर बैंक नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की पत्रिका)

लेख : देश की विभिन्न प्रतिष्ठित पत्रिकाओं एवं समाचार पत्रों में साहित्य, संगीत, नाटक एवं लोककला विषयों पर लेख।

कविताएं : काव्य संग्रह 'तरुणाई' एवं अन्य कविताओं सहित लगभग 60 कविताओं का सृजन

गीत : 131 ढूंढाड़ी गीतों का सृजन एवं ध्वनि संयोजन । 11 फरवरी 2007 को रिलीज ' त्रिवेणी कैसेट्स-सी.डी.' के कम्पोजर,निर्देशक एवं सह गायक।

व्यंग्य गीत : 'बोल नगाड़ा बोल'।

खण्ड काव्य : 'माँ सन्तोषी'

महाकाव्य : 'गणेश चरित' (लेखन प्रक्रिया में)

कथक एवं लोकनृत्य प्रस्तुतीकरण : रवीन्द्र मंच, जयपुर, यूथ हॉस्टल जोधपुर, वी.एन. भातखण्डे संगीत महाविद्यालय गाजियाबाद, भरतपुर आदि स्थानों पर प्रस्तुति।

साक्षात्कार : 1. परमवीर चक्र विजेता कर्नल होशियार सिंहजी का पी. एन. बी. सन्देश हेतु साक्षात्कार 2. नाटककार श्री विजय तेन्दुलकर, श्री सुरेश खरे,श्रीमति आशा जोगलेकर, अर्चना जोगलेकर,रंगकर्मी श्री दिनेश ठाकुर, श्री देवेन्द्रराज अंकुर, श्री विजय कदम, श्रीमति पद्मश्री आदि का डी.लिट्. उपाधि हेतु साक्षात्कार।

डायरी : मुम्बई प्रवास के दौरान लिखित

प्रदर्शनात्मक व्याख्यान : भारतीय संगीत, नाटक एवं लोक कला विषय पर आई सी सी आर, नई दिल्ली हेतु प्रदर्शनात्मक व्याख्यान की वीडियो सी.डी. का निर्माण ।

दूरदर्शन प्रसारण:

नाटक

जयपुर दूरदर्शन के 'नन्ही दुनिया' कार्यक्रम में 13 जनवरी 1997 को 'पेड़ हमारे मित्र', 5 फरवरी 2011 को 'मेरी लाड़ो पढ़ेगी' तथा सिटी चैनल भरतपुर द्वारा 'तुक्के का बादशाह' (ब्रजभाषा में) का प्रसारण।

परिचर्चा-साक्षात्कार

*16 दिसम्बर 2009 को जयपुर दूरदर्शन के 'नन्ही दुनिया' कार्यक्रम में 'संगीत एवं कला विषयों की प्रासंगिकता' विषय पर बच्चों के साथ का प्रसारण।

* 28 फरवरी 2010 को 'नवां ढूंढाड़ी गीतां मांयं भारतीय ग्राम्य जीवन एवं दर्शन ' विषय पर साक्षात्कार का प्रसारण।

* 20 फरवरी 2010 को 'नाट्यकला का व्यक्तित्व निर्माण में योगदान' विषय पर साक्षात्कार का प्रसारण।

* 22 सितम्बर 2013 को 'व्यक्तित्व निर्माण में प्रदर्शनात्मक कलाओं की भूमिका' विषय पर साक्षात्कार का प्रसारण।

संगीत एवं नाटक

- सक्रिय रूप से रंगकर्म में संलग्न।
- वर्ष 1995 में त्रिवेणी कला संगम एवं वर्ष 2001 में त्रिवेणी संगीत महाविद्यालय जयपुर की स्थापना।
- अखिल भारतीय गान्धर्व महाविद्यालय मण्ड़ल,मुम्बई के आजीवन सदस्य, गायन की विशारद एवं कत्थक नृत्य की अलंकार तक की प्रायोगिक परीक्षाओं के परीक्षक।
- जयपुर रंगमंच, कमानी ऑडीटोरयम नई दिल्ली, यूथ हॉस्टल जोधपुर, भैंसडा(जैसलमेर), कुम्हेर, भरतपुर, बडा नगला-इटामड़ा(भरतपुर) आदि स्थानों पर आयोजित विभिन्न नाट्य शिविरों का निर्देशन एवं उनमें अभिनय।
- जयपुर दूरदर्शन के 28 जुलाई 2008 को प्रसारित 'कल्याणी ' धारावाहिक एवं 5 फरवरी 2011 को प्रसारित नाटक 'मेरी लाड़ो पढ़ेगी' में अभिनय।

प्रमुख नाटक :आधुनिक यमलोक, हरिलाल एण्ड संस, पंचनामा, तुक्के का बादशाह, मन चंगा तो कठौती में गंगा, महावत, कार्यवाहक हलवाई, अफ़सर का कुत्ता, लड़ी मैड़ की, मेरी लाडो पढ़ेगी आदि।

संयोजन - निर्देशन :

1. बैंक नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, जयपुर की सांस्कृतिक कार्यक्रम समिति एवं नराकास जोधपुर की राजभाषा शील्ड मूल्यांकन समिति का संयोजन।
2. त्रिवेणी कला संगम एवं अन्य शिक्षण संस्थाओं के विभिन्न संगीत एवं नाट्य प्रशिक्षण शिविरों का संयोजन एवं निर्देशन।
3. अखिल भारतीय गान्धर्व महाविद्यालय मण्ड़ल मुम्बई के 67 वें दीक्षान्त समारोह एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगीत रैली का संयोजन।

नई प्रतिभाओं को प्रोत्साहन : - संगीत, नृत्य एवं नाटक के क्षेत्र में अनेक प्रतिभाओं को आगे बढ़ने का अवसर प्रदान किया गया।

पत्रवाचन : नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इण्डिया द्वारा 13 दिसम्बर 2003 को इलाहाबाद में श्री नरेश मेहता एवं भगवतीचरण वर्मा का सृजन संसार एवं नाशिक में वर्ष 2012 में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठियों में पत्रवाचन।

सम्मान : -राजस्थान कला केन्द्र, भरतपुर द्वारा ' कलाश्री सम्मान'
-अखिल भारतीय साहित्य परिषद द्वारा 'नाट्यकला सम्मान'
- नाटक ' आधुनिक यमलोक' को पंजाब नैशनल बैंक की राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिताओं में प्रथम एवं चतुर्थ पुरस्कार प्राप्त हुआ।
- ढूंढाड़ी बोली एवं नाट्य क्षेत्र में किये गये शोधपरक कार्यों हेतु भारतीय कृषि पत्रकार संघ नई दिल्ली द्वारा वर्ष 2008 का ए.पी.एस. शिन्दे सम्मान।

शिक्षण- प्रशिक्षण: 1. त्रिवेणी कला संगम, जयपुर के विद्यार्थियों- प्रशिक्षणार्थियों को कथक नृत्य एवं शास्त्रीय गायन का प्रशिक्षण एवं त्रिवेणी संगीत महाविद्यालय, जयपुर में अवैतनिक रूप से बी.डान्स के विद्यार्थियों को हिन्दी विषय का अध्यापन।

2. राजस्थान विश्वविद्यालय के नाट्य विभाग में एम.ए. के विद्यार्थियों को अतिथि संकाय के रूप में 'आधुनिक रंगमंच ' विषय का अध्यापन।

शोधकार्य : आपके साहित्य पर निम्न शोधकार्य सम्पन्न हुए या प्रगति में हैं :-

पीएच.डी. :
1. 'मैड़-विराट अँचल के नवसृजित ढूँढाड़ी गीतों का सांगीतिक विश्लेषण' - वर्ष 2013(राजस्थान विश्वविद्यालय,शोधकर्ता : सुधीर माथुर,निर्देशिका- प्रोफेसर मायारानी टाक)
2. 'डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के काव्य में कला, संस्कृति एवं ग्राम्य जीवन '- प्रगति में (राँची विश्वविद्यालय,शोधकर्ता : हरद्वारीलाल शर्मा, निर्देशिका- डॉ. यशोधरा राठौर)
3. 'डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के गद्य साहित्य का विवेचन'

- प्रगति में
(राँची विश्वविद्यालय,शोधकर्ता : कुलदीप, निर्देशक- डॉ. रतन प्रकाश)
4. 'डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के नाट्य साहित्य का विश्लेषण'
- प्रगति में
(राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज नागपुर विश्वविद्यालय ,शोधकर्ता : भावना कलसुले, निर्देशिका- डॉ. रेणुबाली)
5. 'डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के नाटकों में सामाजिक बोध'
- प्रगति में
(उत्तर महाराट्र विश्वविद्यालय,जलगाँव ,शोधकर्ता : श्री निम्बा लोटन वाल्हे, निर्देशक- डॉ.शिवाजी नामदेव देवरे)

एम.फिल.- कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय :
1. 'नाटककार कैलाशचन्द्र शर्मा' -वर्ष 2008
(शोधकर्ता-जोगेश, निर्देशक-डॉ. बाबूराम)
2. 'कहानीकार कैलाशचन्द्र शर्मा' -वर्ष 2009
(शोधकर्त्री-सुखविन्द्र, निर्देशिका-डॉ. श्रीमती नरेश जोशी
3. 'अभिव्यक्ति उपन्यास में स्त्री मनोविज्ञान' - 2009
(शोधकर्त्री-कविता, निर्देशिका -डॉ.आशा अहलावत)

एम.फिल.- गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर : वर्ष 2014
1. डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा कृत कहानी संग्रह 'अबला की मंज़िल' का अनुशीलन
(शोधकर्त्री-दीपिका, निर्देशक-डॉ. सुनील कुमार)

एम.फिल.- दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, चेन्नई : वर्ष 2013
1. डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा कृत उपन्यास 'विरह का इन्द्रधनुष' का कथ्य एवं शिल्प
(शोधकर्त्री-पिंकी रानी दीक्षित, निर्देशक-डॉ. रामसजन पाण्डेय, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)

❑❑❑

परिशिष्ट 2

जीवन रेखा

माँ, नानी एवं छोटी बहिन के साथ मध्य में बालक कैलाश

अपने जन्म-भवन के चबूतरे पर माँ के साथ कैलाश (दायें)

पुत्र, पुत्री एवं+ पत्नी के साथ पच्चीस वर्ष पहले।

पुत्र,पुत्रवधू एवं पत्नी के साथ पच्चीस वर्ष बाद।

रेनू जी के साथ गोवा के समुद्र तट पर

मैड़ गाँव में अपने खेत पर अतिथियों के साथ मध्य में डॉ. कैलाश

पुत्र अभिषेक के विवाह के अवसर पर परिजनों के साथ

कैलाश जी का साहित्य-संगीत साधना स्थल एवं आवासगृह

विशिष्ट व्यक्तियों के साथ

जयपुर के पूर्व महाराजा ब्रिगेडियर भवानी सिंह जी के साथ बायें से दूसरे। साथ में त्रिवेणी कला संगम के सदस्यगण

हिन्दी रंगकर्मी एवं अभिनेता दिनेश ठाकुर के साथ (बायें)

मराठी नाटककार विजय तेंदुलकर के साथ (बायें)

नृत्यगुरु राजेन्द्र गंगानी से नृत्य सीखते हुए (दायें)

मराठी रंगकर्मी विजय कदम-पद्मश्री के साथ कैलाश बायें से तीसरे साथ में रेनू जी (दायें से प्रथम)

हिन्दी रंगकर्मी अभिनेता राजेन्द्र गुप्ता के साथ (दायें)

त्रिवेणी संगीत महाविद्यालय के उद्घाटन समारोह के अवसर पर संस्था-परिवार के साथ कैलाश (मध्य में)

कथक नृत्यगुरु आशा जोगलेकर एवं गुरु बहिन अर्चना के साथ कैलाश (मध्य में)

संगीत, नृत्य एवं नाट्य

अपने प्रथम गीत 'टर्रे' की रवीन्द्र मंच, जयपुर पर प्रस्तुति देते मध्य में कैलाश। संगतकार गुलजार एवं शफात हुसैन

अपनी शिष्या मंजू पुरी के साथ जोधपुर में कथक नृत्य प्रस्तुत करते कैलाश। संगतकार हरीश पुरी एवं रेशमा

अपनी शिष्याओं नृत्य सिखाते हुए। स्थान-बड़ नगला, तह. बैर, जिला भरतपुर (राजस्थान)

त्रिवेणी कला संगम के 'प्रथम महिला संगीत, नाट्य एवं नृत्य प्रशिक्षण शिविर' के प्रशिक्षणार्थियों को सिखाते हुए।

इ.क.संगीत वि.वि. खैरागढ़ के दल के समक्ष गायन की प्रस्तुति देते हुए कैलाश (पगड़ी बांधे हुए)

एस.वी. बी.एड. कॉलेज, कड़ी (गुजरात) की शिक्षिकाओं-विद्यार्थियों को नृत्य सिखाते हुए।

नाटक 'आधुनिक यमलोक' की प्रथम प्रस्तुति के अवसर पर कलाकारों एवं संस्थाध्यक्ष के साथ (बायें से तीसरे)

नाटक 'आधुनिक यमलोक' के एक दृश्य में किस्मती की भूमिका में (हाथ जोड़ते हुए)

संगीत, नृत्य एवं नाट्य

अ.भा.गांधर्व महाविद्यालय मण्डल के दीक्षान्त समारोह की संगीत रैली का नेतृत्व करते हुए (मध्य में)

त्रिवेणी कैसेट-सी.डी. के विमोचन समारोह में संगीतज्ञ गोपीजी भट्ट के साथ। साथ में पुत्र अभिषेक एवं रेनू जी।

नाटक 'आधुनिक यमलोक' के एक दृश्य में नट की भूमिका में सुनीता कुमारी के साथ नृत्य प्रस्तुत करते हुए।

बड़ नगला में नाटक 'गिरगिट' के हवलदार की भूमिका में सह कलाकारों के साथ (कान पकड़े हुए)

नाटक 'लड़ी मैड़ की' की प्रथम प्रस्तुति के एक दृश्य में डमरू बजाते हुए। साथ में बाबू लाल, महेश एवं रश्मि सोनी।

डॉ. योजना शर्मा, दीपिका, नविता आदि के साथ रवीन्द्र मंच, जयपुर पर शास्त्रीय गायन प्रस्तुत करते हुए

नाटक 'लड़ी मैड़ की' की प्रस्तुति (2007) में कलाकार सूफी सैय्यद, शबाना, डॉ. रेशमा, सहीफा आदि के साथ (दायें)

बड़ नगला में में आयोजित शिविर के प्रशिक्षणार्थियों के साथ। (पगड़ी बांधे हुए)

सम्मान, पुस्तक विमोचन एवं पत्रवाचन

भारतीय कृषि पत्रकार संघ के सम्मान समारोह में केन्द्रीय मंत्री डॉ. बलराम जाखड को अपनी गतिविधियां बताते हुए

अखिल भारतीय साहित्य परिषद के पदाधिकारियों से सम्मान ग्रहण करते हुए (बायें)

पुस्तक 'कर्मपथ' के विमोचन समारोह में (बायें)। साथ में रवि झांकल, आशा जोगलेकर, रेणुका इसरानी, हेमंत भगत।

पुस्तक 'कर्मयोगी' के विमोचन समारोह में भारतीय ज्ञानपीठ के निशक डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय के साथ (बायें)

प्रथम पुस्तक 'तुक्के का बादशाह' के विमोचन समारोह में डॉ. राधेश्याम शर्मा के साथ।

पुस्तक 'नरेश मेहता गा गद्य साहित्य' के विमोचन समारोह में त्रिवेणी कला संगम दल व कलाकारों के साथ ।

राष्ट्रीय संगोष्ठी में पत्रवाचन करते हुए। साथ में डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय, डॉ. नरेन्द्र कोहली, प्रेम जनमेजय, सीतेश आलोक

पूर्व राज्यसभा-लोकसभा सदस्य श्री बालकवि बैरागी द्वारा नाटक 'आधुनिक यमलोक' की पाण्डुलिपि का लोकार्पण